रुक्मिणी हरण

लेखक

कन्हैयालाल मुंशी

अनुवादक

ओंकारनाथ शर्मा

मूल्य : सोलह रुपये

द्वितीयावृत्ति, १९७२

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली-६

मुद्रक : जी० आर० कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा,
शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली-३२

विषय-सूचा

	पूर्व भूमिका	११
१	राजमुकुट का परित्याग	१४
२	मादीपनि गुरु	२२
३	विचार-मथन	३०
४	पॉच पाण्डव	३६
५	ब्रह्मचर्याश्रम	४२
६	गुरु मादीपनि की छाया मे	४८
७	पञ्चजन तथा पुण्यजन राक्षस	५३
८	पाचजन्य शख	६४
९	वैवस्वतपुरी	७१
१०	नाग कन्या	८०
११.	'आशिका, लौट आ' (अ)	८७
	'आशिका, लौट आ' (आ)	९१
१२	कृष्ण और बलराम का मथुरा से पलायन	९७
१३	मार्ग मे	१०३
१४	भगवान परशुराम	११०
१५	बहद्वाल, राजनीतिज्ञ के रूप मे	११७
१६	खडे हो गरुड !	१३०
१७.	गोमानक पहाडी	१३७
१८	जरासध को जीवनदान मिला	१४३
१९.	उद्धव का 'नर्क' मे जाना	१५४
२०	श्वेतकेतु का पतन (क)	१६३
२१.	श्वेतकेतु का पतन (ख)	१६७

२२.	कृष्ण के साथ मै लड नही सकूँगा	१७२
२३.	शैव्या का राप	१७८
२४	जरासध का नया व्यूह	१८४
२५	रुक्मिणी का विद्रोह	१६०
२६	रेवती	१६७
२७	बलराम की प्रतिज्ञा	२०२
२८	प्रेम की वेदी	२०८
२६	विजय-प्रस्थान	२१८
३०	बलराम की विजय (क)	२२३
३१	बलराम की विजय (ख)	२२७
३२	वे आ रहे है (क)	२३०
३३	वे आ रहे है (ख)	२३४
३४	विजय कूच (क)	२३६
३५	विजय कूच (ख)	२४४
३६	कृष्ण की मोहिनी (क)	२५०
३७	कृष्ण की मोहिनी (ख)	२५५
३८	बृहदबाल की द्विधा (क)	२५६
३६	बृहदबाल की द्विधा (ख)	२६३
४०	श्वेतकेतु का शैव्या से पुर्नमिलन	२६८
४१	शैव्या का वैर	२७७
४२	शरणागति	२८४
४३.	रुक्मिणी को धर्म का रहस्य-बोध	२६३
४४	कन्या और गऊ	३००
४५	श्वेतकेतु का नगर-त्याग	३०५
४६	कुडिनपुर मे आगमन	३१४
४७	बिना युद्ध के विजय	३१६
४८.	कृष्ण की नयी चिन्ता	३२८
४६	श्रद्धा का लोप	३३५
५०	नये जीवन की ओर	३४२
५१.	प्रस्थान	३५२
५२	मुचकन्द की गुफाएँ	३६१

५३ अविभक्त आत्मा ३६६
५४ नाथ का आगमन और रुक्मिणी का उद्धार २७५
५५ उपसंहार ३८०
५६ परिशिष्ट ३८६

स्तवन

नमोऽस्तुते व्यास विशालबुद्धे फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ।।

प्रपन्नपारिजाताय स्तोत्रवेत्रैकपाणये ।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नम ।।

वसुदेवसुतं देव कसचाणूरमर्दनम् ।
देवकीपरमानन्द कृष्ण वदे जगद्गुरुम् ।।

मूक करोति वाचाल पगु लङ्घयतेगिरिम् ।
यत्कृपा तमह वदे परमानन्दमाधवम् ।।

हे विशालबुद्धि व्यास, मै आपकी वन्दना करता हूँ । विशाल दृष्टि के स्वामी, आपने भारत-रूपी तेल से जगत् मे ज्ञान का प्रदीप प्रज्वलित किया है ।

हे भगवान् कृष्ण, शरणागतो के कल्पवृक्ष, पापियो के नियामक, सर्वज्ञान के मूलरूप गीतामृत को दोहनेवाले प्रभु, मै आपको नमस्कार करता हूँ ।

हे वासुदेव, कस एव चाणूर के मर्दन करनेवाले, देवकी के परमानन्द-स्वरूप, जगद्गुरु श्रीकृष्ण मै आपकी वन्दना करता हूँ ।

जिसकी कृपा से गूँगे वाचाल हो जाते है, पगु पर्वत लाँघ जाते है, उसी परमानन्द-स्वरूप माधव को मेरा सविनय नमस्कार है ।

रुक्मिणी हरण

पूर्व भूमिका

यहाँ से इस कथा का नया खण्ड आरम्भ होता है और उसके साथ ही श्रीकृष्ण के जीवन-प्रसंगों के आलेखन में जो कठिनाइयाँ हैं, वे और भी बढ़ जाती हैं।

अपने जीवनकाल में ही जो प्रतिष्ठा के शिखर पर पहुँच गया था, उस नरोत्तम के जीवन के सत्य प्रसंगों की खोज निकालकर उनका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। ऐसे पुरुषों के पराक्रम चमत्कार बन जाते हैं, उनके अनुयायी व्यक्ति-पूजक बन जाते हैं और उनके शत्रुओं को असुर समझा जाने लगता है।

श्रीकृष्ण की जीवन-कथा के आलेखन का काम तो इससे भी हजार गुना कठिन बन गया है, क्योंकि अपने जीवनकाल में ही वे ईश्वर के अवतार माने जाने लगे थे। तीन हजार वर्षों से लोग उन्हें पूर्णावतार मानते आ रहे हैं, युग-युग में भक्ति सम्प्रदाय की विविध शाखाएँ उनकी उपासना परम तत्त्व के रूप में करती आ रही हैं। इसीलिए ऐसा लगता है कि मैंने एक ऐसा कार्यभार स्वयं पर ले लिया है, जिसे लगभग अशक्य कहा जा सकता है। जिन चमत्कारों तथा दिव्य शक्ति का आरोपण श्रीकृष्ण पर किया गया है, उसके कारण एक मानव के रूप में उनका सत्य स्वरूप ढँक-सा गया है। मानव के लिए दुःसाध्य कहे जा सकें, ऐसे चमत्कारों का एक गहरा रंग उनके जीवन की वास्तविक घटनाओं पर चढ़ गया है। फिर भी इतना तो कहना ही पड़ेगा कि इनमें दैवी शक्ति अद्भुत प्रमाण में थी। दुर्भाग्यवश सदियों के अन्तर में रचे गए विभिन्न पुराणों ने अपने-अपने युग के अनुकूल प्रसंगों तथा मान्यताओं को उनकी जीवनगाथा में स्थान देने में संकोच नहीं रखा।

श्रीकृष्ण के जीवन की सर्वाधिक प्रमाणभूत साधन सामग्री 'महाभारत'

मे मिलती है। श्रीकृष्ण के बाल्यकाल के प्रसगो का उसमे विस्तार से वर्णन नही है, फिर भी उनके बाल्यकाल के अधिकाश पराक्रमो का उल्लेख इस ग्रन्थ मे देखने मे आता है। इसके बाद कालानुक्रम मे आता है 'हरिवश'। ऐसा लगता है कि श्रीकृष्ण के जीवन और पराक्रमो का वर्णन करने के लिए ही इस ग्रन्थ की रचना हुई है। व्यास के मूल महाभारत की रचना के बाद बहुत काल पश्चात्—सदियाँ बीत गयी तब—इस ग्रन्थ की रचना हुई। परन्तु जिस परम्परा, विशेषकर मथुरा के यादवो की परम्परा, के आधार पर उसकी रचना की गयी है, वह प्रमाणभूत मानी जा सकती है। इसमे के प्रसग स्वाभाविक लगते है और उद्देश्य तथा प्रयोजन भी मानव सदृश, लौकिक प्रकार के दिखाई पडते है।

'वायु', विष्णु' तथा 'मत्स्य' पुराण मे भी इसी परम्परा का आलेखन किया गया है, परन्तु अत्यन्त सक्षिप्त रूप म। आठवी सदी मे रचे गये भागवत पुराण मे हमे कृष्ण-पूजा का भक्तिसम्प्रदाय दृढता से स्थापित देखने को मिलता है। उस पुराण मे वर्णित प्रसग प्रधानतया 'हरिवश' मे लिये गये है, परन्तु इन प्रसगो की नये सिरे से रचना की गयी है, घटना के पूर्वापर सम्बन्धो को आगे-पीछे कर दिया गया है और इस ग्रन्थ की प्रधान भावना के अनुरूप हर सभव तरीके से उनके तारतम्य पर जोर दिया गया है। वस्तुत मे प्रसगो के मानव अथवा लौकिक भावो को पहचाना न जा सके, इस प्रकार उलट-फेर भी कर दिया गया है। भागवत पुराण की शास्त्र-ग्रन्थ के रूप मे बडी प्रतिष्ठा है और विश्व साहित्य के एक सर्वश्रेष्ठ काव्य के रूप मे उसकी गणना की जाती है, परन्तु श्रीकृष्ण के जीवन प्रसगो की साधन-सामग्री के लिए वह 'हरिवश' से भी कम उपयोगी है।

इतिहास अथवा दतकथाओ मे वर्णित सभी पुरुषो मे लोकोत्तर दैवी पुरुष के रूप मे गिने जाने का जिसे सबसे विशेष अधिकार है और जो अन्य सभी की तुलना मे उच्चतम जीवन-यापन के लिए सर्वश्रेष्ठ पुरुष गिना जा सकता है, ऐसे श्रीकृष्ण के वास्तविक जीवन-प्रसगो का सशोधन कार्य करने के लिए ब्रह्मवैवर्त्त जैसे उत्तरकालीन पुराण बिल्कुल व्यर्थ है, क्योकि उनमे श्रीकृष्ण के जीवन-प्रसगो मे भाँति-भाँति की घटनाएँ तथा हेतु जोड दिये गये है।

पहले खण्ड मे श्रीकृष्ण के बाल्यकाल के प्रसगो का आलेखन किया गया है, जिसमे राधाविषयक प्रसग के बारे मे ऐतिहासिक आधार शकास्पद

होने पर भी उसका वर्णन किया गया है, क्योंकि श्रीकृष्ण के साथ राधा का नाम इस प्रकार संलग्न हो गया है कि उसके उल्लेख के बिना काम चल ही नहीं सकता।

इस दूसरे खण्ड के लिए मैंने मुख्यतः 'हरिवंश' का आधार लिया है। इसमें भी श्रीकृष्ण के चमत्कारों का वर्णन है, फिर भी जिन आधारभूत प्रसंगों का उल्लेख इसमें किया गया है, वह प्रमाणभूत का ही अनुसरण करता है। यहां पर जिन्हें दिव्य और अलौकिक चमत्कार दिखाया गया है, उनमें मैंने मानव भाव तथा हेतुओं का दर्शन करने का प्रयत्न किया है। मैं आशा करता हूं कि यह क्षम्य समझा जायगा।

भगवान् श्रीकृष्ण ने इस पृथ्वी पर जिस प्रकार अवतार लिया, जीवन व्यतीत किया और विविध पराक्रम किये, उन सबका पुनः संस्करण कर उनके आलेखन का लगभग अशक्य कहा जा सके, ऐसा कार्यभार मैंने स्वयं पर लिया है और यदि इसमें मेरे द्वारा कहीं कोई प्रमाद हो गया हो तो मुझे विश्वास है कि भगवान् श्रीकृष्ण मेरे इन दोषों को क्षमा करेंगे।

—लेखक

१

राजमुकुट का परित्याग

कृष्ण का अनुमान सही था। कंस का सहसा संहार हो जाने पर सभी स्तब्ध एवं जड़वत् बन गए थे, फलस्वरूप नृशंस हत्याकाण्ड एवं संभ्रम की जो सम्भावना थी वह समाप्त हो गयी थी।

क्षण भर के लिए सभी किंकर्तव्य-विमूढ बन गए। बाद में उन्हें घटना का सही भान हुआ और एक स्वर में सभी के कंठों से मुक्तिदायक उद्घोष फूट पड़ा, "परित्राता का पदार्पण हो चुका है! अत्याचारी का अन्त हुआ, भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई!"

मागधी सैनिक भी किंकर्तव्य-विमूढ खड़े थे। जिस प्रतापी कंस की आज्ञाओं का पालन करने वे अघाते नहीं थे, उसका अन्त हो चुका था। उनकी अपेक्षा यादवों की संख्या अधिक थी। यद्यपि प्रद्योत को कंस का स्वामिभक्त सेनापति सदा से समझते थे, किन्तु उसने ही मागधियों के प्रधान वृष्णिघ्न का वध कर डाला था। सभी यादव आनन्दातिरेक से पुल-कित हो उठे। सक्षुब्ध सेनापतिविहीन उनके प्रतिपक्षियों में अब आक्रमण करने का साहस नहीं रहा।

यादवों के जिस अगुआ, महाशक्तिशाली तरुण ने मुष्टिक का मर्दन किया था, उसने यादवों को आक्रमण न करने का आदेश दिया। हाथ में विशाल गदा लेकर वह दोनों पक्षों के मध्य में खड़ा हो गया और आग्नेय नेत्रों से सभी को निहारता हुआ गरज उठा, 'अगर अब किसी ने अपना शस्त्र उठाया तो निश्चय ही मैं उसका शिरच्छेद कर डालूँगा।" उसकी इस आज्ञा का अनुसरण कर सभी ने अपने शस्त्र भूमि पर डाल दिये। इसी बीच वसुदेव, जो अक्रूर एवं प्रद्योत से मन्त्रणा कर रहे थे, राज-अतिथियों के पास पहुँचे। शस्त्रों से सुसज्जित एवं अनुचरों से घिरे, सभी बड़ी अधीरता से इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि आगे क्या होना है।

"राजोत्तम, आप सबको चिन्ता करने का कोई कारण नहीं। आप यादवों के भी सम्मान्य अतिथि हैं। आप सब मेरे साथ आयें, मैं आप सब को राजमहल में ले जाऊंगा, जहाँ सभी के ठहरने की व्यवस्था की गयी है। हम सब आपकी सेवा के लिए उपस्थित हैं!" वसुदेव ने कहा।

कंस के शव को महल में ले आने का राजप्रतिहारी को आदेश देकर अक्रूर शोकनिमग्न रानियों को सात्वना देने के लिए अन्त:पुर की ओर चल पड़े।

इस बीच प्रद्योत ने राजमहल एवं नगर की सुरक्षा का भार संभाल लिया था। उसने अपने सहयोगियों को शहर में शान्ति स्थापित रखने के लिए सदैव सचेष्ट रहने का आदेश दिया।

घेरा तोड़कर लोगों के दल-के-दल कृष्ण के आस-पास एकत्र हो गये और हर्ष-ध्वनि के साथ 'जय कृष्ण, जय वासुदेव' पुकार उठे। कितनों ने भूमि पर गिरकर साष्टांग दंडवत् किया, कितनों ने उसके चरण छुए। वह जो उनका तारणहार था!

शोकभरी दृष्टि से कृष्ण ने सभी को निहारा। कंस के रक्त से रंजित अपने हाथ को उसने ऊपर उठाया। सभी शान्त हो गये। "यह आनन्द और उल्लास का समय नहीं है। सभी शान्तिपूर्वक कृपया अपने-अपने घर जायें। यह शोक का समय है। हमारे राजा की मृत्यु हो गयी है!" उसने कहा।

कृष्ण की गम्भीर वाणी सुनकर सभी ने अपने-अपने घर की राह ली। बाद में कृष्ण वहाँ गया जहाँ नन्द गोपों के साथ खड़े थे।

"हे तात्, मुझे मेरे इस कृत्य के लिए क्षमा करने की कृपा करें!" वसुदेव के चरणों में गिरते हुए कृष्ण ने कहा। "दुष्ट का अन्त एक दिन होना ही चाहिए, विधि का विधान ही ऐसा है।"

"कृष्ण, मेरे प्रिय पुत्र!" भावविभोर हो नन्द ने कहा, "शत्-शत् वर्ष जियो मेरे गोविन्द!" कृष्ण के मित्र उद्धव ने उसे धोती निकालकर पहनने के लिए दी। मामा की मृत्यु पर शोक-चिह्न के लिए धोती ही पहनना आवश्यक था। ऐसे अवसर पर अन्य प्रकार के वस्त्र धारण करना वर्जित था।

"पिताजी! आप अपने शिविर में पधारें, मैं मामा की अन्त्येष्टि क्रिया पूरी करके शीघ्र ही आता हूं," कृष्ण ने कहा।

उत्तल पर से उतरकर देवकी अन्तरावेदी पर उपस्थित हुई और

उसकी दृष्टि जहाँ कृष्ण खड़ा था, वहीं स्थिर-सी हो गयी।

चाणूर ने जब कृष्ण को युद्ध के लिए ललकारा था तो उसका हृदय भय से प्रकंपित हो उठा था। जब से वह सुहागन बनी, तब से ही, पच्चीस वर्षों जैसी लम्बी अवधि, उसने शोक-शैया पर ही काट दी। अब तक उसका सम्पूर्ण जीवन दुख की छाया में ही पला था। कितनी क्रूरता से उसकी सन्तानों का वध होता रहा, इसके स्मरण मात्र से वह भय से विचलित हो उठी। अत्याचारी भाई के भय से ही उसके दो पुत्र विचित्र परिस्थितियों में पल रहे थे। 'मेरा आठवाँ पुत्र एक दिन अवश्य मेरे पास आयेगा' इसी विश्वास पर वह अब तक जी रही थी।

साँस रोककर वह इसी घड़ी की प्रतीक्षा कर रही थी। क्षण मात्र के लिए भी अपने हृदय से यह बात वह नहीं निकाल सकी थी। नन्हे-से पालने में नन्ही-सी स्वर्ण-प्रतिमा को वह झुलाती रहती, वह प्रतिमा ही जैसे उसके विश्वास का आधार-स्तम्भ हो। वह उस प्रतिमा को ही जीता-जागता कृष्ण समझती। उसे लगता, जैसे उसके साथ वह हँस रहा है, खेल रहा है, ठनगन कर रहा है, अपनी सुकोमल भुजाओं से उसे लपेट लेने का प्रयास कर रहा है और बालसुलभ क्रोध के पश्चात् उसकी गोद में छुप रहा है। उसके जीवन-जगत् में बस दो ही प्राणी थे, एक वह और दूसरा उसका लाडला कृष्ण। आशा की मिटती-उभरती ज्योति में वह किसी अटल विश्वास के सहारे प्रतीक्षा कर रही थी कृष्ण के आने की।

उसे यह भी बताया गया था कि भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होने के पूर्व कृष्ण उसके पास नहीं आयेगा। ऐसा करने में उसके अनिष्ट की पूरी सम्भावना है। और इसलिए वह इस घड़ी की प्रतीक्षा साँस रोककर करती रही थी।

यादव सरदारों के मध्य मतभेद की लपटें किस भयानकता से प्रज्ज्वलित हो रही है, यह बात उसके कुलगुरु आर्य गर्गाचार्य ने उसे बता दी थी। उसने तत्काल ही यह निश्चित कर लिया था कि अगर वह जीवित रहेगी तो मात्र अपने प्यारे पुत्र के लिए। अगर उसका भी वध हुआ तो भविष्यवाणी असत्य सिद्ध हो जायगी, तब उसके जीने का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। अतः वह दृढ़प्रतिज्ञ हो गयी कि अगर उसके पुत्र का अनिष्ट हुआ तो वह अग्नि-स्नान करेगी। उसने यादव सरदारों को भी अपनी इस दृढ़ धारणा से अवगत करा दिया था।

किन्तु आज वह उसका प्यारा पुत्र एक-दूसरे के समक्ष थे। प्रवेशद्वार से होकर आते हुए उसने देखा था उसे। और उसके पीछे आते हुए देखा था अपने सातवें पुत्र को भी, जो विश्व की दृष्टि में रोहिणी का पुत्र था। वह सलोनी मूरत उसके नेत्रों में नाच रही थी सुवर्णमय वस्त्रों से अलंकृत, केशों में मोर-पंख खोंसे विशाल कमल नेत्रोंवाले, सौन्दर्य एवं लावण्य की अप्रतिम प्रतिमा के रूप में भुवन मोहिनी मुस्कान बिखेरते, जैसे उसने सभी का हृदय पलक मारते जीत लिया हो ऐसे अपने पुत्र को आते हुए उसने देखा।

उसके बाद चाणूर आता है और मल्ल-युद्ध के लिए उसे चुनौती देता है। भय से प्रकम्पित हृदय की गति को वह किसी प्रकार सँभाल पाती है। उसे लगा जैसे उसके विश्वास के अचल पर्वत में दरारें पड रही हों। 'नहीं नहीं! कुछ नहीं हो सकेगा' —यही उसका आठवाँ पुत्र था—अवतार पुरुष, परित्राता, उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता।

पुन एक के बाद एक चमत्कार घटित होते गये। दुर्जेय चाणूर को किशोर कृष्ण न केवल भूमि पर धराशायी कर देता है, अपितु उसका सहार कर डालता है, दुष्ट कंस का केश पकडकर उसका शिरच्छेद कर देता है। भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होती है। उसका हृदय आनन्द और उल्लास से छलक उठता है, गत पच्चीस वर्षों में ऐसे आनन्द का अनुभव वह प्रथम बार कर रही थी, उसे लगा जैसे सारा प्रासाद आनन्द और उल्लास के सागर में तैर रहा है।

उसके कर्ण पुन उसी ध्वनि में गूँज उठे, "जय कृष्ण! जय वासुदेव!" अपने पति के साथ उसे लिपटते हुए भी उसने देखा। आह! कितना सुखद समय था पिता-पुत्र का आलिंगन! नवजात शिशु की अवस्था में ही नन्द के यहाँ पहुँचा आने के बाद आज प्रथम बार पिता-पुत्र एक-दूसरे से इस प्रकार मिले थे।

अब वह लोगों से बातचीत कर रहा था। लोगों ने उसके लिए मार्ग दिया। शीघ्रता से वह अपनी दासियों के साथ उत्तल से उतरकर अन्तरावेदी पर आ खडी हुई। वह बडी अधीरता से प्रतीक्षा कर रही थी कि उसका लाल उसे कब देखता है। वह तो उसी की ओर आ रहा था। मार्ग में पालक पिता नन्द को उसने साष्टांग दण्डवत् किया। हाँ वह उसी की ओर बढ रहा था निश्चित रूप से उसके पग इधर ही बढ रहे थे उसे देखकर

कृष्ण एक हृदयहारी मुस्कान बिखेर देता है। आह! कैसी मनोहर मुस्कान ऐसी ही मुस्कान तो वह स्वप्न में देखा करती थी, क्षण भर के लिए भी उसे नहीं बिसरा सकी थी। वह आ पहुंचा था एक पग और बढ़ते ही माँ की ममताभरी गोद में समा जायगा उसके नेत्रों में उदधि उमड़ पड़ा और उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कृष्ण उसी में तैरता उसकी ओर बढ़ रहा है उसने अपनी लालायित भुजाओं को उन्मुख रूप में पसार दिया, और तब कृष्ण ने भी वैसा ही किया।

'माँ!" कहकर कृष्ण उससे लिपट गया। वह तो चित्रलिखित-सी खड़ी थी। उसकी वाणी अवरुद्ध हो गयी। उसे मूर्छा-सी आ गयी। कृष्ण ने उसे सहारा दिया।

वसुदेव के प्रासाद-प्रांगण में यादव सरदार एकत्र हुए। सभी ने सन्तोष की साँस ली। उसी समय गर्गाचार्य के साथ वसुदेव वहाँ पधारे।

कुछ समय पश्चात् आचार्य सांदीपनि भी वहाँ आ गये। कंस के राज-अतिथि के रूप में आए अवन्ती के विन्द एवं अनुविन्द राजकुमारों के गुरुभार को उन्होंने स्वीकार कर लिया था। मुनिश्रेष्ठ वेदव्यास के आदेशानुसार कृष्ण एवं बलराम के साथ वे कुछ समय तक वृन्दावन में भी रहे थे। उसी समय दो यादव सरदारों के साथ प्रद्योत भी वहाँ आ पहुँचा। वह मथुरा में शान्ति-स्थापना के लिए अब तक प्रयत्नशील था।

"आर्यश्रेष्ठ, हम इस समय बड़ी विकट परिस्थिति में पड़ गये हैं। हमारे विपरीत परिस्थिति इतनी द्रुतगति से बदलती जा रही है कि यदि हम अपने विरोधियों से अधिक गतिवान हुए तो निश्चय ही मथुरा शत्रुओं के हाथ में चली जायगी," वसुदेव को सम्बोधित करते हुए प्रद्योत ने कहा।

"मैं जानता हूँ," वसुदेव ने उत्तर दिया। "हमारे कुछ अतिथि कंस के परम मित्र थे। निश्चय ही वे हमारे विपक्ष में हो जायेंगे।"

"बात इतनी ही नहीं है। मगध सम्राट् जरासंध अपने दामाद के वध का बदला लेने का अवश्य प्रयत्न करेगा। दोनों रानियाँ, अस्ति एवं प्राप्ति भी हमारे पक्ष में नहीं होंगी। हमारे मध्य अभी दो सहस्र मागधी सैनिक उपस्थित हैं। हम कह नहीं सकते कि वे क्या करेंगे।"

"हमें शीघ्रता से इस दिशा में कुछ करना होगा। हमारे मध्य किसी भी प्रकार के मतभेद के लिए स्थान नहीं होना चाहिए," वसुदेव ने कहा।

"राजा उग्रसेन वयोवृद्ध हो चले हैं। हमें इसी समय किसी को अपना

राजनेता चुन लेना चाहिए," प्रद्योत ने कहा।

कुछ यादव सरदारों को यह भी शंका हुई कि प्रद्योत स्वयं राजा बनने की इच्छा तो नहीं रखता।

"अभी इतनी शीघ्रता भी क्या है?" कुछ यादव सरदारों ने बल देते हुए कहा।

कुछ समय तक विचारमग्न रहने के बाद प्रद्योत के सुझाव पर वसुदेव ने अपनी सहमति प्रकट की। 'कंस के स्थान पर किसी को बैठाना तो है ही। फिर इस कार्य में विलम्ब क्यों किया जाए? इससे हमारे शत्रुओं को भी उत्तर मिल जाएगा।"

"आर्य गर्गाचार्य क्या सोच रहे हैं?" प्रद्योत ने पूछा। "मैं भी तुमसे सहमत हूँ," गर्गाचार्य ने कहा।

"मथुरा के विनाश के लिए अवश्य षड्यन्त्र रचा जा रहा है। हमें शत्रुओं की चेष्टा को विफल करने के लिए शीघ्र ही शक्ति का संचय करना होगा।"

"किन्तु हमारा राजनेता कौन बनेगा?" एक वरिष्ठ यादव सरदार ने पूछा। "जिसमें सभी का सम्पूर्ण विश्वास हो, ऐसा होना चाहिए उसे।

"शूरश्रेष्ठ वसुदेव ही हमारे राजनेता होने के अधिकारी हैं।" एक यादव ने सुझाव दिया।

"मेरा समस्त जीवन शोक-सरिता बनकर ही बहा है। मैं सदैव चिन्ता की चिता में जलता रहा हूँ। तुम सब जिसे चुनोगे, मैं उसकी सदैव सहायता करूँगा। किन्तु मैं यह भार वहन नहीं कर सकता," वसुदेव ने कहा।

"मैं तो समझता हूँ, इस दिशा में हमें शीघ्रता से किसी निर्णय पर पहुँच जाना चाहिए। हमें उन सरदारों को वापस बुला लेना चाहिए, जो देश-निष्कासित कर दिए गये हैं, अथवा जो कहीं और जाकर बस गये हैं। हमें उनके साथ संधि कर लेनी चाहिए।"

बहुत से लोग प्रद्योत को सशंकित दृष्टि से देखने लगे। वह भले ही कितना ही शक्तिशाली एवं कुशल क्यों न हो, किन्तु राजनेता के रूप में लोग उसे नहीं चाहते थे।

कृष्ण आकर अपने पिता के पार्श्व में बैठ गया। करबद्ध सभी ने उसका स्वागत किया। क्योंकि वह सोलह वर्ष का किशोर ही नहीं, इन

मबका तारणहार था।

"अब तक कहाँ थे कृष्ण ? मैं कब मे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ," वमुदेव ने कहा।

"माताजी को यहाँ लाने के पश्चात् मैं यह देखने चला गया कि मामा कंस की अन्त्येष्टि क्रिया उचित ढंग मे की जा रही है या नहीं ? कृष्ण ने उत्तर दिया।

"वमुदेव-पुत्र, हम मबका अभिवादन स्वीकार करो। निश्चय ही तुमने चमत्कारपूर्ण कार्य किया है।"

"मै प्रसन्नता का अनुभव नही करता," शोक मे सर हिलाते हुए कृष्ण ने कहा। "रानियो का करुणक्रन्दन मुझमे महा नही जाता। मेरे मामा निश्चय ही एक सुन्दर और स्नेही पति थे , रानियों का हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है!" कृष्ण ने शोक-मनप्त स्वर मे कहा।

कुछ लोगो को कृष्ण के इम निर्मल स्वभाव पर आश्चर्य भी हुआ। उन्होंने आगे कहा, "अब उनका जीवन विषमय बन जाएगा।" सभी शान्त भाव मे कृष्ण की वाणी सुन रहे थे। "लेकिन मै क्या कर मकता था ? दुष्ट को उसकी दुष्टता का दुष्परिणाम भोगना ही पडता है। यह विधि का विधान है," कृष्ण ने पुन कहा।

कृष्ण के कुछ और कहने के पूर्व ही वयोवृद्ध एव निर्बल उग्रसेन को माथ लेकर अक्रूर वहाँ पधारे। उनके पीछे-पीछे वज्र अन्धक को महारा देते हुए बलराम भी पहुँचे। तीन दिन पूर्व ही कम के आदेशानुमार वृत्रिघ्न ने अन्धक को बडी निर्दयता मे चोट पहुँचायी थी और अभी भी उनके घावो पर पट्टियाँ बँधी थी। मभी ससम्मान खडे हो गये। राजा उग्रसेन वसुदेव की बगल मे बैठ गये। उनके पीछे अन्धक और अक्रूर बैठे। बलराम ने कृष्ण के पास आसन ग्रहण किया।

तभी बाह्य एव आन्तरिक परिस्थितियो पर गम्भीरतापूर्वक विचार-विमर्श होने लगा। घडी बीतती गयी। मभी परिस्थितियो पर मविस्तार मन्त्रणा हुई।

तभी वयोवृद्ध उग्रसेन यादवो को सम्बोधित करते हुए बोले, "मै मब सुन चुका हूँ। मै प्रद्योत से महमत हूँ कि सकट की इम घडी मे हमे किमी का नेतृत्व प्राप्त हो। मैं आपके विचारो से भी परिचित हो चुका हूँ मैं वयोवृद्ध एव शक्तिहीन हो चला। अपने जीवन का प्रमुख भाग मैंने

कारागार की कोठरियों मे बिताया और ससार के साथ मेरा सम्पर्क भी समाप्त-सा हो गया है। मेरे एक पुत्र था, वह भी अब न रहा। मै पुत्रविहीन हो गया हूँ। मैं कृष्ण को अपने पुत्र के रूप में अगीकार करना चाहता हूँ और उसे ही राजा के रूप मे अपना उत्तराधिकारी मानता हूँ।"

सभी ने इस सुझाव का हार्दिक स्वागत किया। वस्तुत राजा ने सभी के हृदय की बात जान ली और सबकी मनचाही बात कह दी।

वरिष्ठो की इस विचार-मन्त्रणा के समय शान्तभाव से कृष्ण बैठा रहा और उसका नाम आते ही सभी की दृष्टि कृष्ण की ओर उठ गयी, किन्तु बड़ी विनम्रता से वह सबकी दृष्टि से बचने का प्रयास करने लगा।

सभी के मुखो से एक साथ 'साधु-साधु' (अति उत्तम) निकल गया।

करबद्ध, ससम्मान स्वर मे कृष्ण ने कहा, "राजन्, आपने मुझे बहुत बड़ा आदर प्रदान किया है, सम्भवत विश्व मे सर्वश्रेष्ठ आदर ! क्योंकि मथुरा धरती का मणि-मुकुट है। मैं इतना बड़ा उत्तरदायित्वपूर्ण भार सहन करने मे समर्थ नही। मै तो ग्वालसुलभ कार्यो को ही जानता हूँ। मैं राजा नही बन सकता।"

"नहीं, नही, पुत्र, तुम्ही इसके लिए सर्वश्रेष्ठ पात्र हो।"

"हे यादवनाथ, मुझ पर कृपा करें ! मै जानता हूँ, एक शासक मे कौन से गुण होने चाहिए। जननायक आपमे ही वे सर्वगुण सन्निहित है और आप ही सभी यादवो को एकता के सूत्र मे बाँध रख सकते है। आप अत्यन्त जनप्रिय है। आप स्वय राज-पद पर आसीन रहे। आपके निर्देशन मे पूज्य पिताजी, काका अन्धक तथा प्रद्योत सभी भार सँभाल लेगे। और मैं सदैव आपकी सेवा के लिए तत्पर रहूँगा। प्रथम हमे क्षत्रिय धर्म की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, वेदो मे पारगत हो जाना चाहिए-और युद्ध विद्या मे निष्णात।"

दोनो भाई तथा उद्धव एक-दूसरे के बगल मे ही सो गये। अन्धकार मे बलराम स्वत हँसने लगा। उसका यह हास्य विचित्र था। पूर्णिमा के दिन वे मात्र ग्वालबाल थे और तीन दिन के भीतर ही युवराज बन गये। इतना ही नही, कृष्ण ने तो राजगद्दी भी अस्वीकार कर दी। सम्भवत उसने ऐसा करके अपनी अज्ञानता का ही परिचय दिया है, किन्तु वह तो अति कुशाग्र बुद्धिवाला है। हो सकता है, इतने बड़े उत्तरदायित्व को उसने समझ-बूझकर ही अस्वीकार कर दिया हो।

बलराम ने सोचा, ये तीन दिन विजय के दिन थे। और इसका श्रेय छोटे भाई को ही है। उसने भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध कर दिया। कृष्ण भगवान का अवतार है, इस बात को वह नहीं मानता था। किन्तु कृष्ण उसका लघु भ्राता है, वह भी कितना मधुर, कितना आज्ञाकारी और कितना चतुर! वह प्रेम में विह्वल हो उठा और उसने कृष्ण को अपने अंक में समेट लिया।

कृष्ण ने अपने नेत्र खोले और सामने देखा। 'भाई कृष्ण, तुम विलक्षण हो," बलराम ने कहा। "क्योंकि मुझे तुम जैसा भाई जो मिला है," कृष्ण ने धीरे से कहा।

और दोनों एक-दूसरे को हृदय से चिपकाकर निद्रा की गोद में निमग्न हो गये।

२

सांदीपनि गुरु

महल के एक कोने में राजकुमारी रुक्मिणी बैठी थी और उसके सामने ही विदर्भ के राजकुमार रुक्मी की पत्नी सुव्रता बैठी आँखें फाड़े उसे देख रही थी।

'कल सारा दिन तुम कहाँ थीं? तुम्हारी चिन्ता में ही मेरा पूरा दिन खराब हो गया!" सुव्रता ने भारी आवाज में, गुस्से के साथ कहा।

"मैं त्रिवक्रा के साथ थी," रुक्मिणी ने कहा, "उसके बाद मैं रानी देवकी के महल गयी। तब आप कंस की रानियों से मिलने गयी थीं।"

"तुम देवकी के महल किसलिए गयीं यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। तुम्हारे भाई को आ जाने दो, फिर देखना!" सुव्रता ने कहा, "तुम्हारे लिए हमें शर्मिन्दा होना पड़ता है। विदर्भ नरेश भीष्मकराज के नाम पर तुमने कलंक लगा दिया है।"

"और तुम क्या करती हो? यही कि और कुछ?" चीखकर रुक्मिणी

ने कहा और फिर अपनी भाभी की तरफ आँखें निकालती हुई, हाथ खींच-कर और अपने गुस्से को किसी तरह दबाकर खामोश बैठ गयी।

प्रातःकाल ही कंस की श्मशान-यात्रा में भाग लेने के लिए अन्य राज के अतिथियों के साथ रुक्मी भी गया था। जीवित रहते जिसको सभी लोग धिक्कारते थे, उसी राजा की अन्तिम यात्रा में भाग लेने सभी लोग शरीक हुए। राजकुल के प्रति ऐसा सम्मान व्यक्त करना उनका धर्म था। राजा उग्रसेन और घायल होने के कारण चलने में असमर्थ वृद्ध अन्धक भी वहाँ आये थे। बलराम और कृष्ण को साथ लेकर वसुदेव तथा अक्रूर भी उप-स्थित हुए। अन्तिम विधि राजा उग्रसेन ने सम्पन्न की। कंस की चिता जलायी गयी और राख यमुना के जल में प्रवाहित की गयी। उसके बाद नदी में स्नानविधि सम्पन्न कर सभी लोग घर लौटे।

रुक्मी जब राज-अतिथियों के लिए सुरक्षित महल में अपने निवास-स्थान पर पहुँचा तब मध्याह्न बीत चुका था। उस समय उसका मिजाज ठीक नहीं था। राजाधिराज जरासन्ध के आश्रम में जो कई तरुण नरेश अपने-अपने प्रदेशों का विस्तार कर रहे थे, उन सबमें अग्रगण्य कंस ही था। अपने कुछ मित्रों के साथ रुक्मी कंस के विजयोत्सव में भाग लेने मथुरा इसी आशा में आया था कि सभी तरुण राजाओं और कंस के बीच की संधि और मित्रता इससे अधिक दृढ़ हो जायेगी। परन्तु जब से वह आया तब से ही सब-कुछ विपरीत होता जा रहा था। वे दो किशोर, जो पीछे से वसुदेव के पुत्र निकल आये, उन्होंने तो उस बल मार डालना ही बाकी छोड़ा था। छोटे भाई ने जो चमत्कार किये, उससे रुक्मी का द्वेष-भाव और भी भड़क उठा था।

कंस उसका मित्र था। जरासन्ध के आश्रय में गठित राजमण्डल का वह प्रधान था। और, उसी कंस का कृष्ण ने वध कर दिया। अब मथुरा का क्या होगा, यह कोई नहीं कह सकता था। शायद वसुदेव अथवा उनका पुत्र मथुरा की गद्दी पर बैठे। जरासन्ध यादवों को कभी क्षमा नहीं करेगा। इसलिए उनके साथ संधि करना निरर्थक था। इस प्रकार सभी बातें उल्टी हो रही थीं। निराश और निरुत्साह मन से वह अपनी पत्नी तथा भगिनी के पास पहुँचा।

"आर्यपुत्र, मैं तो तुम्हारी बहन से तंग आ गयी हूँ। अब आप ही इसे सँभालें। मेरा उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा," शुभ्रा ने कहा।

"ग्रौर मैं तुम दोनो से तग ग्रा गयी हूँ," कोने मे बैठी रुक्मिणी रोप भरकर बोल उठी।

"बात क्या है ?" रुक्मी ने गुस्से से पूछा, "तुम दोनो तो ऐसे झगड रही हो जैसे मुझे तुम्हारे झगडे सुलटाने के सिवाय ग्रौर किसी बात की कुछ चिन्ता ही नहीं ! क्या हुग्रा रुक्मिणी ?"

"क्या नहीं हुग्रा ? पूछो ग्रपनी पत्नी से। मुझसे ये कितना जलती है ?"

"ग्रौर यह तो मुझ पर ग्रौर ग्राप दोनो पर ही जलती है !" सुव्रता बोल उठी, 'कल बाहु-युद्ध के समय झरोखे मे नीचे झुक-झुककर देख रही थी ग्रौर ग्रसभ्यों की तरह नाच ग्रौर चिल्ला रही थी।"

"मुझे नाचना हो तो मैं जरूर नाचूँगी। ग्रपने पैरो से नाचती हूँ, तुम्हारे पैरो से नहीं ! ' रुक्मिणी ने रोपपूर्ण स्वर मे कहा।

"मुझे मालूम है, तुम क्या कर रही थी ! उस दुष्ट युवक की तरफ देख रही थी। ग्रार्यपुत्र, हम लोग जब मथुरा पहुँचे, तब ग्रापके साथ जिसने बुरा बर्ताव किया, वही था वह युवक !" सुव्रता ने कहा।

"ऐसा उन्होंने क्या बुरा बर्ताव किया था ? यही तो न, कि भाई को उठाकर मेरे पास रख गये। तुम चाहती थी कि भाई को वे यमुना मे फेंक देते ?" रुक्मिणी ने धृष्टतापूवक कहा।

"ग्रौर ग्रन्धकराज मारे गये, तब भी तुम मगन होकर नाचने लगी थी," सुव्रता ने कहा।

"किस चतुराई से उन्होंने उसका वध किया ! एक ही वार किया ग्रौर बस खेल खत्म ! उसका मस्तक धड से ग्रलग हो गया !" रुक्मिणी ने कहा।

'ग्रब तुम दोनो ग्रपनी बकवास बन्द करो। दरग्रसल बात क्या है, यह भी कोई कहेगा या नहीं ?" रुक्मी ने पूछा।

"ग्रौर फिर यह ग्रापकी लाडली बहन ग्रदृश्य हो गयी," सुव्रता ने कहा।

"मैं ग्रदृश्य नहीं हुई। मैं तो त्रिवक्रा के साथ " रुक्मिणी ने कहा।

"उस हत्यारे से मिलने ," सुव्रता बोल उठी।

"नहीं, मैं रानी देवकी से मिलने गयी थी। यहाँ हर कोई उन्हे सती-

साध्वी मानता है," रुक्मिणी ने बीच में ही उसे रोकते हुए कहा।

"नहीं, तुम गयी थीं उस कृष्ण के पास ," सुव्रता ने कहा।

"नहीं, मैं रानी देवकी के पास गयी थी। और, वे भी वहाँ थे," रुक्मिणी ने कहा

"बस, बहुत हो चुका! अब तुम दोनों अपनी बकवास बन्द करो!" रुक्मी चिल्लाकर बोल उठा।

'भाई, पहले तुम अपनी पत्नी को रोको, वह कुछ कहेगी तो मुझसे भी जवाब दिये बिना नही रहा जायगा," रुक्मिणी ने चिढ़कर कहा।

"हाँ, दोष तो सदा मेरा ही रहना है!" सुव्रता जरा नरम पड़ गयी। "भाई-बहन दोनों एक हो जाते हो। सारे परिवार मे बस मैं ही तो एक बुरी हूँ!" आँसू पोछने का उपक्रम करते हुए सुव्रता ने कहा।

"तो क्या भाई और बहन एक हो ही नही सकते?" रुक्मिणी ने इस प्रकार कहा, मानो स्वय से ही कह रही हो।

"वसुदेव के महल मे क्या हुआ, यह तो कोई बतायेगा नहीं और व्यर्थ की बकवास किये जा रही है। मेरे तो एक अक्षर भी समझ मे नहीं आता!" रुक्मी ने कहा।

"अपनी लाडली बहन से ही पूछो न! मैं क्या वहाँ गयी थी?" तिरस्कारपूर्वक सुव्रता ने कहा।

'हाँ, मैं वहाँ गयी थी, रुक्मिणी ने कहा, "रानी देवकी मूर्छित हो गयी थी, इसलिए उनके पुत्र उन्हे उठाकर भीतर ले गये। मैं भी उनके साथ-साथ भीतर गयी।"

"मुझसे बिना पूछे ही यह चली गयी थी," सुव्रता ने शिकायत की।

"रुक्मिणी क्या कहती है, यह तो मुझे सुनने दो!" अधीर होकर रुक्मी ने कहा। "वहाँ, क्या हुआ, यह मैं जानना चाहता हूँ।" वसुदेव के महल मे जो कुछ हुआ, उसका महत्त्व कितना है इसका उसे ख्याल हो आया।

आकाश की ओर दृष्टि उठाकर, मानो अपनी बात सुना रही हो, इस प्रकार सुव्रता ने कहा, 'यही तो मै कह रही थी कि भाई बहन दोनो एक हो गये है। एक ही माँ के उदर मे से दोनो ने जन्म लिया है न! मेरा क्या? मै तो परायी हूँ।'

"चुप रह!" रुक्मी चीख उठा। रुक्मिणी को सम्बोधित करते हुए फिर उसने प्रश्न किया, "हाँ फिर क्या हुआ?'

"और क्या होता ? मैं त्रिवक्रा के पास जाकर बैठ गयी। थोड़ी ही देर में रानी देवकी की मूर्छा भंग हुई और फिर माँ-बेटे गले मिले। माँ ने रोना शुरू किया। बेटा बड़ी देर तक मीठे-मीठे और सरस बोल बोलता रहा।" रुक्मिणी ने भावार्द्र होकर कहा, "वासुदेव जब बोलते हैं, तो मानो मधु के झरने बहने लगते हैं।"

"हाँ तब कृष्ण ने क्या किया ?" रुक्मी ने पूछा, "और कौन वहाँ आया था ?"

"उसके बाद यादव सरदार एकत्रित हो, चौक में एक विशाल वृक्ष के नीचे आकर बैठे और देवकी के पुत्र रूप की रानियों से मिलने चले गये," रुक्मिणी ने कहा।

"लो और सुनो! यह उसका नाम तक नहीं लेती। भीष्मक राज के पुत्र, आप इसका अर्थ समझ गये न!"[1] सुव्रता ने कहा।

"मेहरबानी करके जरा चुप रह!" अधिकारपूर्ण स्वर में रुक्मी ने कहा, "हाँ, तो फिर सरदार ने क्या किया ?"

"उन्होंने मथुरा नरेश के रूप में कृष्ण को पसन्द किया," रुक्मिणी ने कहा।

"शिव, शिव!" दुखार्द्र स्वर में रुक्मी बोल उठा।

"भाई, इतने दुखी मत हो। उन्होंने मथुरा की गद्दी पर बैठना अस्वीकार कर दिया," कटाक्षपूर्वक रुक्मिणी ने कहा।

"अस्वीकार कर दिया! राजगद्दी पर बैठना!"

"हाँ, उन्होंने कहा कि मैं तो केवल एक ग्वाला हूँ, राजपद के योग्य नहीं। अब तो आप सन्तुष्ट हुए न! परन्तु मुझे तो उन पर बड़ा गुस्सा आ

[1] भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही ऐसी परम्परा चली आ रही है कि पत्नी अथवा वाग्दत्ता अपने पति का नाम नहीं लेती। पति के नाम का उल्लेख करना अमंगलकारिता का सूचक समझा जाता है। 'अमुक के पुत्र' के रूप में उसका उल्लेख किया जाता है। सन्तान होने के बाद स्त्री पति को 'अमुक के पिता' कहकर सम्बोधित करती है। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ ही अपने पति का नाम लेकर अथवा तू कहकर बुलाती हैं। उच्च वर्ण की स्त्रियाँ पति का कभी नाम नहीं लेतीं और उनके लिए बहुवचन का प्रयोग करती हैं। परन्तु पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित कुछ आधुनिक स्त्रियाँ प्राचीन सस्कारों और सरकारी लोगों की परवाह किये बिना पति का नाम लेकर और कई बार तो लाड़ में उसे छोटा बनाकर अथवा तू कहकर बुलाती हैं।

रहा है। जाने दो, यहाँ मेरे गुस्से की परवाह ही किसे है!" रुक्मिणी ने रोषपूर्वक कहा।

"गुस्सा क्यों नहीं आयेगा? इसे तो उसकी रानी बनना था न!" कटुता के साथ सुव्रता ने कहा, "बेचारी की सभी आशाएं धूल में मिल गयी।

तभी एक प्रतिहारी कक्ष में आया और प्रणाम कर बोला, "सांदीपनि गुरु और अवन्तीराज जयसेन के पुत्र कुमार विन्द और अनुविन्द आपसे मिलने के लिए आये हैं और बाहर प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

दोनों स्त्रियाँ एकदम उठ पड़ी और आगन्तुक जब भीतर चले आये तब दोनों ने ही जाकर सांदीपनि के चरणों में प्रणाम निवेदन किया। रुक्मी ने भी उसी प्रकार प्रणिपात किया। अवन्ती के राजकुमारों का भी उसने योग्य आदर-सत्कार किया। लम्बे कद और विशाल देह के स्वामी सांदी-पनि गुरु के स्नायु सुबद्ध और बलवान थे। उनका तेजस्वी मुख-मण्डल काली दाढ़ी और सर पर की जटा में सुशोभित था। उनकी आँखें तेजस्वी, नासिका नुकीली और मुखमुद्रा प्रसादपूर्ण थी।

महा समर्थ ऋषि परशुराम भार्गव के आश्रम में शिक्षा प्राप्त कर पच्चीस वर्ष पूर्व वे बाह्य जगत् में आये थे और फिर शस्त्रास्त्र-विद्या पारंगत होकर उन्होंने विविध स्थानों का परिभ्रमण किया था। पन्द्रह वर्षों से अवन्ती में उनका आश्रम चल रहा था। शस्त्रविद्या की शिक्षा के लिए यह आश्रम श्रेष्ठ माना जाता था और उस प्रदेश के राजपुरुष अपने तथा अपने सरदारों के पुत्रों को वहीं शिक्षा प्राप्त करने भेजते थे। ऐसा कहा जाता था कि ऐसी कोई युद्धविद्या अथवा व्यूह-रचना नहीं, जो सांदीपनि गुरु से नहीं सीखी जा सकती। रुक्मी ने भी उन्हीं के आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त की थी। विन्द और अनुविन्द उस समय उन्हीं के पास रहकर विद्याभ्यास कर रहे थे।

कुछ समय से करीब चालीस शिष्यों को साथ लेकर सांदीपनि गुरु प्रवास को निकले थे। भिन्न-भिन्न राजसभाओं में उनका यथोचित सत्कार किया गया। इन दिनों अपने शिष्यों सहित वे मथुरा आ पहुँचे थे और वहाँ से अपने आश्रम लौटने की तैयारी कर रहे थे।

"गुरुदेव, क्या आज्ञा है?" रुक्मी ने पूछा।

"रुक्मी, राजा उग्रसेन ने तुम्हें यहाँ पन्द्रह दिन और रुक जाने के लिए

निवेदन किया है," सादीपनि ने उत्तर दिया ।

"पन्द्रह दिन ! नही, नही, राजा कंस मेरे मित्र थे, मुझे यहाँ अब और अधिक रहना पसन्द नही !" रुक्मी ने कहा ।

'तुम्हारी भावनाओं को मैं समझता हूँ, वत्स ! परन्तु राजा उग्रसेन का बड़ा आग्रह है । विधि की रचना को कोई अन्यथा नही कर सकता," सादीपनि ने कहा ।

"कुमार, अवश्य रुक जाइए !" विन्द ने आग्रहपूर्वक कहा, "गुरुदेव के साथ सभी मिलकर अवन्ती जायेंगे तो बड़ा अच्छा रहेगा ।"

"नही, मुझे तो यहाँ से तत्काल चले ही जाना है । पन्द्रह दिन ठहरकर मै क्या करूँगा ?" रुक्मी ने यह समझते हुए कि सादीपनि के वचन का अनादर करना कठिन है, कुछ सकोच के साथ कहा ।

"यहाँ आकर शोक के बारह दिन पूरे हुए बिना चला जाना उचित नही और कार्तिक की पचमी को बलराम तथा कृष्ण के उपवीत सस्कार का समारम्भ होनेवाला है," सादीपनि ने कहा ।

"इन दोनों युवकों का उपवीत सस्कार होगा ? अभी तक उनका यह सस्कार नहीं हुआ ?" रुक्मी ने आश्चर्यपूर्वक पूछा ।

"तुम तो जानते हो कि अब तक इन दोनों का लालन-पालन ग्वालों के तरीके से ही हुआ है, परन्तु अब उन्हे योग्य सस्कार-दीक्षा देने की आवश्यकता है," सादीपनि ने कहा ।

"गुरुदेव, क्या यह सच है कि कृष्ण ने मथुरा की राजगद्दी अस्वीकार कर दी ?" रुक्मी ने पूछा ।

"तुम्हे सभी कुछ मालूम है, ऐसा लगता है । वैसे तो इस बात को हम गुप्त ही रखना चाहते थे, परन्तु अब जब तुम पूछते ही हो, तो बता देता हूँ कि यह बात सच है," सादीपनि ने उत्तर दिया ।

"उसने अस्वीकार क्यों कर दिया ? मै तो समझता था कि गद्दी-प्राप्त करने के लिए वह बहुत उत्सुक है और इसीलिए उसने अपने मामा का वध भी किया," रुक्मी ने कटाक्षपूर्वक कहा ।

"विदर्भकुमार, कितने कम लोग इन बालकों को पहचानते है ! वे उत्सुक है अधर्म का नाश करने के लिए, राजगद्दी पर बैठने के लिए नही !" सादीपनि ने कहा ।

"आपको कैसे मालूम ? क्या यह सम्भव नही कि अधिकाश यादव

भी उनके शत्रु हों ?" रुक्मी ने शका व्यक्त की।
"कोई उनका शत्रु नहीं है। सभी कृष्ण को राजपद पर स्थापित देखना चाहते थे," सांदीपनि ने कहा।
"तो अब वह क्या करना चाहता है ?" रुक्मी ने प्रश्न किया।
"हमारे साथ शिक्षा प्राप्त करने के लिए दोनो भाई गुरुदेव के आश्रम मे आनेवाले है, अनुविन्द ने कहा।
"ओह ! सचमुच !" रुक्मी ने आश्चर्य प्रकट किया।
"उनका आना क्या तुम्हे अच्छा नही लगता ?" सांदीपनि ने पूछा। "वृन्दावन मे कुछ मास मैं उनके साथ रह चुका हूँ और यह भी तुम्हे बता देना चाहता हूँ कि उनके समान शिष्यो को सिखाने का लोभ मैं नही छोड सकता," गुरुदेव ने कहा।
"तो क्या आप यह चाहते है कि हम लोग सब साथ ही यहाँ से रवाना हो ? क्यो, तुम्हारी क्या राय है ?" अपनी पत्नी की ओर देखकर रुक्मी ने पूछा। उसके मन मे यह शका उठ खडी हुई थी कि अधिक दिन रुकने के लिए उसके प्रति जो आग्रह दिखाया गया है, उसमे कोई गूढ रहस्य अवश्य होना चाहिए। उस रहस्य को जानने के लिए वह उत्सुक था। विचार करने के लिए भी उसे कुछ समय की आवश्यकता थी।
"मेरा तो यही विचार है, भाई कि यहाँ कुछ दिन और रुका जाय। गुरुदेव के वचन को हमे शिरोधार्य करना चाहिए," रुक्मिणी ने कहा। उसकी आँखे चमक उठी। सुव्रता ने कठोर दृष्टि से उसकी ओर ताका और फिर अपने पति के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, "मेरे विचार मे तो यहाँ से चले चलना ही ठीक है। गुरुदेव पीछे से अवन्ती के राजकुमारो के साथ पहुँच जायेगे।"
"कुमार, इन दोनो नारियो के मन एक-दूसरे से विपरीत मत के है," सांदीपनि ने किंचित् मुस्कराकर कहा। "इसलिए अब तुम्हे अपना निर्णय स्वय करना है। तुम जो भी निर्णय करोगे, उसका समर्थन इन दो मे से एक तो करेगी ही। यहाँ रुकना ही शायद ठीक रहेगा। कुछ असाधारण समस्याएँ उत्पन्न होने की भी यहाँ सम्भावनाएँ है और तुम्हारे पिता भोज-श्रेष्ठ भीष्मक स्वभावत ही यह चाहेगे कि तुम्हे इन सब बातो की जानकारी हो।"
"यदि आपकी ऐसी ही आज्ञा है, तो मै रुक जाऊँगा। परन्तु यहाँ

अधिक ठहरना मुझे अच्छा तो नहीं लगता," रुक्मी ने कहा।

३

विचार-मंथन

अपने मामा कंस की चिता के पास खड़ा कृष्ण गंभीर विचार में निमग्न था। कंस कितना मूर्ख था! वह समझता था कि उसके समान कोई नहीं है और वह अपनी मनमानी करने के लिए स्वतंत्र है। एक ओर कंस, और दूसरी ओर प्रभुसेवा में जीवन व्यतीत करनेवाले अक्रूर इन दोनों व्यक्तियों का भेद कृष्ण ने अब समझा।

राजा उग्रसेन अपने एकमात्र पुत्र की चिता स्वयं अपने हाथों से जला रहे थे—उनकी आँख में आँसू और हृदय में एक अव्यक्त वेदना थी। यह शोक पुत्र की मृत्यु का इतना नहीं था जितना कि उसके पापी और अनाचारपूर्ण जीवन बिताने के प्रति था। कृष्ण ने सोचा कि मैंने तो केवल देव-वाणी को ही यथार्थ किया, दुष्टों का विनाश और साधुजनों का परित्राण तो होना ही चाहिए। यही धर्म है। मैंने केवल धर्म का ही संस्थापन किया है, देव-इच्छा की ही पूर्ति की है।

श्मशान से जब सभी लोग लौटे तब उनके चेहरों पर गंभीरता छायी हुई थी, फिर भी उनके जी हल्के थे। मनुष्य मात्र को मृत्यु आती है, मनुष्य पीछे रहनेवालों की स्मृति में ही जाता है, नहीं तो उसका जीना ही व्यर्थ है।

बाबा नन्द को देखने के लिए कृष्ण अधीर हो उठा। श्मशान में दूर से उन्हें देखा भर था। तीन दिन पहले जो अपना लाडला पुत्र था वह अब राजवंशी वसुदेव का पुत्र और मथुरा का लोक-नायक बन गया। यही सोचकर शायद नंद दूर-दूर रहते थे और इसी से कृष्ण का हृदय विषाद से भर जाता था। परन्तु यह भी उसे मानना पड़ा कि इस परिस्थिति में नन्द बाबा जो कर रहे थे वह ठीक ही था।

शुद्धिस्नान किये बाद कृष्ण, बलराम और उद्धव नगर के बाहर नंद के गोप शिविर की ओर गये। बाबा नंद के पास जाकर उन्होंने दंडवत् प्रणाम किया। नंद ने तीनों का ही आलिंगन किया, किन्तु कृष्ण को देर तक छाती से चिपकाये रहे और जब वह बालक था तब जैसे उसके गाल में अपनी नाक का घर्षण करते थे वैसे ही किया। उनकी आँखों से प्रेमाश्रु बहने लगे। किसी तरह स्वयं पर नियंत्रण कर बोले, "कृष्ण, हम लोग कल जा रहे हैं।"

"कल ही, पिताजी!" बलराम ने आश्चर्य व्यक्त किया। "पन्द्रह दिन बाद तो हमारा यज्ञोपवीत होनेवाला है—क्या आप तब तक नहीं रहेंगे? कृष्ण, पिताजी को समझाओ न!"

"राम, अब अधिक रुकना हमारे लिए संभव नहीं!" नंद ने मस्तक हिलाकर कहा, "प्यारे पुत्रो, अब हमारी विदा की घड़ी आ गयी है—जितनी जल्दी घड़ी यह बीत जाये उतना ही अच्छा है।"

"परन्तु पिताजी, इतनी जल्दी भी क्या है?" कृष्ण ने पूछा।

"कृष्ण, मेरे लाडले, जब से तुझे मेरी गोद में सौंपा गया था तभी से मैं इस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था। ऐसा कीर्तिवन्त क्षण फिर नहीं मिलेगा। तूने देववाणी सत्य सिद्ध की है, सभी का स्नेह प्राप्त किया है—मुझे संतोष है।" पलकों से आए आँसू पोंछते हुए नंद ने कहा, "थोड़ा दुख भी होना स्वाभाविक है। तुम मुझे बहुत ही अच्छे लगते थे—यदि मेरे अपने पुत्र भी होते तो तुमसे अधिक प्रिय नहीं होते। तुम्हारे रहते मुझे कभी ऐसा नहीं लगा कि मैं संतान विहीन हूँ। परन्तु अब कलेजा भर आता है तुम्हें यहाँ छोड़कर जाते समय। फिर भी प्रभु की यही इच्छा है, ऐसा समझकर मन को किसी तरह मना रहा हूँ। मेरे लाडलो, तुम्हारे सामने उज्ज्वल भविष्य है—परमात्मा तुम्हें सभी कार्यों में सफलता दे। यहाँ जितने दिन अधिक रहूँगा उतनी ही अधिक विदा की वेला कष्टप्रद होगी। फिर तुम्हारी माँ भी तुम्हारे समाचार सुनने को आँखें बिछाये बैठी होगी। यह जानकर कि वह तुम्हें सदा के लिए खो बैठी है, उसका हृदय ही टूक टूक हो जायगा। उस समय मेरा उसके पास रहना अधिक आवश्यक होगा।"

बलराम को दुख हुआ, परन्तु पिता की बात सच है, यह भी उसने समझा। विदा की वेदना का विस्तार करना निरर्थक था।

"पिताजी, जो भी हो, मैं कुछ भी होऊँ, परन्तु आप मुझे कभी न भूलें, मैं सदा आपके समीप ही रहूँगा।"

"पुत्र, तू मेरे समीप ही रहेगा। मैंने तुम दोनों को नन्हे बालकों से महान् नेता बनते देखा है। मेरा जीवन धन्य हुआ। अब हम कल सवेरे प्रस्थान करेंगे।"

"और हम आपको विदा करने आयेंगे, पिताजी! उद्धव को मैं आपके साथ भेजूँगा। कुछ मित्रों को संदेश भेजना है कुछ सौगात भी भेजनी है।"

"ठीक है।"

नन्द से मिलकर कृष्ण जब बाहर आया तो उसके हृदय में वेदना की एक शूल-सी चुभ रही थी—उसकी आँखों में आँसू बह रहे थे। उसे अपने सखाओं की याद आयी, जिन गोप-गोपियों के साथ बचपन के स्वप्न गुजारे थे उनकी स्मृति उभर आयी। और, राधा—आनन्द की देवी, राधा। कृष्ण ने उद्धव को एकान्त में ले जाकर इन सबको जो संदेश भेजने थे, वे कहे।

कृष्ण अपने पिता वसुदेव के महल में गये और माता से मिले। पिछले सोलह वर्षों में उन्होंने कृष्ण को देखा नहीं था, नाम भर सुना था। कृष्ण को सामने पाकर उनकी आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। वसुदेव का व्यक्तित्व इससे भिन्न था, वे भावुक नहीं थे, विचारवान अधिक थे। कृष्ण ने मथुरा का राजा बनना अस्वीकार किया, यह उन्हें अच्छा लगा। उन्हें भय था कि कहीं उत्साह में आकर वह 'हाँ' न कह दे! बलराम, कृष्ण और उद्धव को पास में बैठाकर वे बहुत-सी बातें समझाते, अपने महान् पूर्वजों की गौरव-गाथाएं सुनाते और विद्या तथा ब्रह्मतेज से विभूषित, अपरिग्रही ऐसे ऋषियों की कथाएँ सुनाते, जो मानवजाति के पथ प्रदर्शक और प्रभु के प्यारे बने।

अपनी बहन कुन्ती की चर्चा भी उन्होंने सविस्तार की और यह बताया कि यदि उसके पति पाण्डु जीवित रहते तो हस्तिनापुर की महारानी वही बनती, परन्तु अब पति के न रहने पर उसके सभी दृष्टि से योग्य, पाँचों पुत्रों के साथ उनके अब चचा धृतराष्ट्र के पुत्र बुरा बर्ताव करते हैं।

वसुदेव, अक्रूर और सांदीपनि गुरु मेहमान राजाओं से कृष्ण-बलराम के यज्ञोपवीत हो जाने तक रुकने के लिए प्रार्थना कर रहे थे। विदर्भ

के राजकुमार और उसकी बहन के बर्ताव से कृष्ण को आश्चर्य हुआ। रुक्मी कंस का मित्र था और जब वह मथुरा आया तब बलराम और कृष्ण के साथ जो घटना हो गयी, उससे उसकी न रुकने की इच्छा स्वाभाविक थी परन्तु इसमें कृष्ण का क्या दोष ? उसे आर्यधर्म की शिक्षा तो देनी आवश्यक ही थी। पर उसकी बहन का व्यवहार कृष्ण को और भी विचित्र लगा वह माता और त्रिवक्रा के साथ ही रहने का निश्चय कर बैठी थी। उसकी सुन्दर, विशाल आँखें कृष्ण पर इस प्रकार ठहर जाती थी कि यदि वश चले तो वे कृष्ण को आत्मसात् ही कर लें।

कृष्ण, बलराम और उद्धव का सांदीपनि गुरु के आश्रम में जाना निश्चित हो गया। जब गुरु वृन्दावन आये थे तब उन्होंने कृष्ण को धनुर्विद्या, मल्लविद्या तथा बिगड़े हुए बैलों को वश में करने की अनेक युक्तियाँ बतायी थी। पिताजी ने कहा कि अब तुम्हें गुरु के आश्रम में कठिन परिश्रम कर जो विद्याएँ अब तक नहीं सीख सके उन्हें भी सीख लेना चाहिए। कई बार तो पिताजी ऐसा बर्ताव करते मानो कृष्ण अभी बच्चा ही हों और जिन बातों को वह अच्छी तरह जानता था उनके बारे में भी उपदेश देते। शायद पिता का प्रेम ही ऐसा होता है।

मामा कंस की अंतिम क्रियाएँ पूरी हुईं। बारहवें दिन राजा उग्रसेन ने श्राद्ध किया, पूर्वजों को पिंडदान दिया और मामा की आत्मा पितृलोक में चली गयी। इन दिनों कृष्ण को कई नयी बातें जानने को मिली। जुल्मी कंस का विनाश करने पर उसे तारणहार और यादवों के नायक का दर्जा मिला था परन्तु यह भी ख्याल में आये बिना उसे नहीं रहा कि एक विराट् महत्त्वाकांक्षाओं और प्रचंड राजनीतिक चालों के अपरिचित जगत् में वह फँस गया है। केवल अन्तःस्फुरण से ही उसने मथुरा का राजा बनने से इन्कार किया था, और गुरु सांदीपनि के यहाँ जाकर विद्याभ्यास करने का भी निश्चय हुआ, परन्तु राजनीतिक चालों से बचने का फिर भी कोई उपाय नहीं था, क्योंकि कृष्ण ने जो कदम उठाया था उससे यादव एक गम्भीर परिस्थिति में पड़ गये थे।

राजा उग्रसेन भले आदमी थे और बहुत नरम थे। शूरों के नायक, पिता वसुदेव और वृष्णियों के नायक, काका अक्रूर नयी मथुरा को स्थिरता प्रदान करनेवाले बल थे। इनमें भी एक विनम्र थे और दूसरे मन। दोनों में से कोई भी तत्काल निर्णय नहीं ले सकते थे। प्रद्योत वैसे तो चपल

था परन्तु नायक बनने की योग्यता उसमे नही थी। वृद्ध अधक को सभी आदर की दृष्टि से देखते थे, परन्तु इस नाजुक घड़ी मे वे भी नायक नही बन सकते थे। अन्य यादव सरदारों ने सारा जीवन सघर्ष मे बिताया था और उनमे समाज को स्थिर करने की शक्ति अथवा योग्यता नही थी।

जिन यादव सरदारो को कस ने मथुरा मे बाहर निकाल दिया था और जो अपने परिवार तथा अनुचरो सहित वापस आये थे, वे सभी अपने-अपने महल और भूमि फिर से हस्तगत करने मे जुटे थे। वे असतोषी और झगडालू बन गये थे और पद-प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए व्यूह रच रहे थे। कर्तव्यपालन के लिए उनमे उत्साह नही था। उनके आगमन से मथुरा की शक्ति मे लेश मात्र भी वृद्धि नहीं हुई थी।

उस समय के सत्ताशाली नरेशो के बीच मामा कस का जो स्थान था उसका अनुमान अब कृष्ण को हुआ। वैसे तो यादव शक्तिशाली थे, निर्भय और साहसी भी थे, अपने वश के गौरव का सदा स्मरण रखते थे, परन्तु नित्य व्यवहार मे वशशुद्धि की परवाह नहीं करते थे। माता-पिता की सम्मति के बिना, आर्य अथवा अनार्य किसी भी कुल की कन्या से विवाह कर लेते थे और सत्ता परिग्रह की महान् शतरज मे अपनी पत्नियो, बहनो और बेटियो को प्यादे बनाते थे।

इन्ही दिनो कृष्ण को अपने पूर्वजो के पूर्व इतिहास का ख्याल आया। यादवो के एक पुरातन नरेश हर्यश्व ने दैत्य मधु की बहन के साथ विवाह किया था और उन्हे अनर्त तथा सौराष्ट्र वर्मायन मे मिले थे। उन्होने गिरनार का किला बनवाया था। यदु ने स्वय नागराज कन्या से विवाह किया था, जिससे उसके पाँच शूरवीर पुत्र हुए। इन्ही मे से एक माधव के वशज अधक, वृष्णि तथा शूर नाम से प्रसिद्ध हुए।

यादवो की एक लाक्षणिकता भी कृष्ण की समझ मे आयी। किसी भी प्रकार के सकटमय जीवन मे वे आर्यधर्म से कभी विचलित नही हुए। वे स्वय चाहे जो करते, परन्तु यह आग्रह अवश्य रखते थे कि सब कोई धर्म का पालन करे। अपने उत्साह के फलस्वरूप ही वे जीवन मे अपना लक्ष्य प्राप्त कर सके। ब्राह्मणो को दान देने मे उन्होने कभी कृपणता नही की। ऋषियो के लिए उन्होने आश्रमो की स्थापना की और वर्षो तक चलनेवाले यज्ञो का आयोजन किया। हाँ, मामा कस इन सबसे अपवाद था।

राजा माधव के वशज मथुरा मे स्थापित हुए थे, परन्तु यादवो की दूसरी शाखा भोज चेदि मे स्थिर हुई थी। वहाँ उनका एक शक्तिशाली राज्य था। उनके राजा दामघोप का विवाह कृष्ण की बुआ के साथ हुआ था। वे दोनो अपने पुत्र शिशुपाल के साथ कृष्ण के उपनयन पर मथुरा आनवाले थे।

यादव सरदारो की गुप्त मत्रणा मे एक नाम ऐसा भी आता था जिसका उच्चारण करते समय सभी काँप उठते थे—वह था राजा जरासध का। कस की रानियो, अस्ति और प्राप्ति का वह पिता था। आस-पास क राज्यो पर विजय प्राप्त कर उसने चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। जरासध को उसके जमाई के दुखद अवसान की सूचना देने विश्वासपात्र दूत भेजे गये थे। कस केवल उसका जमाई ही नही था, बल्कि परम मित्र भी था। कस की मृत्यु की खबर सुनकर वह चुप नही बैठेगा, ऐसी आशका सभी को थी। इसीलिए मथुरा का भविष्य अब डगमग जान पड रहा था।

कृष्ण को अब मालूम हुआ कि मथुरा को उसके अत्याचारी शासक से मुक्त कर उस समय के सबसे बडे नरेश की प्रतिष्ठा को उसने धक्का पहुँचाया है। परन्तु जरासध तो अधम का अवतार है, उसका सामना करना ही चाहिए, ऐसी कृष्ण की सम्मति थी, फिर भी सरदारो को ऐसा कहना व्यर्थ था क्योकि वे इसे निरी मूर्खता ही समझते।

मथुरा के यादवो की आशा अब राजा दामघोप पर स्थिर हुई। कृष्ण की बुआ के साथ उसका विवाह हुआ था, परन्तु जरासन्ध का यह विशेष मित्र भी था। उसका पुत्र शिशुपाल जरासध के दरबार मे अपना स्थान रखता था, वह यदि चाहता तो जरासध को मना सकता था।

कृष्ण को यह भी मालूम हुआ कि रुक्मी का पिता, विदर्भ-नरेश भीष्मक स्वय भोज शाखा का होने पर भी, जरासध का अच्छा मित्र था, इसलिए मथुरा की सहायता कर चक्रवर्ती की अप्रसन्नता को मोल लेने के लिए तैयार कभी नही होगा। उसका पुत्र रुक्मी तो तुनुकमिजाज था ही! और अपने पिता पर उसी का वर्चस्व था। वह कस का विशेष मित्र और प्रश-सक था। गुरु सादीपनि के विशेष आग्रह पर ही वह रुका था, और वसुदेव तथा अक्रूर की इतनी अनुनय-विनय के उपरान्त कृष्ण के प्रति उसका द्वेप घटा नही था।

तभी एक ऐसी घटना अकस्मात् घटी, जिसने सभी के अनुमानो को

असत्य सिद्ध कर दिया। चेदिकी रानी—वसुदेव की बहन—श्रुतश्रवा अकेली ही मथुरा आ पहुँची। उसके पति राजा दामघोष ने ऊपरी तौर पर तो यह कहला दिया कि वे किसी कारणवश स्वयं आने में असमर्थ हैं इसलिए क्षमा चाहते हैं, परन्तु यह किसी से छिपा नहीं रहा कि वह खुल्लमखुल्ला कृष्ण का पक्ष नहीं लेना चाहता था। उसके पुत्र शिशुपाल ने न यज्ञोपवीत समारम्भ में आने से यह कहकर इन्कार कर दिया कि इस ग्वाले के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।

कृष्ण सोच रहा था हाँ, मैं ग्वाला हूँ, मुझे इसका दुख नहीं। परन्तु जो ऐसा सोचता है कि ग्वाला मात्र तिरस्कार का पात्र है, वह भयानक भूल कर रहा है।

४

पाँच पाण्डव

तीन दिन बीत गये। मथुरा में सभी लोग एक असामान्य उत्तेजना का अनुभव कर रहे थे। तभी दूत यह खबर लेकर पहुँचे कि हस्तिनापुर के राजा पाडु की विधवा तथा वसुदेव की बहन, कुन्ती अपने पाँचों पुत्र तथा सचिव विदुर को लेकर कृष्ण के उपनयन पर आ रही है। कृष्ण यह अच्छी तरह जानता था कि जरासंध के साम्राज्य के बाद, शक्ति और सामर्थ्य की दृष्टि से हस्तिनापुर का नाम ही सर्वत्र लिया जाता था। हस्तिनापुर पर कुरुओं का शासन था। कुरु भरतों की मुख्य शाखा थी और कृष्ण स्वयं भी भरतों में से ही थे।

कुरुओं के राजा धृतराष्ट्र अन्धे और निर्बल थे। राज्य में भीष्म का वर्चस्व था। भीष्म परशुराम जैसे शास्त्रज्ञ के शिष्य थे और बड़े प्रतापी पुरुष थे। उन्हें सभी पितामह कहते थे। गुरु द्रोणाचार्य हस्तिनापुर के युवकों को शस्त्र-विद्या की शिक्षा देते थे। वे स्वयं भी प्रभावशाली योद्धा थे। वे भी परशुराम के शिष्य थे। महापंडित विदुर सचिव थे और समस्त भारतवर्ष में

पूज्य, भगवान् वेदव्याम भी कुरुओ को समय-ममय पर मार्गदर्शन करते रहते थे।

कृष्ण को देखते ही कुन्ती का वात्मल्य उमड पडा। कृष्ण को उमने कभी देख नही था परन्तु पहली बार नजर पडते ही वह उमे पहचान गयी और उसे छाती से लगाकर स्नेह मे उमका मस्तक सूँघने लगी।

"तू बडा नतखट है, कृष्ण!" कुन्ती ने स्नेहपूर्ण स्वर मे कहा, "हमने तुम्हारी बडी बात सुनी है!"

वसुदेव को कुन्ती ने प्रणाम किया और देवकी से बडे प्रेम के साथ गले मिली। दोनो एक-दूमरी के कधो पर मस्तक डाले देर तक खडी रही—कभी हँसती, कभी रोती। दोनो ने जीवन मे काफी महन किया था, इसलिए दोनो एक-दूमरी की वेदना समझ मकती थी।

कुन्ती के पाँचो पुत्र अत्यन्त आकर्षक थे और सुदृढ तथा सुन्दर भी। उनकी चाल-ढाल भी अच्छी थी। सबसे बडा युधिष्ठिर इस उम्र मे भी गभीर और प्रभावशाली था। कृष्ण से वह प्राय तीन ही वर्ष बडा होगा। दूसरा भाई भीम बलदेव से कद मे कुछ अगुल ही छोटा था, परन्तु ऐसा लगता था मानो फौलादी स्नायुओ का बना हुआ हो। उसके चेहरे पर प्रसन्नता झलकती थी और आँखो मे शरारत भरी चमक थी। वय मे वह कृष्ण से बडा था, इसलिए कृष्ण ने ही उसे प्रणाम किया। भीम ने कृष्ण के मस्तक पर हाथ धरा और बडे प्रेम से उसकी पीठ पर एक धौल जमाया। कुन्ती का तीसरा पुत्र, अर्जुन धनुष-बाण से सज्जित था। वह कृष्ण जैसा ही दिखायी पडता था—उससे जरा दुबला। वह सुदृढ था और उसकी आँखो मे बुद्धि की चमक थी। उसकी चाल-ढाल मे गौरव टपकता था। उसने बडी शान से कृष्ण को प्रणाम किया। कृष्ण उसकी ओर आकर्षित हुआ और बडे उत्साह से उसके गले मिला। दोनो छोटे भाई, नकुल और सहदेव कद मे छोटे और इकहरे बदन के थे, परन्तु बुद्धिमान जान पडते थे। वे दोनो कृष्ण को अत्यन्त आदर के साथ देख रहे थे।

वयस्को के इधर-उधर होते ही पाँचो पाडव कृष्ण और बलराम को घेरकर खडे हो गये और भीम ने मुक्त हास्य के साथ सीधा सवाल किया, "क्यो भई कृष्ण, यह जो इतनी बाते हम तुम्हारे बारे मे सुन रहे हैं, वे क्या सब सच है? या योही तुमने उडा रखी है?" अन्य कोई इस प्रकार का प्रश्न करता तो कृष्ण अपमान का अनुभव करता, परन्तु भीम के मुक्त

हास्य और ममता भरी दृष्टि ने इनका तीखापन मिटा दिया।

कृष्ण ने तुरन्त जवाब दिया, "तुमने क्या-क्या सुन रखा है, यह जानूँ तो पता चले कि हस्तिनापुर के लोग किस्से जोड़ने में कितने होशियार हैं!"

"अच्छा, अब अधिक होशियारी मत दिखा!" कृष्ण को फिर एक हल्का-सा धौल जमाते हुए भीम बोला, "तुमने पूतना को मारा, बकासुर, केशी और अरिष्ट का वध किया, यह सच है न? कालियनाग का नथने की बात भी सच्ची है? गोवर्धन पर्वत को क्या तुमने सचमुच उठा लिया था? सच-सच बताना!"

"गोपियों के साथ प्रेम भी तुमने किया न?" अर्जुन जरा हँसकर बोला। उसकी मुस्कान कृष्ण के हृदय में बस गयी।

कृष्ण को यह कल्पना भी नहीं थी कि बुआ के लड़कों में उसे इतना स्नेह मिलेगा। "तुम क्या सोचते हो भीम! क्या यह सब बातें मैंने खुद गढ़ी हैं?" कृष्ण ने पूछा। उसकी आँखों में भी एक शरारतभरी चमक थी।

बलराम ने कहा, "कंस, चाणूर और मुष्टिक के वध की कथा भी क्या हमने ही जोड़ ली? एक बार मथुरा के लोगों में जाकर पूछो तो सही कि हम दो भाइयों ने क्या-क्या किया है।"

युधिष्ठिर पहली ही बार बीच में बोले। उनकी आवाज शान्त और गम्भीर थी। "भाई, भीम तो बड़ा अधीर है। उसकी बात का बुरा मत मानना। परन्तु हमें आमन्त्रण देने के लिए हस्तिनापुर आये हुए सरदार शकुनि ने तुम दोनों के बारे में भाँति-भाँति की जो बातें कहीं उनसे यह जानना कठिन हो गया कि किसने क्या किया और क्या नहीं किया। इसीलिए सच बात जानने को हम आतुर हैं।" युधिष्ठिर ने कृष्ण की ओर मुड़कर फिर कहा, "भीम की बात का बुरा मत मानना। यह तो ऐसा ही है। इतने दिनों में फूल-फूलकर तुम्हारे ही पराक्रम की कथाएँ गाता फिरता था।"

"नहीं, तुम भूल करते हो, भाई!" भीम ने कहा और फिर कृष्ण की ओर देखकर वह बोला, "देख, यदि तूने ही यह सब पराक्रम किये हैं तो मुझे वास्तव में तुमसे ईर्ष्या है। मेरी भी इच्छा होती है कि मैं भी अपने कई दुष्ट चचेरे भाइयों, दुर्योधन अथवा दुःशासन को, स्वधाम पहुँचा

दूँ अथवा जैसे तुमने अपने मामा की हत्या की, वैसे ही मैं सपुत्र कर्ण का गर्दन मरोड़ दूँ।'

युधिष्ठिर ने हँसते हुए हाथ उठाकर भीम को रोका। 'भीम, तू तो पहली ही मुलाकात में कृष्ण और बलराम को अपने कुटुम्ब की गुप्त बातें बताने लगा

बलराम का गुस्सा चढ़ आया। उसने कहा, "तुम्हारे दुष्ट चचेरे भाइयों के बारे में अधिक जानने को मेरा मन होता है। जब तुम उनके विरुद्ध मैदान में उतरो, तो हमें भी खबर देना। हम जरूर तुम्हारा साथ देंगे।"

हस्तिनापुर में पाण्डवों की जो दयनीय स्थिति थी, उसके बारे में अधिक चर्चा करना कृष्ण को उचित नहीं जान पड़ा। उसने विषय बदलते हुए कहा "अच्छा अब इन बातों को छोड़ो। तुम लोगों ने वेदों और शास्त्रों का अभ्यास किया होगा। तुम्हारे गुरु ने तुम्हें भाँति-भाँति के शस्त्रों को उपयोग में लाना भी सिखाया होगा। तुम्हें सुन्दर शिक्षा मिली है, जबकि हम मात्र ग्वाले ही हैं। तुम लोग जब अपनी शिक्षा सम्पूर्ण करने आये, तब हम शिक्षा आरम्भ करने की योजना बना रहे हैं।"

'परन्तु तुमने जो प्राप्त किया है, वह शायद हम अपनी सारी जिंदगी में प्राप्त न कर सकें!" अर्जुन ने अपनी चित्तहारी मुस्कान के साथ कहा, 'तुमने तो मथुरा को एक अत्याचारी के हाथों से बचाया है।" उसकी आवाज में आदर की भावना थी और दृष्टि में स्नेह की ऊष्मा।

'और, तुमने धर्म की रक्षा की!" युधिष्ठिर ने कहा। "और चारों ओर भयंकर शत्रु खड़े किये!" कृष्ण ने कहा। कृष्ण की बात पर सब हँस पड़े। यह किसी के ख्याल में नहीं आया कि उसकी बात में तथ्य है।

'जब भी जरूरत पड़ेगी, हम तुम्हारी सहायता को तैयार होंगे," भीम ने कहा।

"शायद ऐसा कभी न हो भीम, कि कृष्ण और बलराम को हमारी सहायता की आवश्यकता पड़े!' अर्जुन ने कहा। अर्जुन की आँखों में छलकता विषाद कृष्ण से छिपा न रहा। उसने गम्भीर होकर पूछा, "तुम्हारी स्थिति क्या वहाँ इतनी असह्य है?"

'यहाँ रहकर शायद तुमको उसकी कल्पना भी न हो," अर्जुन ने उदास स्वर में कहा, "लोग समझते हैं कि हम कुरुओं के बान्धव हैं, परन्तु सच तो

यह है कि हम उनके असहाय आश्रित है।"

"कल की चिन्ता अब हम आज ही क्यों करें ? चलो जरा खेलकूद कर दिल बहलायें," बलराम ने कहा, "भीम, मैंने सुना है कि तू बड़ा जबरदस्त कुश्तीबाज है। चलो हम एक-दूसरे से थोडे दाव-पेच ही सीख ले।"

"बाकी के सब लोग चलो यमुना मे स्नान करें," कृष्ण ने कहा।

"नही, मुझे चाचा को अभी हस्तिनापुर के समाचार देने है। जब हम वापस हस्तिनापुर जायेंगे तो चाचा अक्रूर को भी साथ लेते जायेंगे," युधिष्ठिर ने कहा और सहदेव को साथ लेकर चल दिया।

"मैं भी जाऊँगा, मुझे माताजी से मिलना है, देखूँ उन्हे कोई कष्ट तो नही है," नकुल ने कहा और वह भी युधिष्ठिर के पीछे-पीछे चला गया।

अब कृष्ण और अर्जुन ही रह गये। "चलो, हम तैरने चले, पर मुझे बताओ कि धनुर्विद्या मे नया-से-नया तुमने क्या सीखा है ? मैंने सुना है कि तुम इस विद्या मे अत्यन्त कुशल हो !" कृष्ण ने अर्जुन के कन्धों पर हाथ रखकर नदी की ओर जाते-जाते पूछा।

"अन्धकार मे लक्ष्यवेध करने की कला ही नवीनतम है जो मैने प्राप्त की है। परन्तु गुरुदेव द्रोणाचार्य इससे बहुत आकुल हो गये !" अर्जुन ने नम्रता से कहा।

'यह क्या है ?" कृष्ण ने पूछा।

"एक दिन मै भोजन करने बैठा था। इतने में पवन के एक झकोरे के साथ दीपक बुझ गया। मैंने खाना जारी रखा। तब भी मेरा हाथ सीधा मुँह मे ही जाता था। तभी मुझे ख्याल आया कि अन्धकार मे भी मेरा बाण अपने लक्ष्य को क्यो नही वेध सकता ? तभी से मैंने रोज रात मे अन्धकार मे निशाना लगाने का प्रयोग किया और अन्तत सफलता मुझे मिली।" यह कहकर अर्जुन ने कृष्ण की ओर इस दृष्टि से देखा कि कही कृष्ण इसे केवल डीग तो नहीं समझ रहा है।

"तुम्हारे गुरु को तो इससे बडी प्रसन्नता हुई होगी ?" कृष्ण ने कहा।

"मेरा भी ऐसा ख्याल है, परन्तु हस्तिनापुर की परिस्थिति को देखकर अपनी प्रसन्नता वह प्रकट नही कर सकते। यदि हम अपने चचेरे भाइयो से किसी भी बात मे आगे बढ जाये तो उनपर यह आरोप लगाया जा सकता है कि वे पक्षपात करते है।"

"परन्तु मुझे आशा है कि तुम लोग अपने चचेरे भाइयो से बहुत आगे

बढ़ गये हो।"

"शायद !" अर्जुन ने हंसते-हंसते कहा, "यही तो मुश्किल है ! यदि हम गंवार निकलते तो हमारे ये भाई, बल्कि खुद चाचा धृतराष्ट्र भी बहुत खुश हुए होते।"

कृष्ण और अर्जुन दोनों नदी में नहाने लगे। जल-पक्षियों की तरह वे किलोल कर रहे थे। तभी युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव भी वहां आ पहुंचे। भीम ने तो जल में उतरकर काफी उत्पात भी मचाया। कृष्ण और अर्जुन के मस्तक को वह जल में डुबो देता और वे जब तक उसे पकड़े, तब तक वह हंसता-हंसता दूर निकल जाता। बाद में चारों भाई राजमहल वापस चले गये। अर्जुन और कृष्ण सबके बाद बाहर निकले और नदी किनारे लेट गये। कृष्ण ने आंखें मूंद लीं।

थोड़ी देर बाद कृष्ण ने आंखें खोलीं और पूछा, "अर्जुन, क्या यह सच है कि तू देवराज इन्द्र का पुत्र है?" कृष्ण को इन्द्र को दिये हुए अपने वचन की याद आ गयी।

"भगवान् वेदव्यास ने मुझसे ऐसा ही कहा था। मेरी माता ने भी मुझे यही बताया है," अर्जुन ने कहा।

"तुझे मालूम है अर्जुन, कि वृन्दावन में मैंने लोगों को इन्द्रोत्सव न मनाने के लिए प्रेरित किया था। हम लोगों ने गोवर्धन, वृक्षों और गायों का पूजन किया। इससे देवराज इन्द्र कुपित हुए और उन्होंने वर्षा तथा बिजली हम पर भेजी। यदि गिरिराज गोवर्धन धरती से ऊपर उठकर हमें आश्रय नहीं देते तो हम सब घोर संकट में पड़ गये होते।" कृष्ण ने कहा।

"फिर?" अर्जुन ने पूछा।

"इन्द्र जब नम्र हुए तब हमने उनके सम्मान में भी एक यज्ञ किया। फिर एक दिन जब मैं गायें चरा रहा था तो ऐरावत पर मैंने इन्द्र को देखा। वे कह रहे थे, कृष्ण तेरी बात ही सच थी। मुझे भय की नहीं, स्नेह की पूजा चाहिए।" फिर उन्होंने कहा, "अच्छा, मेरा एक काम करोगे?" मैंने हां भरी। उन्होंने कहा, "मेरा एक पुत्र है, उसकी सहायता करोगे?" मैंने कहा, "हां, मैं वचन देता हूं," मैंने कहा। परन्तु अपना वह पुत्र कौन है, यह बिना बताए ही वे अन्तर्धान हो गये। मैं सदा यही विचार करता था कि इन्द्र का यह पुत्र मुझे कहां मिलेगा ! फिर माताजी ने तुम्हारी चर्चा की। "आज हमें यह इन्द्र का पुत्र मिल गया है !" अर्जुन का हाथ पकड़कर कृष्ण ने कहा।

मैं चाहता हूँ कि हम सदा साथ ही रहें!" अर्जुन ने कहा।

"हाँ, हम सदा साथ ही रहेंगे," कृष्ण ने कहा। वह सोच रहा था कि अब देर तक नहीं [illegible] है। क्षितिज विस्तृत हो रहे हैं—यह मानो भाई मिलकर तो धर्म की संस्थापना के लिए बड़े चमत्कार दिखा सकते हैं।

कृष्ण ने सोचा कि अन्य राजाओं की तरह अपनी शक्ति का दुर्व्यय न कर समाज में सभी पदार्थों में धर्म को उच्च स्थान दिलाने का निश्चय वह करेगा और उसके आस-पास धर्म की संस्थापना के लिए तत्पर लोगों का एक समुदाय तैयार करेगा। उसने मन-ही-मन यह भी प्रण किया कि जब तक विवाह न हो, तब तक वह पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करेगा। इसके बाद का मार्ग तो [illegible] समय खुद ही ढूंढ निकालेगा।

५

ब्रह्मचर्याश्रम

अर्जुन और कृष्ण बगल-बगल में सोये, सारी रात तरह-तरह की बातें करते रहे। हस्तिनापुर में पाण्डवों की जो स्थिति थी, पाण्डवों को जिन अग्नि-परीक्षाओं में से गुजरना पड़ा, उनके बारे में अर्जुन ने चर्चा की और यह भी बताया कि पाँचों भाइयों को अपमानित करने की कैसी-कैसी चेष्टाएँ की जाती थीं। पाण्डवों पर भीष्म पितामह तथा महर्षि वेदव्यास का अपार स्नेह अवश्य था, परन्तु वे भी कौरवों के आगे चुप थे। अर्जुन ने उस रात बहुत-सी बातें कीं—किस प्रकार पाँचों भाइयों को यज्ञोपवीत दिया गया, ब्रह्मचारी का कठोर जीवन उन्होंने कैसे बिताया, उनकी आज्ञाकारिता से गुरु बहुत प्रसन्न हुए, इत्यादि। 'परन्तु मैं तो उस समय नन्हा-सा किशोर था, कृष्ण! तुम तो अब सोलह के हो चुके हो,' अर्जुन ने कहा, 'इसीलिए ब्रह्मचर्य आश्रम के यम-नियम तुम्हें अधिक कठोर लगेंगे।'

"नहीं," कृष्ण ने तत्काल उत्तर दिया, 'ब्रह्मचारी जीवन के कठोर नियमों का पालन तो मुझे करना ही है। यदि यह तपश्चर्या मैं न कर सका

तो धर्म के प्रति मेरी निष्ठा कहाँ रही ?"

'वृन्दावन में तुमने स्वच्छन्द और अनियन्त्रित जीवन बिताया है," अर्जुन ने शंका व्यक्त की। अर्जुन को बात-बात में शंका और प्रश्न करने की आदत थी

"वृन्दावन में जो समय मैंने गँवाया, उसकी पूर्ति तो करनी ही होगी," कृष्ण ने दृढ़ता से कहा, "मैंने निश्चय किया है कि जब तक यह ज्ञान न प्राप्त हो जाय कि जीवन का भोग किस प्रकार किया जाये और उसकी सीमा क्या हो, तब तक जीवन का आनन्द नहीं उठाया जा सकता।'

"हमारे जीवन में तो आनन्द का नाम-निशान नहीं। यदि दुर्योधन ने हमें हमारे पैतृक उत्तराधिकार से भी वंचित कर दिया तो, दुनिया में कहाँ जाना, यह भी हमारे लिए एक समस्या बन जायेगी," अर्जुन ने उदास स्वर में कहा।

"तुम्हें तुम्हारे उचित पैतृक उत्तराधिकार से वंचित करने का किसी को क्या अधिकार है ? तुम पाँच भाई हो। तुम्हें क्या स्वयं अपने में श्रद्धा नहीं ?" कृष्ण ने पूछा। ऐसे शूरवीर और समझदार लोग किस प्रकार अपना आत्म-विश्वास खो बैठे हैं यह कृष्ण की समझ में नहीं आया। स्वयं कृष्ण कभी अपनी श्रद्धा नहीं खोते थे।

'तुमसे मिलने के बाद मुझमें कुछ श्रद्धा अवश्य उत्पन्न हुई है। जब हम साथ-साथ तैरने गये थे, तब मुझे सर्वप्रथम अपने सामर्थ्य की प्रतीति हुई," अर्जुन ने कहा।

"अर्जुन, हम लोग जब तक धर्म की संस्थापना नहीं होती तब तक साथ-साथ ही तैरेंगे," कृष्ण ने कहा।

"कृष्ण, तुम कभी-कभी इस प्रकार बोलते हो मानो धर्म के बारे में सब कुछ जानते हो ?" अर्जुन ने पूछा।

कृष्ण हँस पड़े। "यह तो सीधी-सी बात है। प्रत्येक क्षण मैं यह देखता और समझता रहता हूँ कि मेरा धर्म क्या है ?' उन्होंने कहा।

'तुम मुझसे बहुत आगे बढ़ गये हो," अर्जुन ने नम्रता से कहा।

अर्जुन विनम्र था। कृष्ण के नेतृत्व को उसने बिना किसी टीका के स्वीकार कर लिया। इससे कृष्ण का उसके प्रति स्नेह अधिक बढ़ गया।

इसके दूसरे दिन यज्ञोपवीत समारम्भ शुरू हुआ। किसी प्रकार के उत्सव की योजना नहीं की गयी थी क्योंकि कम पाल की मृत्यु का शोक

रभी मना रहे थे। दो दिन बाद यज्ञोपवीत संस्कार की अन्तिम विधि हुई। तीनों भाइयों का केवल शिखा रखकर मुण्डन किया गया। यज्ञ की वेदी प्रदीप्त की गयी। कृष्ण ने पिता-माता, चाचा, फूफी तथा गुरुदेव गर्गाचार्य की अनुमति प्राप्त कर मन्त्रोच्चारण के साथ यज्ञोपवीत धारण किया। तीनों भाइयों को मृगचर्म दिया गया। प्रत्येक को दिन में ललाट बाँधकर यह मृगचर्म धारण करना था और रात्रि में उसी मृगचर्म पर सोना था। तीनों को कमण्डल और काष्ठ-आचमनी इत्यादि भी दिये गये।

शास्त्रोक्त रीति से यह कृष्ण का नया जन्म हुआ। अब वह द्विज बने। पवित्र कर्तव्यों का भार उन्होंने धारण किया। ब्रह्मचारी अवस्था में अब उन्होंने प्रवेश किया। आगामी वर्ष विद्याभ्यास के लिए कठोर ब्रह्मचर्य करने के थे। ब्रह्मचारी के रूप में कृष्ण को भिक्षा भी लेनी थी। इसलिए माता के सामने जाकर कमण्डल बढ़ाकर उन्होंने कहा "भवती भिक्षाम् देही।"

कृष्ण प्रसन्न थे कि अब वे विद्याराधना करेंगे और गुरु सांदीपनि के साथ रहने जायेंगे। अब उनको गुरु की आज्ञा में रहना होगा। उन्हीं की सेवा करनी होगी और सभी पार्थिव आनन्दों को छोड़कर धर्म का पालन करने के लिए योग्य पात्र बनना होगा। यहाँ का जीवन बड़े आनन्द का था परन्तु वृन्दावन के मुक्त और उल्लासपूर्ण जीवन से बहुत भिन्न था। अब उन्हें ब्रह्मतेज अथवा क्षात्रतेज का विकास करना था, परन्तु कृष्ण तो इन दोनों को ही सम्पन्न करना चाहते थे और उनके लिए यह कुछ कठिन भी नहीं था।

पिता के महल को छोड़कर कृष्ण गुरु सांदीपनि के साथ आश्रम पर गये। गुरु का स्वभाव बड़ा मधुर था, परन्तु उनकी आँखें सब-कुछ आदेश बना देती थीं। केवल आँखों के इशारे से ही वे छात्रों को अनुशासित कर सकते थे। गुरु के उद्यान में लेटे-लेटे कृष्ण विचार कर रहे थे, अब मुझे सम्पूर्ण ब्रह्मचारी जीवन बिताना है। मैं कैसा हूँ, कैसा लगता हूँ, इन सब बातों को भूल जाना होगा। व्रजभूमि, गायें, गोपियों का प्रेम, पिता नन्द, माता यशोदा, वसुदेवजी, देवकी माँ, इन सबकी स्मृति का लोप कर देना होगा। मेरे पराक्रम और मुझे मिली हुई लोकप्रियता मेरी प्रसन्नता की देवी राधा इन सबको भूल जाना होगा।

गुरु ने बलराम, उद्धव और कृष्ण को अपने भतीजे श्वेतकेतु के दल

मे रखा । श्वेतकेतु सुन्दर युवक था । गुरु का वह सबसे अधिक लाडला और शक्तिशाली शिष्य था । श्वेतकेतु के दल मे इन तीन भाइयो के अलावा अवन्ति के राजकुमार विन्द और अनुविन्द भी थे । दोनो के चेहरे आपस मे इतने मिलते-जुलते थे कि दर्शक भ्रम मे पड जाते थे । कृष्ण ने देखा कि विन्द और अनुविन्द यह कभी नही भूल पाते कि वे राजकुमार है और कृष्ण जब भी उनके निकट आने का प्रयत्न करता, तभी वे उसे यह कहकर चिढाने से नही चूकते कि वह एक ग्वालपुत्र है । मृगवर्म भी ने दोनो भाई अकडकर बाँधते थे और केवल राजगृहो मे ही भिक्षा लेने जाते थे । इन मिथ्याभिमानी छोकरो के चरित्र को कृष्ण [illegible] सहन कर लेते थे ।

कृष्ण मे इस प्रकार का कोई अभिमान नही था । त्रिवक्रा ने अपने यहाँ भिक्षा लेने के लिए जब उन्हे निमन्त्रण दिया, तब कृष्ण ने उसे तत्काल स्वीकार कर लिया । त्रिवक्रा राजकुल की नही थी, परन्तु उसका हृदय राजकुल की स्त्रियो से भी अधिक उदार और उन्नत था । सच मे जब कृष्ण उसके खण्ड पर गये तब बडे स्नेह से अनेक सामग्रियाँ उसने कृष्ण के कमण्डल मे परोसीं । उन दिनो कृष्ण जहाँ भी भिक्षा लेने जाते, वहीं रुक्मी की बहन तो निश्चय ही उपस्थित रहती—हाँ, अकेली नही, त्रिवक्रा के साथ । जिस किसी घर मे कृष्ण भिक्षा लेने जाते वहीं [illegible] सामग्री तो वह स्वयं ही परोसती । भिक्षा देते वक्त एक मधुर मुस्कान उसके होंठो पर थिरकती और कृष्ण के मुख को वह एकटक निहारती रहती । वह बहुत सुन्दर और साहसी लडकी थी । उसका भाई कृष्ण को [illegible] नही भाता, परन्तु रुक्मिणी की बात अलग थी । उसकी आँखे और नाक-नक्श बडे सुन्दर थे । राधा का तो व्यक्तित्व ही कुछ और था । वह उल्लास और आनन्द से छलकती हुई मूर्तिमन्त मधुरता थी, जबकि रुक्मिणी का व्यक्तित्व कुछ ऐसा था कि किसी भी व्यक्ति पर उसका प्रभाव पडे बिना नही रहता । परन्तु कृष्ण की विचारधारा एकदम टूट गयी । जब वह ब्रह्मचारी जीवन बिता रहा था, तब लडकियो के बारे मे इस प्रकार सोचना उचित नही माना जा सकता । उनको भुला देना ही होगा ।

श्वेतकेतु के साथ रहनेवाले शिष्य वृन्द मे सुदामा भी एक था । वह शरीर से दुबला-पतला था, परन्तु उसकी बुद्धि बडी प्रखर थी । वह सरल हृदय भी था और अपनी सभी बाते निस्संकोच कह देता । उसके पिता

सुदूर प्रभास तीर्थ के पास के रहनेवाले थे। सुदामा का कहना था कि सभी को एक बार तो प्रभास की यात्रा करनी ही चाहिए। उसके पिता गुरु सान्दीपनि के मित्र और गुरुभाई थे। सामवेद के गान में वे बेजोड़ थे। अब उनका अवसान हो गया था और सुदामा गुरु सान्दीपनि के आश्रम में रहकर अपना विद्याभ्यास पूर्ण कर रहा था।

सुदामा स्वयं भी सामवेद का गान बड़े मधुर कण्ठ से करता था। कृष्ण मुग्ध भाव से सुदामा के कण्ठ से उच्चारित ऋचाएँ सुनते। सुदामा से सामसंगीत सीखने की भी कृष्ण की बड़ी इच्छा हुई। सौभाग्य से गुरु ने उनकी इस याचना को स्वीकार भी कर लिया। परन्तु बलराम की समस्या कुछ टेढ़ी थी। ब्रह्मचारी जीवन से उन्हें कुछ अरुचि-सी हो रही थी। वृन्दावन का विस्तार उन्हें यहाँ कहीं नहीं दिखायी पड़ा। यहाँ वे यथेच्छ विहार भी नहीं कर सकते थे और न हो-हल्ला, न किसी पर गुस्सा आने पर मारपीट ही कर सकते। यह जीवन उन्हें बहुत संकटमय लगने लगा। प्रतिदिन के इस वेद-गान और शुष्क चर्चा में उन्हें रस नहीं मिलता।

कृष्ण ने बलराम की इस नीरसता को दूर करने का निश्चय किया। यह बहुत सरल कार्य था। कृष्ण कुछ ऐसा अभिनय करते कि जैसे वे मन्त्र भूल गये हैं। और इसलिए बलराम के पास जाकर उन्हें अपनी भूल सुधारने के लिए कहते। इस प्रकार बलराम को मन्त्र अधिक याद रहने लगे। प्रत्येक विधि किस प्रकार की जाय, यह बलराम से ही कृष्ण पूछते। बलराम समझ गये थे कि कृष्ण सब-कुछ जानता है, परन्तु मेरी मदद करने के लिए ही ऐसा दिखावा करता है। बलराम को इस बात का सदा ख्याल रहता कि कृष्ण उनसे अधिक बुद्धिशाली है और इस बात का उन्हें अभिमान भी था। कृष्ण को वे हृदय से चाहते थे। इसीलिए ईर्ष्या उन्हें कभी नहीं छूती थी। कृष्ण भी उन्हें उतना ही चाहते थे। केवल कृष्ण को खुश करने के लिए ही बलराम वेद-मन्त्रों को कण्ठस्थ करते थे।

पाँच दिन बाद कृष्ण के परम मित्र उद्धव वृन्दावन से वापस आये और उन्होंने यह बताया कि वहाँ के सभी लोग कृष्ण की बड़ी आतुरता के साथ राह देख रहे हैं। कृष्ण की बातें सुनते वे कभी अघाते नहीं। उद्धव के साथ उन्होंने भाँति-भाँति के सन्देश भी कहलाये। यमुना का तट कृष्ण के बिना कितना सूना लगता था, इसी की चर्चा उन्होंने अपने

सन्देश से की थीं। और तो और, उद्धव ने सब ब्रज की गायों को सह-लाया, तब गायों के निःश्वास भी उन्हें स्पष्ट सुनायी पड़े।

मथुरा में जो कुछ घटित हुआ, उसका हाल सुनकर माता यशोदा की आँखों से आँसू नहीं थम रहे थे। सोते और जागते सभी समय वह केवल कृष्ण-नाम की रट लगा रही है, यह सुनकर कृष्ण का हृदय भी उदास हो गया। राधा ने प्रसन्न मन से अपना सन्देश सुना, यह जानकर कृष्ण और भी उदास हो गये। कृष्ण ने कहलाया था, "राधा, तू तो मेरी प्रसन्नता की देवी है। तू सदा मेरे हृदय में रहती है और रहेगी। मुझे यह जानना है कि मैं आश्रम से वापस लौटूं, तब क्या तू मेरे साथ रहने के लिए आयेगी ?" राधा का उत्तर उद्धव ने गद्गद् कंठ से सुनाया। प्रथम तो राधा उद्धव को ब्रज के निकुंज में ले गयी और कहा, 'क्या मेरा कृष्ण यहाँ नहीं ?" फिर जहाँ कृष्ण के साथ बैठी थी, उस कदम्ब वृक्ष के पास उद्धव को ले जाकर उसने कहा, 'जरा ध्यान से सुनो, क्या उसकी बाँसुरी के सुर सुनायी नहीं पड़ते ?'

कुछ क्षण तो उद्धव अवाक् रह गये। राधा तो पहले की तरह ही प्रसन्न थी। उद्धव की ओर मुड़कर उसने कहा, "उद्धव, तुम अन्धे भी हो और बहरे भी। यही तो है मेरा कान्ह—वह मेरी हर साँस में बसा है, मेरी गति में अंकित है। मैं जहाँ भी जाती हूँ वहीं वह मेरे साथ-साथ रहता है, इससे अतिरिक्त मुझे और क्या चाहिए।'

राधा को इस प्रकार की बातें करते देखकर उद्धव को अत्यन्त दुःख हुआ। उन्हें लगा कि राधा दुःखी है। यमुना के तीर पर श्याम की बाँसुरी लेकर वह घंटों घूमा करती थी। राधा को उद्धव चाहे न समझ सके हों, परन्तु कृष्ण ने उसे बराबर समझ लिया। राधा कृष्णमय बन गयी थी। दूसरों के मन में भले ही वह कृष्ण हों, परन्तु राधा तो 'मेरा कान्ह' के स्मरणों की सृष्टि में सदैव विहार करती थी। राधा के इस भक्ति-भाव से कृष्ण का हृदय पवित्र और पुलकित हो गया। कृष्ण और राधा के सम्बन्ध में एक नवीन सौन्दर्य का सृजन हुआ।

६

गुरु सांदीपनि की छाया में

कंस की मृत्यु के तीसरे दिन पौ फटने के पूर्व ही आचार्य सांदीपनि अपने शिष्यों सहित यमुना-तट की ओर चल पड़े। गुरु तथा शिष्यों ने यमुना में स्नान किया। तट पर बैठकर सन्ध्या-वन्दन किया। बाद में मथुरा की सीमा पर जाकर दूसरों की प्रतीक्षा करने लगे।

एक के बाद एक सभी राज अतिथि भी वहाँ पहुँचने लगे। उग्रसेन, अक्रूर, प्रद्योत तथा अन्य उच्च यादव सरदार भी उन्हें विदा करने वहाँ तक आये। सभी राज-अतिथि भी आज गुरु सांदीपनि के साथ प्रस्थान कर रहे थे। उनके रथ, अश्व तथा अन्य वाहन भी थोड़ी-थोड़ी दूर पर उनके पीछे-पीछे आ रहे थे।

स्मरण रहे इतने में अधिकांश राज-अतिथियों ने कंस के नेतृत्व में जरासंध के वर्चस्व को स्वीकार कर लिया था। उन्हें यादवों के पक्ष में करने सम्बन्धी वसुदेव तथा अक्रूर के सभी प्रयास असफल सिद्ध हो गए थे। अतिथि और आतिथेय, दोनों के मध्य सम्बन्ध तो औपचारिक रूप में स्थापित ही था, किन्तु उन्हें और अधिक समय तक नहीं ठहराया जा सका। इसमें विदर्भ के भोजशाखा के राजा भीष्मक के पुत्र रुक्मी का उच्छृंखल स्वभाव ही मुख्य कारण था।

वसुदेव, देवकी, रोहिणी तथा अन्य रानियों के साथ उच्च सरदार के परिवारजन भी कृष्ण और बलराम को विदायी देने आये। त्रिवक्रा भी वहाँ उपस्थित थी। वह अपने साथ सुवासित द्रव्यों से परिपूर्ण अपनी सजपा भी ले आयी थी। वह सभी राज-अतिथियों पर इन सुवासित द्रव्यों को छिड़कनेवाली थी। मुख्य रूप से विदा की इस वेला में वह कृष्ण को मन भर देख लेना चाहती थी।

नगर की जनता भी वहाँ एकत्र होने लगी। देखते-देखते वहाँ जन-समुदाय का सागर उमड़ पड़ा। देवकी के नेत्र तो कृष्ण पर ही टिके थे। जिस पुत्र के दर्शन के लिए वह सोलह वर्षों से तरस रही थी, उसे वह किसी प्रकार मिला भी तो आज पुनः विदा हो रहा था। एक ओर जहाँ उसे पुत्र-दर्शन का आनन्द था, वहाँ दूसरी ओर इतनी शीघ्रता से पुनः बिछुड़ जाने

का दुख भी। परन्तु इसके लिए दूसरा कोई उपाय ही न था।

कृष्ण द्वारा मथुरा का मुकुट अस्वीकार कर दिये जाने की बात से देवकी बड़ी प्रसन्न थी। आज तक कृष्ण को किसी प्रकार की सुव्यवस्थित शिक्षा नहीं मिल सकी थी। इसलिए गुरु सांदीपनि जैसे आचार्य की छाया में वह विद्याभ्यास कर सकें, यह सोचकर वह हर्षित भी थी।

प्राची में भगवान् भास्कर की स्वर्णिम रश्मियों की उदय-वेला में सांदीपनि ने अपने मधुर शंख-नाद से लोगों को संकेत किया कि प्रस्थान का शुभ मुहूर्त आ गया है। नतमस्तक हो गुरु सांदीपनि ने निमीलित नेत्रों से कमण्डलु-जल द्वारा सूर्यदेव की अर्चना की।

राजा उग्रसेन ने प्रत्येक राज-अतिथियों के भाल पर कुंकुम-तिलक लगाया। उनके हाथों में शुभवस्त्र प्रदान किया। उनके कंधों को स्वर्णिम किनारों वाली शालों से सुशोभित कर दिया। वसुदेव, देवकी तथा रोहिणी ने तीनों पुत्रों के मस्तक को चूमा—उद्धव कृष्ण का अति-परमप्रिय सखा था, इसीलिए वसुदेव-देवकी उसे पुत्रवत प्यार करते थे। उनके भाल पर चन्दन का तिलक लगाया और हाथों में श्रीफल दिए।

त्रिवक्रा ने मधुर मुस्कान के साथ सभी राज-अतिथियों के हाथों पर सुवासित द्रव्यों को छिड़का, गुरु और इन तीनों ब्रह्मचारियों पर इस प्रकार के द्रव्यों का छिड़का जाना निषिद्ध था। आश्रम-जीवन में प्रवेश करने के बाद ऐसे द्रव्यों का उपभोग उनके लिए वर्जित था। बाद में वह कृष्ण के चरणों में लेट गयी। बड़ी कठिनाई से वह अपने आँसुओं को रोक सकी क्योंकि विदा की ऐसी शुभ-वेला में आँसू का आना अशुभ माना जाता था।

राजा उग्रसेन ने तीनों किशोरों के मस्तक पर हाथ फिरा आशीर्वाद दिया और गुरु सांदीपनि का चरण-स्पर्श किया। अन्य सरदारों ने भी गुरु को प्रणाम किया। गुरु सांदीपनि के नेतृत्व में राज-अतिथियों ने भी वहाँ से विदा ली और यमुना के किनारे-किनारे स्थित मार्ग पर वे आगे बढ़े।

गुरु सांदीपनि की पद-यात्रा-पाठशाला का अनुशासन विधान अति कठोर था। उनकी शिष्य-मण्डली में विन्द एवं अनुविन्द जैसे राजकुमार भी थे, किन्तु उन्हें भी अनुशासन का पालन तो करना ही पड़ता था।

रात्रि होते ही वे नदी या किसी झरने के निकट के ग्राम में पड़ाव डाल देते। सूर्योदय के पूर्व ही गुरु-शिष्य अपना-अपना मृग-चर्म त्याग देते। राह

मृग-चर्म दिन में उन्हें वस्त्र तथा रात्रि में बिस्तर का काम देता। उनसे प्रतिकूल ऋतुओं में भी उनकी रक्षा होती। स्नान के लिए निकट की नदी या सरोवर पर वे जाते। घुटने ऊपर जल में खड़े होकर वे भगवान् सविता नारायण को अर्घ्य चढ़ाते, भगवान् वेदव्यास द्वारा निर्धारित स्वर-भार के साथ मन्त्रोच्चारण करते और तब जल से बाहर आते।

मन्त्रगान पूरा होने के बाद निकट के ग्राम से उपहारस्वरूप आए हुए दुग्ध का पान गुरु और शिष्य करते और तब पुनः प्रस्थान-यात्रा आरम्भ हो जाती। शिष्यगण पाँच या छः की टोली में विभक्त हो जाते। प्रत्येक टोली का नेतृत्व अभ्यास में वरिष्ठ शिष्य ही करता। वे नये शिष्यों को मंत्रगान तथा व्याकरण के नये नियमों को सिखाते। प्रत्येक टोली में धर्म-शास्त्र पर चर्चा होती, किसी नवीन विद्या-शाखा के सम्बन्ध में विचार-विमर्श होता तथा युद्ध एवं राज्य-अनुशासन के पाठ पढ़ाये जाते।

जब तक मध्याह्न न हो जाता और धूप सह्य रहती तब तक गुरु और शिष्य चलते रहते। बाद में अश्वत्थ या अन्य वृक्षों की छाया में विश्राम हेतु वे ठहर जाते। जो भी ग्राम निकट में होता, शिष्य-वृन्द भिक्षा-पात्र लेकर वहाँ जाते और भिक्षा लेकर वापस आ जाते और तब वहाँ रचित यज्ञ की वेदी में गुरु सांदीपनि पवित्र आहुति देते।

जब तक राज-अतिथि गुरु सांदीपनि की अभ्यास-यात्रा के साथ थे, वे अपने-अपने रथों और अश्वों पर आरूढ़ शीघ्रता से आगे निकल जाते और गुरु तथा शिष्यों को विश्राम के लिए सुन्दर स्थान ढूँढ निकालते। उनके परिचायक सांदीपनि तथा शिष्य-मण्डली के लिए सुस्वादिष्ट भोजन बनाकर तैयार रखते। शिष्यगण भिक्षा-पात्र लेकर प्रत्येक राज-अतिथियों के खेमों में जाते और 'भवती भिक्षाम् देहि' का उच्चारण करते। भिक्षा लेते समय वे इससे अधिक और कुछ नहीं बोलते। रानियाँ एवं राज-कुमारियाँ तत्काल बाहर आतीं और प्रत्येक शिष्य के भिक्षा-पात्र को भर देतीं।

सांदीपनि के शिष्य किस अनुशासनशीलता में रहते हैं, इसका अनुभव रुक्मिणी को नहीं था। उसने तो सोच रखा था इस यात्रा-मण्डली के साथ चलने पर वह बड़ी सुगमता से अपने श्याम-सलोने से बार-बार मिलती रहेगी। प्रस्थान-वेला में जब वह रथारूढ़ हुई तो क्षण भर के लिए कृष्ण को उसने देखा भी था। उसका प्रीतम घुँघराले केशों से विहीन था। उसके शरीर

पर मृग-चर्म शोभायमान था, हाथ में दण्ड एवं कमण्डल था। उसे लगा जैसे कृष्ण का स्वरूप ही बदल गया है।

फिर भी वह उससे बार-बार मिलने का प्रलोभन संवरण न कर सकी। जब कभी भी सादीपनि के शिष्य भिक्षा लेने आते, वह सभी को पीछे ढकेलती कृष्ण के आगे आ खड़ी होती और उसके भिक्षा-पात्र को भर देती। अन्य रानियाँ तथा राजकुमारियाँ रुक्मिणी के इस पागलपन को देखकर हँस पड़तीं। उन्मुक्त स्वभाव वाली विदर्भ की राज-कन्या के सम्बन्ध में वे आँखों-ही-आँखों में आपस में सब-कुछ कह लेतीं, समझ-लेतीं। किन्तु उसे कोई ऐसा करने से रोक भी नहीं सकता था। उसकी भाभी मौन हो मात्र रोष व तिरस्कारपूर्वक उसकी ओर देखती रह जाती। भाई-भाभी भी उसे रोकने में असमर्थता का अनुभव कर रहे थे। वह कुशाग्र बुद्धिवाली थी और इसीलिए अपने मार्ग की अवरुद्धता को बड़ी आसानी से समाप्त कर देती। भाई-भाभी भी इतने राजपरिवारों के बीच उसे लेकर कोई बखेड़ा नहीं खड़ा करना चाहते थे और इसीलिए वे मौन तिरस्कारपूर्ण भाव दर्शाकर ही रह जाते।

जब कभी भी आगे बढ़कर रुक्मिणी कृष्ण के भिक्षा-पात्र में सामग्री डालती, कृष्ण उसे निर्निमेष दृष्टि से देखता रह जाता। रुक्मिणी के हास्य के प्रति-उत्तर में वह कुछ न करता। हाँ, कृष्ण की मौन दृष्टि इतना अवश्य बता देती कि वह रुक्मिणी की मनोदशा को समझ रहा है। किन्तु कृष्ण को पाठशाला की अनुशासनभंगता की लेशमात्र भी इच्छा नहीं थी। आनन्द-प्रमोद को उसने तिलांजलि दे रखी थी।

मध्याह्न में भोजनोपरान्त गुरु और शिष्य कुछ विश्राम करते। धूप के मन्द होते ही यात्रा और ज्ञान-गोष्ठी आरम्भ हो जाती, सन्ध्या होते ही पुन विश्राम के लिए वृक्षों की छाया में पड़ाव डाल दिया जाता। कुछ समय तक मुष्टि विद्या का अभ्यास किया जाता। बाद में गुरु-शिष्य स्नान-सन्ध्या करते और भोजनोपरान्त अपने-अपने मृग-चर्म पर सो जाते।

कृष्ण स्वयं के सौन्दर्य, पुष्प और पराग तथा गीत एवं नृत्य के प्रेम को पाठशाला के कठोर नियमों के आगे पूर्ण रूप से भूल गया था। इस नये जीवन के साथ उसने देह और मन को तदाकार कर लिया था। उसकी मण्डली के नायक श्वेतकेतु ने ऐसी ग्राह्यशक्ति वाला शिष्य कभी नहीं देखा था। प्रथम बार ही मन्त्र का उच्चारण होते ही कृष्ण की पूर्ण शुद्धि के साथ

उसे कण्ठस्थ कर लेता। आचार का जो सिद्धान्त उसे सिखाया जाता, वह सदा सर्वदा के लिए ग्राह्य कर लेता। अभी तक विद्याभ्यास के सम्बन्ध में उसकी ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। इसलिए उसने बड़ी तन्मयता के साथ विद्यार्थी जीवन को अंगीकार कर लिया था। इस जीवन की सभी अपेक्षाओं को वह न केवल सस्मित स्वीकार कर लेता, अपितु प्रसन्नचित्त उन्हें पूर्ण भी करता।

अपने गुरुभाइयों के साथ कृष्ण जिस मधुरता का व्यवहार करता उसे देखकर गुरु सान्दीपनि मुग्ध हो जाते। सभी परिचितों का हृदय कृष्ण बड़ी सरलता से जीत लेता। वह इतने स्नेह एवं निष्ठा के साथ लोगों से परिचय करता कि सभी उससे प्रेम किये बिना रह नहीं सकते। वह प्रसन्नचित्त सभी की सेवा करने के लिए सदैव तत्पर रहता। यह देखकर अवन्ती के गर्वीले राजकुमार भी लज्जा का अनुभव करने लगते।

दौड़ या मुष्टि युद्ध में कृष्ण और बलराम की कोई बराबरी नहीं कर सकता था। कृष्ण मुष्टि युद्ध में चतुराई या शक्ति को प्रधानता नहीं देता। वह प्रतिद्वन्द्वी के दावों को जैसे पहले से ही समझ लेता और उसकी शारीरिक तथा मानसिक दुर्बलता का लाभ उठाने से न चूकता।

श्वेतकेतु तथा उसकी टोली के शिष्यों के मध्य शीघ्र ही स्नेह सम्बन्ध स्थापित हो गया। मात्र विन्द तथा अनुविन्द अपनी राजसी प्रतिष्ठा को नहीं भूल सके थे। किन्तु वे बलराम से सदैव भयभीत रहते और जैसे ही बलराम की दृष्टि उन पर पड़ती, वे ठिकाने आ जाते।

यात्रीगण धीरे-धीरे चर्मणवती (वर्तमान चम्बल) के तट पर पहुँच गये। एक के बाद एक राज-अतिथि गुरु-शिष्यों से विदा ले अपनी-अपनी राजधानी की ओर चल पड़े। डेढ़ माह की पद-यात्रा के बाद गुरु सान्दीपनि अपने शिष्यों के साथ अवन्ती के आश्रम में पहुँचे।

प्रतिवर्ष गुरु सान्दीपनि दो यात्राएँ किया करते थे। एक बार तो वे कुरुक्षेत्र में महर्षि वेदव्यास के आश्रम में जाते और दूसरी बार समुद्र-तट पर स्थित प्रभास तीर्थ की यात्रा करते। पूर्णिमा की रात्रि को समुद्र में एक साथ गिरनेवाली तीन नदियों के इस संगम-स्थान पर स्नान करने का बड़ा ही पुनीत महत्त्व था। अभी इस यात्रा के लिए समय था। इस बीच कृष्ण और बलराम को शस्त्र विद्या का अभ्यास कराया जाने लगा।

प्रतिदिन प्रातःकाल, मध्याह्न तथा संध्या को स्वयं गुरु अपने निर्देशन

मे उन्हे धनुर्विद्या तथा परशुविद्या की शिक्षा देते। बलराम अधिक ऊँचा था और उसके स्नायु भी सुदृढ एव मासल थे। अत वह शीघ्र ही गदा-युद्ध मे निष्णात हो गया। उसका स्वभाव भी प्रचण्ड बवण्डर जैसा था। असख्य योद्धाओ के बीच सुगमता से मार्ग बना लेनेवाले शस्त्र उसे अधिक प्रिय थे।

कृष्ण को सभी शस्त्रो मे चक्र अति प्रिय था। बचपन से ही उसके नेत्र तीक्ष्ण थे और चाहे कैसा भी प्रचण्ड अविनाशी साड हो, वह उसे पाशबद्ध कर लेता था। असभाव्य परिस्थिति मे भी उसने कालिय नाग को नाथ लिया था। इसी प्रकार तर्जनी पर चक्र को घुमाकर अपने लक्ष्यस्थान पर केन्द्रित करने की कला मे वह अति प्रवीण था। चक्र लक्ष्य-वेध के बाद उसके पास लौट भी आता था। ऐसे विकट शस्त्रो का उपयोग करने वाला शिष्य अभी तक सादीपनि गुरु को नही मिला था। कृष्ण के हाथ मे आते ही ये शस्त्र चामत्कारिक सृजन का स्वरूप धारण कर लेते।

चौसठ दिन तक कृष्ण और बलराम शस्त्र-विद्या का अभ्यास करते रहे। इसके बाद सादीपनि तथा उनके शिष्यगण भृगुतीर्थ की यात्रा के लिए तैयार हो गये। वहाँ से नौकाओ मे बैठकर उन्होने प्रभास तीर्थ की ओर प्रस्थान किया।

७

पञ्चजन तथा पुण्यजन राक्षस

[कसवध के पश्चात् श्रीकृष्ण का प्रथम उल्लेखनीय पराक्रम गुरुसादीपनि के पुत्र को वैवस्वतपुर मे से लौटा लाना था। ऐसा लगता है कि यह घटना अनिहत परपरा पर आधारित है। सादीपनि के पुत्र का प्रभास के पास अपहरण हुआ था। उसे सागर पार वैवस्वतपुर ले जाया गया। श्रीकृष्ण गुरु-पुत्र को ढूँढने निकले। उन्होने सागर यात्री राक्षस पचजन पर विजय प्राप्त की (विदेशी भाषा बोलनेवाले असस्कृत परदेशियो के लिए राक्षस शब्द का

प्रयोग किया जाता था ।) ऐसा भी माना जाता है कि पुण्यजन राक्षस सौराष्ट्र के सागर किनारे कुशस्थली पर स्थापित हुए थे ।

ऋग्वेद में पणियों का उल्लेख आर्य देवों को अर्घ्य देनेवाली प्रजा के रूप में हुआ है और उनके लिए 'वृक्' अथवा 'राक्षस' जैसे शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । उन्हें दस्यु भी कहा जाता था । कई विद्वानों के अनुसार वे आदिवासी बनजारे थे । अपने माल की रक्षा के लिए आवश्यकता होने पर वे लड़ाई के लिए भी तैयार रहते थे । (मैकडोनाल्ड व कीथ, वैदिक इंडैक्स, ग्रंथ १, पृष्ठ ४७१-२) । इससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि पुण्यजन, पञ्चजन और पणिया फोनेश्यन्स से मिलते-जुलते परदेशियों के विभिन्न नाम हैं । फोनीशियावासी प्राचीन यूरोप की साहसिक परन्तु अप्रामाणिक जाति के रूप में विख्यात हैं । वे १६०० और १३५० ई० पू० के बीच फोनेशिया में स्थिर हुए (राउलीसन हिस्ट्री ऑफ फोनीशिया, पृ० ४०६) । इससे पहले वे फोनीशिया के दक्षिण में युरीथ्रियन समुद्र के किनारे पर रहते थे जिससे यह जाना जा सकता है कि फोनेश्यनों की प्रवृत्ति अरबी समुद्र में अधिक थी ।]

पुण्यजन जलदस्यु

गुरु सांदीपनि ने अपने शिष्यों सहित नौकाओं में बैठकर भृगुतीर्थ से प्रभास तीर्थ की ओर प्रस्थान किया ।

कृष्ण का इसके पूर्व कभी भी सागर से साक्षात्कार नहीं हुआ था । सागर की उत्ताल तरंगों के आन्दोलित सौन्दर्य तथा उसके असीम विस्तार को बड़ी विमुग्धता से वह देखता रह गया । वह नौका-चालन की विद्या सीखने लग गया । नौका-विहार उसे बहुत भाता ।

गुरु सांदीपनि के साथ कुल छः नौकाएँ थीं । वे किनारे को अधिक दूर न छोड़कर आगे बढ़ रही थीं । इधर के सभी किनारे गांवों में गुरु सांदीपनि की पर्याप्त ख्याति थी । विश्राम के हेतु जहाँ भी वे ठहरते, उनका लोग आदर-सत्कार करते । प्रभास का राजा गुरु सांदीपनि की इस प्रति वर्ष की यात्रा की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करता । जब वे वहाँ पहुँचते तो उनका भव्य स्वागत किया जाता ।

सौराष्ट्र का तटीय प्रदेश आर्यों की आबादी से भरपूर था । आर्य

ऋषियो का आगमन उनके लिए उत्सव का विषय बन जाता। गुरु जहाँ भी ठहरते, वही अस्थायी पाठशाला की स्थापना हो जाती। उनका पट् शिष्य इस पाठशाला का सचालन करता और वहाँ सभी वय के लोग शास्त्र एव शस्त्र की शिक्षा पाते। गुरु स्वय प्रबल एव विकराल शस्त्रों के निर्माण तथा उनके उपयोग की शिक्षा देते। शिष्यगण आसपास की बस्तियों में आर्य सस्कृति का प्रचार एव प्रसार भी करते।

प्रभास की आबादी पर्याप्त रूप में घनी थी। यहाँ आर्यों के अलावा ऊँचाई में छोटे तथा काले रग की जाति के लोग भी रहते थे। ये लोग साहसी, शीघ्र ही दूसरो में मिल जानेवाले तथा अतिथि-सत्कार में प्रवीण थे। वे गलियों में पक्तिबद्ध पक्की मिट्टी के बने स्वच्छ घरों में रहते थे। वे शिव के पुजारी थे। यहाँ पर मथुरा की तरह शिव-लिंग नहीं था। योगासन पर बैठे अवधूत स्वरूप शिव की प्रतिमा की पूजा ये लोग किया करते थे। प्रभास के लोगों के पास छोटे-से जलयान थे वे भृगुकच्छ तथा अन्य तटीय प्रदेशों से व्यापार भी करते थे। आर्यों से न समझ सकने वाली भाषा वे बोलते। ये लोग कितने ही देशों में भ्रमण करते रहते थे, इसलिए आर्य सस्कृति, रीति-रिवाज तथा आचार-व्यवहार से परिचित थे। देवों ने वेदों को आर्य-भाषा में ही प्रकट किया, ऐसा समझकर वे इस भाषा को देव-भाषा मानते थे। प्रभास के आसपास अन्य आर्य बस्तियाँ भी गुरु सांदीपनि का स्वागत-सत्कार सम्मान करती।

प्रभास में गुरु सांदीपनि का आश्रम नगर के तट पर स्थित सूर्य मन्दिर के निकट ही रहता। सदैव गुरु और शिष्य विधिपूर्वक सागर में तीन बार स्नान करते। स्थानीय जनता के लाभार्थ यहाँ आश्रम के नियम कुछ-न-कुछ परिवर्तित कर दिया जाता। प्रातःकाल अनुभवी शिष्य स्थानीय विद्यार्थियों को वेदों एव यज्ञ की विधियों का अभ्यास कराते। सायकाल शस्त्र विद्या सिखायी जाती।

गुरु सांदीपनि जैसे ही सागर के तट पर आते उदासी की एक गहरी छाया उन्हें ढँक लेती। उनके जीवन की एक घटना उनके हृदय-पटल पर उभर आती। जब वे दस वर्ष प्रभास तीर्थ की यात्रा पर पधारे थे, तब प्रभास के निकट व्यापार करने के हेतु आये हुए पचजन नामक राक्षस उनके एकमात्र पुत्र पुनर्दत्त का अपहरण कर ले गया था।

एक दिन मध्य रात्रि में जब चन्द्रमा आकाश में पूर्णता के साथ जगमगा

रहा था और सागर में ज्वार की लहरें हिलोरें ले रही थीं, कृष्ण ने देखा, गुरु सांदीपनि उदास सागर के तट पर खड़े थे। उनके नेत्र दूर—बहुत दूर क्षितिज के उस पार जैसे बड़ी व्यग्रता से कुछ ढूंढ रहे हों। कृष्ण ने गुरु की वेदना को अनुभव किया। गुरु उस समय अपने अपहरण किये गये पुत्र के सम्बन्ध में ही सम्भवतः सोच रहे थे।

कृष्ण अपना मृग-चर्म त्याग और उसे शरीर पर धारण कर वहाँ पहुंचे, जहाँ गुरु अपनी कारुणिक स्मृति की लहरों में बेभान बह रहे थे।

सांदीपनि ने कृष्ण को आते हुए देख लिया। नेत्रों में आये आंसुओं को पोंछते हुए उन्होंने कृष्ण की ओर देखा।

"वत्स, तुम इस समय यहाँ?" उन्होंने कम्पित स्वर में पूछा।

"गुरुश्रेष्ठ, मैं समझता हूँ, आपके सताप का क्या कारण है", कृष्ण ने कहा। "क्या मैं आपके इस सताप को शान्त करने में कुछ सहायक सिद्ध हो सकता हूँ? आपने मुझे अपना प्रिय-शिष्य कहकर पुकारा है। आप मेरे लिए पिता से भी अधिक पूजनीय हैं।"

"कृष्ण, तू क्या कर सकता है? मुझे सुख सम्भव नहीं है अब। मेरी वेदना का अनुमान तो तू तब लगा सकेगा, जब तू एक पुत्र का पिता बनेगा, वह पुत्र तुझे प्राणों से भी अधिक प्यारा होगा और क्रूर राक्षस उसका अपहरण कर ले जायेगा।" कृष्ण गुरु की बात शान्तिपूर्वक सुन रहा था।

गुरु सांदीपनि ने कहा, "पुत्र तो अपने वंश का विस्तार होता है। जीवन में वह अपना ही अंश होता है और मृत्यु के पश्चात् वह नरक के कष्टों से बचानेवाला होता है। उसका स्थान कोई नहीं ले सकता, उसे कदापि बिसराया नहीं जा सकता।"

"मैं आचार्य श्वेतकेतु से सुन चुका हूँ कि किस प्रकार पंचजन ने आपके प्रिय पुत्र का अपहरण कर लिया। उन्हें मुक्त करने सम्बन्धी क्यों नहीं कोई प्रयत्न किया गया?" कृष्ण ने पूछा।

सांदीपनि पुनः एक बार और अधिक उदास बन गये और अपना मस्तक घुमाते हुए दूर क्षितिज में अंगूठे के आकार के एक जलयान को निर्दिष्ट करते हुए उन्होंने कहा, "देखो, वह जलयान। पंचजन, पुनः आ रहा है। वह पुण्य-जन जाति का है। इन लोगों ने कुछ समय पूर्व राजा कुकुद्मिन के पास से कुशस्थली (वर्तमान द्वारका) को छीन लिया था। वह गत वर्ष की भाँति ही आ रहा है। वह प्रतिवर्ष यहाँ व्यापार के लिए आता है। कुछ समय तक

उसका जलयान यहाँ लगर डाले रहना है और बाद में वह अपने अन्य साथियों के साथ चला जाता है। प्रभु जाने कहाँ ? किन्तु सुनने मे आता है, वह[1] पाताल में रहता है।"

गत वर्ष उनके यहाँ से प्रयाण करने के अन्तिम दिन पुनर्दत्त सागर मे स्नान करने गया था। वह तुझसे वय मे एक वर्ष बडा था। वासुदेव! वह सुन्दर एव बुद्धिमान था। मुझे पूर्ण विश्वास था कि वह सांदीपनि का कार्य प्रतिष्ठा और परम्परा के अनुकूल और आगे बढाता।" गुरु सांदीपनि ने दूर बहुत दूर सागर के उस पार उदास मन से देखते हुए एक दीर्घ नि श्वास छोडा।

'पचजन राक्षस ने उसका अपहरण कर लिया और अपना जलयान लेकर चला गया। मेरा प्यारा पुत्र! कितना विनम्र था वह! मुझसे विलग हो जाने के बाद अवश्य ही उसका हृदय विदीर्ण हो गया होगा। कौन जाने, उसके भविष्य मे क्या लिखा है ? कैसे क्रूर विदेशियो के हाथ मे वह चला गया है! जब मैं यह सोचता हूँ तो मेरा हृदय फट पडता है। '

एक अति वेदनापूर्ण सिसकी गुरु की आवाज को कम्पायमान कर गयी। "वह पुन आ रहा है। मैं उसके जलयान को सम्पूर्ण रूप से विनष्ट कर सकता हूँ, डुबो सकता हू, किन्तु अगर मैं ऐसा कर देता हूँ तो वह पुनर्दत्त का वध करने मे बाज न आयेगा।"

कृष्ण कुछ क्षण के लिए विचार-विमग्न हो गया। "गुरुदेव, समझिये, अगर मैं उन्हे ढूँढ लाऊँ तो!"

"तू नही ढूँढ सकता।" सांदीपनि ने कहा। "पुण्यजन का जलयान सातो समुद्रो की सैर करता है। अनजान देशो मे विचरता है। जहाँ भयकर राक्षस रहते है, वहाँ भी वह जाता है। ऐसे ही प्रदेश मे कही वह पुनर्दत्त को बेच भी सकता है। वह अपने देव के भोग के लिए उसकी बलि भी दे सकता है।"

"कुछ भी हो, एक बार मैं उन्हे ढूढने का प्रयत्न तो करूँगा ही," कृष्ण ने कहा।

"कृष्ण, तो तेरी भी दशा पुनर्दत्त जैसी ही हो जायगी," गुरु ने अपने प्रिय शिष्य के कन्धे पर ममतापूर्वक हाथ रखते हुए कहा।

---

1 हैदराबाद (सिन्ध) के निकट का प्रदेश।

"गुरुदेव, प्रभास को आ रहे पुण्यजन के जलयान को एक बार मुझे ढूंढ लेने की आज्ञा दीजिए। गत वर्ष जो जलयान आया था, यह वही है तो भी, और नहीं है तो भी। किन्तु इतना करने की अनुमति मुझे आप अवश्य दें। यही मेरी गुरु-दक्षिणा होगी," कृष्ण ने कहा। "अगर आप उचित समझें तो कल से मुझे ब्रह्मचर्य के यम-नियमों से मुक्त कर दें।"

"मैं तो चाहता हूँ, तू अपने इस विचार का परित्याग कर दे। फिर भी अगर तेरा आग्रह ही है तो मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है। किन्तु अगर तुझे कुछ हो गया तो वसुदेव और देवकी के पास मैं कौन-सा मुँह लेकर जाऊँगा?"

"आप उनसे कहियेगा कि मैं धर्म की रक्षा और दुष्टों का विनाश करने के लिए गया था," कृष्ण ने कहा।

उद्धव कृष्ण का बालसखा था। उसने अपने मित्र में स्वयं को समर्पण-मय बना लिया था। वह कृष्ण की मौन इच्छा को भी तत्काल समझ-कर पूर्ण कर देता। वह प्रत्येक भाँति कृष्ण की सहायता करता और उसकी ख्याति में स्वयं को धन्य मानता। पुण्यजन-जलयान के ढूँढने के प्रयास में भी वह कृष्ण के साथ रहा। कृष्ण ने जलयान पर जाने की अपनी अन्तिम इच्छा प्रकट की तो उसके मना करने पर भी वह कृष्ण के साथ गया।

चतुर्थ दिवस की रात्रि को पुण्यजन-जलयान के प्रधान पंचजन प्रभास में अपना अन्तिम व्यापार सम्पन्न कर एक छोटी नौका में बैठ थोड़ी दूर पर सागर में लंगर डाले हुए अपने जलयान की ओर चला।

मध्यरात्रि को कृष्ण एवं उद्धव भी जलयान के पास तैरकर पहुँचे और एक ओर से उस पर चढ़ भी गये। रात्रि का नाविक (चालक) एक अति काली-कलूटी चमड़ी तथा श्वेत दाढ़ी वाला वृद्ध था। उसने तत्काल ही दोनों किशोरों को देख लिया। वह आर्य भाषा भी जानता था। उसने पूछा, "तुम लोग क्या चाहते हो?"

"काका, हम तुम्हारे साथ चलना चाहते हैं," सस्मित कृष्ण ने कहा। "गत वर्ष तुम लोग हमारे भाई पुनर्दत्त को ले गये थे। हम उसके बिना जीवित नहीं रह सकते। तुम हमें उसके पास ले चलो।"

वृद्ध भिक्षु इन दो किशोरों की निर्भयता एवं साहस को देखकर दंग

रह गया। वैसे वे लोग प्रति वर्ष प्रभास आते थे और पुण्यजन के प्रमुख पचजन के भय से कोई भी जलयान तक आने का साहस नहीं करता था।

प्रथम तो वृद्ध भिक्षु को कुछ शका हुई। उसे लगा कि कृष्ण और उद्धव सम्भवतः चोरी करने ही आये हो और जैसे ही जलयान लगर उठाता, वे तरकर वापस लौट जाते। किन्तु जलयान तो लगर उठा चुका था, उसकी गति मे तीव्रता भी आ गई थी। इससे उसकी शका निर्मूल सिद्ध हुई। उसने कृष्ण और उद्धव के हाथ-पैर बाँध दिये। दोनो किशोरो ने इसका लेशमात्र भी प्रतिकार नही किया। पतवार के पास बैठे वृद्ध भिक्षु ने उन्हे अपने सामने ही बैठा रखा। कुछ समय तक मौन छाया रहा। मात्र सागर की गर्जना एव उसमे मार्ग बनाते जलयान की विकराल ध्वनि ही निस्तब्धता को भग कर रही थी।

'तुम्हारा जलयान अद्भुत है काका," कृष्ण ने कहा, "तुम कितने समय से यह कार्य कर रहे हो ?"

"मैं ! अरे—" वृद्ध नाविक ने हँसते हुए कहा, "जब मै बालक था तभी से नाविक का कार्य कर रहा हूँ। मेरा पिता भी नाविक था और मेरा काका भी।"

"दिन-रात समुद्र पर चलते रहना मेरे लिए बडे आनन्द की बात है काका। मैं भी नाविक बनना चाहता हूँ। देखो न, तुम कितने ही स्थानो पर जाते हो, कितने ही लोगो से मिलते हो, और सदैव प्रसन्न एव युवा बने रहने का अनुभव करते हो," कृष्ण ने कहा।

"अगर तुम मेरे साथ रहकर नौ-चालन सीखना चाहते हो तो मुझे किसी प्रकार की आपत्ति नही है," जोर का ठहाका मारते हुए भिक्षु ने कहा। "इन उत्ताल तरगों मे से मार्ग बनाने जैसा अपूर्व एव आह्लादक कार्य इस विश्व मे दूसरा और नही है।"

"अरे काका, तुम्हारा जलयान तो अद्भुत है।"

"अभी गत मास ही कुशस्थली मे इसका नवीनीकरण किया गया है," भिक्षु ने बताया।

'वहाँ किस प्रकार के राक्षस रहते है ?" कृष्ण ने पूछा।

'वे हमारे प्रधान की जाति के है। 'उफ्।" उसने कुछ इस प्रकार कहा कि जिससे स्पष्ट हो रहा था कि वह पचजन से प्रसन्न नही था।

जलयान चलता रहा, कृष्ण बाते करता रहा और जब तक प्रात

नही हो गया, वृद्ध भिक्षु उन्हे सागर सम्बन्धी अद्भुत कथाएँ सुनाता रहा।

भिक्षु ने दोनो किशोरो को बन्धन-मुक्त किया और पुण्यजन के प्रमुख पचजन के समक्ष उन्हे उपस्थित कर दिया। पचजन सुदृढ एव ऊँचा था। उसके शुष्क चेहरे की विकरालता को उसकी श्वेत दाढी और भी बढा रही थी। उसने गले मे बहुमूल्य आभूषण एव शरीर पर सुन्दर वस्त्र धारण कर रखे थे। उसकी कमर मे रुपहली म्यान मे मढी छोटी तलवार लटक रही थी। उसके हाथ मे एक विकराल कोडा भी था, जो उसकी सत्ता का प्रतीक था। उसकी जब इच्छा होती, अपने किसी भी सेवक पर इस कोडे को निरकुशता से बरसाने लगता।

उसके अगरक्षक के रूप मे उसी तरह दो अन्य राक्षस भी थे। उनके हाथ मे भी कोड़े थे। उनके केश कडे एव घुँघराले थे, होठ मोटे थे तथा स्नायु सुदृढ थे। वे पचजन के अगरक्षक के रूप मे कार्य करने के उपरान्त जलयान की पूरी व्यवस्था भी देखते।

ये दोनो किशोर जलयान पर किस प्रकार आये, वृद्ध भिक्षु ने प्रधान को अवगत कराया। इसके बाद कृष्ण ने पचजन को प्रणाम कर आदर-पूर्वक कहा, 'महाराज, हमारे यहाँ आने का कारण पुनर्दत्त है। हम भी उसके पास जाना चाहते हे। आप गत वर्ष उसे अपने साथ उठा लाये थे। वह मेरा भाई-जैसा ही है। उससे विलग होकर हम नही रह सकते। आप हमे उसके पास पहुँचा दे।"

पचजन इन किशोरो के सौन्दर्य एव साहसी स्वभाव से प्रभावित हो उठा। उसने हँसते हुए इन्हे पुनर्दत्त के पास ले जाने का वचन दिया। और मन-ही-मन विचार करने लगा कि इन्हे बेचने पर पर्याप्त धन-राशि मिलेगी।

पचजन ने इन किशोरो को स्वय के तथा अपने भतीजो के लिए निर्मित कक्ष मे ठहरने के लिए आमन्त्रित किया, किन्तु कृष्ण ने क्षमा-याचनापूर्वक कहा, "हम भिक्षु के साथ रहकर नौका-चालन सीखना चाहते है।"

पुण्यजन का नायक हँस पडा। "तुम सुकुमार शरीरवाले किशोर भला किस प्रकार कार्य कर सकोगे ? तुम्हारा हाथ कितना कोमल है ? मेरी कन्याओ का हाथ भी इनसे कठोर है।"

"हम आप पर भार-स्वरूप नहीं होना चाहते प्रधान। हम भिक्रु तथा अन्य खलासियों के साथ परिश्रम कर अपना भार स्वय वहन करेंगे," कृष्ण ने कहा।

पंचजन को यह अच्छा नहीं लगा। उसकी इच्छा तो यह थी कि वे इसी प्रकार सुन्दर, सुकुमार एव ताजे बने रहें। तभी इनका अधिक-से-अधिक मूल्य मिल सकेगा। किन्तु जब कृष्ण और उद्धव काम करने पर तुल ही गये तो उन्हें रोकना भी उसने उचित नहीं समझा।

"अच्छा," पचजन ने कोडे को फटकारते हुए कहा, "भिक्रु, इन किशोरो का विशेष रूप से ध्यान रखना। देखना इनसे अधिक काम नहीं लेना, क्योंकि धूप में इनकी चमडी काली पड जायेगी। अगर ऐसा हुआ तो तेरी भलाई नहीं।'

पचजन ने कोडो के सहित खडे राक्षसो की ओर अर्थभरी दृष्टि से देखा।

"जैसी प्रधान की आज्ञा," भिक्रु ने कहा। भिक्रु इन किशोरों को अपने साथ ले गया और उनका परिचय अपने पौत्र कुक्कुर से कराया।

कुक्कुर की इन किशोरों के साथ शीघ्र ही प्रगाढ मित्रता हो गयी। वह उनकी भाषा तो नहीं समझता था, किन्तु सांकेतिक भाषा में वह सब प्रकार की बातचीत कर लेता था।

इस बीच कृष्ण एव उद्धव ने पुनर्दत्त सम्बन्धी सभी जानकारी प्राप्त कर ली। उसे पाताल ले जाया गया था। सूर्य के नगर वैवस्वतपुर के राजा ने उसे खरीद लिया था। यह जलयान भी उसी दिशा में जा रहा था। वह प्रदेश बडा विचित्र था। वहाँ रानी को दिव्य माता तथा राजा को मृत्यु-देव यम के रूप में माना जाता था।

पुण्यजन-प्रधान कृष्ण के प्रति अति उदार भाव दर्शाता। वह उसे बारम्बार अपने कक्ष में बुलाता और अपनी बगल में बैठाकर कहता, "मैं अवश्य तुम्हें पुनर्दत्त के पास ले चलूँगा," कृष्ण को इस राक्षस का चेहरा लेश मात्र भी न भाता। उसका दुष्ट भाव कृष्ण से छिपा न था। जहाँ तक सम्भव था, वह उससे दूर रहने का ही प्रयत्न करता।

प्रतिदिन अपराह्न में पचजन नौका-पृष्ठ पर पधारता और वह अपने कन्धे पर लटकती सुन्दर गुलाबी शख की ध्वनि करता। इस समय सभी खलासी उसके समक्ष उपस्थित हो जाते। मात्र नीचे के नौका-पृष्ठ पर

डाँड चलानेवाले इम बन्धन से मुक्त रहते। उनके कार्य का काल बदलता रहता। इसलिए जलयान का प्रत्येक व्यक्ति प्रति दूसरे दिन उसके समक्ष उपस्थित होता।

वह नौका-पृष्ठ पर खड़ा हो जाता, उसके दोनों ओर उसके दो भतीजे खड़े होते तथा उससे थोड़ी दूर हटकर दोनों राक्षस हल्लु और हुक्कु खड़े होते। सभी प्रधान को प्रणाम करते—वह सभी की पीठ पर कोड़े मारता और बाद में रात्रि के लिए आज्ञा प्रदान करता। उस समय पचजन की जो आज्ञा न मानता, उसे कठोर दण्ड मिलता।

दो दिन बाद जब पचजन का दरबार लगा तो राक्षस हुक्कु ने जलयान के एक युवक तक्षक रड्डु को पकड़कर उसके समक्ष प्रस्तुत किया। इस समय पचजन का चेहरा बड़ा विकराल बन रहा था। उसके नेत्र क्रोध से नाच रहे थे। उसके ओंठ काँप रहे थे, तक्षक घुटनों के बल भूमि पर गिरकर क्षमा माँगने का प्रयत्न कर रहा था। तभी उसने उसे एक लात मारी। बाद में उसने हुक्कु को कोड़े मारने का आदेश दिया। हुक्कु आगे बढ़ा, उसने अपने लम्बे कोड़े को एक बार जोर से फटकारा और फिर चीत्कार करते हुए रड्डु पर बड़ी निर्दयता से उसने छह कोड़ों का प्रहार किया। उस समय रड्डु की पीठ लहूलुहान बन गयी। वह भीषण वेदना से कराह रहा था।

उस रात्रि को जब सब सो गये थे, कृष्ण उठकर पतवार के पास बैठे भिक्रु के पास गया।

"भिक्रु, इस तक्षक को किस अपराध के लिए इतनी निर्दयता से पीटा गया ?" कृष्ण ने पूछा। भिक्रु ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ा, "उसने प्रधान के कक्ष की योग्यतापूर्वक मरम्मत नहीं की थी और इसीलिए प्रधान का क्रोध उमड़ गया था।"

"किन्तु उसे इतनी निर्दयता से पीटा ? वह कक्ष की मरम्मत इसलिए नहीं कर सका कि उस समय उसे विषम ज्वर था।"

"यह तो हमारे लिए प्रतिदिन की घटना है। जब भी प्रधान का क्रोध उमड़ता है, क्या करना चाहिए और क्या नहीं, वे इसका विवेक खो बैठते हैं। एक बार तो उन्होंने एक आदमी को समुद्र में ही फेंक दिया था," भिक्रु ने कहा।

"वह तक्षक कहाँ सोया हुआ है ? मैं उसके पास जाना चाहता हूँ,"

कृष्ण ने कहा।

भिक्षु ने नकारात्मक ढग मे अपना मस्तक घुमाया। "प्रधान ने जिसे दण्ड दिया हो, उसके पास जाने की किसी को आज्ञा नही है। उसे अकेले ही पडे रहने दिया जाता है। जो कोई इस आज्ञा का उल्लघन करता है, वह भी कठोर दण्ड का भागी होता है।"

"कुक्कुर को मेरे साथ भेजकर यह बताने के लिए कहो कि वह तक्षक कहाँ सोया हुआ है? जो कुछ भी दण्ड मिलेगा, उसे भुगतने की सामर्थ्य मैं रखता हूं," कृष्ण ने कहा।

कुक्कुर भी कृष्ण एव उद्धव को मार्ग दिखाने का साहस नही रखता था। प्रथम बडी सशक दृष्टि से उसने चारो ओर देखा। जब उसे विश्वास हो गया कि कोई नही देख रहा है तो बडी शीघ्रता से जहाँ तक्षक सोया था, कृष्ण और उद्धव को इगित कर लौट आया। रात्रि को भी हुक्कु एव हुल्लु जलयान पर सर्वत्र घूमते रहते, ताकि कोई घटना न घटे।

कृष्ण रड्डु के निकट बैठ गया। अभी भी वह वेदना से कराह रहा था। कृष्ण ने उसके कन्धे पर धीरे से हाथ रखा। रड्डु भय से खडा हो गया। उसे लगा, वही विकराल राक्षस क्या पुन यहाँ आ गया है! किन्तु चन्द्र के शीतल एव स्निग्ध प्रकाश मे उसने इन दो किशोरो की भोली सूरत देखी, और उसे महान् आश्चर्य हुआ। अपराधी को जिस दिन दण्ड मिला हो, उसी दिन उससे मिलने का साहस कौन कर सकता है?

कृष्ण ने कुछ भी नही कहा। मात्र उसको बडी सहृदयता से थपथपाया और बिना कुछ कहे ही अपनी ममतामयी बाहुओ मे उसे भर लिया। तक्षक ने इसके पूर्व कभी भी ऐसे करुणामय हस्तो के स्पर्श का अनुभव नही किया था। वह कृष्ण के विशाल वक्ष पर अपना मस्तक टेक सिसकियाँ भरने लगा। उद्धव ने बडी सावधानीपूर्वक उसकी घायल पीठ मे चिपके गये कूडे-करकट को साफ किया। किसी का भी ध्यान इस ओर न आये, इसलिए वे बिल्कुल मौन थे। जब तक कृष्ण की बाहुओ की स्नेहभरी ऊष्मा मे सतृप्त हो तक्षक निद्रा की गोद मे नही चला गया, तब तक वे वही बैठे रहे।

जब रड्डु अपनी सारी वेदना को भूल निद्रा-मग्न हो गया, कृष्ण और उद्धव अपने-अपने स्थान पर आकर सो गये।

"कृष्ण, अब हमे भी दण्ड के लिए तैयार हो जाना चाहिए," उद्धव ने

कहा।

"आपत्ति की आग में जो जल रहा हो, उसे बचाना हमारा परम कर्त्तव्य है," कृष्ण ने कहा।

८

पांचजन्य शंख

दूसरे दिन सवेरे भिक्खु ने रड्डु के घाव पर लेप किया। इसके बाद जब रड्डु काम पर गया तब से उसकी आँखें उन अपरिचित सहयात्रियों को खोज रही थीं, जिन्होंने पंचजन के दण्ड का भय पाए बिना उसे सान्त्वना दी थी। थोड़ी ही देर में कृष्ण और उद्धव के इस महानुभूतिपूर्ण कार्य की चर्चा प्रत्येक की जबान पर थी। इन लोगों का जीवन पंचजन की दया पर निर्भर था, इन नये मित्रों को पाकर उनके हृदय पुलकित हो उठे।

जहाज आगे बढ़ा। अब भी पंचजन और उसके दो भतीजे कृष्ण और उद्धव के प्रति ममता रखने का स्वांग भरते थे। राक्षस हाथ में कोड़ा लेकर अपना फर्ज अदा करते और खलासी अपना काम खूब परिश्रम से करते थे। तीसरे दिन जहाज कुशस्थली के बन्दर पर पहुँचा। पुण्यजन राक्षसों ने राजा कुकुद्मीन से यह प्रदेश जीत लिया था। पंचजन और उसके भतीजे दो सेवकों के साथ किनारे पर गये और साँझ को आवश्यक सामग्री लेकर लौटे।

दूसरे दिन एक सत्रह वर्ष के किशोर को किसी भूल के लिए पंचजन के समक्ष उपस्थित किया गया। उस समय राक्षस हुल्लु ने उसे छह कोड़े लगाये। किशोर तड़फड़ा उठा और रोना-चिल्लाना छोड़ पंचजन हँसता हुआ चल दिया।

रात पड़ने पर कृष्ण और उद्धव जहाज के निचले भाग में अकेले पड़े किशोर के पास गये और उसके मस्तक पर हाथ फेरकर कृष्ण ने उसे अपनी बाहुओं में लिया। उद्धव ने उसके घाव साफ किये। इन दो अपरिचित सहयात्रियों की इस अपूर्व सेवा को देखने के लिए खलासी एक

के बाद एक जमा होने लगे।

इस किशोर को कुछ महीनों पहले किसी बन्दरगाह से साथ में लिया गया था। आज तक किसी ने उसको ममता भरी दृष्टि से नहीं देखा था, परन्तु आज जो स्नेह कृष्ण ने उसके प्रति दिखाया उससे उसका हृदय द्रवित हो उठा। कृष्ण से चिपटकर वह नन्हे बालक की तरह रो पड़ा। जब वह निद्राधीन हो गया, तो कृष्ण को लगा कि पीछे कोई खड़ा है। किशोर का मस्तक धीरे से जमीन पर रखकर उसने पीछे की ओर देखा।

राक्षस हुक्कु हाथ मे कोड़ा लिये पीछे खड़ा था। कृष्ण ने कहा, 'उद्धव, जहाँ हो वहीं रहना। इसका सामना करना होगा।'

चन्द्र के मद्धिम प्रकाश में राक्षस ने इन दोनों को पहचाना। वह जानता था कि ये दोनों पंचजन के लाडले हैं और अन्य खलासियों की तरह उनके साथ व्यवहार नहीं किया जा सकता। फिर भी आज्ञापालन तो उसे करना ही था। अपने हाथ उन दोनों के कंधों पर रखकर वह किसी अजानी भाषा में बड़बड़ाया और उन्हें सीढ़ियों की ओर धकेलने लगा कृष्ण ने जब उद्धव को सावधान किया, तभी घायल किशोर की निद्रा टूट गयी थी। उसने देखा कि इन दोनों भाइयों को राक्षस ले जा रहा है। वह अपनी पीड़ा भी भूल गया और धीरे-धीरे वृद्ध नाविक के पास गया। भिक्षु यह देखने के लिए कि जहाज ठीक मार्ग पर जा रहा है या नहीं, आकाश के तारागणों को एकटक देख रहा था।

फटी आँखें और घुँघराले बालों वाला राक्षस हुक्कु कृष्ण और उद्धव को वहाँ ले गया जहाँ माल रखा जाता था और जहाँ एक काष्ठपिंजर रखा था। उन्हें पिंजरे में बन्द कर उसने ऊपर से ताला जड़ दिया। वह जगह अत्यन्त अस्वच्छ और दुर्गन्धपूर्ण थी। उद्धव तो बौखला गया। कुछ देर बाद दोनों भाइयों ने सोने का प्रयास किया। एकाएक कृष्ण ने किसी के श्वासोच्छ्वास की ध्वनि सुनी और वह सावधान हो गया।

कृष्ण को भिक्षु की कोमल आवाज सुनाई पड़ी, "तुम यहाँ हो?"

"हाँ, क्या बात है?" कृष्ण ने पूछा।

"स्वामी ने मुझे जहाज का मार्ग बदलने की आज्ञा दी है। अब हम वैवस्वतपुर नहीं जा रहे हैं," भिक्षु ने कहा।

"तो हम कहाँ जा रहे हैं?"

"खूब दूर—शोणितपुर!"

कृष्ण को अब ख्याल आया कि पिछले दिन जहाज मे इतनी अधिक सामग्री क्यो भरी गयी थी।

"उसका क्या इरादा मालूम होता है ?" कृष्ण ने पूछा।

"शायद वह अन्य किसी प्रदेश मे जाकर तुम लोगो को और भी अधिक कीमत मे बेचना चाहता है," भिक्षु ने कहा।

"भिक्षु, हमे तो वैवस्वतपुर ही जाना है। वहाँ से पुनर्दत्त को वापस लाना है।"

"परन्तु वहाँ जाना अब सम्भव नही—स्वामी आज्ञा ही नही देगे।"

"तो हमे उसकी आज्ञा के बिना भी वैवस्वतपुर जाना होगा। क्या यह ताला तुम खोल सकते हो ?"

"इसकी चाभी हुक्कु के पास है" भिक्षु ने कहा।

"क्या यह पिजरा तोडा जा सकता है ?" कृष्ण ने पूछा।

"यदि पिजरा तोडा गया, तो पचजन मौत की सजा देगा। आगे भी उसने ऐसा ही किया है," भिक्षु ने कहा।

"यदि मै काठ की पट्टियाँ तोड डालूँ तो, क्या रड्डु बढई सुबह होने से पहले उन्हे फिर ज्यो-की-त्यो बना सकता है ?" कृष्ण ने पूछा।

"मै पूछ आता हूँ," भिक्षु ने कहा और चुपचाप चला गया।

"वह उन्हे ठीक कर सके या नही, पर हमे तो यह पिजरा तोडकर बाहर निकलना ही है," कृष्ण ने कहा।

कृष्ण और उद्धव ने फिर कुछ देर आपस मे सलाह की और पिंजरे का सभी ओर से निरीक्षण करने पर एक ओर की लकडी की पट्टी उन्हे जब कुछ ढीली मालूम दी, तो दोनो ने जोर लगाकर उसे तोड दिया और बाहर निकल गये। जब वे ऊपर जा रहे थे तो रास्ते मे रड्डु बढई उन्हे सामने आता हुआ दिखायी पडा।

सवेरा होने पर राक्षस हुक्कु जब बाहर निकला तो, यह देखकर उसके आश्चर्य की सीमा नही रही कि जिन्हे रात मे उसने पिंजरे मे बन्द कर दिया था, वे दोनो भाई कृष्ण और उद्धव सूर्य को अर्घ्य दे रहे है। जल्दी से वह नीचे गया और पिंजरे को जब कही से टूटा-फूटा नही पाया, तब तो उसके हाथ के तोते उड गये। उसके मन मे हवा मे उडती और सागर पर चलती आत्माओ का भय समा गया। ये आत्माएँ क्रोधित होने पर घर

जला डालती है, गाँव उजाड देती है, पशुओं का नाश करती है, मनुष्यों को रोगी बना देती है। पता नहीं ये दो बालक कहाँ से जहाज में आ टपके! पिंजरा बिना तोडे वे उसमें से बाहर कैसे निकल गये ? भय और आदर की विचित्र भावनाओं से हुक्कु उद्वेलित हो उठा। ये लडके कहीं प्रेतात्माओं से तो प्रेरित नहीं ? वह कॉप उठा। अपने इष्टदेव का स्मरण करते हुए वह पचजन के कक्ष में गया और उसे सारा हाल कहा। फिर सारी बात बताने हुल्लु को वह एकान्त में ले गया।

जब हाथ में कोडे लेकर वे ऊपर आये, तब उन्होंने देखा कि पचजन कृष्ण के सामने खडा था। उसकी आँखें गुस्से से जल रही थी।

"कल रात तुम कहाँ थे ?" उसने पूछा।

"कौन, हम ?" कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा, "हुक्कु ने सब बताया होगा। कल हम सजा पाये हुए किशोर की सेवा-सुश्रूषा कर रहे थे।"

"यह हिम्मत तुमने कैसे की ?" पचजन गरज उठा, "यह तुम्हारा काम नहीं था।"

"यह हमारा काम नहीं, धर्म था। आपने किसी को कष्ट पहुँचाया—हमने उसे कम करने का प्रयत्न किया," कृष्ण ने इस प्रकार कहा, मानो बालक को समझा रहा हो।

"क्या तुम्हें मेरी आज्ञाएँ मालूम नहीं ? जहाज पर ऐसा कुछ नहीं हो सकता," पचजन ने शंका का लाभ देकर दोनों भाइयों को छोडने का प्रयत्न किया।

"आपकी आज्ञा क्या है, यह हम जानते थे। परन्तु हमारा धर्म तो उस असहाय बालक की मदद करने का था," कृष्ण ने निर्भीक होकर कहा।

'तुम्हारी यह हिम्मत ! जानवरो, जानते हो, मैं इस जहाज का मालिक हूँ ! और हाँ, यह तो मैं भूल ही गया हुक्कु ने मुझे सवेरे बताया कि तुम्हें पिंजरे में बन्द कर दिया गया था, सच है न ?"

"हाँ," कृष्ण ने कहा।

"और तुमने पिंजरा तोड डाला, क्यों ?"

उत्तर में कृष्ण केवल खिलखिला पडा। पचजन के गुस्से का पार नहीं था।

"तुम पिंजरे में से बाहर कैसे आये ?" पचजन ने स्वस्थ होने का प्रयास करते हुए कहा। उसके क्रोध भरे स्वर से आकर्षित हो उसके भतीजे,

हुक्कु और हुल्लु तथा और भी कई खलासी वहाँ आ पहुँचे। इन सबके सामने उसकी आज्ञा का अनादर न हो इसलिए वह चिल्लाया, "हुक्कु, यहाँ आओ!"

हुक्कु ने बारी-बारी से अपने स्वामी, कृष्ण और उद्धव की ओर देखा, फिर हिचकते-हिचकते आगे बढ़ा। अचानक पवन डोल उठा, जहाज हिला, सभी को अपना सतुलन कायम रखना मुश्किल हो गया। हुक्कु ने आँखें फाड़े देखा—तूफान उठने के लक्षण दिखाई दे रहे थे। वह मन-ही-मन काँप उठा। वह जानता था कि जब प्रेतात्माएं कुपित होती है, तब ऐसा ही कुछ होता है।

कृष्ण इस राक्षस के सामने मन्द-मन्द मुस्कराया।

"हुक्कु, कल रात तुमने इन लड़कों को अच्छी तरह बन्द किया था?" पचजन ने पूछा।

"हाँ, महाराज!" राक्षस ने प्रणाम कर उत्तर दिया।

"तू ऊँघ रहा था या जाग रहा था?" पचजन बड़बड़ाया।

"अच्छी तरह जाग रहा था, महाराज! मैंने अपने हाथ से ताला लगाया," राक्षस ने कहा। पर ऐसा मालूम होता था, मानो स्वय अपने शब्दों पर उसे विश्वास नहीं हो रहा था।

"तो ये ताला तोड़ कर बाहर निकले?"

हुक्कु नतमस्तक हो उठा। उसके होंठ काँप रहे थे।

"बोल, क्या वे पिजरा तोड़ कर बाहर निकले?"

हुक्कु ने मन-ही-मन अपने इष्टदेव को मनाया और काँपती हुई आवाज में रुकते-रुकते कहा, "स्वामी, पिजरा बिलकुल बन्द था, कही से भी टूटा नहीं था।"

"क्या?" पचजन ने आश्चर्य से पूछा, फिर अपने भतीजे की ओर मुड़कर बोला, "जा, देख कि हुक्कु कह रहा है, वह सच है या नहीं?"

सभी मौन थे। पचजन आँखें फाड़े सबको देख रहा था।

पचजन का भतीजा वापस आया। उसने कहा, "चाचा, पिजरा एकदम बन्द है—ताला भी ज्यों-का त्यों जड़ा है।"

पचजन ने कृष्ण और उद्धव के सामने शकापूर्ण दृष्टि से देखा और पूछा, "तुम लोग बाहर कैसे निकले?"

"आप ही ढूंढ निकालिए," कृष्ण ने मुस्कराकर कहा।

पचजन ने स्थिति को सभालने की गरज से कहा, 'अच्छा, जो हुआ सो हुआ। इस बार छोड़े देता हूं, परन्तु अब यदि दुबारा किसी दण्ड पाए व्यक्ति के पास गये तो तुम्हारी खैर नहीं।"

"आप जिस किसी को कोडे लगवायेंगे उसकी सेवा-सुश्रूषा हम अवश्य करेंगे," कृष्ण ने कहा।

"तुम ऐसा नहीं कर सकते!" पचजन ने गर्जना की।

"हम अवश्य करेंगे," कृष्ण ने दृढता से उत्तर दिया।

अपनी आज्ञा का इस प्रकार खुला निरादर होते देखकर उसने कृष्ण को दण्डित करने का निश्चय किया। उसने चिल्लाकर कहा, 'नहीं, तुम ऐसा नही कर सकते। हुक्कु, इस छोकरे को चार कोडे लगा!"

हुक्कु हिचकिचाया। उसके चेहरे पर भय की रेखाएं स्पष्ट झलक रही थी। कृष्ण की ओर वह शका और भय से देख रहा था। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। सभी आश्चर्यचकित थे।

"चल हुक्कु, देरी क्या है? लगा कोडे!"

भिक्रु ने अचानक बीच मे पडकर पचजन के पैर पकड लिए और कृष्ण पर दया दिखाने के लिए प्रार्थना करने लगा।

"बकवास बन्द कर, बुड्ढे!" पचजन ने वृद्ध नाविक को मारने के लिए हाथ उठाया, फिर अपना विचार बदल दिया और हुक्कु को अपनी आज्ञा का पालन करने का सकेत किया। कृष्ण इस प्रकार प्रसन्नमुख और स्वस्थ खडा था, मानो कोई तमाशा देख रहा हो। हुक्कु कृष्ण की ओर आगे बढा, परन्तु उसके हाथ काँप रहे थे और पैर लडखडा रहे थे। पच-जन अधीर हो उठा। उसने हुक्कु के हाथ में से कोडा छीन लिया।

"तू इसी भाग का है नादान छोकरे!" उसने कहा।

वहाँ उपस्थित सभी लोग साँस रोककर देखने लगे कि अब क्या होना है। हृदय से वे सभी कृष्ण को चाहने लगे थे। पचजन को पशुओं को हाँकने की चाबुक जैसे लबे कोडे का उपयोग करने की आदत नही थी। कृष्ण की पीठ पर ज्यो ही कोडा पडा कि अचानक आगे बढकर कृष्ण ने कोडे को पकड लिया और एक झटका देकर पचजन के हाथ मे उसे छीन लिया। पशुओं को हाँकने की चाबुक का प्रयोग करने का वह अभ्यस्त था और यही कला इस समय उसके काम आयी। उसने पचजन पर उसी कोडे का प्रहार किया। अदम्य कहे जानेवाले नायक पर कोडे पडते देख

कर सभी के मुख से चीख निकल पडी ।

हुल्लु अपने स्वामी की सहायता के लिए आगे बढा, परन्तु हुक्कु इतना घबडा गया था कि उसने अपने भाई को पीछे खींच लिया । लम्बा कोडा पचजन की स्थूल देह पर इस तेजी से पड रहा था कि उससे रक्त बहने लगा । भारी वेदना से पचजन चीखने लगा और मदद के लिए पुकार उठा । हुक्कु और हुल्लु यथावत् खडे तमाशा देख रहे थे । पचजन ने कई बार उन्हे मार डालने की धमकी दी, परन्तु उसकी यह दशा देखकर वे बहुत घबडा गये थे । पचजन के भतीजे तो वहाँ से भागकर अपने-अपने कक्ष मे छिप गये थे । जब तक पचजन बेहोश होकर गिर न पडा तब तक कृष्ण उसे लगातार कोडे मारता गया । बाद मे हुक्कु को उसने कोडा वापस दे दिया । उसके ओठ पर विजेता का स्मित था ।

कृष्ण ने जिस प्रकार कोडे का उपयोग किया, उसे देखकर दोनो राक्षस दग रह गये । जीवन भर कोडे का उपयोग करने के बाद भी वे यह कल्पना तक नही कर सकते थे कि कोडा इस सफाई से काम मे लाया जा सकता है । कृष्ण को अब वे एक और ही भाव से देखने लगे थे । हुक्कु को तो यह विश्वास ही हो गया था कि कृष्ण के पास कोई चामत्कारिक शक्ति है । पचजन बेहोश पडा था । उद्धव की ओर मुडकर कृष्ण ने कहा, "उद्धव, पच-जन को उसके कक्ष मे ले जा—मै आता हू ।" और हुक्कु को भी मदद करने के लिए सकेत किया ।

"भिक्कु, जहाज की दिशा बदल दो, अब हम वैवस्वतपुर जा रहे है," कृष्ण ने आज्ञा दी ।

खलासियो को बुलाने का पचजन का शख भूमि पर पडा था । कृष्ण ने शखनाद कर सभी को बुलाया और जो कुछ हुआ उसकी सूचना दी । शख की मधुर सगीतमय ध्वनि से कृष्ण का हृदय प्रसन्न हो उठा । "उद्धव, यह शख मै रखूँगा । ऐसा सुन्दर और मधुर ध्वनिवाला शख मैने और कही नही देखा । मै इसका नाम पाचजन्य रखूँगा—यह पचजन का उपहार है," उसने उद्धव से कहा ।

फिर कृष्ण पचजन के कक्ष मे गया और उद्धव की सहायता से पचजन के घाव साफ किये, मरहमपट्टी की । पचजन ने आँखे खोली । उसकी दृष्टि कृष्ण पर पडते ही उसने गदी बकवास करना प्रारम्भ किया । कृष्ण ने उसे सान्त्वना देने का प्रयास किया, परन्तु पचजन तो जो मुँह मे आये,

वही बक रहा था। उद्धव ने पंचजन के भतीजों को ढूंढ निकाला और उन्हें अपने चाचा की सेवा-सुश्रूषा का काम सौंपा।

जहाज निर्विघ्न आगे बढ़ रहा था। सभी खलासी प्रसन्नचित्त थे। कृष्ण और उद्धव पहले की भाँति ही काम पर लग गये। उस शाम रोज की तरह सादा भोजन नहीं हुआ, बल्कि मुक्ति-उत्सव मनाने के लिए विविध व्यंजनों की व्यवस्था की गयी। रात पड़ी। नाविक, रात का चौकीदार तथा दोनों राक्षस, सभी निद्रावश हो गये। नाविक का पौत्र कृष्ण और उद्धव के साथ ही सोया। मध्य-रात्रि के बाद कृष्ण को लगा कि कोई उसके नजदीक आ रहा है। उसने खड़े होकर अन्धकार में दृष्टि दौड़ायी। कोई श्याम आकृति उसकी ओर आ रही थी। उसके हाथ में खुली कटार थी। कृष्ण ने खड़े होकर पंचजन का कटारवाला हाथ पकड़ लिया। इतने में पीछे से एक और श्याम विराट आकृति आयी और उसने पंचजन को उठाकर जहाज पर से नीचे फेंक दिया। सागर में पंचजन की देह को डूबती छोड़कर जहाज आगे बढ़ता गया।

९

वैवस्वतपुरी

[सांदीपनि के पुत्र को कृष्ण वैवस्वत-सूर्य के पुत्र यम पर विजय प्राप्त कर वैवस्वतपुरी से ले आये थे, ऐसी एक कथा है। वैवस्वतपुरी का दूसरा अर्थ प्रकाश का नगर भी होता है। बेबीलोन के पास 'लरसा' नामक एक नगर था, जिसका अर्थ भी 'सूर्य का नगर' होता है।

हरिवंश के अनुसार वैवस्वतपुरी का राजा यम मृत्यु का देवता नहीं, परन्तु जीवित व्यक्ति होना चाहिए। यदि मेरी मान्यता सच हो, तो वैवस्वतपुरी सौराष्ट्र के समुद्र के पार किसी द्वीप पर होगी। सिकन्दर के समय तक सिन्ध में हैदराबाद प्रदेश को पाताल कहा जाता था। अरब सागर के एक द्वीप पर नागराज धर्मवर्मा का शासन था और उन्होंने अपनी पुत्री कृष्ण

के किमी पूर्वज को व्याही थी। (हरिवंश विष्णु पर्व-३८-२९-३४ यादवो की शूर-शाखा के स्थापक शूर का विवाह नागराज आर्यक की पुत्री से हुआ था, जिससे शूर को दस पुत्र प्राप्त हुए। श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव इन सब मे ज्येष्ठ थे उद्धव के पिता देवभाग भी शूर के पुत्र थे। पॉच पुत्रियो मे पाडवो की माता पृथा सबमे बडी थी और चेदी की रानी तथा शिशुपाल की माता श्रुतश्रवा चौथी थी। (महाभारत आदि पव, अध्याय १२८, श्लोक ६८, भागवत ९-२४, हरिवंश १-१३४)

आर्यो के भारत मे आने से पहले, अर्थात् ईसा के चार हजार वर्ष पूर्व, एशिया माइनर से जापान तक जनता देवी-पूजक थी। हडप्पा संस्कृति मे भी देवी-पूजा पायी जाती है और कई विद्वानो का मत है कि देवी को मॉ के नाम से पुकारा जाता था। ऐसा माना जाता है कि इसी शब्द में से 'उमा' और 'अम्बा' शब्द उद्भूत है।]

पुण्यजन जहाज का रूप ही अब परिवर्तित हो चुका था। जहाज मे प्रचुर अन्न-सामग्री थी और सभी को अब वह यथेष्ट प्रमाण मे मिलती थी। मूल्यवान पदार्थ, मसाले इत्यादि भी नये लाये गये। अब तक नग्नता को ढकने के लिए केवल चिथडे पहनने वाले नाविको को नये वस्त्र दिये गये।

कृष्ण को जहाज मे छुपा शस्त्र-भण्डार भी मिल गया, जिसे उद्धव को सौप दिया गया। पचजन के भतीजो, कुक्कुर, रड्डु, तक्षक तथा अन्य दो युवको को शस्त्र दिये गये और कृष्ण उन्हे शस्त्रविद्या की शिक्षा देने लगे। पचजन के भतीजे जो भयभीत हो उठे थे, उन्हे कृष्ण ने सान्त्वना ही नही दी, बल्कि यह भी कहा कि आप इस जहाज के मालिक है। नाविक भिक्षु को जहाज का सचालन-भार सौंपा गया। हुक्कु और हुल्लु अब भी जहाज की रखवाली करते थे, परन्तु अब उनके हाथ मे कोडे न थे।

कृष्ण तथा उद्धव ने भी सुन्दर वस्त्रालकार धारण किये और अपने उपयोग के लिए तॉबे की दो सुन्दर तलवारे पसन्द की। अब वे वैवस्वतपुरी के पास आ पहुँचे थे। भिक्षु ने कृष्ण को नगर के बारे मे वह सब बताया, जो वह जानता था। वैवस्वतपुरी अथवा सूर्य का नगर पाताल के पास नागलोक मे स्थित थी। वहॉ नाग-कन्याओ का राज्य था। ये नागकन्याएँ

पुरुषों के समान रहती थीं। वहाँ की रानी माँ भगवती का अवतार मानी जाती थी और उसके पास चामत्कारिक शक्तियाँ थीं। यद्यपि उसका पति राजा के नाम से पुकारा जाता था, परन्तु वास्तव में वह था रानी का दास ही। रानी ने पुनर्दत्त को भी किसी एक राजकुमारी के साथ विवाह करने के लिए मोटी कीमत देकर खरीद लिया था।

कई दिनों के बाद वे उस खाड़ी पर पहुँचे जहाँ पर नगर स्थित था। अस्तमान रवि के प्रकाश में पत्थर के परकोटेवाला यह नगर सोने से मढ़ा हुआ दीख पड़ रहा था। जल में असंख्य छोटी-छोटी नावें तैर रही थीं, जिनका उपयोग मच्छीमार करते थे। रस्सियों से बँधी एक छोटी जेट्टी भी थी। जेट्टी के सामने विशाल मैदान था और वहाँ से किले पर जानेवाली सीढ़ियाँ शुरू होती थीं।

जहाज जब किले के समीप आया, तो इन सीढ़ियों पर एक बड़ा समूह दिखाई पड़ा। कृष्ण ने उद्धव, रहुगु तथा उस नगर की भाषा जाननेवाले एक पुण्यजन किशोर को नगर में जाकर वहाँ उतरने के लिए रानी की आज्ञा ले आने के लिए भेजा। राज्याधीशों के लिए कुछ सौगात लेकर वे नौका में बैठे।

दूसरे दिन सुबह, किले के द्वार तक पहुँचती एक विशाल सोपान श्रेणी पर कृष्ण का स्वागत करने के लिए एक विशिष्ट समूह खड़ा था। उद्धव एक प्रौढ़ स्त्री के साथ राजनौका में बैठकर आया। इस स्त्री ने केवल सुवर्ण का कमरबन्द बाँध रखा था। उसके मुकुट पर सुवर्ण के फणिधर का चिह्न था। भिक्षु ने कहा, "यह स्त्री रानी द्वारा नियुक्त उच्च अधिकारी है। इसकी सूचना इस चिह्न से मिलती है।"

कृष्ण को इस पुरुषोचित नागकन्या को देखकर सहज ही आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि भिक्षु ने इन लोगों के विचित्र आचारों की सारी बात पहले ही उन्हें बता दी थी। यहाँ पर स्त्रियाँ पुरुषों पर शासन करती थीं। यहाँ की रानी माँ को अपनी प्रजा के जीवन और मरण का अधिकार था। शासन का उत्तराधिकार माँ से लड़की को मिलता था। रानी की आज्ञा का पालन करने के लिए सशक्त नागकन्याएँ सदा हाजिर रहती थीं। इसलिए राजा यदि रानी की आज्ञा का अनादर करता, तो शायद उसे अपनी जान भी गँवानी पड़ती।

"कृष्ण, यह बड़ी भयंकर जगह है। रानी ने तुम्हारे आगमन की

भविष्यवाणी थोड़े दिन पहले ही कर दी थी," उद्धव ने कहा।

"सच!" कृष्ण को आश्चर्य हुआ।

"अपने ऋषियों की तरह रानी भी भविष्यदर्शन कर सकती है," उद्धव ने कहा, "परन्तु अब देखना है कि आगे क्या होता है। राजकुमारी तुम्हारा स्वागत करने के लिए आयी है। यहाँ राजकुमारी की ही महिमा है, उसके पति की नहीं। राजकुमारी को देवी कहकर ही पुकारना।"

अधिकारियों का संकेत पाकर कृष्ण और उद्धव राजनौका में बैठे। इस नौका को चार नाविक चला रहे थे। पीछे की दो नावों में रानी को देने के लिए सौगातें थीं।

देवी, देखते ही नजर में बस जाय, ऐसी सुन्दर थी। लगभग २२ वर्ष की इस राजकुमारी के पास उसकी छोटी बहन खड़ी थी। वह जरा पतली और देवी से भी अधिक सुन्दर थी। उसके आसपास वैसी ही सुन्दर नागकन्याएँ खड़ी थीं। इन सबकी पोशाक, कृष्ण को ले आने के लिए जो नागकन्या आयी थी उसके जैसी ही थी। केवल देवी तथा राजकुमारी के कमरबन्द और मस्तक पर के फणिधर में मूल्यवान रत्न जड़े थे। इन रत्नों से सूर्य की किरणें तरह-तरह रंग प्रतिबिम्बित करती थीं।

राजकुमारियों के दोनों ओर भाले से लैस नागकन्याएं खड़ी थीं। देवी के पीछे उसका पति खड़ा था। उसकी पोशाक भी राजकुमारी जैसी ही थी। मात्र मस्तक पर फणिधर वाला दैवी चिह्न न था। उसकी कमर से सोने के म्यान में कटार लटक रही थी। कुछ दूर पर सशस्त्र पुरुष भीड़ को आगे बढ़ने से रोक रहे थे। कृष्ण ने देवी को प्रणाम किया। देवी ने अपने पति को आगे के लिए संकेत किया। वह नम्रतापूर्वक आगे आया और देवी को नमस्कार कर उसने देवी के स्वागत-वाक्यों का अनुवाद कर कृष्ण को सुनाया। कृष्ण आश्चर्य में पड़ गये। मथुरा में जिस प्रकार आर्य बोलते थे, उसी प्रकार की देवभाषा शुद्ध उच्चारणसहित वह बोल रहा था।

कृष्ण ने इस स्वागत का विनयपूर्वक उत्तर दिया और कहा, "देवी, मैं शूरों के नायक वसुदेव का पुत्र और गुरुओं में श्रेष्ठ सांदीपनि का शिष्य आपको प्रणाम करता हूँ।"

कृष्ण ने सांदीपनि शब्द पर जोर दिया और देवी के पति के चेहरे की ओर देखा। कृष्ण के मुख से सांदीपनि नाम सुनकर उसका चेहरा

फीका पड गया। आँखो मे भय की रेखाएँ खिंच आयी। वह हिचकिचाया और फिर कृष्ण ने जो कुछ कहा, उसे देवी को कह सुनाया। कृष्ण को विश्वास हो गया कि यह देवी का पति और कोई नहीं, गुरु सांदीपनि का पुत्र पुनर्दत्त ही है। इस प्रकार भिक्षु का संशय सच्चा साबित हुआ।

देवी ने राजोचित गौरव से उत्तर दिया, 'वासुदेव, इस वैवस्वतपुरी मे माँ की ओर से मै तुम्हारा हार्दिक स्वागत करती हूँ।" उसकी आँखे कृष्ण पर स्थिर हो गयी। छोटी राजकुमारी की आँखे भी कृष्ण पर गडी हुई थी। कृष्ण के होंठो पर चमक रहा हास्य दोनो के हृदय पर समान रूप से प्रभावकारी था। दोनो ने मुस्करा कर कृष्ण की ओर देखा। छोटी राजकुमारी की मुस्कान उमगभरी और प्रसन्न थी, जबकि बड़ी की मुस्कान एक मानिनी की मुस्कान थी। उसे देवी पद प्राप्त हो चुका था।

देवी ने फिर संकेत किया, और उसका पति पीछे हट गया। छोटी राजकुमारी तब आगे आ गयी। वह कृष्ण को पालकी के पास ले गयी और कृष्ण के साथ ही पालकी मे बैठी। देवी और उसका पति दूसरी पालकी मे बैठे। चार मजबूत आदमी पालकी को उठाये हुए थे। पालकी मे बैठ-कर छोटी राजकुमारी मुस्कान द्वारा, संकेतो द्वारा और कृष्ण की समझ मे न आये, ऐसी भाषा द्वारा यह बात समझा रही थी कि वह कृष्ण को अपना मित्र मानती है। कृष्ण सुन्दरता के पूजक थे। इस नागकन्या के सुगठित अंग, सुदृढ स्तन-मण्डल, सुर्ख गाल और स्वच्छन्द मुस्कान की तरफ वे आकर्षित हुए, परन्तु बिल्कुल अजान अतिथि को रिझाने के उसके प्रयत्न कृष्ण का सहज ही भाए नहीं। नागभूमि के रीति-रिवाजो की उन्हे खबर न था और आर्य मान्यताओ के अनुसार नागकन्या को परखना उन्हे उचित नही जान पडा।

किले के बीचोबीच वहाँ के विशाल महल के आगे अब वे आ पहुँचे। कृष्ण को उसके लिए सुरक्षित कक्ष मे ले जाया गया। वहाँ पर पुण्यजन जहाज वाले कृष्ण के आदमी और दो स्थानीय अधिकारी कृष्ण की सेवा मे उपस्थित थे। छोटी राजकुमारी ने कृष्ण से विदा लेते समय कहा कि वह फिर आयेगी। उसके शब्दो का अनुवाद वहाँ पर उपस्थित पुण्यजन किशोर ने तुरन्त कृष्ण को कर सुनाया।

कृष्ण और उद्धव अब अकेले थे। कृष्ण ने कहा, उद्धव, पुनर्दत्त मिला तो सही, परन्तु यह नागकन्या उसे जाने देगी, ऐसा नही दीखता।

पुनर्दत्त का तो हमें अपहरण ही करना होगा।"

"हम लोग भारी मुश्किल में पड़ गये हैं," उद्धव ने कहा।

"ऐसे विचित्र देश की तो मुझे कल्पना ही नहीं थी। परन्तु मैं सोचता हूं कि हम लोग यहाँ से भाग जाने का प्रबन्ध कर सकेंगे।"

कुछ देर बाद जहाज पर कृष्ण को लेने जो नागकन्या आयी थी, उसके साथ राजकुमार ने अन्दर प्रवेश किया। वह अत्यन्त अस्वस्थ लग रहा था। परस्पर अभिवादन के बाद बातचीत किस प्रकार शुरू की जाये, यह उसकी समझ में नहीं आया। वह ज्यों-का त्यों खड़ा रहा।

"पुनर्दत्त, तुम्हें देखकर मुझे वास्तव में बहुत आनन्द हुआ," कृष्ण ने कहा। अपना मूल नाम सुनकर पुनर्दत्त फफक पड़ा। कृष्ण ने फिर कहा, "गुरुदेव ने तुम्हें आशीष भेजा है। वे तुम्हें कभी नहीं भूले—एक क्षण के लिए भी नहीं!"

"आपका यहाँ आना ठीक नहीं हुआ," राजकुमार ने कहा और दरवाजे के पास खड़ी प्रहरी नागकन्या की ओर संकेत करते हुए कहा, "यह स्त्री हमारी भाषा नहीं जानती, परन्तु हम पर कड़ी नजर रखती है।"

"तुम क्या यहाँ बन्दी हो? मैं तो समझता था कि तुम देवी के पति हो और कभी इस देश के राजा बनोगे।"

"हाँ, यदि माँ के देहत्याग तक मैं जीवित रहा तो। पर सच कहूँ तो मुझे तुम्हारा यहाँ आना अच्छा नहीं लगा। इससे हम सब पर मुसीबत आ सकती है।"

"क्यों? मैं तो मात्र तुम्हें गुरुदेव के पास वापस ले जाने के लिए आया हूँ। गुरुदेव तुम्हें बहुत चाहते हैं।"

"यदि वे मुझे मृत मान लेते, तो अधिक अच्छा था," राजकुमार ने कहा, "अब तक तो मैं इस विचार से ही सन्तुष्ट था कि उन्होंने मेरी आशा छोड़ दी होगी। मैं उनके पास वापस जाने की स्थिति में नहीं हूं, और यदि जा सकूँ, तो भी मैं नहीं जाना चाहूँगा।"

"क्यों, क्या हो गया तुम्हें?" कृष्ण ने चिन्तित स्वर में पूछा। क्या तुम अपनी पवित्रभूमि को भूल गये?"

"वासुदेव, मैं यहाँ एक बरस से हूँ और यहाँ जिस प्रकार का जीवन बिता रहा हूँ, उसके बाद अपने पिता के आचार-नियमवाले जीवन में फिर जाने की मुझे तनिक भी इच्छा नहीं। जब मैं यहाँ आया ही था, तब

उदास रहता था, परन्तु अब मैं इस जीवन का दास हो गया हूँ," पुनर्दत्त ने सहज ही कचोटनेवाले स्वर में कहा। "मैं यहाँ सुख और विलास में रहता हूं। मेरे पास सत्ता है। केवल नारिका ही जैसा सुख दे सकती है, वैसा सुख मुझे प्राप्त है। तुम हमारे देश की नम्र और संयमित स्त्रियों के बीच रहे हो। यहाँ तो नागकन्या और वह भी देवी नागकन्या जिस आनन्द और उल्लास की प्रतीति करा सकती है, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते

पुनर्दत्त के इन शब्दों से कृष्ण असमंजस में पड़ गये। "पुनर्दत्त, तुम्हें क्या हो गया है? तपस् का जीवन बिताने की उदात्त वृत्ति का ही क्या तुमने परित्याग कर दिया? हमारे प्रतापी पूर्वजों के धर्म का तुम्हें लेश-मात्र भी मोह नहीं? केवल स्वाद, विलासी जीवन और इन्द्रियभोगों में ही तुम संतुष्ट हो?"

कृष्ण क्षण भर रुके और करुणा से पूर्ण आंखों से पुनर्दत्त की ओर देखा, फिर स्नेह भरे स्वर में धीरे से बोले, "पुनर्दत्त, अच्छा हुआ कि तुम्हें इस आसुरी जीवन से मुक्ति दिलाने के लिए देवों ने मुझे अतिशीघ्र यहाँ भेजा। यहाँ प्रत्येक क्षण तुम अपने पद, सत्ता, विलास और शायद जीवन भी खो देने के भय से चिन्तित रहते हो। फिर भी तुम्हें गुरुदेव के पास लौटने और ऋषियों जैसा जीवन बिताने में भय लगता है! तुम्हारा यहाँ तक पतन हो चुका?"

पुनर्दत्त ने अपनी आंखें नीचे झुका लीं। कृष्ण के प्रेम का उसके पास कोई उत्तर न था। फिर उसने कहा, "यह सही है कि वैवस्वतपुरी को न छोड़ने का प्रयास कर अपनी जान को जोखम में डालने का मेरा लेशमात्र भी विचार नहीं। यहाँ पर प्राप्त भोग-विलासों को छोड़ने को मेरा दिल भी नहीं चाहता। प्रारम्भ में मुझे, सान्दीपनि के पुत्र को, यह जीवन श्वान जैसा लगता था, परन्तु फिर मेरी वृत्तियाँ भी श्वान जैसी हो गयी। अब मैं इसका अभ्यस्त हो गया हूँ। किसी और प्रकार के जीवन को स्वीकार करने की मेरी वृत्ति ही मारी गयी।"

"पुनर्दत्त, इस प्रकार के भय और कुटिलता से पूर्ण, इन्द्रिय भोगों में लिप्त जीवन बिताते हुए तुम्हारी दशा पालतू पशुओं से भी बदतर हो गयी है, क्या तुम्हें स्वयं ऐसा नहीं लगता?" कृष्ण ने उदास होकर पूछा।

"तुम जो कहते हो, वह ठीक है। पर यह भी सही है कि मैं कीचड

मे सना हूँ, और अब यह मेरी प्रकृति बन गयी है।"

"नागकन्या तुम्हे जो आनन्द देती है, उसके लिए क्या तुम अपने पिता, अपने भगवान् को छोड दोगे ? तुम्हारे पिता एकान्त मे केवल तुम्हारी ही चिन्ता मे शोकातुर रहते है। अपने पिता की ओर, धर्म की शिक्षा देनेवाले पूर्वजो की ओर क्या तुम्हारा यही कर्त्तव्य है ? जब मनुष्य अपने पिता के प्रति आदर गँवा बैठता है, तो वह पशु तुल्य बन जाता है।"

पुनर्दत्त ने फिर मस्तक नीचा कर लिया और हाथो मे अपनी आँखे मूँद ली। "मै यह भूमि छोड सकने मे असमर्थ हूँ," उसने आर्द्र स्वर मे कहा। "अब और कुछ सोचने का कोई अर्थ ही नही है। इसलिए इस जीवन को यदि छोडना ही पडे, तब भी मै उसे छोड नही सकता।"

"क्यो नही !" कृष्ण ने पूछा। "यदि तुम बन्दी हो, तो तुम्हे मेरी बात अधिक ध्यान से सुननी चाहिए। मै तुम्हे मुक्ति दिलाऊँगा।"

"हाँ, एक प्रकार मे मै बन्दी ही हूं। इसभूमि मे देवी पद प्राप्त राजकुमारी के पति को या तो मृत्यु का वरण करना होता है, अथवा राज्य-पद का। वह अपनी प्रियतमा के प्रति बेवफा नही बन सकता। वह उसे छोड नही सकता। यदि वह ऐसा प्रयत्न करे, तो उसको एकमात्र सजा मौत है। माँ की यही आज्ञा है।" सादीपनि के पुत्र ने उदास स्वर मे कहा।

"तुम देवी के पति किस प्रकार बने !" कृष्ण ने पूछा।

"वासुदेव ! यह भूमि विचित्र है। यहाँ की माँ के पास चामत्कारिक शक्तियाँ है—जैसी कि हमारे यहाँ असुरो के पास थी। अपनी पुत्री के लिए सम्भावित पति के आगमन के बारे मे वह पहले मे ही जान जाती है। शायद अपनी रहस्यमयी शक्तियो द्वारा वह ऐसे युवको को इस किनारे की ओर आकर्षित करती है। उसे लेश मात्र भी शका नही कि तुम भी उसकी शक्तियो द्वारा आकर्षित होकर यहाँ आये हो।"

"पर मैं तो यहाँ अपनी मर्जी से आया हूँ," कृष्ण ने कहा।

"कौन जाने ? लेकिन मै अपनी ही बात करता हूँ। पुण्यजन राक्षस मुझे यहाँ ले आये। यहाँ पर माँ ने मेरा खूब प्रेम से स्वागत किया और फिर वर-उत्सव मनाया गया।"

"वर-उत्सव ! यह क्या है ?" कृष्ण ने पूछा।

"यह इस नगर का सबसे बडा और सबसे अधिक उत्तेजक महोत्सव है

इस महोत्सव में मुझे राजकुमारी के उस समय के उसके पति के साथ लड़ना पड़ा। जब मैंने उसके पति की हत्या कर डाली, तभी राजकुमारी के साथ मेरा विवाह हुआ। वास्तव में मेरे सामने दूसरा कोई रास्ता ही नहीं था। यदि मैं मारा जाता, तो वही व्यक्ति राजकुमारी का पति बना रहता।" पुनदत्त ने कहा।

कृष्ण एक क्षण विचार में पड़ गये।

"तो मुझे भी क्या इस छोटी राजकुमारी से विवाह करना होगा ?" उन्होंने पूछा।

"अभी तो ऐसा ही लगता है। हालाँकि अभी तक मुझे कोई स्पष्ट आदेश नहीं मिला है। परन्तु यदि उनकी आज्ञा हुई, तो मुझे उसका पालन करना ही होगा। यदि तुमने इस आज्ञा का अनादर किया तो यहाँ के राजा यम तुम्हारा वध कर डालेंगे। माँ की आज्ञा बिल्कुल स्पष्ट है," पुनर्दत्त ने कहा।

"और यदि मैं उसके साथ विवाह करूँ तो ?' कृष्ण ने पूछा। छोटी राजकुमारी की चंचलता का मर्म कृष्ण की समझ में अब आया। वह अपनी माँ की भविष्यवाणी सच ठहराने के लिए तत्पर थी।

"तुम्हें उसके साथ विवाह करना ही होगा। मृत्युपर्यन्त अथवा कोई अन्य उत्तम वर वर-उत्सव में तुम्हारा वध न करे, तब तक तुम्हें यहीं रहना पड़ेगा। क्योंकि माँ की कोई पुत्री कभी भी वैवस्वतपुरी नहीं छोड़ सकती। तुम्हें अच्छा भोजन मिलेगा। सुख से रखा जाएगा। थोड़े-बहुत अधिकार भी मिलेंगे, परन्तु सदा राजकुमारी का सेवक बनकर ही रहना पड़ेगा। एक साथ ही राजकुमारी का दास, प्रेमी और पति की भूमिकाएं तुम्हें निभानी होंगी। वह कभी तुम्हें अकेला नहीं छोड़ेगी। नाग-कन्याओं का पहरा सदा तुम पर रहेगा। और इस भय से तुम्हें सदा त्रस्त रहना होगा कि कहीं माँ तुम्हारी मौत की भविष्यवाणी न करे,' पुनर्दत्त ने कटुता से कहा।

"ऐसा दासत्व स्वीकार करने से तो मैं मृत्यु को पसन्द करता हूँ। क्या तुम इस दासत्व को अस्वीकार नहीं कर सकते ?' कृष्ण ने पूछा।

"नहीं," पुनर्दत्त ने लाचारी से कहा। 'जब माँ भी किसी और वर के आगमन की भविष्यवाणी करेगी, तब वर-उत्सव रचा जाएगा। और एक अज्ञात आगन्तुक के साथ अन्तिम साँस तक मुझे लड़ाई करनी होगी। जो

जीतेगा, वही राजकुमारी का पति बनेगा। मै सदा इस वर-उत्सव की प्रतीक्षा करता रहता हूं। या तो कोई मेरा वध करेगा, अथवा मैं किसी का वध करूँगा।"

"तो यह राजा कहाँ से आता है?" कृष्ण ने पूछा।

देवी की माता जब देह-त्याग करती है, तब देवी स्वय माँ का स्थान पाती है और उनका पति राजा बनता है। फिर वह देवी पिता अथवा मृत्यु के देवता की तरह पहचाना जाता है। माँ की आज्ञा के अधीन रहकर वह सभी के जीवन पर अधिकार रखता है।"

'मान लो कि हम यहाँ से भाग सकने मे सफल हो जाये, तो क्या तुम हमारे साथ आओगे?" कृष्ण ने पुनर्दत्त के कन्धे पर ममतापूर्वक हाथ रखकर पूछा।

"नही, मैं यह भूमि छोडना नही चाहता और कृष्ण, यदि तुम यह सोचते हो कि तुम यह भूमि छोड सकोगे, तो तुम बिलकुल भ्रम में हो!" पुनर्दत्त ने कहा।

"कुछ भी हो, मैं यहाँ से भाग निकलने का कोई मार्ग निकाल लूँगा और तुम्हे भी अपने साथ ले जाऊँगा,' कृष्ण ने दृढता से कहा।

पुनर्दत्त के जाने के बाद कृष्ण ने उद्धव से कहा, "उद्धव! तुम्हारी ही बात सच निकली। हम इस देश में आकर फँस गये है।"

१०

नागकन्या

उस दिन दोपहर को महिला प्रतिहारी कृष्ण और उद्धव को बुला ले गयी। उन्हे पवित्र माँ के समक्ष उपस्थित होना था। अपने-अपने शस्त्र नीचे रखकर वे प्रतिहारी के पीछे चल पडे। पुण्यजन भाइयो और दूसरो ने जहाज मे से लाये गये उपहारो को साथ लेकर दोनो भाइयो का अनुसरण किया। जहाँ से भी होकर ये लोग गुजरे, वहाँ सर्वत्र सशस्त्र स्त्रियो

का पहरा था

यज्ञ-खंड के नाम से परिचित एक अँधेरे कक्ष में उन्होंने प्रवेश किया। कक्ष के दोनों ओर स्त्री-अधिकारियों की कतारें खड़ी थीं। कक्ष के सामने के छोर पर, वेदी के बीच यज्ञकुंड था और उसमें पवित्र अग्नि प्रज्वलित थी। यज्ञ की ज्वालाएँ थोड़ी-थोड़ी देर पर भभक उठती थीं और कक्ष में खड़े सभी व्यक्तियों के चेहरों को आलोकित करती थीं, जिससे एक अपार्थिव वातावरण प्रस्तुत हो गया था। यज्ञवेदी के पीछे माँ भगवती की पत्थर में से तराशी हुई विराट प्रतिमा थी।

कृष्ण और उद्धव को वेदी के पास सीढ़ियों तक ले जाया गया। एक ओर दोनों राजकुमारियाँ खड़ी थीं और उनके पीछे पुनर्दत्त खड़ा था। माँ की उपस्थिति में सशस्त्र रहने का एकमात्र अधिकार यम को था। वह वेदी के पीछे, मंच पर खड़ा था। उसकी वय पचास के लगभग थी, फिर भी उसकी देह सुदृढ़ थी और उसके सुहावने मुखमंडल पर मतवाले स्वभाव की मुद्रा अंकित थी।

तभी घंटनाद हुआ और उसकी गूँज शांत भी नहीं होने पायी कि एका-एक यज्ञ की ज्वालाएँ छत तक ऊँची भभक उठीं। तभी यज्ञवेदी के पीछे खड़ी माँ के दर्शन हुए। वह मध्यम वय की प्रभावपूर्ण और नितान्त सुन्दर स्त्री थी। उसने एक विशाल कमरबन्द, रत्नहार और नागचिह्न से अंकित मुकुट धारण कर रखा था। यज्ञ की ज्वालाओं में ये रत्नाभूषण जगमगा रहे थे। इनके अलावा उसके गले में एक जीवित नाग भी था। सभी ने उसे प्रणाम-दंडवत् किया और तभी उठे जब माँ ने उसके लिए आज्ञा दी। फिर उसके संकेत पर यम ने राजकुमार को आगे आने का इशारा किया। पुनर्दत्त आगे आया और उसने कृष्ण से अपना संदेश सुनाने के लिए कहा।

"माँ भगवती, मैं कृष्ण, शूर के राजा वसुदेव का पुत्र, पृथ्वीपति राजा उग्रसेन की ओर से संदेश लाया हूँ। उन यादव श्रेष्ठ ने आपके लिए उपहार भेजे हैं। मुझे आशा है कि आप उन्हें स्वीकार करने की कृपा करेंगी," कृष्ण ने कहा।

थोड़ी देर तक तो घोर शान्ति छायी रही, फिर माँ ने अपनी स्वर्णिम वाणी में कहा, "वसुदेव के पुत्र, हम तुम्हारा स्वागत करते हैं। कई दिनों पहले हमें तुम्हारे आगमन का पूर्वाभास हुआ था। माँ जगज्जननी ने हमें तुम्हारा स्वागत करने की आज्ञा दी है। तुम्हारे उपहारों को मैं स्वीकार

करती हूं और यह आश्वासन देती हूं कि तुम्हारी उचित आवभगत यहाँ होगी।"

पुनर्दत्त ने माँ के इन शब्दों का अर्थ कृष्ण को समझाया। फिर माँ ने अपना हाथ ऊँचा किया और खंड में गहरी शान्ति छा गयी।

"वसुदेव के पुत्र, तुम्हें मैं अपने पति यम के संरक्षण में सौंपती हूं। माँ जगज्जननी की आज्ञा है कि तुम चिरकाल तक हममें से ही एक होकर रहोगे।" माँ ने कहा।

कृष्ण को जब इस सन्देश का अर्थ समझाया गया, तब वे कुछ कहने जा ही रहे थे कि माँ ने उन्हें हाथ उठाकर रोका और कहा

"तुम हममें से एक होकर रहोगे। माँ जगज्जननी की यही आज्ञा है और उसका पालन होकर रहेगा।"

फिर एक बार अग्नि-ज्वालाएं छत तक ऊँची उठी और इससे पहले कि कृष्ण एक शब्द भी कहें, माँ अदृश्य हो गयी।

राजा मंच पर से नीचे उतरा और कृष्ण के कंधों पर ममतापूर्वक हाथ रखकर उन्हें यज्ञखंड के पीछे के कक्ष में ले गया। वहाँ पत्थर के पलंग पर माँ थककर लेटी थी। सारा शरीर पसीने से तर था। दो स्त्रियाँ उसे पंखा झल रही थीं। माँ भगवती के उसकी देह में से चले जाने के बाद, माँ की स्थिति नित्य की तरह सामान्य बन गयी थी। राजा आर्यों की भाषा जानता था। उसकी मदद से रानी ने कृष्ण से उनके विषय में, उनके परिवार के विषय में और देश के विषय में अनेक प्रश्न पूछे।

राजा ने भार्गवश्रेष्ठ परशुराम और उनके शिष्यों के बारे में जिज्ञासा की। कृष्ण के आश्चर्य का पार नहीं रहा। उन्होंने कहा, "ये भृगुश्रेष्ठ इस समय तो सुपर्क के पास एक अद्रि पर आश्रम बनाकर रह रहे हैं।" फिर परशुराम के शिष्यों के बारे में भी उन्होंने राजा को सूचना दी।

उसके बाद एक स्त्री-अधिकारी कृष्ण और उद्धव को नगर-दर्शन कराने ले गयी। नगर और बन्दरगाह पर घूमने के बाद वे अपने डेरे पर लौटे। कृष्ण ने जहाज में से अधिक उपहार लाने के बहाने रड्डु तथा पुण्यजन भाइयों में से एक को जहाज पर भेज दिया और भिक्षु को सदेश कहलाया।

रात में कृष्ण एकाएक जाग पड़े। उन्होंने देखा कि कोई उनके बिछौने पर बैठकर मृदु स्वर में कुछ कह रहा है। वे तत्काल बैठ गये और अपनी तलवार खोजने लगे, परन्तु दूसरे ही क्षण हँस पड़े। वह तो छोटी राज-

कुमारी थी। वह यहाँ प्रेमालाप करने आयी थी। उसके लम्बे बाल कृष्ण के मुख को ढँक रहे थे। उसकी मृदुल देह जब कृष्ण पर झुकी तब कृष्ण ने एक विचित्र उत्तेजना का अनुभव किया। परन्तु थोडे ही क्षणों में एक स्त्री आहिस्ते से राजकुमारी के पास आयी और उसके कान में उसने कुछ कहा। राजकुमारी तत्काल खडी हो गयी और भयभीत हिरणी की तरह खंड में से बाहर भाग गयी

उद्धव जग पडा और पूछने लगा, "क्या हुआ कृष्ण ?"

"कुछ नहीं ! नागकन्या आयी थी," कृष्ण ने हँसते-हँसते कहा।

थोडी देर तक तो शान्ति छायी रही, फिर धीमे, किन्तु भारी-भरकम पैर नजदीक आते सुनायी पडे। कृष्ण को लगा कि यदि इस समय मेरे हाथ में चक्र होता, तो कितना अच्छा रहता।

"पिता यम आपको बुला रहे है," एक पुरुष का स्वर सुनायी पडा।

"मै तुम्हारे साथ आऊँ, कृष्ण ?" उद्धव ने पूछा।

"नही ! तुम्हे नही बुलाया गया है—मेरी चिन्ता न करना,' कृष्ण ने कहा।

प्रतिहारी कृष्ण को महल के दूसरे सिरे पर स्थित राजा के कक्ष तक ले गया तारो के प्रकाश में कृष्ण ने राजा की कद्दावर काया को पहचान लिया।

"भय नही, वत्स ! मै तुम्हारा कोई अनिष्ट नही करूँगा," राजा ने कहा।

"मेरा प्रणाम स्वीकार करें, पूज्य पिता ! परन्तु इतनी रात गये मुझे कैसे याद किया ?" कृष्ण ने राजा के सामने जाकर पूछा।

"वासुदेव, माँ को ऐसा जान पडा है कि तुममे दैवी शक्ति होनी चाहिए। हमारी आज की बातचीत के बाद मै तुम्हे पुत्रवत् प्यार करने लगा हूँ; इसीलिए तो इस समय, तुम्हे नही मालूम कितनी जोखिम उठाकर, मैने तुम्हे बुलाया है। एक स्पष्ट बात मै तुमसे कहना चाहता हूँ। तुम्हारे लिए नागलोक मे रहना बहुत भयानक है। तुम अपने जहाज मे लौट जाओ और सवेरा होने से पहले लंगर उठाकर यहाँ से चल दो !" राजा ने इतने आहिस्ते से कहा मानो कान मे कुछ कह रहा हो।

"पिता, आपकी वाणी से आप आर्य लगते है। आप यहाँ के राजा है। मै आपके संरक्षण मे हूँ, फिर मुझे यहाँ से भागने की क्या आवश्यकता है ?"

कृष्ण ने पूछा।

"यदि तुम यहाँ रहोगे तो तुम्हें मेरी छोटी पुत्री आशिका के साथ विवाह करना पड़ेगा और जिन्दगी भर के लिए यहीं बँध जाओगे। फिर तुम कभी मुक्त नहीं हो सकोगे और हर समय माँ के कोप में आतंकित भी रहोगे। यह भी सम्भव है कि कभी कोई अपरिचित वीर आकर तुम्हारी हत्या कर डाले और तुम्हारा स्थान प्राप्त कर ले!" राजा ने कहा।

"परन्तु आप तो बहुत समय से यहाँ के राजा हैं और आपको तो कुछ नहीं हुआ?" कृष्ण ने कहा।

"वत्स, यहाँ से सम्बन्धित भयों का वर्णन मैं किस प्रकार करूँ? वर्षों पहले, अब तो वर्षों की गणना भी मैं भूल गया हूँ, मेरा जहाज इस देश के किनारे के करीब टूट गया था और मैं तैरकर वैवस्वतपुर में आया।

राजा कुछ देर के लिए रुका, फिर आगे बोला, "उस समय जो माँ थी, उसने मेरा भव्य स्वागत किया। मुझे वर-उत्सव में भाग लेना पड़ा और अभी जो माँ है, उसके पति के साथ लड़ना पड़ा। सद्भाग्य से मैं महा-भार्गव का शिष्य था और राजकुमार की हत्या कर सका। इस प्रकार मेरा विवाह राजकुमारी के साथ हुआ, और तभी से यहाँ रहने को विवश हूँ।"

"परन्तु सुपर्क में जब दूसरा कोई जहाज यहाँ आया, तब आप चले जा सकते थे," कृष्ण ने कहा।

"नागकन्या विवाह तो करती है, पर अपने सर्वस्व का समर्पण पति को नहीं करती। मैं उसका था, परन्तु वह तो सदा अपनी माँ की ही थी। उस समय मैं राजकुमार बना, पर साथ-साथ बन्दी भी। माँ और उसकी पुत्री की इच्छा का पालन करनेवाला गुलाम कहो तो भी कुछ गलत नहीं होगा। मेरी इस गति के लिए मैंने मन-ही-मन कई बार क्षोभ का अनुभव किया है, परन्तु ये नागकन्याएँ हैं, इनके पंजे में एक बार आने पर फिर कोई छुटकारा नहीं!" राजा ने दीर्घ निःश्वास ली।

"परन्तु इन सभी वर्षों में आप सर्वशक्तिमान रहे हैं—हाँ, माँ की इच्छा के अवश्य अधीन रहकर!" कृष्ण ने कहा।

"हाँ! पर, मैंने कितना सहन किया है, उसका अनुमान तुम कैसे लगा सकते हो? पहले तो मुझे यही भय सताता रहता कि इस देश में कोई भी नवीन आगन्तुक युवा मेरा स्थान ग्रहण कर लेगा। चार बार ऐसी स्थिति आयी भी!"

कृष्ण ने देखा कि उन वर्षों की स्मृति राजा को कष्ट दे रही है।

"माता ने उन प्रत्येक के आगमन की भविष्यवाणी की थी। प्रत्येक बार वर-उत्सव मनाया गया।

सद्भाग्य से मुझे शस्त्रविद्या की शिक्षा भार्गवश्रेष्ठ ने दी थी। मैंने प्रत्येक निर्दोष युवक की हत्या की, ऐसे भोले और सुन्दर युवकों की, जिन्हें तलवार पकडना भी ठीक से नही आता था। इस विचार मात्र से मैं कांप उठता हूं," राजा ने फिर से दीर्घ निःश्वास लेकर कहा, "फिर माँ का अवसान हुआ। मेरी पत्नी माँ की गद्दी पर आसीन हुई। मैं पिता के, यम के पद पर प्रतिष्ठित हुआ। माँ की इच्छा होने पर किसी की भी हत्या करना मेरा कर्त्तव्य है।"

"परन्तु इस समय आप सर्वशक्तिमान है। आप इन तरीकों को क्यों नही बदल देते? मैं स्पष्ट देखता हूं कि माँ आपके प्रति खूब स्नेह रखती है, आप उससे कुछ भी मनवा सकते है!" कृष्ण ने कहा।

राजा कटुतापूर्वक हँसा। "वत्स, तुम्हें अभी यहाँ के रीति-रिवाजो का पता नही। मैं बीमार नही पड सकता, आराम नही ले सकता, माँ की आज्ञा का अनादर नही कर सकता। मामूली-से-मामूली भूल के लिए भी मुझे प्राण गंवाने पड सकते है।"

"तब फिर आप मेरे और पुनर्दत्त के साथ क्यों नही वापस चले चलते? हम तीनो जहाज पर पहुँचकर यहाँ से भाग सकते है," कृष्ण ने कहा।

"वासुदेव, तुम शूरवीर युवा हो! परन्तु हम इन नागकन्याओं की दुनिया मे से कभी नहीं निकल सकते," राजा ने कहा।

"लेकिन क्यो?" कृष्ण ने पूछा।

"न तो पुनर्दत्त जा सकता है, न मैं!" राजा ने उत्तर दिया, "इन नागकन्याओं का प्रतिकार हो ही नही सकता। वे हमे पंगु और लाचार बना देती है। बदले मे वे हमे आनन्द भी देती है—ऐसा आनन्द जिसका एक बार स्वाद चख लेने पर, उसे छोडा नही जा सकता!"

"रानी के कारण आपने इतनी-इतनी यातनाएँ सही, फिर भी आप उसे धिक्कारते नही?" कृष्ण ने आश्चर्य से पूछा। आज दिन मे दूसरी बार कृष्ण ने नागकन्या से प्राप्त होनेवाले आनन्द और उस आनन्द मे ऐसे शक्तिशालियो को असहाय बना देनेवाली उसकी शक्ति के बारे मे सुना।

"रानी के कारण यातना?" राजा ने कहा, "रानी मे जब माँ का तत्त्व

प्रवेशित नहीं होता, तब वह अद्भुत सुन्दरी बन जाती है—ऐसी अद्भुत, जिसके लिए कोई भी पुरुष प्राण देने को भी तैयार हो जाय!" राजा की वाणी में भावना का समावेश हो गया था। "यह सही है कि वह किसी भूल को बर्दाश्त नहीं कर सकती, परन्तु साथ ही वह अपने प्यार को कभी सकुचित नहीं होने देती। सँभाल लेने में या आनन्द प्रदान करने में वह कभी कजूसी नहीं बरतती। नहीं, वासुदेव, मैं उसे कभी नहीं छोड़ सकता। मैं उसे चाहता हूँ। मेरा जीवन उसमें सलग्न हो गया है। वह जब मृत्यु को प्राप्त होगी, तब मैं भी मृत्यु का वरण करूँगा। यह माँ की आज्ञा है, पर वैसे भी उसके बिना जीवन जीने योग्य नहीं!"

"पिता, आप अनुभवी और समझदार व्यक्ति हैं। मैं तो अभी बालक हूँ। परन्तु नागकन्या के पति बनने के पश्चात् जीवन में कुछ ऊर्ध्वमुखी होने के आपके मनोरथ का क्या हुआ? अपने पूर्वजों और प्राचीन महर्षियों के जीवनमार्ग के प्रति आपके कर्तव्य का क्या हुआ?" कृष्ण ने पूछा।

"नागकन्याएँ जिस आनन्द का प्रवाह करती हैं उसी में सब-कुछ बह जाता है," राजा ने कहा।

"परन्तु वशिष्ठ और अरुन्धती, अगस्त्य तथा लोपामुद्रा—हमारे इन महर्षियों ने परस्पर कुछ दिया और पाया। वे अविभक्त आत्माएँ थीं। ज्ञान और तपस् में वे एक थे, शौर्य और कार्य में भी वे एक थे।"

"नागकन्याएँ सभी कुछ माँगती हैं, पर कभी अपना सर्वस्व नहीं देती। वह केवल पार्थिव आनन्द प्रदान करती है और उसके बदले में तुमको, तुम्हारी आशाओं को, तुम्हारे पूर्वजों के प्रति तुम्हारे कर्त्तव्य को तथा तुम्हारे प्राचीन जीवनमार्ग को खरीद लेती है" राजा ने कहा।

"पिता, आपकी सलाह के लिए मैं आपका ऋणी हूँ। परन्तु मैं यहाँ विशेष काम से आया हूँ। मैंने अपने गुरु को वचन दिया है कि मैं उनके पुत्र, पुनर्दत्त को वापस ले आऊँगा। उसके बिना मैं लौटूँगा नहीं!" कृष्ण ने दृढता से कहा।

"तो फिर तुम्हारी भी यही दशा होगी," राजा ने कहा।

"पिता, आपका हृदय कितना विशाल है! क्या आप पुनर्दत्त को ले जाने में मेरी मदद नहीं करेंगे?" कृष्ण ने पूछा।

"नहीं!" राजा ने उत्तर दिया।

"अपने कर्त्तव्य से च्युत होने के स्थान पर मैं मरना अधिक पसन्द

करूँगा।" कृष्ण ने कहा, "परन्तु पिता, मुझे विश्वास है कि हमें आपकी सहायता मिलेगी।"

ईश्वरदत्त अधिकार से बात करनेवाले इस युवक पर राजा मुग्ध हो गया। उसके गुरु परशुराम ऐसी ही श्रद्धा की वाणी बोलते थे—उसके देश—आर्यावर्त में महर्षियों की वाणी में प्रभु ने ऐसा ही प्रभाव उत्पन्न किया था।

११

'आशिका, लौट आ' (अ)

दूसरे दिन सवेरे कृष्ण तथा उद्धव वैवस्वतपुर में घूमते रहे। गरुड़ जहाज में कई प्रकार के उपहार ले आया। कृष्ण ने उन्हें राजा, राजकुमारी और पुनर्दत्त के पास भिजवा दिया। कृष्ण के पीछे प्रायः पागल-सी बनी आशिका को जब कृष्ण ने विविध उपहार दिये, तब वह हर्ष से झूम उठी।

दोपहर को जब कृष्ण और उद्धव आपस में यह सलाह कर रहे थे कि वैवस्वतपुर से कैसे भाग निकला जाय, तभी आशिका वहाँ आ पहुँची। उसके चेहरे पर विषाद की रेखाएँ अंकित थीं। वह आते ही कृष्ण से लिपट गयी। उसके बाल बिखरे हुए थे और आँखें अश्रुओं से भीगी थीं। आवेश में वह कुछ कह रही थी, लेकिन उसका अर्थ कृष्ण की समझ में नहीं आ रहा था, इसलिए कृष्ण ने पुण्यजन भाइयों में से एक को उसका अर्थ समझाने के लिए बुला लिया।

वासुदेव, राजकुमारी कहती है कि जगज्जननी माँ ने एक नयी आज्ञा दी है। वर-उत्सव में राजकुमारी तारिका को प्राप्त करने के लिए आपको राजकुमार से युद्ध करना होगा।"

कृष्ण को आश्चर्य हुआ। उन्हें कभी इस बात की स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि पुनर्दत्त की हत्या करने और राजकुमारी तारिका का पाणिग्रहण करने के लिए माँ उन्हें पसन्द करेंगी। अब आशिका के रुदन

का अर्थ उनकी समझ मे आया। आशिका ने तो यही मान रखा था कि उसका विवाह कृष्ण के साथ होगा।

पुनर्दत्त के अपहरण की सभी योजनाएँ धरी रह गयी। इस नयी परिस्थिति के विषय मे कृष्ण कुछ सोच सके, इसके पहले ही माँ ने उन्हे बुला भेजा। वह उस समय थकी हुई थी और लेटी थी। माँ भगवती का देह मे प्रवेश हुए बाद उसकी हमेशा ऐसी ही स्थिति हो जाती थी। राजा उसकी बगल मे बैठा था और एकाग्र दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। कृष्ण ने जब आकर प्रणाम किया तब उसने अत्यन्त नम्र स्वर मे कृष्ण से कहा

"वासुदेव, माँ जगज्जननी की आज्ञा से हा वर-उत्सव मे भाग लेने को तुम्हे पसन्द किया गया है। राजकुमार के साथ तुम्हे मरणान्तक युद्ध करना होगा। यदि तुम जीते तो राजकुमारी के साथ विवाह करने का सद्भाग्य तुम्हे प्राप्त होगा और शायद, जब हम इस ससार से विदा ले, तब तुम दैवी पिता—यम बन सकोगे।"

"यह माँ जगज्जननी की आज्ञा है,' माँ ने थके हुए स्वर मे कहा।

"लेकिन, मुझे तो राजकुमार के साथ लडना ही नही है," कृष्ण ने कहा।

"तो फिर मुझे तुम्हारा वध करना पडेगा," राजा ने कहा, "माँ की आज्ञाएँ इस विषय मे बहुत स्पष्ट है।"

'माँ की आज्ञाएँ बहुत विचित्र लगती है," कृष्ण ने कहा। अनादर की सीमा तक पहुँचे हुए कृष्ण के इन शब्दो को सुनकर माँ की त्यौरियाँ चढ गयी। कृष्ण ने फिर कहा, "राजकुमार ने मेरा कुछ भी अहित नही किया, मै क्यो उसका वध करूँ?"

"परसो वर-उत्सव मनाने की आज्ञा दी जा चुकी है," राजा ने दृढतापूर्ण शब्दो मे बात को वही खत्म कर दिया।

कृष्ण ने प्रणाम कर, विदा ली। इस नयी परिस्थिति के बारे मे वे विचार करने लगे। उन्हे राजकुमार से मिलना उचित जान पडा राजकुमार इस विषय मे सर्वथा उदासीन जान पडा।

"कृष्ण, वासुदेव, मैने तुम्हे नही कहा था कि नागलोक मे तुम्हारा आना ठीक नही हुआ? अब मुझे तुम्हारे साथ लडना होगा!" पुनर्दत्त ने व्यथा से छलकते शब्दो मे कहा, "माँ की आज्ञाओ मे कुछ कहने-सुनने की गुजाइश नहीं रहती। नागकन्याओ का अनादर कोई नही कर सकता।"

तुम क्या करना चाहते हो ?" कृष्ण ने पूछा ।

"तुमने कंस और चाणूर जैसे अजेय योद्धाओं का किस प्रकार हनन किया था, यह मुझे उद्धव ने बताया । शस्त्रविद्या के महान् आचार्य सांदीपनि मेरे पिता के तुम शिष्य हो । तुम निश्चय ही मेरा वध करोगे!" पुनर्दत्त ने इस प्रकार कहा मानो वह मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा हो ।

कुछ देर सोचने के बाद कृष्ण ने कहा, "यह परिस्थिति अत्यन्त विकट है । हम गुरुबन्धु है, फिर भी परिस्थिति ऐसी आ पड़ी है कि या तो मुझे तुम्हारा वध करना होगा, या तुम्हें मेरा । किसी भी रीति से अधर्म ही होगा !" कृष्ण ने राजकुमार के कंधे पर ममतापूर्वक हाथ रखकर कहा ।

राजकुमार की आँखों में अश्रु छलक पड़े । उसने अपना मस्तक कृष्ण के कंधों पर डाल दिया और रुदनपूर्वक कहा, "वासुदेव, तुम्हारे साथ मैं युद्ध नहीं कर सकूँगा । मेरे पिता के संतोष के लिए तुमने अपनी जान जोखिम में डाली और मुझे लेने यहाँ आये । मैं तुम्हारा वध किस प्रकार कर सकता हूँ ?"

"मैं भी तुम्हारा वध नहीं कर सकता, पुनर्दत्त ! यों निराश मत हो, मेरे भाई ! अब भी कोई रास्ता निकल ही आयेगा । धर्म के पथ पर चलने वाले को परमेश्वर कभी नहीं तजता !" कृष्ण ने कहा ।

"कृष्ण, तुम नागकन्याओं को जानते नहीं, इसीलिए आशावादी बनते हो । लेकिन मैं उन्हें पहचानता हूँ । उनसे बचकर कोई नहीं निकल सकता !" राजकुमार ने उदास स्वर में कहा ।

कृष्ण गहरे विचार में पड़ गये । अपने कक्ष में वापस आकर वे उद्धव से मंत्रणा करने लगे कि इन विपरीत संयोगों में किस प्रकार कोई मार्ग निकाला जाय । थोड़ी देर बाद राजा ने फिर कृष्ण को बुलाया । इस समय वह स्वस्थ था । उसकी आँखों में वही ममता और सहानुभूति छलक रही थी ।

"वासुदेव ! मुझे दुख है कि माँ की आज्ञाओं से सारी बाजी पलट गयी है । जब तुम यहाँ आये थे तब मैंने सोचा था कि आशिका का विवाह तुम्हारे साथ हो सकेगा । वह सुन्दर और प्यारी लड़की है । अपनी बहन और अपनी माँ से वह कई बातों में भिन्न है । कई अंशों में वह अपनी आर्य कन्याओं के समान है । वह मुझे खूब अच्छी भी लगती है । परन्तु माँ की इच्छा कुछ अलग ही निकली । आशिका अत्यन्त निराश हो गयी है ।

उसका दिल टूट गया है। मुझसे उसका रुदन देखा नहीं जाता। उसके दुख को मैं समझ सकता हूँ और स्वयं उसके दुख से दुखी हूँ। यदि तुम वर-उत्सव में जीते तो राजकुमारी के साथ तुम्हारा विवाह होगा। परन्तु उसे तो किसी अन्य पुरुष की प्रतीक्षा करनी ही होगी। और, वह तुम्हारे पीछे पागल है!" राजा ने कहा।

"मैं इस परिस्थिति को अच्छी तरह समझ रहा हूँ। पर, इसका उपाय क्या है? इस समय तो आप ही हमारी सहायता कर सकते हैं," कृष्ण ने कहा।

"माँ की आज्ञा की अवहेलना कर मैं किस प्रकार सहायता कर सकता हूँ?' राजा ने पूछा।

"यदि पुनर्दत्त और मैं एक-दूसरे से लड़ने से ही इन्कार कर दें तो?

"तो मुझे ही तुम दोनों का वध करना पड़ेगा,' राजा ने कहा, "मैं तो मृत्यु का देव, यम कहलाता हूँ न!" राजा के स्वर में अब कटुता आ गई थी।

"तो आपको अपनी दोनों पुत्रियों के लिए नये वरों की राह देखनी होगी," कृष्ण ने कहा।

"मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं आता। मेरे गुरुदेव, महाभार्गव इस परिस्थिति में पता नहीं क्या करते!" राजा ने निःश्वास लेकर कहा।

"वे धर्म का मार्ग अपनाते, पुनर्दत्त को अपने पिता के यहाँ वापस भेज कर!" कृष्ण ने कहा।

क्षण भर तो राजा मौन रहा। फिर एकाएक इस प्रकार बोला मानो कोई नया विचार उसे कौंध गया हो, यह भी माँ की आज्ञा है। उसका पालन हमें करना होगा। परन्तु यह भी मुझे अच्छा नहीं लगता कि आरिका शोक के मारे मर जाये अथवा आत्महत्या कर ले। तुम उसके पास जाओ और उसे यह सान्त्वना दो कि माँ योग्य समय पर उसके लिए उचित वर भेज देंगी।"

"मैं उसे किस प्रकार सात्वना दे सकता हूँ? इससे तो वह बेचारी और अधिक दुखी होगी!" कृष्ण ने कहा।

"वासुदेव, जी तो चाहता है कि अपनी जान जोखिम में डालकर भी तुम्हें बचा सकूँ!" राजा ने विनम्र स्वर में कहा और धर्म की रक्षा के लिए मृत्यु का सामना करने को तैयार उस तेजस्वी युवा की ओर एकटक

देखा ।

"महान् धर्माचार्य परशुराम के शिष्य को जो शोभा दे, वैसा ही आचरण आप करें !" कृष्ण ने कहा ।

"वासुदेव, इतना काम मेरा भी करो ! इस परिस्थिति में मैं कोई मार्ग निकाल सकूँ तब तक तुम जाकर उसे सात्वना दो, नही तो मुझे डर है कि वह कही आत्महत्या न कर बैठे । तुम्हारे साथ मैं अपना एक विश्वसनीय दूत भेजता हूँ । वह तुम दोनो के बीच दुभाषिये का काम करेगा । वह आदमी भरोसे का है, इसलिए बात बाहर नही जायेगी," राजा ने कहा ।

११

'आशिका, लौट आ !" (आ)

कृष्ण आशिका के पास गये । उन्हे देखते ही आशिका उनसे लिपट गयी और सिसकियाँ भरने लगी ।

"वासुदेव, मुझे छोडकर मत जाना । यदि तुम चले गये तो मैं जीवित नही रह सकूँगी । सभी मेरे दुश्मन बन बैठे है—मा भी । लारिका माँ की लाडली है । नहीं, नही, मै तुम्हे जाने नही दूँगी !" आशिका ने कहा ।

कृष्ण को नागकन्या का इस प्रकार लिपट जाना अच्छा नही लगा; परन्तु वे उसकी भावनाओ को समझ गये । उन्होने उसे सहलाकर उसके बालों मे हाथ फेरा और दुभाषिये की सहायता से उससे बाते की ।

राजकुमारी, दुखी मत हो । मै तो यहाँ आगन्तुक हूँ । माँ की इच्छा तो यह है कि तुम किसी अन्य पुरुष की प्रतीक्षा करो," कृष्ण ने कहा ।

"नही, नही, मुझे तुम्हारे सिवाय और किसी की जरूरत नही । इस ससार मे तुम-सा कोई दूसरा पुरुष है ही नही !" आशिका ने सिसकियाँ भरते हुए कहा ।

"परन्तु कल तो मैं मार डाला जाऊँगा, मेरे जीवन का वही पूर्णविराम आ जाएगा । फिर यह चिता क्यो ?" कृष्ण ने पूछा ।

"नहीं, नहीं," आशिका ने कहा, "मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगी। और यदि तुम्हें मृत्यु आ गयी तो मैं भी नहीं जीऊँगी।"

"यह गलत बात है, आशिका! कोई नागकन्या पति के पीछे मरती नहीं होती। वह तो दूसरा पति कर लेती है। माँ जगज्जननी की आज्ञा है," कृष्ण ने सहज कटाक्ष से कहा।

"नहीं, मैं तो उसी क्षण प्राण त्याग दूँगी जिस क्षण तुम्हारी मृत्यु होगी," आशिका ने कहा। उसकी वाणी में दृढ़ संकल्प था।

कृष्ण के मुख पर एक मधुर हास्य फूट पड़ा। "तुम लोग सचमुच विचित्र हो। मेरी मृत्यु होने पर तुम प्राण देने को तैयार होगी, पर मेरे जीवित रहते तुम मेरे साथ मेरे देश नहीं चलोगी।"

"कोई नागकन्या अपना घर नहीं छोड़ सकती। ये माँ की आज्ञाएँ हैं—मैं क्या कर सकती हूँ?" आशिका ने असहाय भाव से कहा।

कृष्ण को हँसी आ गयी। "अर्थात् मुझे मरना ही होगा और मेरे पीछे तुम भी प्राणत्याग करोगी। परन्तु मैं जहाँ जाऊँ वहाँ मेरे साथ जीने का प्रयास नहीं करोगी?"

आशिका स्तब्ध हो गयी। नागकन्या के रूप में ऐसा विकल्प तो उसे कभी हुआ ही नहीं था। उसने अपना मुख ऊँचा किया। अब उसके अश्रु सूख गये थे। "तुम मुझे अपने साथ ले जाओगे अपने देश में?" उसने पूछा।

कृष्ण को अन्धकार में एक किरण चमकती दिखायी दी। राजा ने सच ही कहा था कि आशिका और ही मिट्टी की बनी हुई थी।

"यदि मैं यहाँ से निकल सकूँ तो?" उन्होंने उत्तर दिया।

"ओह! ओह! ..." आशिका ने सुबकी लेते हुए कहा, "तुम्हारे बगैर मुझे जीना ही नहीं है।"

"यदि मैं राजकुमार के साथ न लडूँ तो पिता मेरा वध कर देंगे। फिर तुम आत्महत्या करोगी और हम कहीं भी नहीं जा सकेंगे!" कृष्ण ने कुछ चिढ़ाते हुए कहा। "हम लोग सब मातृलोक में साथ रहेंगे। परन्तु जीते-जी तो तुम मेरे साथ नहीं ही आओगी—क्यों?" उन्होंने पूछा।

"आऊँगी, आऊँगी, आऊँगी! जहाँ भी तुम ले जाओगे वहीं चली आऊँगी। मैं इस स्थल को धिक्कारती हूँ, यहाँ के सभी लोगों को धिक्कारती हूँ—एक तुम्हारे सिवाय!"

कृष्ण ने देखा कि आशिका की आँखों में आँसू थे और होठों पर

मुस्कान थी।

दूसरे दिन दोपहर को वैवस्वतपुरी के नगरवासी समुद्र-तट के पास के विशाल मैदान में एकत्र हुए। बन्दर की ओर जानेवाली सीढ़ियों के दोनों ओर सशस्त्र स्त्रियाँ खड़ी हो गयीं। द्वन्द्वयुद्ध के क्षेत्र में पुरुष रक्षक तैनात हो गये। इसी क्षेत्र के समीप भिक्रु तथा पुण्यजन जहाज के अन्य नाविक खड़े थे। उद्धव भी एक ओर खड़ा था और उसके पीछे हुक्कु और हुल्लु खड़े थे।

उचित समय पर माँ का आगमन हुआ। वे दुर्ग के द्वार में से बाहर निकलीं। उनके अंग पर के रत्न चमक रहे थे। उनके साथ पिता, राजकुमारियाँ तथा अन्य दरबारी थे। लोगों ने हर्षनाद कर उनका स्वागत किया। वैवस्वतपुरी में यह श्रेष्ठ उत्सव मनाया जाता था। इसमें खून बहता था—इसलिए लोगों को काफी उत्तेजना मिलती। इसी उत्सव में राजपरिवार का भविष्य तय होता और माँ की गद्दी पर आनेवाली बड़ी राजकुमारी के गृहजीवन की समस्या भी सुलझती।

तभी शहनाइयाँ गूँज उठीं, दुंदुभियाँ बज उठीं। अब कृष्ण और पुनर्दत्त ने आगे आकर माँ को प्रणाम किया। सर्वत्र शान्ति छा गयी। माँ तथा राजा ने दोनों को आशिष दिया और जनमेदनी के नाद के बीच दोनों प्रतिस्पर्धी मैदान में उतर आये।

जब वे मैदान में उतर रहे थे तब राजकुमार ने मन्द स्वर में कहा, 'वासुदेव, यदि मेरे हाथ में तुम्हारा वध हो जाय, तो क्षमा करना!"

'भाई, इसमें से किसी का वध नहीं होगा। अच्छी तरह लड़ना, यह भूल जाना कि मैं तुम्हारे पिता का शिष्य हूँ,' कृष्ण ने कहा।

"पिता तो इस समय यवनी में होंगे—हम दोनों की चिन्ता उन्हें सता रही होगी," पुनर्दत्त ने कहा।

"अब यह चिन्ता मत करो। मैंने उन्हें वचन दिया है कि मैं तुम्हें वापस लाऊँगा। और, मैं अपने वचन का पालन अवश्य करूँगा," कृष्ण ने मोहक मुस्कान के साथ कहा।

मैदान में दोनों आमने-सामने आये। दो रक्षकों के हाथ में उन्होंने तलवारें लीं। माता ने संकेत दिया, दुंदुभियाँ बज उठीं। तलवारें टकराने लगीं। पुनर्दत्त ने जब देखा कि कृष्ण रक्षणात्मक रीति में ही लड़ रहे हैं, बदले में प्रहार नहीं करते, तो वह भी शिथिल हो गया।

"बराबर सामना कर, मूर्खता न कर!" कृष्ण ने कहा, और क्रोधित होने का स्वांग भरते हुए हमला किया। इससे राजकुमार रक्षणात्मक बन गया। अब उसकी समझ में आया कि द्वंद्वयुद्ध में कृष्ण कितने दक्ष थे। पुनर्दत्त जब अत्यन्त बल से प्रहार करता, तब कृष्ण चपलता से उससे बच जाते। प्रहार और प्रतिप्रहार में अब गति आयी। ऐसा लगता था कि सामना बराबरी का है। माँ और राजकुमारी आश्चर्य में पड़ गयी। आशिका का हृदय उसकी आँखों में आ गया था, और आँखें स्थिर थीं कृष्ण पर। जब भी कृष्ण हारते दिखायी पड़ते तब वह यह संकल्प मन-ही मन दुहरा लेती कि कृष्ण के बिना वह जी नहीं सकती।

तलवार का युद्ध इस प्रकार बहुत देर तक चलता रहा। दोनों प्रतिस्पर्धी बराबर के सिद्ध हो रहे थे। इससे प्रेक्षकगण ऊब गये। कृष्ण ने तब एक जबरदस्त प्रहार किया। पुनर्दत्त की तलवार हवा में उछल गयी, परन्तु साथ ही दोनों तलवारों की टक्कर के बल से कृष्ण के हाथ में से भी तलवार छिटककर दूर जा पड़ी।

प्रेक्षक अधीर हो उठे। उन्होंने कभी ऐसा द्वंद्व-युद्ध नहीं देखा था। दोनों प्रतिस्पर्धी बराबर के मालूम पड़ रहे थे और खून का एक कतरा भी बह नहीं रहा था। दोनों ने फिर बाहुयुद्ध शुरू किया। कृष्ण ने देखा कि पुनर्दत्त का अनुभव इस युद्ध में बहुत थोड़ा है, इसलिए उन्होंने अपनी शक्ति को मर्यादित रखा।

कृष्ण की योजना अब पुनर्दत्त की समझ में आयी। यह केवल दिखावे का द्वंद्वयुद्ध था। परन्तु इसमें कृष्ण का आशय क्या था, यह अब भी वह जान न पाया, और इसका अन्त क्या होगा, यह भी वह सोच नहीं सका। परन्तु अब वह कृष्ण की योजना के अनुसार लड़ने लगा। इस युद्ध में उन्होंने हाथ और पैर का उपयोग किया, एक-दूसरे को भूमि पर पछाड़ा और फिर खड़े हो गये।

लोगों को कुछ देर तो इस युद्ध में रस आया, पर वे शीघ्र ही ऊब गये। वे तो यही देखने के लिए अधीर थे कि कब विजेता पराजित का वध करता है। प्रेक्षक रोष में भरकर विरोध प्रकट करने लगे। सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ रहा था। राजा खड़ा हो गया और ऐसा लगता था कि वह अपने कर्तव्यपालन के लिए तैयार हो गया है।

"दोनों में से कोई भी विजयी नहीं हुआ। माँ की आज्ञा स्पष्ट है,

राजा ने कहा ।

माँ का चेहरा सफेद रूई की तरह हो गया था । जनता शान्त हो गयी और यह प्रतीक्षा करने लगी कि आगे क्या होना है । राजा दृढ़ और चिन्तित दिखायी पड़ता था । प्रतिस्पर्धी अन्योन्य का हनन न कर सके इसलिए अब वह दोनों का वध करने वाला था । राजा मैदान में उतरा । जनमेदनी खून की प्यासी बनकर हर्ष-चीत्कार करने लगी ।

राजा ने मैदान में प्रवेश किया और प्रतिस्पर्धियों की ओर बढ़ा । वे अब तक एक-दूसरे की पकड़ में इस तरह जकड़े हुए थे कि कोई आगे-पीछे नहीं खिसक सकता था । राजा नंगी तलवार लेकर उनके पास जा पहुँचा । परन्तु इसके पहले कि उसकी तलवार उठे, एक चीख वातावरण में गूँज उठी और रत्नजड़ित कमरबन्द पहने तथा बिखरे बालों वाली आशिका अपने पिता और प्रतिस्पर्धियों के बीच आकर खड़ी हो गयी ।

जनमेदनी क्षण भर तो स्तब्ध रह गयी । आशिका दोनों हाथ फैला कर प्रतिस्पर्धियों की रक्षा कर रही थी । सैकड़ों कंठों से भूखे सिंह की-सी गर्जना फूट पड़ी । लोग खून के प्यासे हो रहे थे । और, यह राजकुमारी माँ की आज्ञा का भंग कर, उसमें विघ्न डाल रही थी !

कृष्ण ने तत्काल अपनी पकड़ ढीली कर दी, पुनर्दत्त को पीछे धकेला और पास ही खड़े उद्धव के हाथ में से तलवार खींच ली । आशिका को उन्होंने उद्धव की ओर धकेल दिया ।

"उद्धव, इन दोनों को ले जाओ !" कृष्ण ने कहा और राजा की ओर बढ़े ।

पुण्यजन जहाज के नाविक बन्दर पर खड़े होकर यह दृश्य देख रहे थे । कृष्ण राजा के साथ लड़ते-लड़ते एक-एक पग पीछे हटने लगे । जनता हैरान थी और राजा के—यम के सामने शस्त्र उठाने की हिम्मत करनेवाले इस युवक के विरोध में आवाज उठा रही थी । सभी उसके वध की माँग कर रहे थे । पास ही खड़े सशस्त्र रक्षक राजा की सहायता करने दौड़े । राजा ने उनको पीछे रहने का संकेत करते हुए कहा, 'मैं अकेला ही माँ को यह बलि दूँगा ।"

कृष्ण पीछे हटते-हटते बन्दर तक पहुँच गये । इतने में लंगर उठा लिये गये । हल्लु और हक्कु ने पुनर्दत्त और आशिका को उठा लिया और तैयार रखी हुई नौकाओं में उन्हें ले गये ।

अब कृष्ण राजा की ओर बढ़े। अपनी तलवार फेंककर उन्होंने कहा, "महाभार्गव के मानसपुत्र, यदि आपको मेरा वध करना ही उचित प्रतीत हो तो मैं उपस्थित हूं।" कृष्ण ने राजा की आँखों में आँखें डालकर कहा, "परन्तु मुझे विश्वास है, आप मेरा वध नहीं कर सकेंगे।" उनकी मोहक आँखें राजा पर जादू का-सा असर कर रही थीं। राजा इस प्रकार खड़ा रह गया मानो उसके पैर जमीन में चिपक गये हों। उसके शिथिल हाथों में से तलवार गिर पड़ी और वह बेहोश होकर गिरता दिखायी पड़ा।

कृष्ण तब पीछे फिरे। नीचे नौका तैयार थी। भिक्षु हाथ में डंड लिये तैयार खड़ा था। कृष्ण नौका में कूद पड़े और नौका चल दी। पुण्यजन नौकाएँ तब वेग से जहाज की ओर बढ़ने लगीं। कई रक्षकों ने सागर में कूदकर नौकाओं तक पहुंचने का प्रयास किया, परन्तु नौका में कृष्ण नंगी तलवार लिये खड़े थे। एक के बाद एक कई रक्षकों को उन्होंने मौत के घाट उतार दिया।

तब दुन्दुभि में एक अपार्थिव नाद हुआ। माँ जिस सीढ़ी पर खड़ी थीं, उसके आगे एक ज्वाला प्रकट हुई। माँ जगज्जननी उसकी देह में प्रकट हुई, और वह एक के बाद एक सीढ़ी उतरकर राजा जहाँ बेहोश होकर पड़ा था, वहाँ पहुँची। उसकी आज्ञा पाकर महिला रक्षक राजा को उठा कर महल में ले गयीं। माँ सागर के सामने आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगी। पुण्यजन जहाज पर उसकी दृष्टि स्थिर थी। उपस्थित जनता उसके दृढ़ और एकाग्र चेहरे का शान्ति के साथ अवलोकन कर रही थी। कृष्ण और उनके साथी अब जहाज पर पहुंच गये थे। तट पर उनकी निगाह जमी हुई थी। जहाज ने लंगर उठाया। आशिका भय के मारे कृष्ण से लिपट गयी।

जहाज पर से सभी तेजी के साथ दूर हट रहे किनारे को देख रहे थे। माँ को उन्होंने वहाँ खड़ी देखा। ऐसा लगता था, मानो उसकी दृष्टि उन्हीं पर जमी हुई थी। इतने में माँ की आवाज सुनायी पड़ी, "आशिका, लौट आ, मेरी आज्ञा है, लौट आ।"

आशिका ने यह आवाज सुनी। वह स्थिर खड़ी अपनी माँ के सामने ताक रही थी। उसकी माँ मानो शक्ति का प्रतीक बनकर समुद्र को आज्ञा दे रही थी।

"आ!" समुद्र पर सवार होकर यह अपार्थिव ध्वनि कह रही थी,

"आ, चली आ आशिका चली आ।" आशिका इस प्रकार आगे बढ़ी, मानो समाधिस्थ हो और सागर में कूद पड़ी। वह तैरकर अपनी माँ की ओर बढ़ रही थी। पतर्दन भयभीत हो शान्त खड़ा था। कृष्ण ने उसके सामने मुस्कराकर कहा, "नागकन्या सदा अपनी माँ की ही होती है, पति की नहीं।"

१२

कृष्ण और बलराम का मथुरा से पलायन

सम्राट् जरासंध के क्रोध का पार नहीं था। उसके शक्तिशाली मित्र और जामाता का वध हो गया था जिससे उसकी दो पुत्रियाँ अस्ति और प्राप्ति किशोर अवस्था में ही विधवा हो गयीं। उसके कुटुम्ब के एक सरदार, वृत्रघ्न के टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये थे। अपने महत्त्वाकांक्षी जामाता के आसपास रचित उसका शक्ति-मंडल तोड़ दिया गया था, और यह सब किया मात्र दो अल्पवयस्क किशोरों ने!

व्यक्तिगत रूप में तो उसकी हानि हुई ही थी, परन्तु इससे भी अधिक आघात उसकी सत्ता और प्रतिष्ठा को लगा। मथुरा गये हुए उसके साथी और सामन्त अपमानित होकर लौटे थे। उन्होंने आकर मथुरा का सारा हाल कंस से कहा। विदर्भ का राजकुमार रुक्मि भी सारा विवरण स्वयं प्रस्तुत करने गिरिव्रज आ पहुँचा।

उसकी पुत्रियाँ—कंस की विधवाएँ—एक वर्ष तक पति का शोक मनाकर पिता के घर आयीं। दोनों दारुण विलाप कर रही थीं और अपने पति को समय पर सहायता न दे सकने पर जरासंध को ही दोषी ठहरा रही थीं। सम्राट् ने उसी समय प्रतिज्ञा की, 'मैं देवाधिदेव की सौगंध खाकर कहता हूँ कि जब तक वसुदेव के पुत्रों को यमलोक न पहुँचा दूँगा तब तक चैन नहीं लूँगा।"

अपने शक्तिशाली साथियों को उसने बुला भेजा। चेदी के दामघोष,

विदर्भ के राजकुमार रुक्मि, त्रिगर्त के सरदार वरद, राजा शाल्व और अन्य कइयों को मथुरा पर चढ़ाई करने में सहयोग देने के लिए उसने आमन्त्रण दिया। वसुदेव के दोनों पुत्रों को उनके घोर अपराध के लिए दंड देना परम आवश्यक था। संदेशवाहक एक देश से दूसरे देश में गये, तैयारियाँ होने लगीं, चातुर्मास पूर्ण होने पर मगध के सम्राट् ने मथुरा पर चढ़ाई शुरू कर दी।

जरासंध जब मथुरा से कुछ ही दिनों के फासले पर रह गया, तब यादव सरदारों को सूचना मिली कि शक्तिशाली सम्राट् जरासंध अपने दलबलसहित मथुरा पर चढ़ा आ रहा है और उसकी एक ही स्पष्ट माँग है, "कृष्ण और बलराम के मस्तक काटकर हमें दो।"

बलराम सांदिपनि के आश्रम से शीघ्र वापस आ गये। कृष्ण भी पुनर्दत्त को गुरु के सुपुर्द कर मथुरा लौट आये। पाताल में वैवस्वतपुरी से चामत्कारिक संयोगों से वे पुनर्दत्त को वापस लाये थे, इसकी खबर राजधानी में विद्युत्वेग से फैल गयी। इससे लोग परम उत्तेजना का अनुभव कर रहे थे। कृष्ण का स्वागत सारे नगरवासियों ने किया। राजा उग्रसेन सबसे आगे थे। नगर में उत्सव मनाया गया। यादवों ने सर्वानुमति से वसुदेव के इस अठारह-वर्षीय पुत्र को अपना सरदार बनने का आमंत्रण दिया।

अब तक कंस के नेतृत्व में, मगध के सैनिकों की शक्ति से विकसित, मथुरा की स्थिति शोचनीय थी। राजा उग्रसेन वृद्ध और निर्बल थे। अक्रूर संत थे। वसुदेव आवश्यकता से अधिक भले थे। वृद्ध वाहुक, अंधक और प्रद्योत मृत्यु को प्राप्त हो गये थे। अपने नगर में वापस आये हुए यादव बिखरे हुए और असंतोष से भरे थे।

कृष्ण ने पहले तो सरदार बनने से इन्कार किया और बलराम को यह पद देने की सूचना दी। परन्तु यादवों को यह भाया नहीं। स्वयं बलराम भी अपने भाई की शक्ति से परिचित थे। उन्होंने नेतृत्व संभालना अस्वीकार कर दिया।

मथुरा में इस समाचार से कि जरासंध की सेना वायुवेग से मथुरा की ओर आ रही है, एक भय की भावना फैल गयी। राजा उग्रसेन ने मुख्य-मुख्य सरदारों से रचित युद्ध-समिति बुलायी। ज्येष्ठों में वसुदेव, अक्रूर, दुर्गपाल, विकद्रु इत्यादि थे—तरुण सरदारों में गद और शंकु मुख्य थे। कृष्ण राजा के दाहिनी ओर बैठे थे। उनकी बगल में बलराम और उद्धव

थे। उनकी बायीं ओर महर्षि गर्गाचार्य विराजमान थे। महाराज उग्रसेन ने गुप्तचरों से जरासंध की सैन्यशक्ति के बारे में समाचार प्राप्त किये। जरासंध के साथी-सामन्तों में कितने वफादार हैं, सेना कितने समय तक घेराबन्दी करने में समर्थ है, और जरासंध ने बलराम तथा कृष्ण के वध के लिए कैसी प्रतिज्ञा की है इत्यादि सारी बातें उन्हें गुप्तचरों से ज्ञात हुईं। इन समाचारों को सुनकर यादव-सरदार खामोश हो गये। राजा उग्रसेन ने पूछा, "विकद्रु, यदि मथुरा पर घेराबन्दी की जाए तो हम कितने समय तक टिक सकते हैं?"

क्षण भर तो विकद्रु नीचे ताकता रहा—फिर कुछ विचारने के बाद बोला, "स्वामी, सत्य कथन के लिए क्षमा करें, पर ऐसी स्थिति में आत्म-वंचना तो आत्महत्या के समान है।" फिर कुछ हिचकिचाकर उसने कहा "राजा कंस को अपने श्वसुर जरासंध की शक्ति पर भरोसा था, इसलिए मथुरा की रक्षा के लिए उन्होंने कुछ किया नहीं। दुर्ग की पूरी मरम्मत भी नहीं हुई है। वर्षों से खाइयों की ओर किसी ने ध्यान तक नहीं दिया। हमारे पास पर्याप्त शस्त्र नहीं। घेराबन्दी यदि दीर्घ काल तक रही तो हमें अन्न-संकट का सामना भी करना पड़ सकता है।"

"प्रभु! प्रभु!" राजा उग्रसेन ने कहा।

"इतना ही नहीं। कंस के भय से मथुरा छोड़कर जो यादव गये थे और जो अब वापस आ गये हैं, वे हमारे अनेक प्रयत्न करने पर भी असन्तुष्ट ही बने हुए हैं। वे समझते हैं कि दूसरों का चाहे कुछ भी हो, पर हमारा ध्यान सबसे पहले रखा जाना चाहिए। यदि हम जरासंध का सामना करेंगे तो सम्भव है नगरवासी इसका विरोध करें। सामान्य लोगों में वीरत्व का अंश अधिक नहीं होता, उन्हें तो केवल अपनी रक्षा की ही पड़ी रहती है। यदि उन्हें अधिक सहन करना पड़े तो अपने रक्षकों के प्रति उनमें अधिक आदरभाव नहीं रह जाता।"

इसके बाद जब अक्रूर ने हस्तिनापुर के समाचार सुनाये तब तो सभी गहरे विचार में पड़ गये। अक्रूर ने गम्भीर स्वर में कहा, "आप सभी जानते हैं कि हमारे साथियों ने ऐन वक्त पर हमें त्याग दिया है। चेदी के राजा दामघोष की नीति यह है कि गुप्त रीति से वह हमें शस्त्र देते हैं, पर चढ़ाई में जरासंध के साथ हैं। हस्तिनापुर से मैं खाली हाथ लौटा हूँ। प्रतापी भीष्म ने हमारी बातें सहानुभूति से सुनी, परन्तु सहायता देने को वे तत्पर नहीं

हुए। राजा धृतराष्ट्र ने टाल-मटोल की। राजा दुर्योधन को लगता है कि हम पाण्डुपुत्रों का पक्ष लेते हैं, उन्होंने साफ तो नहीं कहा, पर उनके बर्ताव में स्पष्ट था कि उन्हें इस बात का भय है कि मथुरा की शक्ति बढ़ेगी तो पाण्डवों का प्रभाव भी बढ़ेगा।"

"यह तो स्पष्ट है कि हम अधिक दिन नहीं टिक सकेंगे," राजा उग्रसेन ने कहा।

"मुझे तो लगता है कि मथुरा का घेरा मात्र चार-आठ दिन टिक जाये तो..." विकद्रु ने कहा।

"कृष्ण ने हमारे युवकों को युद्ध की शिक्षा देना प्रारम्भ किया है, परन्तु अभी वे तैयार नहीं," वसुदेव ने कहा।

कृष्ण ने हाथ जोड़कर चर्चा में विक्षेप करने के लिए क्षमा माँगते हुए कहा, "स्वामी, मैं लोगों के बीच घूमता-फिरता हूँ और वस्तुस्थिति से परिचित हूँ। युद्ध शस्त्रों से नहीं, हिम्मत से लड़ा जाता है, और मथुरा में अपनी भूमि की रक्षा के लिए मस्तक देने की क्षमतावाले वीर कम ही हैं।"

राजा उग्रसेन ने दीर्घ निःश्वास ली।

"मामा कंस के जीवनकाल में जो प्रभाव यादवों में था वह द्वेष से उद्भूत था। दमन के सामने संगठित होकर लड़ने की दृढ़ इच्छा उनमें न थी," कृष्ण ने कहा।

"सही है।"

"यह दृढ़ इच्छा अब भी उत्पन्न की जा सकती है, परन्तु उसमें समय लगेगा। विकद्रु ने जो कहा, वह सच है। जरासंध के सामने लड़ने या मथुरा की रक्षा करने में हम असमर्थ हैं," कृष्ण ने कहा।

"बिल्कुल ठीक!" उग्रसेन ने कहा, "दुर्भाग्य से यह भी संभव नहीं कि मथुरा के आसपास के कोई नरेश हमारा सहायता करे। वासुदेव, अब तो तुम ही हमारे तारणहार हो—तुम ही हमारी सेना के सरदार हो। तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वही करो।"

"कृष्ण, हमें तुम पर पूरा भरोसा है, तुम्हारी दीर्घ दृष्टि और समझदारी में अटूट विश्वास है, इसलिए तुम्हीं हमारा मार्गदर्शन करो," वसुदेव ने कहा।

"पिता, कौनसा मार्ग हम अपनाये, इस विषय में मुझे लेश मात्र भी

संशय नहीं। शत्रुओं का प्रतिकार करने में हम असमर्थ हैं। जरासंध को केवल हम दो की आवश्यकता है, हम यदि यहाँ न रहें तो वह मथुरा पर आक्रमण नहीं करेगा। इसलिए उत्तम मार्ग यही है कि बलराम और मैं यह नगर छोड़कर कहीं चले जायें। हम यहाँ नहीं हैं, यह जानकर जरासंध मथुरा की घेरेबन्दी करने में समय नहीं गवाएगा। वह हमारा पीछा करेगा," कृष्ण ने कहा।

'पर तुम जाओगे कहाँ ? उसका साम्राज्य विशाल है और दूर सह्याद्रि तक उसके साथी फैले हुए हैं,' अक्रूर ने कहा।

"हमारी चिंता न करें! हमें कुछ भी होनेवाला नहीं है। जरासंध की शक्ति असीम है, परन्तु धर्मरहित सत्ता अधिक दिनों तक नहीं टिक सकती। मैं अपनी नजर के सामने जरासंध का अन्तकाल देख रहा हूँ, परन्तु वह क्षण अभी आया नहीं," कृष्ण ने कहा।

"पर, जरासंध तो कुछ ही दिनों में यहाँ आ पहुँचेगा," अक्रूर ने कहा।

"हम लोग तत्काल यहाँ से चल देंगे। विकद्रु तो सभी देशों में घूम आये हैं, हमें कहाँ जाना चाहिए इसकी सलाह वही हमें दें," कृष्ण ने कहा।

वासुदेव, तुम सचमुच ही दूरदेशी और समझदार हो। तुमने जो बताया यही मार्ग उत्तम है।"

'परन्तु वे सुरक्षित कहाँ जा सकेंगे ?" वसुदेव ने पूछा, "चेदी का राजा मेरा बहनोई होते हुए भी जरासंध का मित्र है। विदर्भ का भीष्मक और विशेषकर उसका पुत्र रुक्मि तो जरासंध के आश्रितों जैसे हैं।"

"इन लोगों के साम्राज्य के उस पार सह्याद्रि की गगनचुम्बी गिरिमाला है, जिसके पार वेण्या के तट पर करवीरपुर स्थित है। अपने पूर्वज माधव के अपर-भाई पद्मवर्मा ने इस नगर की स्थापना की थी। उनका वंशज राजा शृगालव अपना सम्बन्धी है, वह तुम्हारा स्वागत करेगा।"

"शृगालव हमारा क्या लगता है ?" सारी बातचीत में अब तक कुछ भी रस न लेनेवाले बलराम ने पूछा।

बलराम, अब तुम्हें शृगालव को पहचान लेना चाहिए। वासुदेव, तुम्हें मालूम है, हमारे यादवकुल का विस्तार कहाँ-कहाँ तक हुआ है ?'

"हाँ, अन्य देशों में रहनेवाले यादवों की बात तुम्हें इन दोनों को बता देनी चाहिए," वसुदेव ने कहा।

"मुझे यह बात तुम्हारे दोनों पुत्रो को बहुत पहले ही बता देनी थी; और अब तो ये वहाँ जा ही रहे है। कौन जाने, कब तक इन्हे वहाँ रुकना पड़े ? इसीलिए अभी ही बता देना उचित है। कृष्ण, तुम हमारे अग्रज हो, तुममे मात्र यादवो की ही नही, सारे आर्यों की आशा केन्द्रित है। इस समय जो कुछ मै तुम्हे कह रहा हूँ, वह शायद तुम्हारे काम आयेगा।"

"काका विकद्रु, अन्य भूमियो मे बसनेवाले यादवो के विषय मे आप जो कुछ जानते है, उसे सुनने के लिए मैं उत्सुक हूँ," कृष्ण ने विनयपूर्वक कहा।

"तो सुनो," विकद्रु ने कहा, "सम्राट् ययाति के वंशज राजा हर्यश्व का विवाह दैत्य मधु की पुत्री मधुमती से हुआ था, उन्हे आनर्त तथा सौराष्ट्र भेट मे मिले। उन्होने ही गिरिनगर की स्थापना की। नागराज धूम्रवर्ण की पाँच पुत्रियो से उनके पाँच पुत्र हुए। उनमे से मुचुकुन्द ने विन्ध्य मे महिष्मती तथा पुरिका की स्थापना की, पद्मवर्मा ने वेण्या मे करवीरपुर की स्थापना की, सरस ने क्रौंचपुर बसाया, हरि को उसके नाना की ओर से जो द्वीप मिला उसके सागर-तट पर मोती पाये जाते है। पाँचवाँ पुत्र था माधव। तुम्हारे इसी पूर्वज माधव का पुत्र सत्वत था और सत्वत का पुत्र भीम। भीम के समय मे मधुवन मे मधु दैत्य के पुत्रो का शासन था। रामचन्द्र के छोटे भाई और दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न ने मधु के पुत्रो का नाश कर मथुरा की स्थापना की। इसके बाद भीम ने शत्रुघ्न के वंशजो से मथुरा वापस ले ली, और इस प्रकार मथुरा यादवो की नगरी बनी।

"इसके बाद तुम्हारे प्रतापी पूर्वज भीम के अधक नामक पुत्र हुआ। अधक के पुत्र रेवत ने सौराष्ट्र के गिरिनगर मे शासन किया, तब से वह रैवतक के नाम से विख्यात है। रेवत का पुत्र था रीक्ष और उसका पुत्र था विश्वगर्भ। विश्वगर्भ शूर और बभ्रु के पिता थे। उनके पुत्र वसुदेव और अक्रूर है। इस प्रकार तुम्हारा वंश प्रतापी है, यह कभी न भूलना। आनर्त और सौराष्ट्र मे तथा विन्ध्य और सह्याद्रि मे तुम्हारे कुलबधु है।"

"पर, जरासंध मेरे दोनो पुत्रो का पीछा करे और शृगालव हार जाय, तो इनका क्या होगा ?" वसुदेव ने चिन्तातुर होकर पूछा।

"पिता, आप हमारी चिन्ता न करे। जिनकी धर्म रक्षा करना है उनका अहित कोई नही कर सकता।"

"वहाँ तो धर्म के साक्षात् अवतार, और प्रतापी जमदग्नि के पुत्र महा-

भार्गव विराजते हैं," गर्गाचार्य ने कहा, "वैसे तो वह शूर्पारक मे रहते है पर सह्याद्रि के राज्यो मे भी आते-जाते रहते है। मै उनसे मिलूँगा और तुम्हारी सँभाल रखने के लिए कहूँगा।

"महाभार्गव हमारी सहायता किस प्रकार कर सकेगे ? उन्होने तो शस्त्र-सन्यास ले लिया है," बलराम ने कहा।

"फिर भी उनकी प्रज्ञा राजाओ के कालसमान परशु से अधिक प्रबल है।"

कृष्ण ने निर्णयात्मक स्वर मे कहा, "हमे बातचीत मे समय नही गँवाना चाहिए। कल सवेरे पहली किरण के फूटते ही हम नगर छोड देगे। हमारे जाने के बाद एक दिन और एक रात बीत जाये, तब आप जरासध को सदेश भिजवा दे कि यदि तुम्हे बलराम और कृष्ण मे मतलब है, तो वे मथुरा मे नही है। उनकी खोज तो अब अन्यत्र ही करनी होगी। वे पला यन कर गये है। जरासध इतना अभिमानी है कि वह हमारा पीछा करेगा और मथुरा उसके क्रोध से बच जायेगी।

१३

मार्ग मे

कृष्ण माता देवकी से विदा लेने गये। माँ को उन्होने साष्टाग दण्डवत्-प्रणाम किया। देवकी ने अश्रुपूर्ण आँखो से कृष्ण की ओर देखकर कहा, "वत्स, क्या कभी मै तुम्हे अपने पास नही रख सकूँगी ? क्या तुम्हारी चिन्ता से मुक्त होने का अवसर कभी नही मिलेगा ?"

देवकी के ये करुणाजनक शब्द सुनकर कृष्ण ने कहा, "माँ, आज जो कुछ घट रहा है, उसके पीछे कुछ हेतु अवश्य होना चाहिए। यदि जरा-सध को मेरी हत्या करने का शौक न चढा होता तो ऐसी अद्भुत यात्रा पर निकलने का अवसर ही मुझे कहाँ से मिलता ? आज विकद्रु काका ने मुझे जब सारी बाते बतायी तब मुझे खयाल आया कि मेरे सामने कितना

भगीरथ कार्य करना पडा है ।"

"तू भी अद्भुत है गोविन्द । तुझे किसी बात मे भी चिन्ता नही होती ।"

"मैं क्यो चिन्ता करूँ ? यह सब इसीलिए तो होता है कि मैं स्वय आपत्तियो को निमन्त्रण देता हूँ । मैं उनको राह देखता हुआ नही बैठा रहता । और फिर माँ, यह तुम क्यो भूल जाती हो कि जिनकी आज्ञा से सागर ने भी मार्ग दे दिया था, वे महाभार्गव हमारी रक्षा करेंगे ।"

"तुम्हारे साथ कोई नही जायेगा ?" देवकी ने पूछा ।

"नही माँ, हम दोनो अकेले ही जायेंगे । इससे किसी का ध्यान हमारी ओर आकर्षित नहीं होगा । उद्धव हमारे साथ कुण्डिनपुर तक आयेगा, फिर आगे बढकर करवीरपुर के राजा को हमारे आगमन की सूचना देगा," कृष्ण ने कहा ।

"वत्स, शीघ्र ही लौट आना," देवकी ने किसी प्रकार अपने आँसू रोकते हुए कहा, "और हिम्मत न हारना ।"

"माँ, इतना विश्वास रखना कि तुम्हे किसी भी दिन लज्जित होना पडे, ऐसा कोई काम मैं नही करूँगा । तुम सब मुझे देव कहते हो । शायद मैं देव हूँ तो भी इसका कारण यही है कि मुझे एक देवी ने जन्म दिया है," कृष्ण ने एक प्रेरक मुस्कान के साथ कहा, 'यह मैं कभी नही भूलूँगा । यही मेरा सबसे बडा बल बना रहेगा ।"

कृष्ण जब वहाँ से विदा हुए, तब देवकी की सुश्रूषा मे रहनेवाली त्रिवक्रा बाहर उद्धव के साथ कुछ बात कर रही थी । उसने कृष्ण का चरण-स्पर्श किया और पुष्पाजलि अर्पित की ।

"प्रभु, मुझे कभी-कभी याद कर लेना," त्रिवक्रा ने सजलनेत्र होकर कहा ।

"जहाँ भी फूल की सुगध मेरा स्पर्श करेगी वही मुझे तुम्हारी स्मृति हुए बिना नहीं रहेगी । त्रिवक्रा, मैं तुम्हे कभी नही भूल सकता क्योंकि तू सदा मेरा ही विचार करती है," कृष्ण ने कहा और विदा ली ।

पौ फटने से पहले ही कृष्ण, बलराम और उद्धव मथुरा के उत्तम अश्वों पर आरूढ होकर अपनी विचित्र यात्रा पर निकल पडे थे ।

राजकुमारी रुक्मिणी के रोष का पार न था । उसके भाई रुक्मी को

जरामध के यहाँ से आमत्रण आया था। जरामध कृष्ण और बलराम के मस्तक की माँग के साथ मथुरा पर चढाई कर रहा था। रुक्मी को इसी मे साथ देने के लिए बुलाया गया था।

रुक्मिणी अब अपूर्व सौन्दर्य मे मडित युवती बन चुकी थी। उसके व्यक्तित्व मे महारानी की छटा थी। उसका मनोबल असाधारण था। अपने दादा कैशिक के प्रति उसके हृदय मे अत्यन्त आदर था। उसके पिता भीष्मक आवश्यकता से अधिक भोले और भले थे। यह रुक्मिणी को अच्छा नही लगता था। शासन का भार अपने हाथ मे ले लेनेवाले अपने भाई रुक्मी के लिए उसके मन मे भारी तिरस्कार था। वह चाहती थी राजकुल मे सम्बन्धित विषयो मे उसकी अपनी आवाज भी सुनी जाय।

रुक्मी ने परशुराम के पास युद्ध-कला सीखी थी। वह कुशल योद्धा था। इस बिगडे दिमाग और महत्त्वाकाक्षी युवक ने अपने पिता की निर्बलता का लाभ उठाकर कस के साथ हाथ मिलाया था और जरामध का वर्चस्व स्वीकार किया था।

कस के अवसान के पहले तो ऐसा लगता था मानो भाग्यदेवी रुक्मी से रूठ गयी है, परन्तु फिर उसे इस घटना मे अपनी महत्त्वाकाक्षा की वृद्धि का अवसर दिखायी दिया। वह गिरिव्रज गया और सम्राट् से अपनी सेवाएँ स्वीकार करने के लिए उसने प्रार्थना की। जरामध ने उसे अपने महत्त्वपूर्ण सामत के रूप मे स्वीकार किया। इससे उसे सम्राट् के सहायक बनने का ही नही बल्कि कृष्ण के साथ बदला लेने का भी मौका मिला। रुक्मी अभी तक इस ग्वाले द्वारा किया गया अपना अपमान नही भूला था।

रुक्मिणी इससे अपरिचित नही थी। वह भी इस ग्वाले को भूल न सकी थी। उसके नादान भाई को उसने जो शिक्षा दी और मथुरा के यादवो को कस के चगुल से मुक्त किया, वह उसे अभी तक याद था। कृष्ण कितने स्नेह से अपनी माँ देवकी के आलिगन मे समा गया था! उन्होने यादवो का राज्य भी अस्वीकार कर दिया था। मथुरा मे त्रिवक्रा से साथ उसकी मित्रता हो गयी थी। उन दोनो को जोडनेवाली कडी कृष्ण ही थे। बहुत बार यज्ञ इत्यादि कार्यो के लिए ब्राह्मणो द्वारा वह अपना सदेश उनके पास भेजती थी।

रुक्मिणी के भाई और पिता को कृष्ण के विषय मे जो खबरें मिलती

थी, इससे उसकी छाती गर्व से फूल जाती थी। कृष्ण ने पुण्यजन दैत्य का संहार किया, वैवस्वतपुरी के राज्य को पराजित किया और सांदीपनि के पुत्र को लौटा लाये—यह सब पराक्रम-कथाएं उसकी कृष्ण-भक्ति को दृढ़ बना रही थी। कृष्ण का विचार जब भी उसे आता तभी उनकी मोहिनी सूरत उसकी आँखों के सामने छा जाती और वह निःश्वास लेने लगती। कभी वे मात्र ग्वाला ही थे। उनके पिता केवल यादव सरदार थे, जबकि वह स्वयं एक राजकुमारी थी और अपने भाई की सम्राट् बनने की महत्त्वाकांक्षा में यथेष्ट सहायक बन सके, ऐसे किसी शक्तिशाली राजा के अन्तःपुर में ही दिन बिताने को मजबूर की जानेवाली थी। परन्तु नवीनतम समाचार जो उसे मिले उससे वह अत्यन्त व्याकुल हो उठी। जरासंध ने कृष्ण और उसके भाई की हत्या करने का निर्णय किया था। उसका अपना भाई जरासंध की सहायता के लिए जानेवाला था। रुक्मिणी अत्यन्त आवेशित हो उठी। वह अपने पिता और भाई के पास तूफान की तरह पहुंची।

"रुक्मी, तुम्हें कृष्ण का वध करने के लिए नहीं जाना है। तुम्हारा उन्होंने क्या बिगाड़ा है? जरासंध के इस कुचक्र में तुम क्यों साथ दे रहे हो?" रुक्मिणी ने अधीर होकर पूछा।

"तू अन्तःपुर में ही रह। राज्य की बातों में टाँग अड़ाने की कोशिश मत कर," रुक्मी ने रोषपूर्वक कहा।

"क्यों नहीं? जिस प्रकार यह तुम्हारे पिता का राज्य है, उसी प्रकार मेरे पिता का भी है।" उसकी सुन्दर आँखें क्रोध से चमक रही थीं। "पिताजी, आप क्यों इसकी बात सुनते हैं! आप जानते हैं, यह क्या कर रहा है? यह आपको जरासंध का सामन्त बनाने जा रहा है!"

"तू राजनीति को क्या समझे," रुक्मी ने कहा। "आज कुण्डिनपुर का प्रभाव इसीलिए बढ़ रहा है कि हमने मगध के सम्राट् से संधि की है। मैं तुझे भी किसी दिन साम्राज्ञी बनी देखना चाहता हूँ," उसने कहा।

"मुझे तुम्हारी किसी मेहरबानी की जरूरत नहीं है। पिताजी, आप इस जंगली को क्यों कुछ नहीं कहते?" रुक्मिणी ने कहा।

"पुत्री, आवेश में न आ! जरासंध के साथ झगड़ा करना हमारे लिए सम्भव नहीं। यदि हम उसके मित्र न रहे तो वह विदर्भ का नाश कर देगा, मेरे पिता कैशिक के काल में जिस प्रकार किया था, उसी प्रकार।"

"कायरो ! कायरो !! " राजकुमारी ने क्रोधावेश में आकर कहा और बाहर निकलते-निकलते बोली, 'यदि मैं पुरुष होती तो बता देती।" रुक्मी उत्तर में तिरस्कार से हँसा।

रुक्मिणी पितामह कैशिक के पास गयी। कैशिक तथा उनका भाई क्रथ जरासंध के विदर्भ पर आक्रमण करने के बाद राज-प्रवृत्तियों से निवृत्त हो गये थे। उनके पास बैठकर रुक्मिणी ने अपने भाई की खूब टीका की और अन्त में रो पड़ी।

"पुत्री, ये सब पुरुषों की बातें हैं। तू क्यों चिन्ता करती है। तुझे तो तेरा पाणिग्रहण करने को उत्सुक किसी युवक की ही प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

"मेरे भाग्य में तो वह प्रतीक्षा भी नहीं है। रुक्मी किसी सत्ता के सौदे में प्यादे की तरह मेरा उपयोग करेगा। वह जो पति खोजेगा, वह रुक्मी की तरह ही मूर्ख होगा," रुक्मिणी ने कहा।

"पुत्री, तू सुन्दर है, बुद्धिशाली है, समझदार है। मुझे विश्वास है, तेरे लिए स्वयंवर की रचना होगी और तू उसमें अपने लिए श्रेष्ठ वर का चुनाव कर सकेगी।"

"यदि रुक्मी निमन्त्रण देने बैठा तो स्वयंवर में श्रेष्ठ व्यक्तियों को वह बुलायेगा ही नहीं। मैंने राजकुमारी के रूप में जन्म लिया है, यही मेरा दुर्भाग्य है। मैं तो विनिमय की सम्पत्ति हूँ।" रुक्मिणी ने कहा, 'परन्तु मैं कह देती हूँ कि मैं रुक्मी की बाजी का प्यादा कभी नहीं बनूँगी।"

रुक्मी जरासंध की सेना में जा मिला। रुक्मिणी दिन-रात इसी चिन्ता में घुली जा रही थी कि देवकी के उस श्यामवर्ण पुत्र गोविन्द का क्या हुआ होगा? रह-रहकर उसकी मधुर मुस्कान रुक्मिणी की आँखों के सामने छा जाती। एक बार पुरोहितजी ने रुक्मिणी को बचपन में पालन करनेवाली वृद्ध दासी के हाथ संदेश कहलवाया।

'राजकुमारी, त्रिवक्रा ने तुझे सन्देश भेजा है,' वृद्ध दासी ने कहा।

"त्रिवक्रा! माँ, शीघ्र कह कि उसने क्या कहलवाया है?" रुक्मिणी का हृदय किसी अनिष्ट की आशंका से धड़कने लगा। कहीं कृष्ण को कुछ नहीं हुआ हो!

"एक युवक उसका सन्देश लेकर आया था। वह कहता है कि तुम उसे पहचानती हो। उसका नाम उद्धव है।"

"हे भगवान्! उद्धव ! सच वह उद्धव है! वह [illegible] नरेश

लेकर आया है ?" रुक्मिणी अधीर हो गयी ।

"गुरुदेव को कुछ भी बताने से उसने इन्कार कर दिया । वह केवल तुमसे प्रत्यक्ष मिलकर ही सन्देश कहेगा," वृद्धा ने कहा ।

"गुरुदेव से कहो, उसे लेकर पितामह के पास आयें । मैं भी वहीं जा रही हूँ," रुक्मिणी ने कहा । वह तत्काल पितामह के पास गयी और उनसे कहा कि माता देवकी ने कोई सन्देश-वाहक भेजा है । वृद्ध कैशिक देवकी के प्रति रुक्मिणी के भाव को जानते थे । इसलिए सन्देश-वाहक से गुप्त रीति से मिलने के लिए राजी हो गये । रुक्मिणी को मालूम था कि पितामह उसे हृदय से चाहते हैं । वास्तव में अपनी माता की मृत्यु के पश्चात् किसी भी मुश्किल में अपने पितामह से ही उसे आश्वासन मिलता था । दोपहर को उद्धव कैशिक और रुक्मिणी के सामने हाजिर हुए ।

"मैं मथुरा से वहाँ के राजा और माता देवकी का सदेश लेकर आया हूँ । जरासंध की सेना मथुरा पर चढ़ी आ रही है । कृष्ण और बलराम को वह पकडना चाहता है । इस घेरेबन्दी के सामने टिके रहने की शक्ति मथुरा मे नही, इसलिए कृष्ण और बलराम ने शहर छोडकर जाने का निश्चय किया है,' उद्धव ने कहा ।

रुक्मिणी ने राहत की साँस ली ।

"वे महेन्द्र पर्वतो मे जा रहे हैं । वहाँ वे महाभार्गव से मिलेंगे । कुछ दिनो मे पैदल चलकर वे यहाँ पहुँचेंगे । मैं घोडे पर बैठकर माता देवकी का सन्देश राजकुमारी के लिए लाया हूँ ।"

पितामह ने देखा कि पौत्री के मुख पर लज्जा की अरुणिमा छा गयी है। यह लडकी सभी का मन जीतने मे चमत्कार दिखाती है, उन्होंने सोचा ।

'है ?" कैशिक ने पूछा ।

"माता देवकी ने पुछवाया है कि कृष्ण तथा बलराम विदर्भ मे से सुरक्षित निकल सके, ऐसा प्रबन्ध क्या राजकुमारी कर सकेगी ?"

राजकुमार रुक्मी जरासंध की सेना के साथ है, यह सभी को अज्ञात था ।

"पितामह, माता देवकी के पुत्रो की रक्षा का प्रबन्ध हमे करना ही चाहिए ।"

"पुत्री, तेरे पिता इस बात को स्वीकार नही करेंगे । तेरा भाई तो उन लोगो का वध करने गया है ।"

"परन्तु मेरे पितामह उनकी रक्षा का प्रबन्ध कर सकेंगे उनकी पौत्री इसमे उनकी सहायता करेगी।" रुक्मिणी ने हँसकर कहा।

"नही, मुझसे यह नही हो सकेगा। रुक्मी को मालूम होगा तो वह क्रोधित हो जायेगा।"

रुक्मिणी का चेहरा तमतमा उठा। उसकी आँखोमे अश्रुधारा निकली। करुणार्द्र स्वर मे उसने कहा, "इस दुनिया मे मेरा कोई नही! न पिता, न भाई, न पितामह! हे माँ, जब तू स्वर्ग सिधारी तो मुझे भी अपने साथ क्यो नही ले गयी।" अपने दोनो हाथो से उसने अपना मुँह ढक लिया और सिसकियाँ भरने लगी। वृद्ध पितामह का हृदय अनुकम्पा से द्रवित हो उठा।

"पुत्री, रो मत। अपने आसू पोछ डाल। तू जैसा कहेगी, वैसा ही मैं करूँगा। बस, अब तो राजी है न!" उन्होने रुक्मिणी के सर पर प्यार से हाथ फेरा, और उद्धव की ओर मुडकर कहा, "उद्धव! अपनी पोशाक बदल डालो और ब्राह्मण का वेष धारण कर यही रहो। वसुदेव के पुत्र जब यहाँ आये तब उन्हे भी यही ले आना। वे जब तक विदर्भ मे रहेगे, तब तक उनकी रक्षा का भार मुझ पर रहेगा।"

कुछ दिनो के बाद दो वल्कलधारी सन्यासी उद्धव के साथ कौशिक के महल मे आये। कौशिक ने उनका प्रेम से स्वागत किया। रुक्मिणी उन्हे भोजन परोसने आयी। वही मोहक मुस्कान! वही सुन्दर वदन! और वही बाँकी छटा। वह गद्गद् हो उठी। उसका हृदय जोरो से धडकने लगा। रुक्मिणी ने उनकी रक्षा के लिए जो कुछ किया, उससे कृष्ण अजान नही थे। कृष्ण ने एक मधुर मुस्कान के साथ रुक्मिणी की ओर देखा। उस मुस्कान मे कृतज्ञता के भाव स्पष्ट थे।

कौशिक ने कृष्ण और बलराम से मथुरा की स्थिति के बारे मे प्रश्न पूछे और वैवस्वतपुरी मे कृष्ण के पराक्रम के बारे मे भी जानकारी प्राप्त की। कृष्ण ने सारी बाते विस्तार से बतायी। रुक्मिणी ने तल्लीन होकर इन सब चामत्कारिक सिद्धियो की कथा सुनी नाग-कन्याएँ पति से भी अधिक माता को उच्च स्थान देती है, यह बात उसे अच्छी नही लगी। फिर भी कृष्ण नाग-कन्या के वश मे न फँसे, इससे उसने सन्तोष भी कम अनुभव नही किया।

"तुमने उस नाग-कन्या को जाने से रोका क्यो नही?" कौशिक ने

पूछा ।

"मैं नाग-कन्या को सुखी नहीं कर सकता था । वह तो अपनी माता के विचारों में ही डूबी रहती है ।" कृष्ण ने कहा ।

"और, यदि उसकी माँ न होती तो ?" कौशिक ने रुक्मिणी की ओर चोर दृष्टि से देखते हुए कहा । अपनी पौत्री को चिढ़ाने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था ।

"तो वह अपने ही विचारों में डूबी रहती । प्रत्येक सुन्दर स्त्री ऐसा ही करती है । क्यों, ठीक है न ?"

कृष्ण ने हँसते-हँसते कहा । कौशिक भी खूब जोर से हँस पड़े ।

"यह इशारा तेरी ओर है रुक्मिणी" पितामह ने कहा ।

कृष्ण तो बस वैसा ही मसखरा रहा," बलराम ने हँसते हुए कहा "इसे तो बस इसी में डूबी, ऐसी पत्नी चाहिए ।"

"तब तो कृष्ण को अच्छी पत्नी मिलेगी ही नहीं," कौशिक ने कहा ।

"कौन जाने शायद ," कृष्ण ने रुक्मिणी की ओर देखा ।

यात्रियों का एक सघ करवीरपुर जा रहा था । उसमें कुण्डिनपुर से कितने ही ब्राह्मण सम्मिलित हुए । यह प्रबन्ध कौशिक ने किया था । यह दो युवक साधु भी इस सघ में शरीक हो गये

१४

भगवान् परशुराम

सह्याद्रि के शृंग जब दृष्टिगोचर होने लगे, तब कृष्ण और बलराम यात्रिक-सघ से अलग हो महेन्द्र पर्वत की ओर बढ़े । यह यात्रा अत्यन्त आनन्द-प्रद रही । मार्ग में वे जहाँ कहीं भी ठहरे, वहीं ग्रामवासियों ने उनका बड़े प्रेम से आतिथ्य-सत्कार किया । बलराम को पर्वतीय हवा अच्छी लगती । सूर्य के प्रकाश में स्नान कर रहे उज्ज्वल शृंग उनके मन को बहुत भाये । कृष्ण को तो मानो वृन्दावन के मुक्त विहार की याद आ गयी । अत्यन्त

हर्षावेश मे आकर वे दोनो बाते करने लगे।

"कृष्ण, तू तो बडा चतुर है। जरा यह तो बता" बलराम ने एक बार पूछा, "कि क्यो यह सब विचित्र हमारे ही जीवन मे घटता है, दूसरो के जीवन मे क्यो नही ?"

"हमारे जीवन अपने पूर्ण रूप मे विकसित होने के लिए निर्मित हुए है इसलिए" कृष्ण ने कहा, "यदि हमारा लालन-पालन हमारे अन्य कुटुम्बियो की तरह होता, तो आज तक हमने जो देखा है, वह कभी नही देख पाते।

"राधा को तो तू हृदय मे चाहता था, उसे छोड देने पर तुझे कभी दुख नही होता।" बलराम ने पूछा।

कृष्ण एक क्षण आश्चर्य से बलराम की ओर देखने लगे। फिर बोले, "वह तो सदा मेरे पास ही रहती है, मेरी सदा की सगिनी है, इसलिए शायद दुख नही होता।"

बलराम ने कहा, "तुझे समझना बडी टेढी खीर है। मथुरा से भाग जाने के तेरे इरादे से भी मुझे निराशा हुई है। मै तो वही रुक जाता और अन्त तक लडता।"

"भाई, हमारा कार्य तो धर्म-सस्थापन का है। केवल अपने शौर्य का प्रदर्शन कर अहकार को पुष्ट करना हमे शोभा नही देता। कई बार प्राकृत लोगो को कायरतापूर्ण लगनेवाला कार्य भी धर्म बन जाता है," कृष्ण ने कहा, "मैने परिस्थिति की वास्तविकता का निरीक्षण कर ही निर्णय लिया था। विकद्रु ने महाराज उग्रसेन के सामने परिस्थिति का प्रस्तुत किया, उसके पहले ही मैने पिताजी और अक्रूर काका के साथ चर्चा की थी। मेरा निर्णय दोनो को योग्य जान पडा।"

बलराम ने अपने छोटे भाई को समझने का प्रयास फिर नही किया। महेन्द्र पर्वत की ढलान पर कृष्ण और बलराम ने एक विशाल आश्रम देखा। एक ग्वाले से पूछने पर मालूम हुआ कि शिव के साक्षात् स्वरूप, परशुधारी महात्मा भार्गव कुछ दिन से वहाँ निवास कर रहे है। गर्गाचार्य का सन्देश महाभार्गव को मिल चुका होगा, इसकी प्रतीति दोनो भाइयो को हुई।

महाभार्गव से मिलने की घडी ज्यो-ज्यो नजदीक आ रही थी, त्यो-त्यो कृष्ण के हृदय की धडकन बढ रही थी। जिनके शिष्य भी अवस्था के कारण जर्जरित होने लगे थे, परन्तु जो स्वय वही शक्ति और वही प्रकाण्ड

वीरता धारण किये थे, ऐसे महाभार्गव को वे कुछ ही क्षणो बाद देख सकेंगे। कृष्ण ने सोचा कि महाभार्गव तो प्राचीन गौरव के जीवन्त प्रतीक है। मन जिस आदर-भाव से प्रतापी पूर्वजो का स्मरण करते थे, उसी आदर से महाभार्गव का भी नाम लेते थे। वीर पुरुष भी उनका नाम नम्रता और पूज्य भाव से उच्चारित करते थे। सभी कोई उन्हे बहुधा भगवान् के नाम से सम्बोधित करते थे। कृष्ण सोच रहे थे कि कैसा विचित्र जीवन इनका रहा है। युगान्तरो पूर्व जब पवित्र सरस्वती के तट पर वशिष्ट, विश्वामित्र और जमदग्नि जैसे महर्षियो की वाणी का प्रतिघोष गूँजता था, तब भी वे थे। आर्य प्रणाली के मूल मे आघात करते और धर्म का उद्ध्वस्त करने को तत्पर बने राजाओ को निर्मूल करने का उन्होने पुरुषार्थ किया था। जिसके हाथो मे सहस्त्रबाहु जैसा बल था, उस कार्तवीर्य का भी उन्होने हनन किया था।

उन्होने दिग्विजय किया। हिमालय के हिमाच्छादित शृगो से नर्मदा तट का पर्वतीय प्रदेश उसके नाम से काँपता था। जब उनकी कीर्ति का मध्याह्न था, तब जीती हुई पृथ्वी उन्होने काश्यप के चरणो मे रख दी, ताकि धर्मनिष्ठ राजा उसका शासन कर सके। फिर वे पश्चिम तट पर पधारे और बसने के लिए उन्होने सागर से नयी भूमि माँगी, सागर ने तुरन्त ही जगह दे दी और इस प्रकार शूर्परक का उद्भव हुआ। इस बन्दर पर सागर पार के सैकडो जहाज लगर डालने लगे। अब भी महाभार्गव केवल भूतकाल न थे। वे जीवन्त तीर्थ के समान थे, दूर-दूर से लोग सान्त्वनार्थ, बल और ज्ञान प्राप्त करने के लिए उनकी सेवा मे उपस्थित होते थे। जो कोई उनसे मिलकर जाता, उसे भगवान् से मिलने जैसा सन्तोष होता।

कृष्ण और बलराम ने पूज्य भाव से उनके आश्रम मे प्रवेश किया। एक किशोर उन्हे उस विराट् वृक्ष की ओर ले गया, जिसकी छाया मे भार्गव यज्ञ वेदी के सम्मुख स्थिर बैठे थे।

वे ऊँचे कद के और स्नायुबद्ध शरीर के थे। उनकी त्वचा पर असख्य झुर्रियाँ पड गयी थी। श्वेत दाढी और लम्बे-लम्बे घने केश उनके आधे शरीर को ढँक रहे थे। उन्होने व्याघ्र चर्म धारण कर रखा था। उनका विख्यात शस्त्र परशु उनकी बगल मे रखा था और दूसरी ओर एक बडा कमण्डलु भी था।

कुछ ही दूरी पर कुछ शिष्य गायो की रखवाली कर रहे थे। उससे दूर कुटीर थे और वहाँ कुछ तरुण तपस्वी वेद की ऋचाओ का पाठ कर रहे थे।

कृष्ण और बलराम ने महाभार्गव को देखते ही शीघ्रता से चलकर उनके चरणो मे दण्डवत् प्रणाम किया।

"हे भगवान्! परम गुरु!! हम वसुदेव के पुत्र आपके आशिष की आकांक्षा करते हैं," कृष्ण ने कहा। प्रतापी महर्षि के सामने आते ही उनका हृदय हर्ष से गद्गद् हो उठा।

"कल्याण हो! पुत्रो! मैं जानता था कि तुम मुझसे यहाँ मिलने आओगे। इसीलिए तो तुम्हारा स्वागत करने के लिए मै यहाँ आ पहुँचा हूँ," भार्गव ने बालक की तरह मुस्कराते हुए कहा। उनके शब्दो मे सहृदयता झलक रही थी। जिन आँखो मे से एक बार अगारे बरसते थे और प्रतापी राजा भी जिनसे काँपते थे, उन्ही आँखो से आज ममता और स्नेह की धाराएँ बह रही थी। "तुम दोनो के बारे मे मैने बहुत-कुछ सुना है, परन्तु पहले जाओ, स्नान, सध्या, भोजन इत्यादि से निवृत्त हो आराम करो, फिर बात करेंगे।" तब एक अत्यन्त वृद्ध दिखनेवाला शिष्य आया और उन्हे कुटीर की ओर ले गया।

नित्यकर्म से निवृत्त हो कृष्ण और बलराम गुरु-चरणो मे आ बैठे और किन सयोगो मे उन्होने मथुरा छोडी, और किस प्रकार वे यहाँ पहुँचे, इसकी चर्चा की

"तुमने ठीक ही किया। धर्म की पुकार पर ही बलिदान देना आवश्यक है। उसके बिना जो बलिदान दिया जाता है, वह अहकार अथवा धर्म से भागने की कायरता ही कहा जायेगा।"

"ससार तो यही कहेगा कि हम कायर की तरह भाग गये है," कृष्ण ने कहा।

"ससार तो अधिकाशत गलत ही सोचता है। कई बार कर्म मे वीरता होती है, तो कई बार कर्म से दूर रहने मे भी वीरता होती है। तुमने उचित ही निर्णय किया," भार्गव ने कहा।

"भगवान्, आपके आशीर्वाद से हम करवीरपुर के राजा शृगलव के यहाँ आश्रय पाना चाहते है। वे यादव है," कृष्ण ने कहा। 'शृगलव कभी तुम्हारी सहायता नही करेगा," महाभार्गव ने कहा, "वह स्वार्थी, क्रूर और अहभावी है। वह स्वय को देवाधिदेव मानता है। पडितो और आचार्यो का अनादर करता है। यदि तुम सभी देवो का अनादर कर उसे ही देव-महादेव मान लो, तभी वह तुम्हारी सहायता करेगा, और आश्रय देने के

बाद भी जरासंध के साथ तुम्हारा सौदा करने में नहीं हिचकिचायेगा। फिर वह महान् धनुर्धारी भी है, और उसे इस बात का गर्व है।"

"परन्तु हम करवीरपुर न जाकर और कहाँ जा सकते हैं?" बलराम ने पूछा।

"तुम्हारे पलायन की खबर सुनकर जरासंध क्या करेगा अनुमान लगा सकते हो?" भार्गव ने पूछा।

"मुझे लगता है वह मथुरा के यादवों को सतायेगा नहीं। उसे तो केवल हमारी ही तलाश थी। अधिक-से-अधिक वह दण्डस्वरूप बहुत बड़ा कर माँगेगा, फिर भी हमारा पीछा नहीं छोड़ेगा। हम कहाँ हैं, यह जानने के लिए प्रयत्न तथा हमें पकड़ने की हर संभव चेष्टा करेगा।"

"सम्भव है कि तुम्हें खोजता वह यहाँ तक न भी आ सके!" भार्गव ने कहा।

"शायद ऐसा हो, भगवान्! परन्तु मैंने कंस मामा का वध किया है, इससे उसकी प्रतिष्ठा को भारी धक्का पहुँचा है। मामा उसके सबसे बड़े साथी थे। उनकी मृत्यु से अन्य राजाओं पर जरासंध का प्रभाव पड़ा है। जरासंध के कितने ही सामन्तों को ऐसा लगता है कि हमारे नेतृत्व में मथुरा जरासंध के सम्राट्-पद के लिए भयजनक है।'

"तुम सचमुच बड़ी मुश्किल में पड़ गये हो। परन्तु यदि मैं तुम्हारे स्थान पर होता तो किसी राजा के पास आश्रय लेने नहीं जाता। वह तो अपने स्वार्थ के लिए तुम्हारा सौदा करने में जरा भी लज्जित नहीं होगा। तुम्हें तो स्वयं अपनी ही शक्ति बढ़ानी चाहिए," महर्षि ने कहा।

"आपके आशीर्वाद से यदि हम ऐसा कर सकें तो अति उत्तम हो!" कृष्ण ने कहा।

थोड़ी देर रुककर भार्गव ने कहा, "यहाँ से थोड़ी दूर सागर-तट पर गोमान्तक की टेकरी है। तुम्हारे निवास के लिए मुझे वह स्थान उचित प्रतीत होता है।"

"जरासंध यदि दलबलसहित वहाँ पहुँचे तो क्या वहाँ सुरक्षा हो सकती है?" कृष्ण ने पूछा।

"वह पहाड़ी दुर्गम है। अश्वरथ अथवा हाथी उस पर चढ़ नहीं सकते। ऊपर जाने का रास्ता संकीर्ण और विकट है। इसलिए संकट में वहाँ रहकर बचाव किया जा सकता है," महर्षि ने कहा और फिर बोले, "वह

बहुत सुन्दर पहाड़ी है । वहाँ सरस और स्नेहालु लोग बसते हैं । वे गरुडों के नाम से परिचित हैं । युद्ध में वे गरुड व्यूह से आगे बढ़ते हैं । इसीलिए उनका यह नाम पड़ा । उनका नायक सहृदय है । वह मेरा भक्त भी है । मैंने एक बार उनको विनाश से बचाया था । वे कभी तुम्हारा द्रोह नहीं करेंगे, न दुखी होने देंगे ।"

जमदग्नि के प्रतापी पुत्र के साथ वे गोमान्तक गये । करवीरपुर एक ओर रह गया । घने जंगल को पार कर जब वे पहुँचे, तब उन्होंने अकल्प प्रकृति सौन्दर्य से सुशोभित पहाड़ी देखी । वहाँ का वातावरण वन-सौन्दर्य और पक्षियों के कलरव से अत्यन्त मधुर बन गया था । पहाड़ी सीधी, ऊँची और दुर्गम थी । जब वे पहाड़ी पर चढ़ रहे थे, तब बलराम अपनी जिज्ञासा न रोक सके । उन्होंने पूछा, "भगवन्, आपने इन सब राजाओं पर विजय प्राप्त कर पृथ्वी को फिर उन्हें ही क्यों सौंप दिया ? यदि आप ऐसा न करते, तो यह अन्यायी राजा फिर से सर उठाने की हिम्मत नहीं करते और जरासंध का दिग्विजय का स्वप्न भी साकार नहीं होता ।"

"वत्स ! बहुत लोगों को यह एक पहेली-सी जान पड़ती है । वे नहीं जानते कि मैंने कार्तवीर्य और उसके साथियों के सामने शस्त्र क्यों उठाये ! कार्तवीर्य का बल इतना बढ़ गया था कि कोई उसके सामने टिक नहीं सकता था । उसने सनातन ऋत् की अवहेलना की और दोनों का अनादर किया । हमारी प्राचीन प्रणाली का उसने उपहास किया । वह किसी के प्रति पूज्यभाव नहीं रखता था और स्वयं को ही सर्वोच्च मानता था । अपनी इच्छा वह सब पर लादना चाहता था । वशिष्ठ जैसे महान् ऋषि के आश्रम में भी उसने आग लगा दी । हमारे आश्रम का भी उसने नाश किया और प्रतापी जमदग्नि का वध किया । आर्यों को प्राण से भी अधिक प्रिय जो सत्य है, उनका उच्छेद करने में ही उसे आनन्द मिलता था । उसका वध करना पृथ्वी की पुकार थी," महर्षि ने कहा ।

"ऐसा क्योंकर हुआ ? दूसरे सभी राजा क्या कर रहे थे," कृष्ण ने पूछा ।

"वे आन्तरिक कलह में पड़े थे । इसीलिए कार्तवीर्य का प्रभाव इतना अधिक बढ़ गया । कार्तवीर्य केवल राजा ही न था, वह दैत्य भी था । छल, बल और अहंकार में वह सबसे अधिक बढ़ा-चढ़ा था । अपने अस्तित्व

मे जीवन को ही विपाक्त बना रहा था।"

"आखिर आपने इन सब पर विजय प्राप्त की ही।"

"जब ऐसी आसुरी शक्ति बढ़ने लगती है, तब वह किसी की नही सुनती। फिर उसका विनाश कर ही देना चाहिए।"

जिस प्रकार असुर एक बार देवो के विरुद्ध सगठित हुए थे, उसी प्रकार हैहयो ने मेरे सामने मोर्चा ठाना। मैंने उन सबको पराजित किया, ऋत्, सत्य और तपस् की साधना करनेवालो के लिए सृष्टि को सुरक्षित बनाया। परन्तु मुझे सत्ता या प्रभाव की आवश्यकता नही थी। मुझे शासन नही करना था। मुझे तो केवल धर्म का पुन सस्थापन करना था। उसके पूर्ण होते ही मैने सब-कुछ त्याग दिया," महर्षि ने कहा।

"आपने जिस प्रकार अपार सत्ता का त्याग किया, वह एक परम आश्चर्य का विषय है।"

"इसमे आश्चर्य की कोई बात नही। मुझे शस्त्र-सज्जित होना पडा, क्योकि अधर्म का जड-मूल से नाश करना था। क्षात्र-तेज की आवश्यकता कभी-कभी होती है; परन्तु ऋत् के सनातन नियमो के अनुसार जगत् का सचालन हो, इस हेतु ब्राह्मतेज तो सदा आवश्यक रूप मे रहेगा," महर्षि ने कहा।

महर्षि का अनुसरण करते हुए कृष्ण और बलराम दुर्गम पहाडी की चोटी पर पहुचे। वहाँ हरियाली से भरा मैदान था और कलकल निनाद करते झरने थे। पहाडी के लोगो को जब खबर हुई कि भगवान् परशुराम पधारे है तो स्त्री-पुरुष-बालक सभी दौडे आये और उनके चरणो मे मस्तक झुकाकर आशीर्वाद माँगने लगे। किसीने फूल चढाये, तो किसी ने श्रीफल उनके चरणो मे रखे। महर्षि ने सभी से ममतापूर्वक बात की। कितनो को तो उन्होंने नाम लेकर भी पुकारा।

गरुडो का नायक अपने पुत्रो के साथ आया। उन्होंने चेहरो पर गरुडमुखी मुखौटे लगा रखे थे। राजकुटुम्ब के प्रतीक मुखौटे वे विशेष प्रसगो पर ही धारण करते थे। उनकी स्त्रियाँ भी आयी और भगवान् के चरणो मे गिरी। फिर मेहमानो को वृक्षो की शीतल छाया मे ले जाया गया और वहाँ उनका स्वागत फलो, नारियल के पानी इत्यादि से किया गया।

कृष्ण और बलराम को जब वहाँ का वातावरण अनुकूल लगने लगा

तब महर्षि ने विदा लेने की तैयारी की। जाने से पहले उन्होंने कृष्ण से कहा, "वासुदेव, तुमने जो कुछ किया, वह मुझे ज्ञात है। तुम कौन हो, यह भी मैं जानता हूँ। पर यह कभी न भूलना कि तुम्हारा कर्तव्य क्या है? तुम्हें धर्म के लिए जय प्राप्त करनी है। जीवन से जो दूर रहता है, वह धर्म नहीं। परन्तु जो जीवन को स्वीकार करता है, दैवी बनाता है वही धर्म है। तुम्हारे देश के लोग तुम्हें देवता कहते हैं—वे ठीक कहते हैं। उन्हें तुममें श्रद्धा होनी चाहिए। पर तुम्हें भी स्वयं में श्रद्धा होनी चाहिए कि तुम देव हो, तभी तुम देव बन सकोगे। मैं अब जाता हूँ। शायद फिर कभी नहीं मिलूँगा। परन्तु तुम दोनों को मेरा आशीर्वाद है। यदि तुम्हें मेरी कभी आवश्यकता अनुभव हो तो किसी गरुड को भेज देना। मैं जहाँ भी रहूँगा—वही मुझे वह खोज निकालेगा।"

इतना कहकर भगवान् परशुराम ने उनको तथा भक्तिभावी गरुडों को आशीर्वाद दिये। एक हाथ में परशु धारण कर वे पहाडी से नीचे उतरे। उनमें युवकों जैसी शक्ति थी। कभी अस्त न होनेवाली शक्ति के वे जीवन्त प्रतीक थे।

१५

बृहद्बाल, राजनीतिज्ञ के रूप में

जरासंध अपनी विशाल सेना के साथ यमुना-तट पर पडाव डाले हुए था। उसके साथ उसके साथी राजाओं की सेनाएँ भी थीं। यहाँ से मथुरा के लिए मात्र दो दिन का मार्ग रह गया था। इस पूरी सेना में दो सौ चुने हुए रथ, पचास हाथी, पाँच सौ अश्वारोही तथा दो सहस्र धनुर्धारी सैनिक सम्मिलित थे।

दोपहर का समय था। अश्वपाल अश्वों को नहला रहे थे। कुछलोग यमुना में स्नान करने गये थे, कुछ भोजन बनाने में व्यस्त थे। महावतगण

हाथियों को जल पिला रहे थे। सैनिकों की चहल-पहल चालू थी और भगवान् भास्कर के लाल प्रकाश में उनके भाले, तलवार तथा परशु चमक रहे थे।

थोड़ी दूर पर एक विशाल वटवृक्ष के नीचे जरासंध स्वयं मध्याह्न-भोजन की तैयारी में व्यस्त था। वह लम्बा तथा अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट व्यक्तित्व वाला था। मुष्टि-युद्ध में वह निष्णात् था। यद्यपि वय का प्रभाव उस पर प्रत्यक्ष प्रकट हो रहा था, तथापि अभी भी बीस वर्ष पूर्व की स्फूर्ति उसमें जीवन्त परिलक्षित हो रही थी। श्वेत हो चले उसके घुँघराले केश तथा सुन्दर ढंग से सँवारी गयी दाढ़ी उसके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बना रही थी। उसके जबड़े कठोर थे और चेहरे पर अहंकार की भयंकर छाप थी। वह निडर एवं निःसंकोच अपनी इच्छाओं को प्रकट करता। कभी-कभी परिस्थितिवश अपनी सही भावनाओं को वह अपनी दाढ़ी के भीतर ही छिपा लेता। यद्यपि उस समय वह अपने हाथ-पाँव धो रहा था, तथापि उसके समस्त शरीर पर जैसे मलिन भाव का लेप लगा हुआ था।

पांचाल के राजा द्रुपद ने जरासंध की सेना को अपने राज्य में होकर जाने की अनुमति नहीं प्रदान की और जरासंध इसे अपने अनादर की अन्तिम सीमा समझ बैठा। दूसरा कोई समय होता तो वह तत्काल काम्पिल्य पर चढ़ाई कर देता, और उसके नगर को भस्मसात कर देता, किन्तु अभी तो जिस कार्य के लिए वह कूच कर चुका था, उसे पूर्ण करना अधिक आवश्यक था।

अहंकारयुक्त मुस्कान उसके गर्वीले मुख पर अंकित हो उठी। द्रुपद को कभी निश्चित रूप से इस अवज्ञा का मूल्य तो चुकाना ही पड़ेगा परन्तु अभी उसके लिए समय आया नहीं। अभी तो वासुदेव-पुत्रों से समझना है।

कृष्ण एवं बलराम का विचार आते ही क्रोध से उसका चेहरा तम-तमा गया। इन ग्वालों ने मेरे दामाद का वध कर डाला और मेरी प्रतिष्ठा को भी धूल-धूसरित कर डाला। कुछ और करने के पूर्व इस अपमान का बदला लेना अनिवार्य है। जिस स्थान पर मैंने मथुरा के राजाओं का वध किया है, उसी स्थान पर इन ग्वालों के भी टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।

थोड़ी दूर पर कदली-पत्र पर भोजन परोसा जा रहा था। भोजन के समय जरासंध के साथ बैठनेवाले उसके मित्रगण तथा सेनापति उसकी

प्रतीक्षा कर रहे थे। जरासध ने उन पर एक तीक्ष्ण दृष्टि डाली। चेदि के राजा दामघोष अभी तक पधारे नहीं थे। दामघोष तो इस सम्बन्ध में सदैव बड़े सतर्क रहते थे। सामान्य रूप से वे भोजन के समय जरासध का स्वागत करने के लिए उपस्थित रहते ही थे। लगता था, आज कोई अनहोनी घटना घट गयी, नहीं तो उनकी ओर से विलम्ब कभी नहीं होता था।

दो सशस्त्र रक्षकों के साथ सम्राट् भोजन-स्थल पर पहुँचा। सभी मित्रों एवं सेनापतियों ने उसका स्वागत किया। मध्य में रखे ऊँचे आसन पर वह विराजमान हो गया।

"शाल्व, दामघोष कहाँ है?" अपनी बायीं ओर बैठे शाल्व से उसने पूछा और विहँसकर पुनः बोला, "उनका स्वास्थ्य तो ठीक है न?"

"सम्राट्, चेदिराज ने संदेश भेजा है कि उनके आने में विलम्ब होगा," शाल्व ने उत्तर दिया। शाल्व जरासध का श्रद्धेय साथी था। वह कपट एवं क्रूरता में कुशाग्र था। उसका शरीर शोभायमान था। उसकी दृष्टि चतुरता से भरी तथा शीघ्र ही दूसरों को भुलावे में डाल देनेवाली थी।

"मथुरा से शान्ति-दूत आये हैं," सामने बैठे जरासध से मगध के एक सेनापति ने करबद्ध होकर कहा।

"शान्ति-दूत!" जरासध की भंगिमा वक्रिम हो गयी। "मुझे तो वसुदेव के पुत्रों का मस्तक चाहिए, खाली हाथ आये दूतों का क्या काम?"

सभी चुपचाप भोजन में संलग्न हो गये। जरासध का क्रोध उमड़ता गया। इस सम्बन्ध में दामघोष कुछ बीच-बचाव करे, यह उसे अच्छा नहीं लगा। दामघोष की रानी श्रुतश्रवा प्रभावशाली महिला थी। वह वसुदेव की बहन थी। यद्यपि दामघोष बिना किसी प्रकार की आनाकानी किए जरासध की सेना में सम्मिलित हो गये थे, फिर भी उसे उन पर लेशमात्र भी विश्वास नहीं था।

इसी बीच दामघोष भी आ गये। जरासध की वन्दना कर विलम्ब के लिए उन्होंने क्षमा माँगी। वे शान्त, मधुर-भाषी एवं विनयी स्वभाव के थे।

"मथुरा के दूत तुमसे मिलने आये हैं?" जरासध ने भृकुटी टेढ़ी करके पूछा।

"नहीं महाराज, वे तो आपसे मिलने आये हैं।" मुस्कराकर दामघोष

ने कहा। उनके स्वर में स्वस्थता थी।

"क्या वे कृष्ण और बलराम का मस्तक लाये है ?"

जरासंध ने यह बात इतने ऊँचे स्वर में कही, ताकि सभी सुन सकें।

"वे दोनों किशोर तो मथुरा छोड़कर कहीं चले गये।" दामघोष ने कहा।

"क्या ?" जरासंध को महान् आश्चर्य हुआ।

"अक्रूर राजा का पौत्र बृहद्बाल तथा गद आये है। वे आपके प्रताप को स्वीकार करते हैं और अक्रूर तो कभी असत्य बोलते ही नहीं," दामघोष ने कहा।

जरासंध क्षण भर के लिए मौन हो गया। किन्तु उसके मौन का अर्थ उसके साथी कुछ और न लगा लें इसलिए उसने कहा, "मैं यह बात स्वीकार करने को तैयार नहीं। भोजनोपरान्त मैं उन लोगों से मिलना चाहूँगा।"

"जैसी महाराज की आज्ञा," दामघोष ने कहा।

"शाल्व ! रात्रि-शिविर तैयार करने के लिए क्या अपने धनुर्धारी अग्रिम रूप में भेजे जा चुके हैं ?"

"हाँ महाराज, उन्हें रात्रि को ही रवाना कर दिया गया है," शाल्व ने कहा।

भोजनोपरान्त जिस वटवृक्ष की छाया में जरासंध विश्राम करता था, वहाँ गया। उसने अपने साथ मात्र शाल्व एवं दामघोष को ही रहने की आज्ञा दी। शंखघोष कर उसने एक अधिकारी को बुलाया और मथुरा से आये राजपुरुषों को अपने समक्ष उपस्थित करने का आदेश दिया। बड़ी विकट परिस्थिति उपस्थित हो गयी थी। उसने घोषणा की थी कि कंस के वध का बदला लूँगा। उसने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक इन बालकों का शिरच्छेद नहीं कर लूँगा तब तक शान्त नहीं बैठूँगा। इसी कार्य के लिए तो उसने साथी राजाओं की सहायता माँगी थी। और अब दोनों किशोर उसकी मुट्ठी से बाहर हो गये थे।

अक्रूर, वसुदेव के भ्राता देवभाग का पुत्र बृहद्बाल तथा गद ने जब जरासंध के समक्ष उपस्थित हो प्रणाम किया तो वह क्रोधान्ध हो चिल्लाया।

"यह कैसी निरर्थक बात तुम लोग कह रहे हो," उसने अपमानजनक रीति से पूछा।

"सम्राट्, इसमें लेशमात्र भी कपट की बात नहीं।" अक्रूर ने अपनी सहज मृदुता से कहा। "कृष्ण और बलराम तीन दिन पूर्व मथुरा छोड़ कर कहीं चले गये।"

"मैं तुम्हारी बात मानने को तैयार नहीं। तुमने ही कहीं उन्हें छिपाया है," जरासध ने अक्रूर को भयभीत करने के लिए ऊँचे स्वर में कहा।

अक्रूर करबद्ध खड़े रहे। उनके नेत्रों में धैर्य एवं होंठों पर मुस्कान थी। जरासध चतुर तो था ही। उसने देखा, बृहद्वाल भयग्रस्त हो गया है। "चेदिराज, शाल्व, तुम लोग मुझे एक क्षण के लिए अकेला छोड़ दो। मैं वृष्णिश्रेष्ठ से एकान्त में बात करूँगा," जरासध ने कहा। इस भेंट का क्या परिणाम निकलेगा, अभी यह निश्चित नहीं था और शिविर में भी इस सम्बन्ध में चर्चा हो, यह जरासध नहीं चाहता था। स्वयं के अनिश्चित मनोभाव का पता मित्रगण न लगा सकें, ऐसी भी उसकी इच्छा थी। जब वह अपना अटल निश्चय कर ले, तभी वह औरों पर उसे स्पष्ट करेगा।

"जैसी महाराज की आज्ञा," दामघोष और शाल्व ने कहा। जब वे प्रस्थान करने लगे तो जरासध ने कहा, "चेदिराज, बृहद्वाल को अपने साथ ले जाओ। प्रथम तुम इसके साथ बात कर लो—फिर मैं करूँगा।" दामघोष ने बृहद्वाल के स्कंध पर हाथ रख उसे अपने साथ आने के लिए इंगित किया।

"वृष्णिवर तुम तो मस्त रहे जाते हो। अगर तुम सत्य नहीं बोलोगे तो मैं मथुरा को जलाकर भस्मीभूत कर डालूँगा," जरासध ने कठोर स्वर में कहा।

"सम्राट् जो चाहें कर सकते हैं। ऐसी सामर्थ्य उनमें है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। किन्तु मैं कभी भी असत्य नहीं बोलूँगा," अक्रूर ने कहा।

"किन्तु ये कायर भाग कहाँ गये?" बड़ी तिरस्कारपूर्ण भावना से उसने पूछा।

"वे कायर नहीं थे। उनके लिए यादवों का संहार हो, यह वे नहीं चाहते थे। इसीलिए उन्होंने यह मार्ग अपनाया। उनके इस शौर्यपूर्ण कार्य को मैं तो कभी भी कायरता नहीं कहूँगा।"

"यादव उनका साथ देने के लिए तैयार नहीं थे," जरासध ने कहा।

"हम सब तो उन दोनों अनाथों के लिए प्राणोत्सर्ग कर देना अपना सद्भाग्य समझते हैं। किन्तु वे अपने निर्णय पर अडिग रहे," अक्रूर ने कहा।

'मैं यह मानने के लिए तैयार नहीं," भृकुटी चढ़ाकर जरासंध ने कहा, "इन ग्वालों को छोड़ देने के लिए मैं तुम सबको कठोर दण्ड दूंगा।"

"सम्राट् ऐसा ही निर्णय करेंगे, यह हम सब पहले से ही समझते थे," मधुर मुस्कान के साथ अक्रूर ने कहा, 'सर्वशक्तिमान चक्रवर्ती के क्रोध-सागर को आसानीपूर्वक पार नहीं किया जा सकता।"

'क्रोध! मैं क्रोध में हूँ ऐसा कहना चाहते हो? मैं तो उचित दण्ड देना चाहता हूँ। तुम तो सत्य कहे जाते हो और मैं अपने दामाद तथा तुम्हारे राजा के वध का बदला न लूं, यह भी चाहते हो," खिसियाकर जरासंध ने कहा।

"क्षमा करें महाराज," अक्रूर ने स्वस्थ स्वर में कहा, "मैं सत्य नहीं हूँ और न ही मेरी जाति के लोग मुझे सत्य कहते हैं। मैं धर्म का अनुसरण करने का प्रयत्न करता हूँ और वसुदेव के पुत्रों के बदले मथुरा का विनाश किया जाय, यह कहाँ का धर्म है?"

जरासंध अक्रूर को तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा था। अक्रूर ने पुन सुदृढ़ता के साथ कहना शुरू किया, "वसुदेव के कर्मों का औचित्य समझाने हम यहाँ नहीं आये हैं। किन्तु कंस ने कितने यादवों का वध किया? कितने यादवों को वनवास दिया? कितनी नारियों को उसकी वासना-अग्नि में आहुति देनी पड़ी?" अक्रूर कुछ समय के लिए रुके, किन्तु पुन कहने लगे, "कंस ने वसुदेव के कितने पुत्रों का पैदा होते ही वध कर डाला? महाराज, आप भी तो गत कितने वर्षों से ऐसे अपराधों को क्षमा करते आये हैं।"

"तुम बड़े चतुर हो। फिर भी मैं मथुरा का विनाश तो करूँगा ही," जरासंध ने संयमपूर्वक कहा। राजपुरुषों के साथ अशिष्टता का व्यवहार करना संकट को आमन्त्रित करना है, यह भी वह समझता था।

"हमें इस सम्बन्ध में लेशमात्र भी चिन्ता नहीं, महाराज! आधे यादव तो मथुरा छोड़कर जा चुके हैं। मेरे निराश लौटने पर शेष भी चले जायेंगे। हम तो अस्त्र उठाए बिना ही मथुरा आपको समर्पित कर देंगे," अक्रूर ने

शान्त स्वर में कहा।

"तुम सब जहाँ-कहीं जाओगे, मैं वहीं तुम्हारा पीछा करूँगा," जरासंध ने कहा।

"हमें इसका भी पूर्ण विश्वास है, किन्तु प्रतापी भीष्म तथा पांचाल राज द्रुपद ने हमें अपने राज्यों में आश्रय देने का वचन दिया है," अक्रूर ने कहा।

जरासंध विचारमग्न हो गया। द्रुपद ने उसे अपने राज्य में होकर जाने की अनुमति न देकर उसे विकट परिस्थिति में डाल दिया था। अक्रूर ने कहा, "सम्राट्! इसी से तो मैं आपके पास आया हूँ। जिन किशोरों की आपको आवश्यकता थी, वे तो चले गये। अगर आप मथुरा का विनाश करते भी हैं, तो आपकी प्रतिज्ञा अपूर्ण ही रह जाएगी। नर-नारी, गाय-अश्व-विहीन मथुरा नगरी लेकर आप क्या करेंगे? मगध के चक्रवर्ती के परिश्रम का क्या यही परिणाम होगा? क्या संसार आप पर हँसेगा नहीं?"

"तुम मुझसे यही कहने आये हो, अक्रूर! तुम्हें ज्ञान होना चाहिए कि तुम्हारे इस अविवेकपूर्ण व्यवहार के लिए मैं तुम्हारी जिह्वा खिंचवा सकता हूँ" अपने क्रोध पर नियन्त्रण खोते हुए जरासंध ने कहा।

"मैं तो आपको कह चुका हूँ सम्राट् कि आपकी सत्ता की कोई सीमा नहीं और आप ही अपनी सत्ता को सीमा में बाँध सकने में समर्थ हैं। आप इतने शक्तिशाली हैं कि मेरा कोई अमंगल नहीं होगा, यही विश्वास तो मुझे यहाँ तक ले आया है। आप उदार बनें, अहंकार को त्यागें। वीर पुरुष ही क्षमा कर सकता है। निर्बल तो राज ही नहीं कर सकता, सो वह क्षमा कहाँ से कर सकता है? अगर आप मेरी बात पर किंचित् भी ध्यान देंगे तो निश्चय ही आपका अहंकार घटेगा और आपकी प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी," अक्रूर ने धीरे से, विनम्र भाव से कहा।

"तुम्हारी वाणी पर्याप्त रूप से सीमाविहीन है, किन्तु साथ ही मधुर एवं खतरनाक भी। मुझे बस यही बताओ कि वे दोनों ग्वाले कहाँ भाग गये। और तब मैं तुम्हारी सारी बात स्वीकार कर लूंगा," जरासंध ने कहा।

"वे कहाँ हैं और कहाँ गये हैं, यह मैं कैसे जान सकता हूँ? आप जहाँ न पहुँच सकें ऐसे ही किसी स्थान पर वे छिपने का प्रयास करेंगे।"

"अक्रूर, तुम बड़े चतुर हो," जरासंध ने कुछ विचार करके कहा। "अभी तुम जाओ। मैं कल प्रातःकाल तुमसे पुनः बात करूँगा। इस बीच बृहद्‌बाल को मेरे पास भेज दो।"

"जैसी महाराज की आज्ञा," अक्रूर कहकर चले गये।

जरासंध ने मन-ही-मन विचार किया कि अक्रूर की बात सत्य है। अगर मैं मथुरा का विनाश करता हूँ तो कंस के वध का सही बदला तो नहीं हुआ। निर्जन नगर पर अधिकार करने पर अवश्य ही मित्र और शत्रु दोनों मुझ पर हँसेंगे। क्रोधित यादव कुरु और पांचाल से अगर मिल गये तो उनकी शक्ति भी बढ़ जायेगी। इसके बाद उसने निजी अंतरंग सलाहकार को बुला भेजा। वह कंस के जीवनकाल में मथुरा में ही रहता था। उसके पास से अवश्य ही कुछ सही सूचनाएँ मिलेंगी। बृहद्‌बाल शूरों के स्वामी वसुदेव के भ्राता देवभाग का पुत्र था। उसकी माता कंसा, कंस की बहन तथा राजा उग्रसेन की लाडली पुत्री थी। उसका छोटा भाई उद्धव कृष्ण का परम प्रिय मित्र था।

सलाहकार के जाते ही जरासंध ने देखा, बृहद्‌बाल कुछ दूरी पर खड़ा था और उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा था।

बृहद्‌बाल पर्याप्त रूप से भयग्रस्त हो चुका था। उसने जरासंध का नाम सदैव भय के सन्दर्भ में ही सुना था। कंस के वध के बाद उसे विश्वास हो गया था कि जरासंध मथुरा का विनाश तो करेगा ही। उसने नगर त्यागकर चला जाना ही उचित समझा। किन्तु वह राजा उग्रसेन की लाडली पुत्री का पुत्र था और वसुदेव का भतीजा था। कुटुम्ब के सूत्र में वह बँधा था। बड़े लोग उसे द्रोही न समझ बैठें, इसके लिए वह साहस बटोरकर किसी प्रकार वहाँ टिका रह गया।

बृहद्‌बाल तो समझ गया था कि कृष्ण और बलराम के मथुरा भाग जाने के बाद जरासंध उस नगर को भस्मीभूत कर डालेगा। उस समय तो उसे ऐसा ही प्रतीत हुआ, मानो वह मृत्यु के मुख में जा रहा हो।

उसे देखकर सम्राट् मुस्कराया। उस समय उसकी भंगिमा टेढ़ी न थी। वह प्रसन्नता के भाव में था। बृहद्‌बाल भी यह समझ गया। सम्राट् ने स्नेहपूर्वक उसे आगे आने के लिए कहा। और उसकी पीठ को स्नेह से थपथपाया भी।

बृहद्‌बाल सोचने लगा सम्राट् तो दयालु स्वभाव का है। क्या यह

आश्चर्य नहीं जो मथुरा के लोग उन्हें कर और दुष्ट कहकर पुकारते हैं ?

"बृहद्, मेरा आशीर्वाद स्वीकारो !" जरासंध ने सस्नेह कहा, "मैं तुम्हें जानता हूँ। हाँ, तुम्हारी माता कैसी है ? तुम्हारी माता ने तो तुम्हारे दादा की बड़ी सेवा की है, यहाँ तक कि कारागार में भी वह उनके साथ ही थीं, सत्य है न ? अभी तुम राजा के साथ रहते हो या अपनी माता के साथ ?"

"मैं पितामह के साथ रहता हूँ। मेरी माताजी भी अधिक समय तक पितामह के पास ही रहती हैं।" बृहद्बाल ने कहा। उसका हृदय जरासंध के स्नेहपूर्ण एवं दयालु स्वभाव की ओर आकर्षित हो गया था। लोग उनके प्रति ऐसा अन्याय क्यों करते हैं, वह नहीं समझ सका।

"तुम राजा के लाड़ले पुत्र हो, यह मैं जानता हूँ। मैं तुम्हें गिरिव्रज आने के लिए निमन्त्रित करता हूँ। इससे मथुरा और हमारे मध्य का सम्बन्ध सुदृढ़ होगा," जरासंध ने कहा।

बृहद्बाल इस प्रकार की प्रशंसाभरी बात सुनकर आनन्दित हो उठा। उसके परिवार में तो सभी कृष्ण को ही सारा सम्मान देते हैं। उसका लेशमात्र भी महत्त्व नहीं। जरासंध की बात से उसके हृदय में मथुरा की गद्दी के लिए कोई महत्त्वाकांक्षा जाग उठी। राजा उग्रसेन के कोई दूसरा पुत्र नहीं है। सम्राट् उसके प्रति इतनी सद्भावना रखते हैं। कृष्ण मथुरा से दूर चला गया है। अब मेरा स्वप्न साकार होने में कितना विलम्ब ? कौन जानता है ? हो सकता है मैं भी मामा कंस जैसा प्रतापी राजा बन सकूँ। "महाराज, हम सब तो आपके प्रति निष्ठावान बने रहने के लिए तैयार हैं," बृहद् ने कहा। परन्तु वह तत्काल रुक गया। उसने सोचा, काका अक्रूर ने जो कुछ कहने के लिए कहा है, उससे विपरीत तो बात मुँह से नहीं निकल गयी।

"उन दो ग्वालों के भाग जाने के बाद सम्भवतः हम एक-दूसरे के मित्र बन जायें," जरासंध ने स्नेहिल मुस्कान के साथ कहा। वह बड़ी सतर्कता से बृहद् की ओर देख रहा था।

अपने स्वप्न को सम्राट् की वाणी से साकार होते देख बृहद्बाल गद्गद् हो उठा। उसने सोचा, अगर मैं जरासंध की क्रोधाग्नि से मथुरा को बचाने में सफल हो गया तो यादवों में निश्चित रूप से वीर-स्थान प्राप्त कर लूँगा, कृष्ण तो कायरता दिखाकर मथुरा से भाग चुका है।

"अब तो वसुदेव के पुत्र मथुरा छोडकर चले गये है। अगर आप मथुरा के प्रति दया का भाव अपनाने की कृपा करे तो " बृहद्बाल सम्राट् को प्रसन्न करने का एक भी अवसर हाथ से नही जाने देना चाहता था।

"मेरी इच्छा तो मथुरा का विनाश करने की है, किन्तु तुम जैसा तरुण अगर मथुरा का नायक बने तो मुझे अपना विचार बदलना पडेगा," जरासध ने बृहद्बाल को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से मुस्कराकर कहा। जिस प्रकार ग्रामीणजन आकाश को देखकर वर्षा का स्पष्ट अनुमान लगाते है, उसी प्रकार जरासध बृहद्बाल के हृदय का भाव समझ रहा था।

बृहद् ने तत्काल अवसर का लाभ उठाया। "सम्राट्, आप मथुरा के प्रति दया का भाव अपनाएँ, यह हमारी प्रार्थना है। मेरे काका अक्रूर ने हमारी प्रार्थना के सम्बन्ध मे अवश्य ही आपसे कहा होगा। अगर आप हमारी प्रार्थना को स्वीकार करते है तो हम सदैव आपके ऋणी रहेंगे।" बृहद्बाल इस शक्तिशाली सम्राट् के साथ अपने सम्बन्ध सुदृढ करने के लिए आतुर था। उसने कहा, "अभी मेरे हाथ मे सत्ता नही है। किन्तु मेरे काका वसुदेव शूरो के नायक है। और मेरे पितामह तो मुझ पर अपार प्रेम रखते है। उनको मुझमे विश्वास है।"

जरासध ने स्पष्ट रूप से भाँप लिया कि बृहद् का मन यादवो के प्रति निष्ठा एव उसकी कृपा पाने की महत्त्वाकाक्षा के मध्य मथन कर रहा है।

"तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो बृहद्," जरासध ने कहा। "अगर तुम मथुरा के युवराज होते तो मैं कभी भी मथुरा का विनाश करने की बात अपने मन मे न लाता। परन्तु कौन जानता है ?"

जरासध मित्रता का भाव प्रकट कर बृहद् के साथ चर्चा करने मे रस ले रहा है, ऐसा समझकर वह प्रसन्न हो उठा और उसे लगा मानो अपनी महत्त्वाकाक्षा का सौदा करने का समय आ गया है

"महाराज, मथुरा को विनाश से बचाने का यश मुझे लेने दीजिये और सम्भवत आपकी इच्छा भी पूर्ण हो" बृहद ने कहा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उसके स्वप्न के साकार होने का समय आ पहुँचा है।

सम्राट् विलक्षण रूप से मुस्कराया। उसकी इस मुस्कान मे इस तरुण की महत्त्वाकाक्षा का प्रच्छन्न उपहास भी छिपा था। उसने पूछा, 'कृष्ण

लौटकर आया तो ?"

'कृष्ण कभी भी लौटकर नहीं आ सकता,' बृहद् ने कहा।

'तुम यह कैसे मानते हो ? वह भीष्म की सहायता प्राप्त करने कुरु राज्य गया हुआ है,' जरासंध ने कहा।

"नहीं नहीं, वह तो दक्षिण की ओर गया है," बृहद ने अनजाने ही यह रहस्य प्रकट कर दिया।

"कहाँ ?' जरासंध ने भोलेपन से पूछा।

"कहीं दूर, बड़ी दूर," बृहद् ने जरासंध के उत्तर को टालने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"सम्भवत नर्मदा-तट के वनों की ओर गया है।' जरासंध ने कहा। दयालु सम्राट् के सरल प्रश्न के प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना को मन में स्थान देने की इच्छा बृहद्बल को नहीं हुई। वह जरासंध पर उपकार करने का एक भी अवसर नहीं जाने देना चाहता था। उसने स्पष्ट कर दिया, "मुझे तो लगता है, वे दोनों वरदा तट की ओर गये है।"

"हो सकता है करवीरपुर गये है, क्यो सत्य है न !" जरासंध ने अपनी बात को कोई महत्त्व न देते हुए कहा। बृहद्बल विकट परिस्थिति मे जकड गया। जरासंध उसके चेहरे के समर्पण-भाव को पढ चुका था। उसने पुन कहा, "बृहद्बल अगर मैं तुम सबकी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ तो मात्र तुम्हारे कारण। मुझे आशा है कि कभी राजा उग्रसेन तुम्हे युवराज का पद देंगे और उसके बाद तुम राजा बनोगे। उस स्थान पर तो तुम्हारा ही अधिकार है।"

बृहद् नम्रतापूर्वक शान्त रहा।

'कौन जानता है ! हो सकता है तुम्हारे काका और अक्रूर तुम्हारे मार्ग मे बाधक बनकर खडे हो।" मानो जरासंध स्वयं से ही कह रहा हो, इस प्रकार बोला।

'परन्तु तुम सावधान रहना और आवश्यकता पडे तो मेरी भी सहायता लेना।

अपनी वाणी मे यथाशक्ति स्नेह एवं ममत्व भरकर जरासंध ने इस वाक्य को कहा और बृहद्बल को जाने की अनुमति दी।

दूसरे दिन जरासंध ने अपने मित्रो एवं सेनापतियों की सभा बुलायी।

अक्रूर, बृहद्‌बाल एवं गड भी आमन्त्रित किये गये।

"मैंने अक्रूर और बृहद्‌बाल की प्रार्थना पर विचार किया है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी बात सत्य है। दोनों पापी तो भाग खड़े हुए, अब मथुरा का विनाश करना व्यर्थ है," जरासंध ने कहा।

चेदिराज दामघोष जरासंध के इस परिवर्तित रुख का अर्थ तत्काल समझ गये। मित्रों और शत्रु, दोनों को जरासंध की यह बात आश्चर्य में डाल देनेवाली थी, किन्तु चेदिराज को लेशमात्र भी आश्चर्य नहीं हुआ। किन्तु अन्य तो जरासंध के इस आकस्मिक औदार्य से आश्चर्य-चकित रह गये।

"अक्रूर, बृहद्‌बाल, मैं चाहता हूँ मथुरा के यादव मेरे मित्र बने रहें," जरासंध ने कहा, "राजा उग्रसेन तथा तुम दोनों के लिए मेरे हृदय में भारी सम्मान है। बृहद्‌बाल जैसा तरुण नायक और अक्रूर जैसा सलाह-कार हो, तो मथुरा भला कैसे नहीं मेरी मित्रता का पात्र बन सकती है?"

जरासंध कुछ समय के लिए रुका। अब वह ऐसा कोई वाक्य बोलेगा, जिससे वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाएगी, चेदिराज ने सोचा।

"मैं मथुरा से कोई बड़ा कर नहीं माँगूँगा। मुझे मात्र पच्चीस हाथी, सौ रथ तथा दो मनुष्यों के तौल जितना स्वर्ण चाहिए। आगामी पूर्णिमा के पूर्व, समझो दस दिन के भीतर हमें यह सब मिल जाना चाहिए," जरासंध ने कहा और मित्रता दर्शाते हुए जैसे कोई साधारण बात हो, उसने आगे कहा, "कृष्ण और बलराम जब कभी भी मथुरा आयें, मुझे समर्पित कर जाना।"

अक्रूर क्षण भर के लिए विचार-विमग्न हो गये। "आप जो कुछ भी माँगेंगे उसकी पूर्ति तो हमें करनी ही है," अक्रूर ने कहा।

"तुम्हारी यह बात चतुराई से भरी है," हँसकर जरासंध ने कहा, "अक्रूर, तुम जा सकते हो। बृहद्‌बाल, अपने पितामह उग्रसेन से मेरा अभिवादन कहना," और फिर अपने मित्रों की ओर मुड़कर कहा, "शाल्व, अक्रूर के साथ जाओ और राजा उग्रसेन मेरी शर्तें मंजूर करते हैं, या क्या कहते हैं, यह निश्चित कर आओ।"

अक्रूर और बृहद्‌बाल जरासंध को अभिवादन कर शाल्व के साथ प्रस्थान कर गये।

जरासंध दामघोष की ओर मुड़ा। वे तो जरासंध की कोई नयी

चाल की प्रतीक्षा करते खड़े ही थे । "चेदिराज, हमे जहाँ कही मे भी हो, इन दो लडको को पकड़ना ही है । उनके शिरच्छेद की मेरी प्रतिज्ञा अभी पूर्ण नही हुई। अब हमे उनकी खोज मे निकल जाना चाहिए।

"हमे उनकी खोज करनी ही है, महाराज,' विदर्भ के राजकुमार रुक्मी ने कहा।

दामघोष की परिस्थिति विचित्र बन गयी । वे सम्राट् की इच्छा का अनादर कर सक, ऐसा भी नही था । उन्होने बड़े विवेक से कहा, "वे कहाँ गये है, इसकी सूचना हम सबको कैसे हो ?"

"यह अति सरल है। अपने साथ हम मात्र बीस रथ और पचास अश्वारोही ही ले जायेंगे ताकि मिलने पर वे भाग न सके। तुम्हारा क्या ठिकाना है चेदिराज ?" जरासध ने पूछा और फिर कहा, "अगर आप न आ सके तो अपने पुत्र शिशुपाल को ही भेजे।"

दामघोष ने तत्काल ही उत्तर दिया, "हमे हमारा कर मिलते ही यहाँ से प्रस्थान कर देना चाहिए।"

"मेरा एक सेनापति एक बार करवीरपुर के राजा से मिला था। उस राजा की सहायता से सम्भवत हम उन ग्वालो को पकड़ने मे सफल हो जाय जरासध ने कहा।

दामघोष को यह विश्वास हो गया कि जरासध ने सुदूर वृहद्वाल मे वसुदेव के पुत्रो के सम्बन्ध मे सभी सूचनाएँ प्राप्त कर ली है । दामघोष ने देखा, जरासध उन्हे अपने से दूर करना चाहता है । स्वय वे जरासध के सामन्त मात्र थे, फिर भी उनकी दृष्टि इस विराट् सत्ता के समक्ष टक्कर ले सके, ऐसी सत्ता के उदय होने पर टिकी हुई थी । मथुरा मे जब कृष्ण का उदय हुआ तो इस सम्भावना के साकार होने की आशा भी थी । योग्य समय पर मथुरा को बचा सकने के लिए बीच-बचाव करने की दृष्टि से ही वे इस पक्ष मे आ मिले थे । यदि उनका पुत्र शिशुपाल जरासध के साथ जाये तो वसुदेव के पुत्र मात्र जरासध की दया पर ही आश्रित रहेगे—ऐसी परिस्थिति चेदिराज नही चाहते थे और इसीलिए वे स्वय जरासध के साथ रहने की इच्छा रखते थे।

१६

खड़े हो, गरुड़

वैनतेय कुटिया के एक कोने में पड़ा था। बाहर लोगों की हर्षध्वनि सुनायी पड़ती थी। नये मेहमान आये थे और उसके पिता उनका स्वागत करने मैदान में गये थे। उसके हृदय में एक टीस उठी। काश! वह भी इतना असहाय न पड़ा होता! बाँस की दीवार में से उसने बाहर झाँकने का प्रयास किया।

वैनतेय नायक का ज्येष्ठ पुत्र था। उसकी माता का नाम विनता था, उसी पर उसका नाम वैनतेय पड़ा। पाँच वर्ष पहले तो वह गरुड़ों का कुल-भूषण माना जाता था और अपने पिता की आशाओं का केन्द्र था। वह शूरवीर था, बुद्धिमान था, गोमातक पहाड़ी पर आसानी से चढ़-उतरकर वह सभी को दंग कर देता था। सभी गरुड़ उसे अपना भावी नायक मानते थे। एक शिखर से दूसरे शिखर तक उड़नेवाला यह गरुड़ एकाएक बीमार पड़ा और कई दिनों तक तेज ज्वर से पीड़ित रहा। जब ज्वर कुछ घटा तब मालूम हुआ कि उसका पैर बेकार हो गया है। ऐसे होनहार युवक का अपंग होना एक अत्यन्त करुण घटना थी।

गोमातक की ऊँचाई पर रहनेवालों के लिए दौड़ने और कूदने की शक्ति, अचूक तीरदाजी अथवा पशुओं के साथ दौड़ केवल खेल ही नहीं था, वह एक आवश्यकता थी। जो भी यह नहीं कर सकता वह शापित समझा जाता। वैनतेय को यह भी सहन नहीं होता था कि लोग उसकी ओर दया-दृष्टि से देखें। उसके पिता कभी उस पर गर्व करते थे—आज वह उनके लिए शर्म की बात हो गया था। जो भाई उसमें अपने भावी नायक का दर्शन करते थे, वे उसे अब एक बोझ मानने लग गये थे। किसी को उसकी आवश्यकता नहीं थी। उसका जीवन विषाक्त बन गया था।

वैनतेय को अपने खेलकूद, अपने पराक्रमों, चाँदनी रातोंका वनविहार सभी कुछ याद आता और उनकी मधुर स्मृति उसे और भी कचोटती। रोज शाम को वह इन स्वप्नों की याद सजोता और सुबह अपनी असहायता का करुण नाटक खेलने को तैयार हो जाता। किसीकी उपेक्षा,

किमीकी घृणा, किमीका तिरस्कार, किमीकी चिड़चिड़ाहट—इन सभी को उमे सहन करना पडना। उमे जीवन असह्य हो चला था। कई बार वह मागरनट पर किसी प्रकार पहुँचकर वहाँ डूब मरने की मोचना। परन्तु प्रत्येक बार उमका मनोबल टूट जाना। नभी उमने मुना कि भगवान् परशुराम दो अपरिचित युवकों को लेकर गोमानक आये है। परिवार में सभी लोग इन नये मेहमानों के बारे मे बडे उत्साह और प्रेम मे बातें कर रहे थे। परशुराम और उनके शिष्यों के अतिरिक्त किमी अन्य गोरे व्यक्ति को नहीं देखा था। परन्तु उमने सुना कि ये दोनों अतिथि नौराजकुमार है और अत्यन्त सुन्दर एवं मरम है। 'क्या मैं भी कभी उन्हे देख मकूँगा ? वे मुझमे मिलने आयेगे ?" वह सोच रहा था।

कुटिया के बाहर एकत्र सभी लोग साँस रोककर बातें कर रहे थे। निश्चय ही वे नये मेहमानों के बारे मे बात कर रहे होंगे। वह स्वयं किस प्रकार बाहर जाकर उनसे मिले ? यदि पिता से कहकर उन्हें अपने तक आने की प्रार्थना करे, तो भी क्या ? वे तो इम अपग युवक की ओर दया की दृष्टि से देखेंगे—और दया की दृष्टि उमे सहन नहीं होती थी। एकाएक हर्षनाद मुनायी पडा। मेहमान कुटी के पास मे गुजर रहे थे। दीवार के मूराखों में से वैनतेय ने उनको देखने का प्रयास किया। उसकी दृष्टि मे मात्र चार चरण आये। दो मुपुष्ट और स्नायुबद्ध, और दूसरे दो सुडौल एवं मृदु। यदि दैव रुष्ट न हुआ होता तो वह स्वयं भी उन चरणों के साथ चलता! अपने पैरों की ओर देखकर उसका मन घृणा से भर गया।

उसकी माँ भोजन ले आयी। केवल माँ ही उसका ख्याल रखती थी। पर, वह भी कभी-कभी तंग आ जाती। वह सोचती कि लड़के का यह दुख देखने से तो पहले स्वयं उसका मर जाना ही अच्छा था। परन्तु आज वह भी खुश थी। उसने कहा, "ये दो मेहमान तो बड़े गजब के हैं। इनमें से एक बलराम जो है, वह हँसता है तो ऐसा लगता है मानो बादल गरज रहे हों। बड़े कद और डीलडौल का है वह! और दूसरा—उसके जैसा आदमी तो मैंने अब तक देखा ही नहीं। सभी उसे वासुदेव कहते हैं। उसका वर्ण भूरा है—आकाश जैसा भूरा। ऐसा वर्ण किसी का सभव है, यह कल्पना मे भी नहीं आता। और हँसी तो उसकी अत्यन्त मधुर है। प्रत्येक बालक के मस्तक पर उसने हाथ रखा। मेरी ओर देखकर

भी मुस्कराया। तेरे पिता कहते हैं कि वह तो भगवान् ही है नहीं तो वह इतना सुन्दर और स्नेही नहीं होता। कभी तुम्हारे पास भी मैं ले जाऊँगी। उनके लिए समुद्र-तट पर तीन सुन्दर कुटियाँ बनाई गयी हैं।

वैनतेय की आँखें आँसुओं से छलक उठीं। उसे लगा कि ऐसा अवतारी पुरुष उसके पास कभी नहीं आयेगा। और यदि आया भी तो सहानुभूति के दो शब्द ही कहेगा। ऐसी सहानुभूति से वह तंग आ गया था। "मुझे उनसे नहीं मिलना!" उसने कहा और दीवार की ओर मुँह फेर लिया। उसका कंठ अवरुद्ध हो गया। जब उसकी माँ लौटी तब सूर्यास्त हो चुका था। अब सब कोई निद्राधीन हो जायेंगे। उसने सोने का प्रयत्न किया, परन्तु अपनी आँखें मूँद न सका। उन दो दैवी अतिथियों के दर्शन करने को वह तड़प उठा। शायद ऐसा कभी संभव नहीं होगा। वैनतेय ने दीर्घ निःश्वास ली और आँखें मूँद लीं। शायद एकाध झपकी भी उसे आयी हो, परन्तु उसका अधीर मन बार-बार नीलवर्ण के उस सुन्दर युवक की ओर ही दौड़ता था। माँ ने कहा था कि उसने सभी बालकों के मस्तक पर हाथ रखा। क्या वह कभी इस कुटिया में भी आकर मुझे सांत्वना देगा? वैनतेय का हृदय आशा-निराशा के बीच झूलने लगा।

"यह सच है कि मैं अपंग हूँ, वैनतेय सोच रहा था। सभी जिन पर मोहित हो चुके हैं, उन राजकुमारों से शायद मैं कभी नहीं मिल सकूँगा। परन्तु वासुदेव नाम के उस स्मितवाले राजकुमार को देखे बिना कैसे रहूँगा! धीरे-धीरे एक विचार उसके मन में जागृत हुआ। मैं अपंग हूँ, फिर भी उनसे मिलने जाऊँगा। चाहे कुछ भी हो, मैं उनसे मिलूँगा अवश्य!"

वैनतेय ने सोने का प्रयत्न किया, परन्तु निद्रा किसी प्रकार आ नहीं रही थी। अपनी कल्पना में उसका मन मग्न हो उठा। वासुदेव की मुस्कान के सदृश किसीकी भी मुस्कान कभी नहीं हो सकती। इस देव-पुरुष की कल्पना में वह थक गया। उसने कभी भी भगवान् को नहीं देखा था। शायद कृष्ण भगवान् जैसा न होकर स्वयं भगवान् हो। मुझे उनके दर्शन किसी प्रकार करने ही होंगे।

चाँदनी रात थी। वह स्वयं को किसी प्रकार घसीटता हुआ सागर-किनारे पहुँच जायेगा। वह इस प्रकार कभी इतनी दूर नहीं गया था अधिक-से-अधिक वह झोपड़ी के बाहर निकल सकता था और हवा में

लहरानी वृक्ष की टहनियों को देखा करता। और फिर रात में तो रास्ते में साँप और जगली पशुओं का डर होता है। न तो अपग हूँ। किस प्रकार इन राजकुमार के दर्शन कर सकूंगा ! परन्तु उसका हृदय चीत्कार कर उठा, "तुम्हें जाना ही होगा, उनके दर्शन करने ही चाहिए, समय गँवाने से काम नहीं चलेगा। शायद यह युवक अतिथि कल चले भी जाये तो फिर मैं कभी उन्हें नहीं देख सकूँगा।"

वैनतेय ने कुहनी के बल पर खड़े होने का प्रयत्न किया। अधखुले दरवाजे में से उसने देखा कि पहाड़ी पर, वन पर, पर वृक्षों पर सर्वत्र शीतल चाँदनी छा रही थी। उसने होंठ भींचे। कहानी के आधार पर वह बाहर खिसका और किसी तरह अपग पैर को घसीटता हुआ आगे बढ़ा। दरवाजे तक पहुँचकर वह यह देखने के लिए रुका कि उसकी माँ जाग तो नहीं पड़ी ! परन्तु वह तो बगल के खाट में घोर निद्रा में निमग्न थी। वैनतेय ने दरवाजे से बाहर निकलने का प्रयास किया। ऊपर चन्द्रमा एक प्रोत्साहनपूर्ण मुस्कान बिखेर रहा था। उसके मन में एक शका ने जन्म लिया। क्या वह ठेठ सागर-तट तक पहुँच सकेगा ? उसमें इतनी शक्ति नहीं थी। परन्तु जो भी हो, वह उस अवतारी पुरुष के दर्शन तो करेगा ही। मार्ग में यदि मृत्यु का वरण करना पड़े तो भी इस असहाय जीवन से तो अच्छा ही होगा।

वह समुद्र की दिशा में तोड़ी जा रही चट्टान की तरह आगे बढ़ा। उसके हाथ कोमल थे और रास्ते में पत्थर और काँटों से वे छिले जा रहे थे। कुछ देर थकावट के मारे वह रुक गया। शरीर में चुभे हुए काँटों को निकाला और चन्द्रमा की ओर देखा। चन्द्र उसी प्रकार मधुर हास्य की वर्षा कर रहा था। शायद चन्द्र उसकी सहायता करेगा।

वैनतेय ने अपनी सारी शक्ति एकत्र कर फिर आगे बढ़ने का प्रयास किया। वह आगे बढ़ रहा था कि पीछे से झाड़ी के पीछे एक वन-पशु को उसने देखा वह काँप उठा। उसे लगा कि अभी वह आक्रमण करेगा। परन्तु, पशु तो पूँछ खड़ी कर भाग उठा। चन्द्रमा ने उसकी रक्षा की या शायद वसुदेव ने—पिता कहते थे कि वासुदेव स्वयं भगवान हैं। थोड़ी दूर एक सर्प रास्ते पर से गुजर रहा था। वैनतेय फिर डर गया उसने सोचा कि यदि वासुदेव स्वयं भगवान् हैं तो वे अवश्य सहायता करेंगे। वह स्थिर पड़ा रहा और उन नीलवर्ण के भगवान् से प्रार्थना की। सप

किसी भी क्षण उसे डस सकता था। परन्तु, वह तो उसकी ओर मुड़े बिना सीधा निकल गया। वह बच गया। वैनतेय के मन में श्रद्धा जागी कि यह राजकुमार सचमुच ही भगवान् होना चाहिए।

इस चामत्कारिक रूप से बच जाने के बाद वैनतेय ने एक अपूर्व स्फूर्ति का अनुभव किया। एक नयी श्रद्धा और शक्ति के साथ वह अपने विषम प्रवास पर आगे बढ़ा। अब रास्ता पथरीला हो चला था। उसकी देह से रक्त झरने लगा। चन्द्रमा सागर के पार डूब गया था। यह सुन्दर शकुन था। अरुण सर्वोच्च गरुड सुपर्ण का बड़ा भाई था।

अब वैनतेय ने समुद्र की कगार पर चढ़ना प्रारम्भ किया। सागर का शीतल पवन उसे स्पर्श कर रहा था। अब उसे वे तीन कुटीर भी दिखायी देने लगीं, जो मेहमानों के लिए बनायी गयी थीं। वह यह भी जानता था कि तीसरी खाली कुटीर भगवान् परशुराम के लिए थी।

कगार पर चढ़कर मैदान में पहुँचने का उसने आखिरी प्रयत्न किया। अपनी सारी शक्ति को एकत्र कर अपनी देह को उठाने की भरसक कोशिश की, परन्तु उसका हाथ खिसक गया। उसकी पकड़ छूट गयी और वह नीचे खड्डे में जा गिरा। उसके कंठ से दयार्द्र चीख निकल पड़ी, वह रो उठा. अब वह भगवान के दर्शन नहीं कर सकेगा। जब तक दिन नहीं उगे, और किसी की नजर उस पर न पड़े तब तक वहीं पड़े रहने के अलावा और कोई चारा न था।

प्रभात की प्रथम किरण फूट पड़ी। उसने कगार पर एक विराट् परछाई देखी, जिसके हाथ में एक लम्बा बाँस था। वैनतेय अभी पीड़ा से कराह रहा था, शायद उसके रुदन से आकर्षित हो कोई आ गया था और उसे कोई प्राणी समझकर मार डालेगा। उसमें परछाई ने किसी विचित्र भाषा में कुछ पूछा, वैनतेय की साँस रुक गयी। यह विराटकाय मनुष्य किसी भी क्षण कूदकर उसके प्राण हर लेगा। ऐसा भय उसे हुआ। मरने से पहले यदि एक बार भी भगवान् के दर्शन हो जाते!

अब आकाश में उषा का आगमन हो चुका था। वैनतेय ने देखा कि एक सशक्त सुदृढ़ युवा हाथ में बाँस लेकर उस घास को टटोल रहा था, जहाँ वह पड़ा था।

बाँस उसे लगा और वह चीत्कार उठा। एकाएक उसने देखा एक अन्य अद्भुत पुरुष ने उस युवक के हाथ रोक लिए। वैनतेय को विश्वास

हो गया कि वे स्वयं भगवान् थे। "एक बार भी उनके दर्शन हो जाते तो · " इसी रट में वह मूर्छित हो गया।

जब उसे होश आया तब कोई कोमल हाथ उसके जख्म साफ कर रहा था। उसके सारे शरीर में अपार वेदना थी। धीरे से अपनी आँखें खोली और उसकी दृष्टि एक युवक की दृष्टि में खो गयी। हाँ, वे स्वयं भगवान् थे। वही, नीलवर्ण के, मधुर मुस्कानवाले और कंधे तक लहराते घुँघराले केशो वाले भगवान्!

उसने आँखें खोली और उस सुन्दर मुख को आतुर नयनो से निहारने लगा। भगवान् मुस्कराये। उनकी स्नेहस्निग्ध आँखो की माया उसके अंग-अंग को प्रभावित कर रही थी। अपनी यात्रा का परम लक्ष्य आखिर उसे मिला ही! वह ऐसे प्रभु के दर्शन कर सका, जो अपग की भी सेवा करते है। उसने आँखें बन्द कर ली। अब वह सुख से मर सकेगा। अपने लहूलुहान हाथो को आगे बढाकर उसने प्रभु के चरण पकड लिये। "आप ही मेरी अंतिम शरण है!" उसने कहा और फिर मूर्छित हो गया।

जब वह दुबारा होश मे आया, तब उसे यह खयाल नही था कि वह कितनी देर बेहोश रहा। परन्तु अब कितनी ही परिचित आवाजें उसे सुनायी पड रही थी। उसके पिता चाचा के साथ जोश से बाते कर रहे थे। उसके चाचा उस युवक की भाषा जानते थे। उसकी माता का अश्रुभीगा स्वर भी वह तुरन्त पहचान गया। अजानी भाषा मे बात करती एक मधुर आवाज भी सुनायी पडी। निश्चय ही वह प्रभु की वाणी थी।

वैनतेय ने आँखे खोलकर पिता की ओर देखा। वह काँप उठा। "तू किसलिए खिसका, मूर्ख! हमें कैसी चिन्ता मे डाल दिया तुमने?" वैनतेय जानता था कि पिता उसकी अपग दशा पर तिरस्कार करते थे। नायक के गौरवशाली कुटुंब मे उसकी यह दशा कलंक के समान थी।

"पागल, यहाँ तक तू किस प्रकार आया?" चाचा ने पूछा।

माता ने स्नेहस्निग्ध स्वर में कहा, "तेरे शरीर पर कितनी खरोंच आ गयी है!"

वैनतेय के हृदय का सभी उल्लास दूर हो गया था। फिर से उसे कुटिया के कोने मे पटक दिया जायेगा—और वही उसे अपनी मृत्यु की प्रतीक्षा करनी होगी। उसके पिता ने उसे बिठाने के लिए हाथ आगे बढाया, परन्तु उसने मुह फेर लिया। उसने प्रभु की ओर देखा। वासुदेव मुस्कराये। ऐसी

ममताभरी मुस्कान उसने कभी नहीं देखी थी। नहीं, नहीं, वह अब फिर से उस कुटिया में, उस अवहेलना के केन्द्र में नहीं जायेगा। वह यहीं प्रभु के साथ जीयेगा अथवा मृत्यु का वरण करेगा।

उसने एक कुहनी पर खड़े हो दूसरे हाथ से श्रीकृष्ण के चरण पकड़ लिये। कृष्ण ने नीचे झुककर उसे बैठने में सहायता दी।

"गरुड तुम्हें नायक के साथ नहीं जाना?" कृष्ण ने पूछा। उसके चाचा ने कृष्ण के प्रश्न का भाषांतर किया।

"नहीं, नहीं, मुझे तुम्हारे साथ ही रहना है," वैनतेय ने कहा। सभी लोग इस पर हँस पड़े। कृष्ण उसे वापस भेज देंगे, इस भय से उनके चरण उसने और जोर से पकड़ लिये।

"वासुदेव, वैनतेय कहता है कि वह आपके साथ ही रहेगा," उसके चाचा ने कृष्ण को कहा, "लेकिन वह तो पागल है। यह अपंग आपको कष्ट ही देगा।"

कृष्ण ने नीचे झुककर वैनतेय को अपनी बाहुओं में ले लिया।

"गरुड, तुम मेरे साथ रहोगे?" कृष्ण ने पूछा।

उसके चाचा ने इस प्रश्न का भाषांतर किया।

"मैं अपंग, आपके साथ किस प्रकार रह सकूँगा?" वैनतेय ने डरते हुए कहा, "परन्तु इस संसार में आपके सिवा मेरा कोई आधार नहीं।" उसके इस विचित्र उत्तर से पिता, माता और दूसरे लोग हँस पड़े। कृष्ण ने गरुड की ओर देखा और कहा, "कौन कहता है कि तू अपंग है? मैं तुम्हारा ही हूँ!" चाचा ने इन शब्दों का अर्थ समझाया।

वैनतेय ने उत्तर में अपने अपंग पैर की ओर देखा—उसकी आँखों में अश्रु छलक आये।

"तू, इस अपंग को अपने साथ रखेगा, कृष्ण?" बलराम ने पूछा।

"हाँ!" कृष्ण ने कहा और अधिकारपूर्ण स्वर में वैनतेय से बोले, "तुम अपंग नहीं—खड़े हो, गरुड! अपने पैरों पर खड़े हो जाओ!"

वैनतेय यह भाषा समझता नहीं था—परन्तु उसकी गूँज उसकी नस-नस में व्याप्त हो गयी—उसका अर्थ वह समझ गया—उसने पैर हिलाने का प्रयत्न किया। कृष्ण ने उसका हाथ पकड़कर कहा, "खड़े हो, गरुड!"

गरुड ने कृष्ण के सामने भक्तिभाव से देखा। शांत आज्ञा के स्वरों ने उसमें अपार श्रद्धा उत्पन्न की। वह कृष्ण का आसरा लेकर खड़ा हो गया।

"चलो, मेरे साथ-साथ चलो!" कृष्ण ने कहा।

वह क्या कर रहा है, यह समझने की शक्ति उसमें न थी। उसने पैर उठाया। सभी स्तब्ध होकर कृष्ण की ओर देख रहे थे। वर्षों से जिसने कदम नहीं उठाया था, आज खड़ा होकर पैर आगे बढ़ा सका। वैनतेय का चेहरा विजयस्मित से प्रदीप्त हो गया। वैनतेय की मा आनन्दाश्रु न रोक सकी। रुंधे हुए कंठ से वह दौड़ी और कृष्ण के चरणों में गिर पड़ी।

१७

गोमांतक पहाड़ी

परशुराम ने गोमातक से विदा ली। बलराम यहां एक अपूर्व स्फूर्ति का अनुभव कर रहे थे। स्वभाव से ही वे मुक्त, मज्जन और जीवन का उपभोग करने में विश्वास करनेवाले थे। उनका वश चलता तो वे संसार की सभी उपाधियों का त्याग कर निजानंद में ही जीवन बिता देते। परन्तु बचपन से ही कृष्ण ने दोनों भाइयों के आसपास आदर के वातावरण की रचना कर दी थी और बलराम उससे कभी मुक्त नहीं हो सकते थे। बलराम कृष्ण को बेहद प्यार करते थे और यह भी जानते थे कि कृष्ण के वे स्वयं अपार स्नेह-भाजन हैं। कृष्ण की समझदारी, वीरता और सहज सूझ में उन्हें संपूर्ण श्रद्धा थी। कृष्ण की शक्ति पर भी उन्हें विश्वास था। परन्तु कोई उन्हें देवतुल्य माने और उस रूप को चरितार्थ करने के लिए उन्हें अथक पुरुषार्थ करना पड़े, यह उन्हें पसंद न था। मथुरा में उनके पराक्रमों की कथा आदर से कही जाती, और पिता, माता, गुरु सांदीपनि तथा मथुरा के तमाम लोग उन्हें अतिमानव ही मानते। कृष्ण में तो इस देवरूप बनने के लायक शक्ति थी, परन्तु बलराम को लोगों के आशानुकूल बनने में प्रयास करना पड़ता।

गोमातक पहाडी पर आकर बलराम फिर से अपने मनमौजी स्वभाव में रहने लगे। गरुड भी जीवन के आनंद में विश्वास करनेवाले लोग थे।

वे सभी खाते, पीते, गाते, नाचते और सदा हँसते रहते। संयमहीन स्वेच्छाचार भी वहाँ था। स्त्री-पुरुष वल्कल पहनते, पुष्पों के अलंकार धारण करते और मुक्त जीवन बिताते। वे स्फूर्तिवान थे। उनके पैरों में तो मानो पाँखें लगी थीं। पहाड़ी पर दुर्गम चढ़ावों और उतारों पर वे यथेच्छ विहार करते, विकट रास्तों पर दौड़ते और गहरे गड्ढों पर चपलता से कूद जाते। स्त्रियाँ मात्र चलती नहीं, नाचती थीं। गरुड़ लोगों की कई विशिष्टताएँ बलराम के मौजी स्वभाव को भातीं। वे स्वयं को सुवर्ण के पंखोंवाले विहगराज के वंशज बतलाते और उत्सवों पर गरुड़ के चेहरे लगाकर उड़ने की मुद्रा में चपलता के साथ कूदते फिरते।

गरुड़ लोग कभी-कदाच ही काम करते। नारियल का पेड़ उनका कल्पवृक्ष था, उससे उनको खाना, पीना, वस्त्र, खंभे, छपरे, ईंधन इत्यादि जरूरत की सभी वस्तुएँ मिलतीं। पहाड़ी पर उगनेवाले फल-फूलों का वे आहार करते और धनुष-बाण से पक्षियों का शिकार भी करते। बलराम उनमें काफी हिल-मिल गये। उन्हीं की तरह पुष्प धारण कर वे उनके नृत्य का आनन्द लेते, दोपहर तक सोये रहते और जब कृष्ण उन्हें दुर्गम रास्तों का पता लगाने के लिए साथ चलने को कहते तो वे यह बात हँसकर टाल देते।

"कभी हमें जरासंध के सामने गोमानक की रक्षा करनी पड़ेगी। हमें इसके लिए अभी से तैयार रहना चाहिए," कृष्ण ने कहा।

"कृष्ण, तुम जीवन का आनन्द उठाना नहीं जानते। जरासंध कभी यहाँ नहीं पहुँच सकता और यदि किसी तरह आ भी गया तो उसे पहाड़ी पर से उठाकर नीचे फेंक दूँगा। जैसे कि महाभार्गव कह गए थे, हमें जीवन जीना सीखना चाहिए," बलराम ने कहा।

"हाँ, जीवन जरूर जीना चाहिए, परन्तु किसी ध्येय के लिए!" कृष्ण ने उत्तर दिया।

"मैंने तो जीवन को पूर्णतः जीने का निश्चय किया है," बलराम ने एक वृक्ष के नीचे लंबी तानकर कहा।

कृष्ण ने बलराम को अपने रास्ते चलने दिया, परन्तु स्वयं भी गरुड़ों के जीवन में रस लेने से चूके नहीं। वैनतेय अब बिल्कुल चंगा हो गया था। कृष्ण के प्रति वह अपार श्रद्धा और भक्तिभाव रखता तथा छाया की तरह उनके पीछे-पीछे रहता। वैनतेय को जबसे कृष्ण ने शापमुक्त किया तब से

नायक और सभी गरुड इनको पूज्य-भाव से देखते। वैनतेय की सहायता से कृष्ण ने गोमानक की पूरी पहाड़ी को छान डाला। प्रत्येक घाटी, चढाव, दुर्गम मार्ग और जरासंध के अवरोधक के रूप में काम आनेवाले प्रत्येक खण्ड का निरीक्षण उन्होंने किया। अनाज और जल की दृष्टि से पहाड़ी कितनी समृद्ध है और शस्त्र बनाने के लिए वहा कितने खनिज उपलब्ध है, इसका पता भी लगाया। विश्रान्ति के पलों में कृष्ण जीवन और सयोग के विषय में विचार करते, मनुष्य को किस प्रकार धर्म के प्रति आकर्षित किया जाय, अथवा जीवन को भय, रोष या क्षुद्र आत्मसतोष की ग्रथियो से सकुचित किये बिना किस प्रकार जिया जाय, ये विचार भी उनके मन मे उठते रहते।

कभी-कभी वे नद और यशोदा, राधा और उसकी सखिया, वसुदेव और देवकी अथवा पाँच पाडवों के विचारों में खो जाते। आशिका का क्या हुआ होगा, उसकी माता ने उसे क्या सजा दी होगी, यह खयाल भी उनके बिना उन्हे नही रहता। कभी-कभी उनके हृदय में विदर्भ की रूपवती राजकन्या का ख्याल भी आ बसता। कई बार जरासंध का विचार उन पर हावी हो जाता। इस महत्त्वाकाक्षी सम्राट् ने बल और छल से राजाओ तथा प्रजाओं का भविष्य अन्धकार मे डाल दिया था। उन्हे लगा कि अब एक के बाद एक कदम उन्हे जरासंध का सामना करने की दिशा मे ले जा रहा है। उनके हृदय मे प्रिय, सुहृद उद्धव की याद भी बनी रहती। यह अल्पभाषी मित्र होठो से शब्द निकलते ही उन्हे कार्यरूप मे परिणत कर देता था। शायद अब भी वह जरासंध द्वारा कृष्ण के आसपास फैलाये जाल को काटने मे लगा होगा।

अन्य प्रवृत्तियों के अतिरिक्त कृष्ण गरुडो के उत्सवों और नृत्यों में भाग लेते। युवकों को बसी बजाना और युवतियों को वे रास सिखाते। कभी कोई झगड़ा होता या विकट समस्या आ जाती तो सब लोग सलाह के लिए कृष्ण के पास जाते। गोमानक के ये सरल निवासी कृष्ण के प्रति अपार भक्ति-भाव रखने लगे।

कृष्ण की सबसे बडी समस्या शस्त्र-सज्जित होने की थी। उस युग के युद्धकुशल योद्धाओं के बीच द्वन्द्व के रूप में लड़े जाते थे। प्रत्येक योद्धा के पास अपने-अपने विशिष्ट शस्त्र रहते। कृष्ण विशिष्ट शस्त्र निर्माण की कला सादीपनि के आश्रम में सीखे थे। एक विराट धनुष

निशाना साध सके ऐसी गदा और सबसे अधिक स्वयं को अजेय बना सके ऐसे शस्त्र के निर्माण की आकांक्षा वे रखते थे।

गरुड़ों के नायक का नाम था आत्रेय। अपनी माता आर्या से उसे यह नाम मिला था। ऐसा माना जाता था कि उसके पास चमत्कारी शक्तियाँ हैं। अग्निदेव की उस पर कृपा थी, और कहा जाता था कि जब भी वह अग्निदेव की विधिवत् पूजा करता तब अग्निदेव पत्थरों को गहरे लाल रंग की धातु में पलट देते। इसी धातु से वह अपने और राजकुटुंब के बाणों के फल बनाया करता। अन्य गरुड़ पत्थरों के फलवाले बाण बनाते और युद्ध में पत्थरों की ही गदा का उपयोग करते।

कृष्ण ने आत्रेय के साथ घनिष्ठता बढ़ायी। अग्नि का वह मंत्र जिससे पत्थर धातु में परिणत हो जाता था, उन्हें भी आता था। नायक की अनुमति से वे गरुड़ किशोरों को, बाणों को किस प्रकार बनाया जाय और निशाना अचूक कैसे हो, इसकी तालीम देने लगे। थोड़े ही समय में वैनतेय के नेतृत्व में युवक कूदने, दौड़ने और विषम आरोहण में प्रवीण हो गये। कृष्ण ने नायक से प्रार्थना की कि वैनतेय और उसके साथियों को अग्नि से तांबा प्राप्त करने की रीति सिखाने की अनुमति दी जाय और नायक उससे सहमत हो गये। परन्तु कृष्ण को इन शस्त्रों से संतोष नहीं था, इसलिए वैनतेय की मदद से उन्होंने एक निर्जन स्थल में विशाल वेदी की रचना की। योग्य वेदमंत्रों द्वारा उन्होंने पत्थर की आहुतियाँ अग्नि को दीं। अग्निदेव ने प्रसन्न होकर उन्हें धातु में परिवर्तित कर दिया।

इस धातु से कृष्ण ने तलवार, बाण के फल, चक्र, गदा इत्यादि बनाये। परन्तु अनेक प्रयत्न करने पर भी जो कुछ उन्होंने गुरु सांदीपनि के आश्रम में सीखा था, उससे कुछ अधिक नहीं बना सके। कृष्ण इस प्रश्न पर गंभीर रूप से विचार कर रहे थे। यदि धर्म-संस्थापना ही मेरे जीवन का आदर्श है तो फिर अधर्म के प्रति मुझे सतत संघर्ष करना होगा। यह तभी संभव था जब वे असंभव को संभव कर बनायें—जहाँ हो सके वहाँ प्रेम से और जहाँ न हो सके वहाँ बल से हिंसा पर अंकुश रख सकें। दिन-रात वे इन्द्र और अग्नि के मंत्र उच्चार कर इन देवताओं से अधिक शक्तिशाली शस्त्र देने की प्रार्थना करते रहते।

एक रात कृष्ण बैठे-बैठे यज्ञवेदी में प्रज्वलित अग्नि को एकटक देख रहे थे। अग्निदेव ने ताम्बे की धातु के तप्त टुकड़े की रचना की। कृष्ण ने

उस टुकड़े को पानी में डुबाया। उन्हें इस बात से सन्तोष नहीं हुआ। दीर्घ काल से वे मानवातीत शस्त्र पाने के लिए प्रभु से प्रार्थना कर रहे थे। अग्नि में ईंधन और तेल की आहुतियाँ देते रहते। अचानक एक चमत्कार हुआ। एक शिला अन्य शिलाओं की भाँति पिघली नहीं। उसमें मध्याह्न जैसा तेज और उषा जैसी सुनहरी आभा चमक रही थी। वह अनन्य दृश्य था। कृष्ण को लगा कि यह प्रभु का संकेत है। वह शिला सूर्य की तरह चमक रही थी।

कृष्ण ने मंत्रोच्चार के साथ अग्नि को आहुति दी। वेदी पर ज्वालाएँ भभक उठीं। अन्त में उसमें रस पिघला। उस रस को जब कृष्ण ने पानी में बहाया तब 'स न न न' करती आवाज आयी और भाप हवा में फैल गयी। जब प्रवाही ठंडा पड़ा तब कृष्ण ने उसे उठाकर देखा। प्रभु ने मेरी प्रार्थना सुन ली है, यह जानकर कृष्ण का हृदय हर्ष से छलक उठा। उन्होंने तलवार की धार से उसे छेदने का प्रयास किया, किन्तु तलवार के दो टुकड़े हो गये। उन्होंने ताम्बे के फलवाले तीर उस पर छोड़े, परन्तु तीर की नोक टूट गयी। इन्द्र ने कृष्ण की प्रार्थना सुनी, और अपने वज्र का अंश ही मानो भेज दिया।

कृष्ण को एक नये रहस्य का पता चला। जो छोटे लाल पत्थर नागर आलय निरुपयोगी समझकर फेंक देता था, वही अग्निदेव की प्रिय आहुति थी। जब ये पत्थर अग्नि को समर्पित किये जाते, तो वज्र का रस तैयार होता। कृष्ण तथा गरुड़ ने समूची पहाड़ी पर से ऐसे लाल पत्थर खोजने शुरू किये। ये वहाँ काफी प्रमाण में पाये गये। इन शिलाओं को यज्ञवेदी में रखा गया। अग्निदेव को सन्तुष्ट करना आसान नहीं था। तेल और चन्दन काष्ठ की अपार आहुतियाँ देनी पड़ीं। अन्त में अग्निशिखाएँ खूब ऊँची उठीं, और शिलाएँ तपकर जब लाल हो गयीं तब उनमें से रस झरा। वह जब ठंडा हुआ तो उसमें जो शस्त्र तैयार हुए वे ताम्बे और पत्थर के शस्त्रों को सरलता से तोड़ सकने लायक थे। यह प्रभु की भेंट थी।

दोपहर की नींद पूरी होने पर बलराम ने आँखें खोलीं। हवा में मधुर गंध फैल रही थी। एक दीर्घ श्वास लेकर वे खड़े हुए। आज किसी की अनोखी प्रसन्नता का अनुभव उन्हें हो रहा था। सुगंध भी ऐसी अपूर्व फैल रही थी वातावरण में कि बलराम उसी ओर चल पड़े जिस ओर से वह सुगंध आ रही थी। वहाँ उन्होंने एक चामत्कारिक दृश्य देखा।

एक वृक्ष के तने में कुछ छेद-सा रस झर रहा था। वह अनुपम सौरभ इसी रस में से प्रकट हो रही थी। बलराम ने हथेली में थोड़ा रस लेकर उसे चखा। वह अत्यन्त मधुर था। इतना उत्तम स्वाद उन्होंने पहले कभी नहीं चखा था। उन्होंने अधिकाधिक रस पिया जिससे उनका मन अत्यन्त हल्का हो गया। आकाश अत्यन्त सुन्दर दीखने लगा और आसपास की हरियावली और वृक्ष भी एक नवीन सौन्दर्य से युक्त दिखायी पड़े। उनका मन नाच उठने को हुआ, धरती पर नहीं, आकाश में। उन्होंने फिर थोड़ा रस चखा और जब तक तृप्ति नहीं हुई तब तक पीते ही रहे। उन्हें लगा कि धरती भी नाच रही है। सभी को अपने आलिंगन में ले लेने का उनका मन हुआ—गरुड़ कन्याओं को भी। छोटे आकार भी अब उन्हें अच्छे लगने लगे।

वे वहां पहुंचे जहां कृष्ण गदा बना रहे थे। मन में सोच रहे थे 'बेचारा कितनी मेहनत करता है। जीवन का आनन्द उठाना तो यह जानता ही नहीं। इसे उस वृक्ष में झरनेवाले रस का पान करना चाहिए। कल ही मैं उसे ले आऊंगा।" फिर कृष्ण से बोले, "कृष्ण तू तू क्यों इस-स तरह समय गँवाता है।'

'भाई, आप कहाँ थे ? क्या कर रहे थे ?" बलराम की स्थिति देख कर कृष्ण ने विस्मय प्रकट किया।

"मैं अरे मैं···ने तो अमृत खो ज लिया है। गोमानक के पे ड़ों में वह झ· रता है। चल तू भी थो डा पी ले।' बलराम ने कहा।

कृष्ण बलराम की स्थिति समझ गये। परन्तु बलराम के अहं पर चोट करना उन्होंने उस समय उचित नहीं समझा।

"मैं अपने लिए गदा बनाता हूं—तुम अपने लिए शस्त्र कब बनाओगे ?'

"शस्त्र ? मुझे शस्त्र की क्या आवश्यकता है ?" बलराम ने कहा।

"शस्त्रों के बिना जरासंध के विरुद्ध कैसे लड़ोगे ?"

"कैसे लड़ूंगा ? उह !" बलराम ने उपहास में हँसते हुए कहा, "मुझे गदा-वदा की क्या जरूरत है !"

बलराम ने इधर-उधर देखा। नजदीक ही एक खेत जोता जा रहा था। बलराम अस्थिर कदमों से वहाँ गये और खेत जोतनेवाले गरुड़ को

आश्चर्यचकित करते हुए चार आदमियों से भी न उठ सके ऐसे हल को उठाकर कृष्ण के पास ले आये।

"कृष्ण मुझे गदा की जरूरत नहीं। मैं इस हल से जरासंध के साथ लडूँगा। यदि उसमें हिम्मत है तो आये मेरे सामने!" बलराम ने कहा और हल रेत में फेंक दिया। फिर जोर-जोर से हँसने लगे और वहीं जमीन पर निढाल हो पड़ गये तथा गाढ़ निद्रावश हो गये।

एक दिन कृष्ण वैनतेय को लेकर पहाड़ी की उस ओर गये जहाँ सागर चट्टानों से टकराता था। कृष्ण को लगा कि मौका पड़ने पर गोमान्तक को अब भी दुर्ग बनाया जा सकता है। युगों पूर्व गोमान्तक सागर के मध्य में स्थित एक पहाड़ी थी, परन्तु गरुडों के पूर्वजों को ज्वार के समय मुख्य भूमि पर जाते हुए तकलीफ होती थी, इसलिए उन्होंने दोनों ओर सागर के जल को रोक रखने के लिए पत्थर का बड़ा बाँध बनाया था। इसी के फलस्वरूप पहाड़ी मुख्य भूमि से जुड़ गयी थी। अब भी ऐसे निशान वहाँ मौजूद थे जिनसे मालूम होता था कि कभी वह भाग सागर के नीचे था।

कृष्ण और वैनतेय पहाड़ी पर आये तब उन्होंने बलराम को एक लतामंडप में तीन गरुड कन्याओं से घिरे बैठे देखा। बलराम वृक्ष का सहारा लेकर सोये थे। एक स्त्री 'अमृत रस' का घड़ा रख रही थी, दूसरी उनके लिए माला गूँथ रही थी और तीसरी उनके चरण सहला रही थी। बलराम ने कृष्ण और गरुड को देखा और हँसकर अपने पास बुलाते हुए कहा, 'कृष्ण, देख तो, ये तीनों अप्सराएँ मेरा कितना ख्याल रखती हैं। ये जो मुझे अमृत रस पिला रही है—इसका नाम वारुणी है और ये माला गूँथने-वाली कान्ति है, तीसरी श्री है। भाई तू क्या युद्ध की तैयारी में अपना समय गँवाता है? जरासंध यहाँ क्या आयेगा!"

कृष्ण हँस पड़े। "जरासंध यहाँ अवश्य आयेगा और तुम यदि ऐसे ही रहोगे तो उसके साथ लड़ने की स्फूर्ति भी तुममें नहीं रहेगी।"

"जब वह आयेगा तब देख लिया जायेगा!' बलराम ने कहा और गरुड कन्याओं की ओर मुड़े। तीनों युवतियाँ हँस पड़ीं।

वैनतेय कई बार करवीरपुर जाता। अपना गरुड-मुख पहनकर वह चील की तरह झपटता और दो दिनों में ही वहाँ जाकर वापस लौट आता। एक दिन जब वह करवीरपुर से लौटा तो सीधा घर न जाकर

कृष्ण के पास आया।

"भगवन्, आपके लिए मैं समाचार लाया हूँ।" उसने कहा।

"क्या बात है, गरुड ?" कृष्ण ने पूछा। अब वे गरुड-भाषा भी बोलने लगे थे और वैनतेय को भी आर्य भाषा बोलने का अभ्यास हो गया था।

"करवीरपुर के राजा शृगलव के यहाँ कुछ दिनों मे मेहमान आने वाले हैं, किसी बडे देश के राजा। उनके स्वागत के लिए भारी तैयारियाँ हो रही है।"

"उस राजा का नाम क्या है ?"

"मुझे ठीक से याद नहीं।"

"उसका नाम जरासध तो नही है ?" कृष्ण ने पूछा।

"हाँ-हाँ, वही ! उनके साथ और भी कई राजा आ रहे है। शृगलव ने उन्हे निमत्रण दिया है !" गरुड ने बताया।

'तो अब हमे तैयार हो जाना चाहिए !"

बलराम अपने 'अमृतरस' मे चूर थे। जब उन्हे यह समाचार मिला तब उन्होंने अपने नाजुक साथियो को दूर किया और अपने कुटीर मे चले गये।

"कृष्ण, तुमने कौनसे शस्त्र बनाये है ? सुना है, जरासध आ रहा है !" बलराम ने कहा।

कृष्ण बलराम को तीसरी कुटिया मे ले गये और वहाँ पर रखे धनुष-बाणो का भडार दिखाया। वहाँ गदाएँ भी थी। "ये मेरे शस्त्र है," कृष्ण ने कहा।

"हमे इन शस्त्रो की पूजा करनी चाहिए—इनके नाम रखने चाहिए," बलराम ने कहा।

"मैं तो तैयार हूँ—पर तुम्हारे शस्त्र कहाँ है ?" कृष्ण ने पूछा।

"परसो हम शस्त्र-पूजा करेंगे—तब तक मेरे शस्त्र भी तैयार हो जायेंगे," बलराम ने कहा। वे वापस जब लौटे तब तीनो युवतियाँ उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। बलराम ने गर्जन कर उन्हे भगा दिया। फिर कुल्हाडी लेकर एक विशाल वृक्ष को काटने बैठे और उसके तने से एक बडा हल बनाया। दो दिन और दो रात काम कर उन्होंने वह विशाल

हल तैयार किया।

शस्त्र-पूजा का दिन आ पहुँचा। समस्त गरुड-जनों को भी इस उत्सव पर आमंत्रित किया गया।

"कृष्ण, अपने शस्त्रों की पूजा आरंभ करो!" बलराम ने कहा।

"पर, तुम्हारे शस्त्र कहाँ हैं, भाई!"

"तुम पूजा करो—मैं अपना शस्त्र अभी ले आता हूँ।"

थोड़ी देर में जब बलराम लौटे तब उनके एक कंधे पर एक विशाल हल था और दूसरे कंधे पर पाँच फुट का बड़ा मूसल।

"ये रहे मेरे शस्त्र! अपने शस्त्र तैयार करने के लिए मुझे कई दिन गंवाने नहीं पड़ते! चलो, अब पूजन आरंभ करो।"

कृष्ण ने मुस्कराकर कहा, "बड़े अच्छे हैं आपके शस्त्र! पर जरा मेरा यह शस्त्र भी देखो!" फिर पत्तों के आवरण को हटाकर उन्होंने मध्याह्न के सूर्य की भाँति चमकते हुए चक्र को उठाया। फिर और पत्ते हटाकर उन्होंने दूसरे शस्त्र दिखाये। उनमें मुकुट, कवच इत्यादि थे रत्नजड़ित एक स्वर्ण मुकुट भी था।

"मैंने प्रभु के लिए यह तैयार किया है!" वैनतेय ने गर्व से कहा।

बलराम विस्मय से यह सब देख रहे थे। उन्होंने कहा, "चमत्कार! चलो, अब शस्त्रों का नामकरण करें!"

बलराम ने हल को 'समवर्तक' और मूसल को 'सौनंद' नाम दिया। कृष्ण के धनुष को 'सारंग', गदा को 'कौमोदकी' और चक्र को 'सुदर्शन' की संज्ञा दी।

शस्त्रों की पूजा कर उन्होंने देवताओं को उनमें शक्ति देने की प्रार्थना की।

"गरुड मेरे शस्त्रों का रक्षक रहेगा। वह नहीं हो, तब भी गरुड का प्रतीक मेरे शस्त्रों पर रहेगा, क्योंकि उसने मेरे शस्त्रों के निर्माण में सहायता की है!" कृष्ण ने कहा।

"अब जरासंध भले ही आये—उसे देख लेंगे!" बलराम ने कहा।

गरुडमुख-मानव इन दोनों भाइयों के आस-पास नृत्य कर रहे थे। उन्होंने दोनों पर पुष्पवर्षा की और शत्रुओं के प्रतिकार की लालसा में युद्ध-दुंदुभी बजायी।

१८

जरासंध को जीवनदान मिला

जरासंध आया। उसके मुख्य साथी दामघोष, रुक्मी, अनुविंद, दन्तवक्र और दारद उसके साथ थे। ये सभी राजा अपने-अपने राज्यों के श्रेष्ठ योद्धा भी लेते आए थे। यह काफिला एक शिकारी दल की तरह आगे बढ़ रहा था। मार्ग में उशीनारा, चेदि और विदर्भ के राज्य पड़े। वहाँ उनका भव्य स्वागत हुआ। रोज शाम को महफिलों की योजना होती और सम्राट् पर महत्त्वाकांक्षा का मद अधिकाधिक चढ़े ऐसी गोष्ठियाँ भी होतीं। मगध-सम्राट् की विजय-कूच का रूप इस अभियान को दिया गया--सभी गाँवों में मगध-सम्राट् की जय-जयकार से वातावरण गूँज उठता। करवीरपुर के शृगालव वासुदेव ने संदेश भिजवाया कि वसुदेव के दोनों पुत्र घोर जंगल में स्थित गोमांतक पहाड़ी पर छिपे हैं। उन दोनों को पकड़कर सम्राट् की सत्ता का अनादर करनेवालों को पाठ पढ़ाना बहुत सरल था।

विदर्भ से आगे इन लोगों को जंगलों और पर्वतों को लाँघकर जाना पड़ा। मार्ग बहुत दुर्गम था और जल का अभाव भी उन्हें कई बार हुआ। इस कठिन मार्ग के कारण अनेक राजा अपना धीरज खो बैठे थे और भीतर-ही-भीतर शिकायत करने लगे थे कि मात्र दो युवकों को पकड़ने के लिए इतने बड़े अभियान की क्या आवश्यकता है। फिर भी जरासंध की इच्छा के आगे सभी मौन थे।

गोमांतक की तलहटी में जरासंध और उसके साथियों ने डेरा डाला। उनका खयाल था कि दो-एक दिन में दोनों तरुणों को पकड़कर उन्हें दण्ड दिया जा सकेगा। परन्तु जब उन्होंने पहाड़ी के दुर्गम रास्तों पर चढ़ने का प्रयास किया तो उनकी आशा आशंका में परिवर्तित हो गयी। यह घेराबंदी कब तक चलेगी? यदि पहाड़ी पर जल और फल पर्याप्त मात्रा में हुए तो वहाँ के लोग क्या कभी शरण में आयेंगे? पहाड़ी पर पहुँचने के लिए सरल मार्ग ढूँढ़ने का प्रयास किया गया। बड़ी मुश्किल से साथ दो आदमी चल सकें, ऐसा एक विषम और तंग रास्ता उन्हें दिखायी पड़ा। उसके एक ओर ऊँची-ऊँची चट्टानें और दूसरी ओर गहरी खाई थी। कुछ

साहसिक योद्धाओं ने इस मार्ग से आगे बढ़ने का निश्चय किया। वे कुछ दूर गये ही थे कि पहाड़ी पर कुछ आकार दिखायी दिये, जिन्होंने बड़े-बड़े गोल पत्थर आरोहियों की ओर ढुलकाने शुरू किये। इससे आरोही घबराकर गहरी खाई में गिर पड़े। यह परिस्थिति ऐसी विषम थी कि केवल दो व्यक्ति पूरी फौज का देर तक मुकाबला कर सकते थे और ऐसा लगता था कि पहाड़ी पर सैकड़ों मनुष्य थे।

दो दिन तक जरासंध ने युद्ध समिति में इस समस्या पर मंत्रणा की। उसके साथी इस निष्फल प्रयास के लिए उत्साह खो बैठे थे। एक तो वे विकट प्रवास से थके हुए थे, फिर करवीरपुर से सहायता पाना भी मुश्किल था। इस बात की बहुत कम सम्भावना थी कि पहाड़ी पर कब्जा किया जा सकेगा, अथवा घेराबन्दी चाहे जितनी दीर्घ हो, फिर भी सफलता उन्हें कभी मिलेगी। जरासंध ने अपने साथियों के निरुत्साह को लक्ष्य किया, परन्तु अपने शत्रुओं को वह छोड़ना भी नहीं चाहता था। यदि इन दो युवकों से डरकर वह पीछे लौट गया तो दुनिया क्या कहेगी? उसने अपने साथियों को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया। उसने पराक्रम की सराहना भी की और अपरोक्ष में धमकियाँ भी दीं। फिर भी राजागण आक्रमण करने की जोखिम उठाने को तैयार नहीं हुए। उनमें से केवल एक व्यक्ति स्वस्थ और शान्त था। वह था चेदिराज दामघोष। अपने मित्रों की बेचैनी से उसे एक प्रकार की प्रसन्नता हो रही थी, और इसका कारण यह था कि इस अभियान में वह एक अन्य ही उद्देश्य से शामिल हुआ था।

जरासंध द्वारा विजित होने पर दामघोष को उसके एक सामन्त का स्थान स्वीकार करना पड़ा था। यह ठीक था कि मगध सम्राट् ने उसे कई बार विपत्तियों से बचाया था, परन्तु दामघोष दूरदर्शी था। वह यह देख सकता था कि मगध की निरन्तर बढ़ती हुई सत्ता केवल उसके अपने जैसे राजाओं के लिए ही नहीं, बल्कि समग्र आर्य जीवन-मार्ग के लिए भयजनक थी। यदि भाग्य उसका साथ बराबर देता रहा तो वह पांचाल और हस्तिनापुर के महाराज्यों का भी नाश कर सकता था। यदि समस्त आर्यावर्त उसके अधीन हो गया तो फिर किसी भी नरेश को स्वतन्त्र होने का कभी कोई अवसर नहीं मिलेगा।

दामघोष की प्रबल इच्छा थी कि जरासंध पर अंकुश रख सके, ऐसी कोई शक्ति अस्तित्व में आये। तभी कंस का वध हुआ। निरन्तर विश्राम-

शील मगध-सत्ता पर यह सर्वप्रथम आघात था। दामघोष की आशा बँधी कि मथुरा में कृष्ण और बलराम के नेतृत्व में सत्ता के सन्तुलन का सृजन हो सकेगा। परन्तु परिस्थिति में परिवर्तन हुआ। दोनों युवकों को मथुरा छोड़कर भागना पड़ा और उनका पीछा करते हुए सम्राट् के दल में दामघोष भी स्वयं शरीक हुआ, केवल इसलिए नहीं कि वह जरासंध को प्रसन्न करना चाहता था, बल्कि इस आशा में भी कि उन युवकों के जीवन को किसी प्रकार बचाया जा सके, ऐसी कोई स्थिति निकल आयेगी।

दामघोष को लगा कि वह स्थिति अब आ पहुँची है। जब सभी की बुद्धि को काठ मार गया तब उसने कहा, मित्रो! हमें अपने लक्ष्य को नहीं छोड़ना चाहिए। यदि हमने ऐसा किया तो संसार हमारा उपहास करेगा और सम्राट् का मान घटेगा। हमें कोई-न-कोई मार्ग तो इस विषम परिस्थिति में से निकालना ही होगा।

जरासंध दामघोष को सदा शंका की दृष्टि से देखता था। वह जानता था कि उसने दामघोष को कई बार विपत्ति में से बचाया है, परन्तु दामघोष की निष्ठा पर फिर भी उसे विश्वास नहीं था। चेदिराज के बर्ताव में वैसे कहीं कोई शंका की गुंजाइश नहीं रहती थी, वह अत्यन्त चतुर व्यक्ति था। उसका मस्तिष्क किस प्रकार काम करता है, यह कहना बहुत कठिन था। वह वसुदेव का बहनोई था। बलराम और कृष्ण की ओर उसके हृदय में सहानुभूति हो, यह स्वाभाविक ही था। यह आशंका जरासंध को हर समय डसा करती थी। जरासंध चाहता कि उसकी सेना में दामघोष के बदले उसका पुत्र शिशुपाल शामिल हो, परन्तु दामघोष ने तत्काल इस अभियान में स्वयं साथ देने की जो तत्परता दिखायी, उससे उसके साथ संधि को भंग किये बिना उससे छुटकारा पाना मुश्किल था। अभी जरासंध कंस का बदला नहीं ले सकता था—ऐसी स्थिति में यदि दामघोष जैसा प्रतिष्ठित राजा उससे विलग हो जाय, तो उसकी साम्राज्य-सत्ता पर करारी चोट पड़ सकती थी। सभी लोग कौतूहल से दामघोष के मुख की ओर देख रहे थे।

"परन्तु क्या कोई मार्ग दिखाई देता है आपको?" जरासंध ने पूछा।

"हम लोग आक्रमण करके भी इस पहाड़ी पर कब्जा नहीं कर सकते। वनचरों से भरे जंगल में घेरा डालकर बहुत समय तक रुका रहना भी

हमारे लिए सम्भव नहीं, और अपना हेतु सिद्ध किये बिना वापस लौटना भी हमारे लिए अशोभनीय होगा। यदि हम खाली हाथ वापस चले गये तो दुनिया हम पर हँसेगी और चक्रवर्ती की निरन्तर कीर्ति को धक्का लगेगा।

'परन्तु आप कौन-सा रास्ता सुझाते हैं?' रुक्मी ने पूछा।

दामघोष ने उत्तर दिया 'मेरा एक सुझाव है। यह ग्रीष्म का समय है। पहाड़ी की ढलान ठेठ ऊपर तक सूखी घास से भरी है। आज रात हम लोग चारों ओर से उसमें आग लगा दें। सुबह तक आग ऊपर तक पहुँच जायेगी तब ऊपर के वन भी भभक उठेंगे और वहाँ जो भी लोग हैं, उनका विनाश हो जायेगा। उसके बाद हम अपना हेतु सिद्ध हुआ मान-कर वापस लौट सकेंगे। वसुदेव के पुत्र यदि उस आग में न भी जलें तो भी दुनिया में फिर मुँह दिखाने लायक नहीं रहेंगे।"

जरासंध उस सुझाव पर विचार करने लगा। कोई प्रकट क्षति तो उसमें दिखाई नहीं दे रही थी। दूसरे राजाओं को भी लगा कि इस सम्मति से कोई रास्ता निकल ही आयेगा। उन्होंने तत्काल इस सुझाव को स्वीकार कर लिया। जरासंध को भी इससे सहमत हुए बिना कोई चारा दिखायी नहीं पड़ा।

वैनतेय की चीख से कृष्ण जाग उठे। 'क्या हुआ?' उन्होंने उठ-कर बैठते हुए पूछा।

"उन्होंने पहाड़ी की ढलान पर की घास को आग लगा दी है। हम लोग जिन्दा ही जल जायेंगे।" गरुड़ ने कहा।

गरुड़, बलराम और कृष्ण पहाड़ी पर के मैदान के छोर पर पहुँचे। इतने में नायक आनत भी वहाँ आ पहुँचा। पवन प्रचंड वेग से बह रहा था और उससे प्रज्वलित हो आग धीरे-धीरे ऊपर उठ रही थी। अमावस की अँधेरी रात चारों ओर फैलती ज्वालाओं से प्रकाशित हो उठी थी। नायक कृष्ण के चरणों में पड़कर दया की भीख माँगने लगा। वह समझता था कि कृष्ण के पास चामत्कारिक शक्तियाँ हैं। "कृष्ण, हमें बचाओ! यदि आग ऊपर तक पहुँच गयी तो हम सब जिन्दा ही जल जायेंगे।"

"तुम लोग सब मेरे साथ चलो। अपनी-अपनी मशालें जला लो और शस्त्रों को धारण कर लो। हम लोग आग को बुझा सकेंगे। मैं

नुम्हे गम्ना बनाना है," कृष्ण ने कहा और वलराम की ओर मुडकर फिर बोले, "हम लोग कवच पहन ले और शस्त्र भी साथ ले ले !" कृष्ण स्वस्थता मे सभी काम कर रहे थे। उनकी आवाज मे अधिकार का भाव था। उन्होंने कहा, 'वैननेय, हम लोग सागर तक गये थे न ! वह रास्ता फिर से दिखाओ।'

पहाडी के पृष्ठ भाग मे सागर की ओर जाते उस अटपटे मार्ग पर सभी चल पडे। सागर मे अमावस का ज्वार आया हुआ था। कृष्ण उन्हे किनारे के पास ले गये। वैसे तो किनारा ही लगता था, परन्तु युगो पहले वह मनुष्यो द्वारा बनाया हुआ बाँध था। थोडा-सा खोदने पर भीतर पत्थरो की दीवार दिखायी दी। सभी लोग अपने-अपने पास जो भी हथियार थे—हथौडा, कुदाली इत्यादि, उनसे बाध को तोडने मे लग गये। अन्त मे बाँध टूटा और सागर का जल भीतर घुस आया। वे लोग तब पहाडी की दूसरी ओर दौड कर गये। दूसरी ओर भी ऐसा ही एक बाँध था। वह भी तोडा गया। कृष्ण, बलराम और गरुड बाँध के टूटने से पहले ही उसे पार कर गये।

जरासध, उसके साथी और सैनिक पहाडी पर भीषण अग्नि-ज्वालाओ को देखकर बडे हर्षित हुए। थोडी देर बाद उन्होने देखा कि हरिण, रीछ इत्यादि वनचर आग से बचने के लिए झाडियो मे से निकल-निकलकर भाग रहे है। इस आशा से कि कल इस वनचर-रहित जगल से वे लोग लौट सकेंगे, सभी लोग परम तृप्ति का अनुभव करते हुए भोजन कर सो गये।

मध्य रात्रि मे किसी भयकर गर्जना ने उन्हे जगा दिया। ऐसा लगता था कि जल की भीषण बाढ आ गयी है। सभी लोग आँखे फाडकर देखने लगे, जो दृश्य उस समय उनके सामने था, उस पर किसी को विश्वास नहीं हो रहा था। पहाडी के दोनो ओर से सागर-जल का प्रवाह बढा आ रहा था। इस प्रवाह ने आग को बुझा दिया। सभी के हृदय मे भय का समावेश हो गया। कोई एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सका, सभी को लगा कि दैवी शक्ति धारण करनेवाले वसुदेव के पुत्र का यह चमत्कार है। जरासध की भृकुटी तन गयी। ऐसा लगा कि उनका शत्रु कोई महादैत्य है।

शुक्र का तारा क्षितिज पर चमक रहा था। क्रोधित गरुडो की कर्ण-भेदी चीखे जरासध को सुनायी पडी। वस्तुस्थिति को समझने से पहले ही हल जैसा एक विराट् शस्त्र लेकर एक प्रचण्ड आकार उन पर टूट

पड़ा। उसके आसपास चीखने-चिल्लाने असंख्य आकार थे। उस प्रचण्ड-काय महारथी के विराट् हल के प्रहारों से रथों के चर-चूर होने की आवाज आ रही थी। अश्व भयभीत होकर दौड़ने लगे। धनुर्धारी और अन्य सैनिक अपनी-अपनी जान बचाकर भागे। जरासंध और उनके मित्र अपने शस्त्र एकत्र कर सकें, इससे पहले ही दूसरी ओर से कुशल हस्त से गदा चलाता हुआ एक वीर आता दिखायी पड़ा। गर्जों की चीत्कार-चिल्लाहट अधिकाधिक उन्मत्त होती जा रही थी। अंधेरे का साम्राज्य अभी हटा नहीं था।

जरासंध और उसके साथी किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये—उनकी सेना में अव्यवस्था फैल गयी। पूर्व में क्षितिज पर उषा की किरणों ने जब रंगोली रची, तब इन किंकर्तव्यविमूढ़ राजाओं ने देखा कि प्रचण्डकाय बलराम हल घुमा-घुमाकर विनाश का ताण्डव मचा रहे हैं। दूसरी ओर कृष्ण खड़े थे। इस समय उनके हाथ में एक विशाल धनुष था। छूटता हुआ प्रत्येक तीर अपने निशाने पर ठीक बैठता था। रुक्मी ने दूर से ही कृष्ण को पहचान लिया और कहा, "देखो, वह रहा कृष्ण! चलो हम लोग उसी को पकड़ें!" अवन्ती के अनुविन्द ने भी धनुष-बाण लिया और दूसरों से कुछ आगे बढ़ा। राजकुमार गोनार्द गदा हाथ में लेकर कृष्ण की ओर दौड़ा।

कृष्ण ने अपना धनुष वैनतेय को सौंपा और स्वयं हाथ में सुदर्शन चक्र धारण किया। सहसा, उनकी अंगुली से चक्र छूटा और विद्युत गति से गोनार्द का शिरच्छेद करके वापस कृष्ण के हाथ में चला गया। दोनों पक्ष इस अद्भुत शस्त्र को देखकर दंग रह गये। कृष्ण के साथियों ने पहले भी इस चामत्कारिक शस्त्र को देखा जरूर था, परन्तु उसका इस प्रकार उपयोग हो सकेगा, इसका उन्हें ख्याल भी न था। अनुविन्द ने धनुष पर बाण चढ़ाया ही था, कृष्ण ने उसे स्नेह भरे स्वर में कहा, 'अनु-विन्द, हम लोग भाई-भाई हैं। दोनों गुरु सान्दीपनि के शिष्य हैं। हमारा आपस में लड़ना ठीक नहीं होगा!" तभी कृष्ण के हाथ से चक्र छूटा और अनुविन्द के मस्तक पर चक्कर काटकर वापस कृष्ण के हाथ में लौट गया। अनुविन्द के कांपते हाथों से धनुष नीचे गिर पड़ा। तब रुक्मी ने आगे बढ़कर निशाना साधा और बाण छोड़ा। तत्काल कृष्ण के हाथ से चक्र छूटा और अध-बीच में ही उसने बाण को रोककर उसके टुकड़े-टुकड़े कर उसे नीचे गिरा दिया।

कृष्ण ने कहा, "कौशिक के पुत्र, पीछे लौट जाओ फिर गरुड के हाथ से गदा लेकर कृष्ण चटटान पर से कूद पडे और उन सभी की ओर दौडे, जो उन पर प्रहार करना चाहते थे। इतने में जहाँ कृष्ण खडे थे, वहाँ से कुछ ही कदम दूर शख-ध्वनि हुई। पाचजन्य के स्वर कृष्ण तुरन्त पहचान गये। कृष्ण ने उस दिशा मे देखा। उन्होंने जिसको यह शख सौंपा था, उस उद्धव को उन्होंने दामघोष के रथ मे खडा देखा। वही शख फूँक रहा था।

भगवान् सूर्य के उदय के साथ त्रस्त राजाओ ने देखा कि चीखते-चिल्लाते गरुडो के सामने उनके सैनिक हतवीर्य होकर वृक्षो के पीछे अथवा झाडियो में छिपने के लिए दौड रहे है। दामघोष अपने रथ मे यह सब देख रहा था। वसुदेव के पुत्रों के चमत्कार को देखकर वह दग रह गया था। जरासध के सैनिक भाग चुके थे, घोडे दौड गये थे। कृष्ण और बलराम चामत्कारिक शक्तिवाले शस्त्रो से शत्रु-दलो का सहार कर रहे थे। वह रथ से नीचे कूदा और चेदि के अपने सैनिकों को एकत्रित कर रुक्मी और कृष्ण के बीच मे जाकर 'जय वासुदेव' की घोषणा कर खडा हो गया। उद्धव ने दामघोष का अनुसरण किया और कृष्ण की बगल मे जाकर वह भी खडा हो गया।

दूसरी ओर बलराम स्वय अपने ही बल से उन्मत्त होकर जरासध की सेनाओ के बीचोबीच फिर पहुँच गये थे। उनके सवर्त्तक हल के प्रहार के सामने कोई नही टिक पाता था। राजा दारद गदा लेकर बलराम के सामने आये और बलराम पर पीठ पीछे से गदा उठायी। बलराम पीछे फिरे। उनका सवर्त्तक बिजली की तरह गिरा और दारद धूल-धूसरित हो गया। उसका सर चूर-चूर हो गया था।

"जरासध, कहाँ छुपकर बैठा है ? यहाँ देख, तेरा काल तुझे पुकार रहा है। हिम्मत हो तो मैदान मे आ !" बलराम ने गर्जना की।

सभी ने उस ललकार को सुना—जरासध ने भी। ऐसा नियम था कि युद्ध का आह्वान पाकर वीर-पुरुष को उसे स्वीकार करना ही चाहिए। जरासध हाथ मे भारी गदा लेकर आगे बढा। बलराम ने पास ही खडे गरुडो को सवर्त्तक सौपा और उनके पास से अपनी गदा लेकर जरासध के सामने वे आगे बढे। दोनो प्रतिस्पर्धी एक-दूसरे की टक्कर के थे। एक का कद ऊँचा था, दूसरा बलिष्ठ था। दोनो मे भयकर युद्ध हुआ। दर्शक साँस रोककर इस असाधारण दृश्य को देख रहे थे। जरासध जैसे यशस्वी

योद्धा की सहायता के लिए किसी दूसरे को जाना पड़े, यह लज्जास्पद समझा जाता। परन्तु यदि जरासंध की मृत्यु हो जाये तो सारे साम्राज्य के नष्ट होने की सम्भावना थी। ऐसा लगा कि जरासंध प्रतिस्पर्धी के हाथों कुचल दिया जायगा। स्वयं जरासंध को भी ऐसे दुस्साहस में स्वयं को फंसाने की अपनी मूर्खता कचोटने लगी। यदि इस युवक के हाथों उसकी मृत्यु हुई तो उसकी समस्त सिद्धियाँ और आशाएं भूतकाल की कथा में परिवर्तित हो जायगी। वह किसी प्रकार बच निकलने का उपाय ढूंढ रहा था, परन्तु कोई मार्ग मिले, इससे पहले ही बलराम ने प्रहार किया और उसके हाथ से गदा गिर पड़ी।

अचानक पाञ्चजन्य का विजय-नाद वातावरण में गूंज उठा। प्रेक्षकों ने रास्ता छोड़ा और कृष्ण, दामघोष तथा उद्धव प्रतिस्पर्धियों के पास चले गये।

"भाई, अभी रुक जाओ। उसका समय अभी नहीं आया है!" कृष्ण ने जरासंध के मस्तक पर गदा-प्रहार के लिए उठे हुए बलराम के हाथ को रोक लिया। जरासंध बलराम के उस उठे हुए हाथ में अपने काल को देख रहा था। उस काल को रोकने वाले हाथ को भी उसने देखा। जीवन में इतनी कपकपी उसे कभी अनुभव नहीं हुई थी। उसने कृष्ण की बात सुनी। उसने उन्हें कभी देखा नहीं था। इस समय उनकी उपस्थिति को वह अनुभव कर रहा था—उनकी प्रभावशाली देह, मोहक चेहरा, चमकती आंखें और वशीकरण करनेवाली मुस्कान—यह सभी उनके व्यक्तित्व के प्रभाव में एकरस हो रहे थे।

'अनुविन्द, चक्रवर्ती को अपने रथ में ले जाओ, उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं है!" कृष्ण ने कहा।

जरासंध इतना अपमानित कभी नहीं हुआ था। यह महान विजेता उस ग्वाले से जीवनदान पा रहा था, जिससे वह सबसे अधिक द्वेष करता था। उसके हृदय में क्रोध की ज्वाला भभक उठी। परन्तु वह हतवीर्य हो चुका था। जल्दी से वह अनुविन्द के रथ में चढ गया। चारों ओर भटकते हुए घोड़ों में से दो को पकड़कर उसने रथ के साथ जोड़ा और सम्राट् का रथ तेजी से भाग गया।

वैनतेय उन्मत्त होकर जोरों से चिल्लाया। इस विजयोल्लास के स्वर गोमान्तक की पहाड़ी पर गूंज उठे।

१६

उद्धव का तर्क जाना

कृष्ण जब कुंडिनपुर से विदा हुए तब उद्धव को ऐसा लगा, मानो उसका हृदय ही प्रिय मित्र के साथ चला गया है। बचपन से ही पिता देवभाग ने उसे इस आशय से वृन्दावन भेजा था कि वह कृष्ण के साथ ही बड़ा हो। तभी से उसके मन कृष्ण प्रिय सखा ही नहीं, आराध्य देव भी बन गये थे। उसका जीवन कृष्णार्पण हो गया था। कृष्ण की सेवा ही उसका सर्वोच्च कर्त्तव्य था। कृष्ण के विचार और आकांक्षा को वह पहले से ही समझ लेता था और उनको पूर्ण करने के लिए तत्काल तन-मन से जुट जाता था। कृष्ण जब सह्याद्रि के लिए रवाना हुए तभी से उद्धव ने कृष्ण सविजय लौट सकें, इसके लिए प्रयत्न करना आरंभ कर दिया। कुछ समय वह विदर्भ के महाराज भीष्मक के वृद्ध पिता कौशिक के अतिथि के रूप में रहा। वहाँ उसे यह अनुभूति हुए बिना नहीं रही कि कृष्ण के वन में चले जाने से राजकुमारी रुक्मिणी का हृदय अत्यंत व्याकुल हो गया था। उससे सहायता पाने की उद्धव को आशा थी। रुक्मिणी ने अपने पितामह कौशिक से बात की और तीनों ने मिलकर जरासंध के कुचक्र को विफल करने की योजना बनाने के लिए कई घंटों मंत्रणा की। उन्होंने यह भी तय किया कि ऐसी किसी योजना में चेदि के राजा दामघोष को भी सम्मिलित किया जाये।

कृष्ण ने जो अनुमान लगाया था ठीक उसी प्रकार जरासंध ने मथुरा को नष्ट करने का विचार त्याग दिया और अपनी प्रतिष्ठा तथा महत्त्वाकांक्षा पर कुठाराघात करनेवाले वसुदेव के पुत्रों को खोज कर परमधाम पहुँचाना ही उसका परम लक्ष्य बन गया। उसका विचार था कि कृष्ण-बलराम की हत्या करने के बाद किसी यादव बालक को मथुरा की गद्दी पर बिठाकर अपनी विधवा पुत्री को राजमाता के रूप में वह प्रतिष्ठित कर सकेगा।

कौशिक का आशीर्वाद प्राप्त कर उद्धव गुप्त वेश में चेदि गया। उस समय जरासंध और उसके साथी चेदि में अतिथि थे और सह्याद्रि की ओर रवाना होनेवाले थे। उद्धव ने दामघोष के समक्ष उपस्थित होकर अपनी योजना की चर्चा की। दामघोष ने शान्तिपूर्वक उस पर विचार किया। यदि जरासंध की पकड़ साथियों पर कुछ ढीली पड़े और वसुदेव के पुत्र उतने ही वीर हों, जितनी कि उनकी प्रशंसा होती है, तो एक अच्छा अवसर मिल सकता है, दामघोष ने सोचा। इस अवसर को वह खोना नहीं चाहता था। इसी इरादे से उसने स्वयं जरासंध के दल में सम्मिलित होने का निश्चय किया। सारथि के रूप में उसने उद्धव को भी साथ ले लिया।

दामघोष ने जिसकी आशा भी नहीं की थी वैसा स्वर्ण अवसर उसे मिला।

उसने लड़ाई बंद करने में सहायता की, सम्राट् के प्राण बचाये और सम्राट् की अपकीर्ति को परम सन्तोष के साथ देखा। जरासंध के मित्र जब शीघ्रता से पलायन कर गये, तब दामघोष कृष्ण और बलराम से मिला। उसने उन्हें सभी बातें सविस्तार बतायी।

"गोमान्तक दुर्गम है, यह जानते ही सब राजा हताश हो गये थे, लेकिन जरासंध लौटने को तैयार नहीं था," चेदिराज ने कहा, "उसे राजी करने के लिए ही मैंने टेकरी पर आग लगाने को कहा। मैं जानता था कि आग चोटी पर नहीं पहुँच सकती।"

"हमने उसे पहुँचने भी नहीं दिया, न!" कृष्ण ने सस्मित कहा।

"कृष्ण, सभी कहते हैं कि तुम भगवान हो। क्या यह सही है? तुम्हारी आज्ञा सागर को भी शिरोधार्य करनी पड़ी और तुम दोनों ने मिलकर सम्राट् की प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया। अब वह कभी अपना सिर ऊँचा नहीं उठा सकता। सैकड़ों युद्धों में विजयी सम्राट् दो किशोरों के सामने जान बचाकर भागा, वह भी अकेला नहीं, अपनी शक्तिशाली सेना और साथियों को लेकर! ऐसा सुखी दिन मुझे देखने को मिलेगा, इसकी तो कल्पना भी नहीं की थी मैंने!" दामघोष ने कहा।

इसी बीच जरासंध की सेना के धनुर्धारियों का पीछा करते हुए, गरुड़ कुछ बंदियों को लेकर लौटे। बाकी सब भाग गये थे। कृष्ण और बल-

राम की विजय पर हर्षावेश में आकर वे लोग खूब चीख-चिघाड़ रहे थे। उनकी गर्जना को टेकरी पर उनके कुलबान्धवों ने भी सुना। तब नायक के नेतृत्व में सभी गरुड़ स्त्री-पुरुष हर्षनाद करते हुए नीचे उतरे और कृष्ण, बलराम तथा दामघोष को घेरकर खड़े हो गये। अनिष्ट-प्रभाव दूर करने के लिए उन्होंने नारियल फोड़े और सभी को फल फूल, इत्यादि उपहार में दिये। बलराम के लिए तो वे अमृत रस भी ले आये। बलराम ने उसका पान तब तक किया जब तक उनके पैर नहीं लड़खड़ाने लगे। दामघोष भी अमृतरस का सेवन करने में पीछे नहीं रहे। यथेच्छ भोजन के बाद गरुड़ों ने विजयोत्सव के निमित्त नृत्य का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। बलराम और कृष्ण ने भी नृत्य में भाग लिया। दामघोष और उसके सैनिक गरुड़ों का आतिथ्य स्वीकार कर दो दिन वहीं पड़ाव डाले पड़े रहे। चेदिराज ने कृष्ण के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था, परन्तु कृष्ण की अपूर्व दूरदर्शिता और समझदारी देखकर वे दंग रह गये। अब उनको विश्वास हो गया कि जरासंध के प्रभाव को कम करने की उनकी योजना सफल हो सकेगी।

तीसरे दिन कृष्ण ने उद्धव को करवीरपुर भेजा और शृगालव को सदेश भेजा कि बलराम और मैं यहाँ तक आये हैं तो आपसे मिलने का सम्मान भी प्राप्त करना चाहते हैं। बलराम को कृष्ण की यह विनम्रता नहीं भायी। उन्होंने कहा, "कृष्ण, ऐसा विवेकपूर्ण सदेश भेजना मुझे ठीक नहीं लगता। मुझे तो यह बहुत खराब आदमी दिखता है। जरासंध का साथ देकर उसने हमारे साथ द्रोह किया है। तुम्हें जाना हो तो जाओ मैं तो उससे मिलने नहीं जाने का।"

कृष्ण ने उत्तर दिया, "हमें अपना विवेक कभी नहीं खोना चाहिए। शृगालव को मित्र बनाने का अवसर हम क्यों खोयें? कौन जाने, वह हृदय से सज्जन भी हो।"

बलराम ने कहा, "तुम्हें जितने मित्र बनाने हों, उतने बना लो। मुझे ऐसे दुष्ट व्यक्ति में जरा भी रस नहीं है। याद है, महाभार्गव ने हमें क्या कहा था? शृगालव धर्म का शत्रु है और करवीरपुर में उसने कई समर्थ आचार्यों को कारावास में डाल रखा है, इसलिए कि ये आचार्य उसे भगवान वासुदेव नहीं मानते।"

"शायद भगवान हमें इन आचार्यों की मुक्ति का निमित्त बनाना

चाहते है। ऐसे वेदपराय आचार्यों को क्या हम ऐसे ही छोड दे ?" कृष्ण ने दृढता से कहा।

उद्धव वैनतेय तथा अन्य गरुडो के साथ करवीरपुर के लिए रवाना हुआ। उनके पीछे चेदि के चार योद्धा भी पैदल चले। उद्धव जब किले के पास पहुंचा तब रक्षकों ने उसे रोका। उसके हाथों मे चाँदी के कडे, गले मे बडी-बडी मालाए, एक हाथ में गदा और दूसरे मे भाले थे। वैनतेय उद्धव के आगमन की सूचना देने के लिए रक्षकों के नायक के पास किले मे गया। बहुत देर बाद जब वह लौटा तो उसने कहा, "उद्धव अकेले ही अदर जा सकते है।" उसे ले जाने के लिए एक गोरा अधिकारी भी आया। वह आर्य भाषा बोल सकता था।

किले मे प्रवेश करने के बाद उद्धव को घोडे पर से उतर जाने और अपने शस्त्र सौंप देने के लिए कहा गया। वे लोग पैदल ही महल की तरफ चले। महल भी दुर्ग के समान विशाल था। मार्ग मे अनेक श्याम वर्ण के स्त्री-पुरुषों को उसने देखा। पुरुषों ने कमर पर एक छोटा-सा वस्त्र लपेट रखा था और स्त्रियाँ छोटी-छोटी साडियाँ पहने थीं, परन्तु सभी चाँदी-सोने के अलकारो से सज्ज थे। बाजारो मे भी चाँदी सोने की असख्य वस्तुएँ दिखायी पडती थीं। मिठाइयाँ भी ठौर-ठौर बिक रही थीं। यदि उद्धव स्वय यह सब नही देखता तो कभी नहीं मानता कि कर-वीरपुर इतना समृद्ध है।

दुर्ग मे कोई उत्सव मनाये जाने के चिह्न दिखायी दे रहे थे। अधिकारी ने बताया कि मगध-नरेश जरासध और उनके साथी भगवान वासुदेव को सानाजलि देने के लिए पधारने वाले है, उन्हीं के स्वागत मे ये तैयारियाँ हो रही है। उद्धव मुस्कराया। करवीरपुर के लोगों को अभी ख्याल भी नही था कि ये तैयारियाँ व्यर्थ है और जरासध जान बचाकर भाग रहा है। जब उद्धव ने दुर्ग मे प्रवेश किया, तब एक विचित्र दृश्य उसे देखने को मिला। विशाल जनसमूह चार पहियों के एक खुले रथ को खीच रहा था। रथ मे स्वर्ण के सिंहासन पर एक छोटे कद का सुदृढ दाढीवाला, स्वर्ण अलकारो मे लदा, एक हाथ ऊँचा राजमुकुट पहने एक व्यक्ति बैठा था। उसके मुकुट मे, हार मे तथा बाजूबद मे जडित रत्न सूर्यप्रकाश मे जीवन नेत्रों की भाँति चमक रहे थे। उद्धव की फौरन समझ मे आ गया कि यही शृगलव होना चाहिए। उसके प्रति लोग अपनी भाषा

मे पूज्यभावसूचक शब्दो का उच्चार कर रहे थे तथा रथ के गुजरने पर दोनो ओर नगर-जन साष्टाग दण्डवत कर रहे थे।

"यह तुम्हारे राजा है ?" उद्धव ने पूछा।

"राजा नही, यह तो स्वय भगवान वासुदेव है," अधिकारी ने आदर और पूज्यभाव से कहा।

"तो यह वसुदेव के पुत्र नही, स्वय भगवान वासुदेव है, क्यो?" उद्धव ने मुस्कराकर पूछा।

"तुम परदेशी हो इसलिए हमारे बारे मे कुछ नही जानते। हमारे लिए वासुदेव स्वय भगवान है—हम सबके स्वामी!" अधिकारी ने कहा और पूज्य भाव से हाथ की अग्राँगुली से नेत्र को स्पर्श किया।

इस बीच वे जहाँ खडे थे, वही रथ आ पहुँचा। अधिकारी ने साष्टाग प्रणाम किया। उद्धव ने भी प्रथम मिलन मे ही शृगालव को अपमान न करने के विचार से प्रणाम किया। शृगालव ने एक नजर उद्धव पर डाली और रथ आगे बढ गया।

बाद मे उद्धव को विशिष्ट मेहमानो के लिए सुरक्षित अतिथि-गृह मे ले जाया गया। उसकी सेवा मे जो अधिकारी रखा गया, वह सभी आवश्यकताएँ पूर्ण करने को तो तत्पर था, परन्तु बोलना बहुत कम था। इसलिए उससे शृगालव के बारे मे उद्धव अधिक कुछ न जान सका।

दूसरे दिन सवेरे राजा ने उद्धव को बुलाया। जब उद्धव ने पत्थर के महालय मे प्रवेश किया, तब उसने देखा कि शृगालव तख्त पर प्रभु की प्रतिमा के समान अचल बैठा था। स्वर्णालकारो से वह लदा था। उसकी बगल मे महारानी सहमी हुई-सी खडी थी। ऐसा लगता था कि मानो वह भयभीत थी और किसी भी बात मे उसे रस नही था। महारानी की बगल मे एक तरुण और अत्यन्त रूपवान युवती खडी थी। उसकी दृष्टि अपूर्व आदर के साथ शृगालव पर टिकी थी। उसके बाद एक किशोर खडा था। वह राजकुमार था। उसकी दृष्टि बार-बार माँ पर स्थिर होती थी। ऐसा लगता था कि उसे पिता मे अथवा पिता की भक्त मेदनी मे कोई रुचि नही थी। असख्य स्त्री-पुरुष शत-मुख ज्योति से शृगालव की आरती उतार रहे थे और उसकी स्तुति कर रहे थे। सिहासन के आसपास शृगार-सज्जित स्त्रियाँ और गदाधारी योद्धा खडे थे।

उद्धव को सबसे अधिक आघात यह देखकर लगा कि आचार्य जैसे दिखायी देनेवाले कई ब्राह्मण भी राजा के आसपास खड़े होकर उसे अर्घ्य दे रहे थे और उसकी स्तुति कर रहे थे। आर्यावर्त के राजा गर्गाचार्य अथवा गुरु सादीपनि जैसे विद्वानो के प्रति जो आदर रखते थे, उससे यह आचरण बिलकुल विपरीत था। उद्धव ब्राह्मणो की इस दुर्गति से व्याकुल हो गये। आरती पूरी होने के बाद प्रसाद बाँटा गया। इसके बाद एक अधिकारी उद्धव को सिंहासन के समीप ले गया।

उद्धव ने शृगलव को प्रणाम किया। राजा उसकी ओर बहुत देर तक ताकता रहा, फिर दाढी सहलाते हुए विचित्र स्वरभार वाली आर्य भाषा मे चिल्लाया

"तू कौन है परदेसी! क्या नाम है तुम्हारा? भगवान वासुदेव के पास किस कृपा की आशा से आया है?"

"मै उद्धव हूँ—मथुरा के पराक्रमी सूर देवभाग का पुत्र। मै किसी कृपा की आशा से यहाँ नही आया, मात्र अपने चचेरे भाई कृष्ण, वासुदेव का सन्देश लेकर आया हूँ" उद्धव ने कहा।

"मथुरा का कृष्ण? हम वासुदेव को उससे क्या वास्ता?" राजा ने सत्ताचूर स्वर मे कहा, "हमारा उसके साथ कोई सम्बन्ध नही। हमे मालूम है कि इस ग्वाले ने अपने मामा—हमारे मित्र मगधपति के जमाई का वध किया है और गोमान्तक पहाडी मे कायरो की तरह जा छुपा है। हमे विश्वास है कि हमारे मित्र पराक्रमी जरासंध ने अब तक उसे नरक मे पहुँचा दिया होगा।"

"हे महान और उदार महाराज!" उद्धव ने शृगलव को जरा ऊँचा चढाते हुए कहा।

"तुमसे किसने कहा कि हम महाराज है?" शृगलव रोष भरकर बोला, "यहाँ है केवल भगवान वासुदेव।" यह कहकर उसने चारो ओर दृष्टि फेरी और वहाँ पर उपस्थित सभी लोगो ने दोनो हाथ जोडकर और मस्तक नवाकर शृगलव को प्रणाम किया।

"भगवान, क्षमा करे! करवीरपुर की रीति से मैं परिचित नही" उद्धव ने नम्र भाव से कहा।

"तो फिर तुम्हे हमारे राज्य मे नही आना था। क्या चाहिए तुम्हे?"

"कृष्ण वासुदेव करवीरपुर आकर कृपानाथ को मानांजलि देना चाहते

है," उद्धव ने कहा।

"वह तो अब तक यमलोक पहुँच गया होगा," शृगलव ने कहा।

"कृपानाथ, कृष्ण और बलराम ने जरासंध को भगा दिया है। रुक्मी को उन्होंने घायल कर दिया है और राजा दारद को मृत्यु के मुख में भेज दिया है," उद्धव ने कहा।

शृगलव बहुत देर इस प्रकार उद्धव की ओर ताकता रहा, मानो उसे विश्वास नहीं हो रहा हो। फिर चिल्लाया, "तू झूठ बकता है। मगध-नरेश तो हमारे अतिथि बनकर यहाँ पधार रहे हैं।"

"मगध-नरेश अपनी राजधानी मगध की ओर उतनी द्रुत गति से लौट रहे हैं जितनी द्रुत गति से उनके घोड़े भाग सकते हैं," उद्धव ने उत्तर दिया।

शृगलव क्षणभर तो शान्त रहा, फिर बोला, "उद्धव, जाकर अपने मित्र कृष्ण से कह कि यदि वह हमें त्रिभुवन के स्वामी भगवान वासुदेव के रूप में स्वीकार करने को तैयार हो तो यहाँ आ सकता है।"

उद्धव अपना धैर्य खो बैठा। "कृष्ण वासुदेव •"

"उसे वासुदेव न कहो। इस जगत में केवल एक ही वासुदेव है और वह यहाँ तुम्हारे सामने उपस्थित है," शृगलव ने कहा। फिर चारों ओर देखा और सभी लोगों ने हाथ जोड़कर मस्तक नवाया और सम्मतिसूचक उद्गार किये।

उद्धव इस विलक्षण अहंकार को देखकर दंग रह गया। उसके सखा कृष्ण कभी भी भगवान होने का दावा नहीं करते थे; परन्तु उनका वर्तन भगवान जैसा ही था। जबकि यह अहंकारी मूर्ख अपने को भगवान समझता था और मनुष्य से भी निम्नतर बर्ताव करता था। उद्धव ने पूछा, "वह अपना नाम कैसे बदल सकता है? वह मथुरा के शूरों के नायक वसुदेव का पुत्र है। इसीलिए लोग उसे वासुदेव कहते हैं। यादव श्रेष्ठ, वह आपके ही कुल का है।"

"इस संसार में दो वासुदेव नहीं हो सकते", शृगलव ने दृढ़ता से कहा, "यदि कृष्ण हमें एक मात्र भगवान वासुदेव नहीं मानता तो हम उसे दर्शन नहीं दे सकते।"

"वासुदेव, मुझे डर है कि दो वासुदेव तो रहेंगे ही?" उद्धव ने भी उतनी ही दृढ़ता से उत्तर दिया।

"यादव, तू हमारा अपमान कर रहा है। तू यदि हमें सर्वोच्च परमात्मा वासुदेव नहीं स्वीकार करता, तो तुझे नर्क में जाना पड़ेगा।"

"अब मैं आपकी आज्ञा लूंगा, कृपानाथ। कृष्ण वासुदेव भगवान होने का प्रदर्शन नहीं करते, परन्तु मेरे मन तो वह भगवान जैसे ही है।" उद्धव ने जाने की जल्दी दिखाते हुए कहा।

शृगलव ने कहा, "हमारे समक्ष आकर किंवदन्तियां कहकर चले जाना सम्भव नहीं उसने गर्जना की "इसे नर्क में डाल दो।" और हाथ से संकेत कर उद्धव को कैद में डालने की आज्ञा दी। लगभग बीस रक्षक उद्धव पर टूट पड़े और रस्से में बांधकर उसे ले गये।

उद्धव को दुर्ग के छोर तक ले जाया गया। ऐसे दुष्ट राजा के हाथ में कृष्ण और बलराम आ गये है, तो उनका क्या होगा, इस विचार से वह कांप उठा। कृष्ण को किस प्रकार चेतावनी दी जाय, यह चिन्ता उसे सताने लगी। परन्तु वह कुछ भी करने की स्थिति में नहीं था। परशुराम ने कृष्ण को शृगलव के मिथ्याभिमान से सावधान किया था परन्तु वह इतना दुष्ट होगा, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

उद्धव को कुएँ के मुख के समान किसी स्थान पर ले जाया गया और अन्दर धकेल दिया गया। भीतर उसे मालूम हुआ कि यह कुआँ नहीं परन्तु किसी विशाल गुफा का मुख है। वह नीचे उतरा। वहाँ पर बहुत दूर एक कोने में उसे सूर्य प्रकाश दिखायी पड़ा, जहाँ से एक दूसरा मार्ग कहीं जाता था। उस मार्ग से वह दोनों ओर पत्थर की बड़ी-बड़ी दीवालों से बन्द एक घाटी में पहुँचा। वहाँ उसे बहुत से वृद्ध आचार्य दिखायी पड़े। उनके समक्ष आकर उद्धव ने दण्डवत् प्रणाम किया। आचार्यों ने हाथ पसारकर उसे आशीर्वाद दिया। सभी आचार्यों के शरीर क्षीण हो गये थे। मात्र उनके मेधावी भाल और नेत्रों में प्रकाश झलकता था।

"उद्धव!" पीछे से एक परिचित स्वर सुनायी पड़ा। उद्धव ने देखा तो वह गुरु सांदीपनि का पुत्र पुनर्दत्त था। हाथ फैलाकर वह उसकी ओर दौड़ा। दोनों ने एक दूसरे को भावविभोर हो आलिंगनपाश में बद्ध कर लिया।

'तुम यहाँ कैसे?" पुनर्दत्त ने पूछा।

उद्धव ने बताया कि वह नर्क में किस प्रकार आया। पुनर्दत्त ने अपनी बात विस्तार से कही। परमात्मा वासुदेव की भक्ति करनेवाला एक

सम्प्रदाय था। यादव विजेताओं के साथ करवीरपुर आये गालव ऋषि इस सम्प्रदाय के नायक थे। शासक वर्ग पर उनका प्रबल प्रभाव था। उनके आशीर्वाद से करवीरपुर के युवा राजा के यहाँ पुत्र-जन्म हुआ। जिसका नाम शृगलव रखा गया। यह शृगलव वासुदेव की पूजा करनेवाले सम्प्रदाय में ही पला था। गालवाचार्य के अवसान के बाद करवीरपुर के राजा शृगलव ने उनके आश्रम को तोड़ दिया और स्वयं को सम्प्रदाय के नायक वासुदेव के रूप में घोषित किया। समय बीतने के साथ-साथ साम-दाम-दण्ड-भेद इत्यादि उपायों से अधिकांश लोगों को उसने इस सम्प्रदाय में सम्मिलित कर लिया।

शृगलव ने आसपास के कबीलों पर विजय प्राप्त की और स्वयं को वासुदेव भगवान के साक्षात् अवतार के रूप में घोषित किया। सभी को उसने उसे इस रूप में स्वीकार करने पर बाध्य किया। फिर अपनी इच्छा अनुसार सम्प्रदाय के नियम बदले। पहले तो उसने सभी पर कृपा की वर्षा की और अपनी भक्ति करने के लिए लोगों को प्रोत्साहित किया। बाद में दण्ड और धमकियों से इस प्रथा को चालू रखा। उसकी इस रीति से ही उसका दूसरा नाम 'शृगाल' पड़ा। नगर के कई विद्वान आचार्यों ने इस शृगलव-पूजा का विरोध किया। शास्त्र में राजा को जो सम्मान देने की आज्ञा है, वह देने के लिए ये आचार्य तैयार थे, परन्तु भगवान के रूप में उसे स्वीकार करने के लिए वे राजी नहीं थे। इन आचार्यों में पुनर्दत्त के नाना रुद्राचार्य मुख्य थे। रुद्राचार्य के नेतृत्व में इन सभी आचार्यों ने शृगलव की मनस्वी आज्ञाओं का विरोध किया। स्वतन्त्रता का बलिदान देकर राजा की कृपा प्राप्त करने के बदले राजा के क्रोध को स्वीकार करना उन्होंने अधिक अच्छा समझा। रुद्राचार्य इन आचार्यों में सबसे अधिक दृढ़ थे। इसलिए उनको बहुत बड़ी सजा देकर एक उदाहरण प्रस्तुत करने का शृगलव ने निर्णय किया।

करीब तीन वर्ष पूर्व शृगलव ने रुद्राचार्य के आश्रम को तोड़ डाला और उनका साथ देनेवाले सभी व्यक्तियों को सताना शुरू किया। इस पर भी रुद्राचार्य अडिग रहे। उनका निर्णय अटल था। उनका एक पुत्र करवीरपुर से भाग गया। दूसरे ने शृगलव के साथ समझौता कर लिया। परन्तु रुद्राचार्य ने अपने जीवन-मार्ग को त्यागने की ज़रा भी इच्छा प्रकट नहीं की। वे एक भी विधि को त्यागने के लिए तैयार नहीं थे। शृगलव

की सार्वजनिक पूजा में भाग लेने की उनकी जरा भी इच्छा नहीं थी। उन्होंने तपस्वी के किसी भी आचार को भग नहीं किया। शृगलव ने जब उन्हें अपनी पूजा में उपस्थित होने की आज्ञा की तो उन्होंने इसका अनादर किया।

"इसके बाद शृगलव ने अपने को स्वयं भगवान न माननेवाले सभी विद्वान आचार्यों को निर्मूल करने का निश्चय किया।' पुनर्दत्त ने कहा, 'और मेरे नाना को उसने सर्वप्रथम 'नर्क' में भेजा। फिर जो कोई आचार्य शृगलव की भक्ति करने में इन्कार करता, उसे यहाँ भेज दिया जाता। मेरे नाना सहित कुल सत्तर आचार्यों को यहाँ भेजा गया। उनमें से तीन तो यहीं मृत्यु को प्राप्त हुए बाकी की कैसी दशा है, यह तुम स्वयं ही देख सकते हो।"

"परन्तु तुम यहाँ किस प्रकार आये?'

'मैं जब गुरुदेव के पास पहुँचा, तब उन्हें मेरे नाना की इस दशा का पता चला। इसलिए मैं यहाँ शृगलव को समझाकर नानाजी को मुक्त करने और उन्हें अपने साथ ले जाने के लिए आया। उसने मुझे भी अपनी भक्ति करने के लिए कहा और जब मैंने उसे अस्वीकार कर दिया तब मुझे भी इस नर्क में डाल दिया। एक प्रकार से यह अच्छा ही हुआ। मैं अपने नानाजी से यहाँ मिल सका,' पुनर्दत्त ने किंचित् मुस्कराकर कहा, "मैं हमेशा विपत्तियों को निमन्त्रण ही देता रहता हूँ और जब उनमें असहाय हो जाता हूँ, तब कहीं-न-कहीं से तुम टपक पड़ते हो और कोई मार्ग ढूँढ निकालते हो।"

"वैवस्वतपुरी की तरह यहाँ से भी मुक्त होने का कोई मार्ग हमें खोजना ही पड़ेगा," उद्धव ने कहा।

२०

श्वेतकेतु का पतन (क)

पुनर्दत्त ने रुद्राचार्य और अन्य आचार्यों से उद्धव का परिचय कराया और उद्धव ने गोमातक में घटी घटनाएँ और कृष्ण के पराक्रम की कथा सबको

सुनायी। उसने पुनर्दत्त से कहा, "हमें किसी भी तरह से इस नर्क से निकल कर कृष्ण को सचेत करना चाहिए। शृगलव से मिलना कितना खतरनाक है, इसकी शायद कृष्ण को कल्पना भी नहीं।"

"हम लोग बाहरी दुनिया से बिलकुल कट गये है," पुनर्दत्त ने कहा, और फिर कुछ सोचता हुआ बोला, "नहीं, एकदम तो नहीं! हर चौथे रोज एक अधिकारी आकर हमसे पूछ जाता है कि क्या हममें से कोई शृगलव को भगवान वासुदेव मानने को तैयार है।"

तब उद्धव और पुनर्दत्त ने मिलकर एक योजना तैयार की और दूसरे दिन अधिकारी के आने की प्रतीक्षा मे दोनों गुफा के प्रवेश-द्वार के निकट अँधेरे मे जाकर खड़े हो गये। कुछ देर खड़े रहने के बाद उन्हें गुफा में एक टोकरी के नीचे सरकने की आवाज सुनायी पड़ी। टोकरी में दो आदमी आये, एक अधिकारी और दूसरा उसका सहकारी। उद्धव अधिकारी पर टूट पड़ा और उसे निःशस्त्र कर दिया। इसी प्रकार पुनर्दत्त भी सहकारी पर टूट पड़ा। सहकारी बिलकुल अनुभवशून्य था, इसलिए बेहोश हो गया। परन्तु अधिकारी बाहुयुद्ध मे प्रशिक्षित था। उसने उद्धव का प्रबल प्रतिकार किया और दोनों गुँथकर जमीन पर गिर पड़े। उद्धव कृष्ण का सखा और सांदीपनि का शिष्य था। अधिकारी के दाँव को उसने तुरन्त पहचान लिया। जब अधिकारी के जीत जाने की संभावना प्रबल हो उठी, तब उसने उद्धव को इस प्रकार जकड़ा कि उद्धव आश्चर्य मे पड़ गया। यह तो गुरु सांदीपनि का सिखाया हुआ गुप्त दाँव था। गुरु ने इसका प्रतिकार भी सिखाया था, इसलिए उद्धव अधिकारी की पकड़ से निकल सका। उद्धव से बोले बिना नहीं रहा गया, "यह तो गुरु सांदीपनि का दाँव है न?"

"तू सांदीपनि का शिष्य है?" आश्चर्य-चकित हो अधिकारी ने पूछा, "मैं भी उन्हीं का शिष्य हूँ।"

"हे भगवान!" उद्धव ने कहा, "तुम श्वेतकेतु तो नहीं हो?"

"कौन, उद्धव?" सांदीपनि के पट्ट शिष्य श्वेतकेतु को भी परम आश्चर्य हुआ। उसने कृष्ण, बलराम और उद्धव को वेद पढ़ाया था। दोनों ने एक दूसरे की पकड़ ढीली की और बड़े प्रेम से गले मिले।

"श्वेतकेतु!" उद्धव ने कहा, "यह पुनर्दत्त है, गुरुदेव का पुत्र, जिसे कृष्ण वैवस्वतपुरी से छुड़ा लाये थे।" तीनों ने हँसते-हँसते एक-दूसरे को आलिंगन-पाश मे बद्ध किया। बेहोश सहकारी को छोड़कर वे घाटी मे

चले आये ।

"तुम दोनों इस नर्क में कैसे आये ?" श्वेतकेतु ने पूछा ।

"पर, तुम यहाँ कैसे ?" पुनर्दत्त ने पूछा, "प्रभास में पंचजन राक्षस जब मुझे हरण कर ले गया था, तब तो तुम गुरुदेव के पट्ट शिष्य थे । परन्तु कृष्ण जब मुझे छुड़ाकर वापस लाये तब तुम वहाँ नहीं थे । और अब यहाँ शृगालव की सेवा में हो । तुम्हें तो मैंने यहाँ पहले कभी नहीं देखा ।"

"कल किसी नये आदमी को इस नर्क में भेजा गया था, इसलिए आज यह काम मुझे सौंपा गया । तुममें से ही वह होना चाहिए । मुझे बताया गया है कि यहाँ तेरह वृद्ध और दो युवा हैं," श्वेतकेतु ने कहा ।

"कल से ही यहाँ लाया गया था," उद्धव ने कहा, "कैसा विचित्र संयोग है ! हम तुम्हारे शिष्य, धर्म के लिए नर्कवास कर रहे हैं, इन पवित्र आचार्यों की भी यही दशा है, और तुम, गुरुदेव के प्रिय शिष्य, विलास में डूबे हुए हमारे तुरगाधारी के रूप में यहाँ आये हो ।"

"क्या मैं बहुत बदल गया हूँ ?" श्वेतकेतु ने अलंकार सज्जित शरीर पर संकोचपूर्ण दृष्टि डालकर पूछा ।

"श्वेतकेतु, भाई, तुम्हें यह क्या हो गया है ? हम सब में तुम विद्वान थे, कृष्ण के प्रिय मित्र — तुम्हारी यह दशा ?" उद्धव ने पूछा ।

"क्यों, क्या हुआ ? मैं तो वही हूँ ।"

"इस मृगतृष्णा में कब तक जियोगे बन्धु ? कहाँ गया वह तुम्हारा सौष्ठवपूर्ण शरीर ? कहाँ गया तुम्हारा वह प्रज्ञा से आलोकित प्रतिभाशाली चेहरा ? यदि तुमने गुरुदेव का दाव नहीं आजमाया होता, तो इस अलंकार सज्ज स्थूल रूप में मैं तुम्हें पहचान भी नहीं सकता था । तुम और भगवान वासुदेव कहलाने वाले दंभी राजा के सेवक !"

"ऐसी बातें न करो ! मेरा सहकारी जाग जायेगा तो सुन लेगा ।"

"तुम्हारा यहाँ तक पतन हो चुका कि सत्य को सुनने की शक्ति भी तुममें नहीं रही ?" उद्धव ने पूछा । संयमी भाषा में बात करनेवाला उद्धव अपने गुरुभाई के पतन को देखकर रोष से भर गया ।

"पहले तुम दोनों अपनी बात बताओ, फिर मैं अपनी कहूँगा," श्वेतकेतु ने कहा ।

"हमारी बात तो बिलकुल सीधी-सादी है । प्रवास में हम लोग सब साथ थे । फिर कृष्ण और मैं पुनर्दत्त को लाने पुण्यजन जहाज में गये । पंच-

जन को सागर के गर्भ मे भेजकर हम जहाज को बैवस्वतपुर ले गये और वहाँ से पुनर्दत्त को वापस ले आये। नागलोक की रानी, दैत्री माता की चमत्कारिका शक्ति का कृष्ण ने प्रतिकार किया, मृत्यु के देव-यम के नाम से परिचित राजा के साथ लडे और पुनर्दत्त को छुडाया।" उद्धव ने कहा।

"आश्चर्य! कृष्ण चमत्कार भी करना जानता है! फिर क्या हुआ?" श्वेतकेतु ने पूछा।

'हम लोग मथुरा गये। तभी जरासध ने कृष्ण और बलराम को मार डालने के लिए मथुरा पर चढाई की। मथुरा मे उसको रोकने की शक्ति नही थी, इसलिए कृष्ण ने सह्याद्रि मे आश्रय लेने का निश्चय किया और हमने मथुरा छोड दी," उद्धव ने कहा।

"फिर?"

"कृष्ण और बलराम ने गोमानक मे आश्रय लिया और फिर तुम्हारे इस भगवान वासुदेव ने दगा दिया। जरासध और उसके साथियो ने आकर गोमानक पहाडी पर आग लगा दी।"

"ओ भगवान वासुदेव!" श्वेतकेतु के मुख से करवीरपुर मे प्रचलित उद्गार निकल पडा।

"सुन भगवान वासुदेव के भक्त! कृष्ण अजेय रहे। कृष्ण की आज्ञा से सागर ने पहाडी की प्रदक्षिणा कर आग को बुझा दिया। दोनो भाई तब नीचे उतरे और जरासध और उसके साथियो को त्राहि-त्राहि बोलना पडा। राजा गोनार्द मारा गया। राजा दामघोष के बीच-बचाव करने से जरासध के प्राण बचे और वह इस समय अपने देश की ओर भाग रहा है।"

"पर, तुम करवीरपुर कैसे आये?" श्वेतकेतु ने पूछा।

"कृष्ण शृगालव के साथ मैत्री करना चाहते थे। मुझे उन्होने दूत के रूप मे यहाँ भेजा, परन्तु तुम्हारे वासुदेव ने मैत्री के प्रस्ताव का निरादर किया, कृष्ण को गालियाँ दी और भगवान के रूप मे उसकी पूजा करना जब मैंने अस्वीकार किया, तो मुझे कैद मे डाल दिया," उद्धव ने कहा।

"और पुनर्दत्त?" श्वेतकेतु ने पूछा।

"यह तो मुझे तुमसे ही जानना है, श्वेतकेतु। देखो, ये है इसके नाना, आचार्यो मे श्रेष्ठ, प्रज्ञा के सागर। यहाँ अन्य तेरह आचार्य है। इनमे से कोई धर्म का त्याग करने और शृगालव को भगवान मानने को तैयार नही। इसीलिए ये इस नर्क मे पडे है," उद्धव ने कहा, "और यह वीर पुनर्दत्त,

नाना और दूसरे आचार्यों की सेवा करने स्वेच्छा से इस नर्क में आया है । जबकि तुम श्वेतकेतु, हम सबके आदर्श गुरुदेव के पट्ट शिष्य, शृगलव के सेवक हो ? हमारे तुरगाधिकारी ? '

उद्धव आवेश में आ गया था । श्वेतकेतु मौन खड़ा था । उसके चेहरे पर लज्जा के भाव स्पष्ट हो गये थे । एक समय वह आचार्य-पदका उम्मीद-वार था । ऋषि बनने के स्वप्न भी वह देखता था । और अब वह आचार्यों को कारावास में भेजनेवाले शृगलव का सेवक था । श्वेतकेतु कुछ देर नीची नजर किये खड़ा रहा, फिर क्षीण स्वर में बोला, "उद्धव, मेरी कथा अध पतन की कथा है । बिसरे हुए सपनों और जीवन के सौदे की कथा है । मैंने दैवी जीवन का त्याग कर आसुरी जीवन अपनाया है ।"

"परन्तु, ऐसा हुआ किस प्रकार ?" उद्धव ने पूछा, "यह पुनर्दत्त भी राजकुमार का जीवन बिता रहा था, पर कृष्ण ने इसका उद्धार किया ।"

"मेरा तो कोई उद्धार भी नहीं कर सकेगा । इस अध पतन के मार्ग को स्वय मैंने ही अपनी इच्छा से स्वीकार किया है," श्वेतकेतु ने कहा । उसकी आवाज में शोक का भार था ।

"परन्तु तुमने यह मार्ग स्वीकार क्यो किया ? मुझे भी वैवस्वतपुर में ऐसा लगा कि अब मुझे सारा जीवन यों ही व्यतीत करना है, मेरे लिए और कोई आशा नहीं," पुनर्दत्त ने कहा ।

२१

श्वेतकेतु का पतन (ख)

"सुनो,' श्वेतकेतु ने भावातुर होकर कहा, "उद्धव, तुम और कृष्ण जब पुण्यजन जहाज में रवाना हुए थे, उसके पहले ही एक विचित्र घटना मेरे साथ घटी । मैं भगवान सोमनाथ के दर्शन करने गया था । वहाँ से सागर किनारे जा बैठा । एक मनोहर युवती तब स्नान करके बाहर निकली । भीगे वस्त्रों में झाँकती उसकी अति सुन्दर देह में एक अपूर्व आकर्षण था ।

यह जानते हुए भी कि यह अनुचित है, मै अपनी दृष्टि उस पर से हटा न सका," श्वेतकेतु ने कहा। कुछ देर ठहरकर फिर उसने आगे कहा, "मैंने उसको पहचान लिया। प्रभात मे शस्त्रशिक्षा अथवा वेदपाठ के समय वह उपस्थित रहती थी। वह ऊँचे कद और छरहरे बदन की अपूर्व सुन्दरी थी। उसकी ओर नजर उठे बिना रह ही नही सकती थी, और जब भी मैं उसकी ओर देखता, वह एक मनोहर मुस्कान मुझ पर बिखेर देती।"

'वह मेरे पास रुकी। उसकी आँखों मे जो चमक मैंने देखी वह पहले कभी किसी स्त्री की आँखों मे नहीं देखी थी। उसकी आँखे बडी मोहक थी।" उसने मुझसे कहा, 'तुम रसीले जवान हो और फिर एक बडे विद्वान भी। मैंने तुम्हारे मधुर कठ से मत्रोच्चार सुना है, योद्धाओ को शस्त्र-शिक्षा भी देते देखा है। मुझे तुम बहुत ही अच्छे लगते हो। क्या, तुम मेरे साथ नही चलोगे ? मैं यहाँ द्राक्षामडप मे रहती हूँ।' उसके शब्द सुरा की तरह मादक थे। मुझे अपने शिविर मे काम था, फिर भी इस स्त्री से दूर हटने का मन नहीं हुआ। मुझे गुरु के वचन याद आये 'पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी स्त्री के साथ एकान्त मे नही रहना चाहिए। परन्तु मेरा मन घायल हो चुका था। मै उसके साथ गया। वह करवीरपुर से आयी थी। उसका नाम शैव्या था, वह राजकुमारी थी—राजा शृगालव की बहन।"

"कल शृगालव के पास जो खडी थी और रानी का साथ दे रही थी, वही सुदरी शैव्या है न ?" उद्धव ने पूछा।

"हाँ, वही। वह हमेशा राजसिंहासन के पास खडी रहती है," श्वेतकेतु ने कहा। 'शैव्या मुझे द्राक्षामडप मे ले गयी। वर्षो पहले शृगालव प्रभासतीर्थ आया, तब इस द्राक्षामडप मे ही वासुदेव ने उसमे प्रवेश किया था, इसलिए वे इस मडप को पवित्र मानते है।"

श्वेतकेतु ने जरा रुककर फिर कहा, 'जब हम मडप मे पहुँचे, तब शृगालव की पादुकाओ की साध्य पूजा का समय हुआ था। शैव्या ने आरती की। उसकी विनती पर मैंने मत्रोच्चार किया। शैव्या ने मुझे प्रसाद दिया और वह मैंने ग्रहण किया। उसमे कोई अटपटा स्वाद था। तत्काल मेरे मन पर उसका प्रभाव पडा। ऐसा लगा मानो मन पर से सारा भार हट गया हो। तब शैव्या मुझे एकात स्थल पर ले गयी और बहुत-सी मधुर बाते करने लगी। ऐसा प्रतीत हुआ मानो मैं गन्धर्व लोक

मे विहार कर रहा हू और शव्या कोई अप्सरा है ।

"उसने मुझसे भगवान वासुदेव की चर्चा की और कहा कि करवीर-पुर पृथ्वी पर का स्वर्ग है। वासुदेव की भक्ति करनेवाले सभी मनुष्य अस्तित्व के बधनो मे मुक्ति प्राप्त कर सकते है और मैं स्वय वासुदेव का दाहिना हाथ बनने के लिए रचा गया हूँ ।

'आधी रात तक मैं शैव्या के साथ रहा । उसकी मादक प्रशसा का प्रभाव मुझ पर पडा । जब प्रात काल शिविर पर पहुँचा, तो गुरुदेव ने पूछा कि रात मे कहाँ रहे । यदि मै उस समय सत्य कह देता तो कितना अच्छा होता । परन्तु मेरा साहस नही हुआ मैने कहा कि मै मदिर मे ठहर गया था । गुरुदेव को मेरे शब्दो मे विश्वास नही हुआ । इस असत्य कथन के साथ ही मेरा अब पतन शुरू हुआ ।

" दूसरे दिन दोपहर को शैव्या के डेरे के पास न जाने का निश्चय मैंने किया, परन्तु मेरे पैर अपने-आप उस ओर उठ गये । मैं सागर-किनारे पहुँच गया और शैव्या को फिर स्नान कर बाहर आते देखा । मैं उसकी ओर न चाहते हुए भी खिंच गया । फिर शृगालव वासुदेव की पूजा हुई । इस पूजा का महत्त्व समझाते हुए शैव्या ने मुझे कहा कि उनके सिवाय दूसरा कोई भगवान नही । शैव्या की आवाज मे जादू था । वह रात भी मैंने उसी के साथ बितायी । मुझे आभास हुआ कि मेरे लिए एक नये ही भविष्य की दिशा खुल रही है ।

" उस दिन सवेरे गुरुदेव ने मुझसे पूछा तक नही कि रात मे मैं कहाँ गया था । तुम्हारे और कृष्ण के पुत्यजन जहाज पर चले जाने से वे विक्षुब्ध बन गये थे । परन्तु गुरुदेव की आँखो और उदास चेहरे मे मैंने स्पष्ट देखा कि वे मेरे पतन को भली भाँति समझ रहे थे । उन्होने दृष्टि से भी मुझे उलाहना नही दिया । एक ओर ऐसे विशाल हृदय गुरुदेव और दूसरी ओर शैव्या की मोहिनी'' इन दोनो के बीच मै झूल रहा था । चौथे दिन शैव्या ने करवीरपुर आने को कहा । मैं दुखी हो गया । गुरुदेव को किस प्रकार छोडा जाय ? परन्तु साथ ही, शैव्या की सुघड देह भी मेरे मन बस गयी थी । गुरुदेव के प्रति अपना विद्रोह भी मुझे कचोट रहा था । गुरुदेव ने प्रभास मे विदा लेने का जब निर्णय किया तो मुझे लगा कि शैव्या से दूर चले जाने के बाद मैं उसे भूल जाऊँगा । विदा के दिन मैं खिन्न हृदय उससे मिलने गया । शैव्या की आँखो मे आँसू छलक आये । उसके काँपते हाथो ने मेरा

हाथ पकड लिया और कहा, 'श्वेतकेतु' तुम भगवान वासुदेव का द्रोह किस प्रकार कर सकते हो ? भगवान को तुम्हारी आवश्यकता है। शृगलव के प्रति शैव्या की भक्ति ने मुझे भी वासुदेव की शक्तियों में श्रद्धावान बना दिया था। शैव्या की हरिणी जैसी आँखें मुख पर स्थिर हो गयी। ऐसा लगा जैसे उसकी सारी देह मेरे लिए लालयित थी।

"उद्धव, मैं अपनी सारी सुधबुध खो बैठा। उसके हाथ मैंने पकड लिये। उसने कुछ भी विरोध नहीं किया। मैंने पूछा, क्या तुम वास्तव में चाहती हो कि मैं तुम्हारे साथ चलूँ ? उसने अपनी नजर झुका ली। फिर एक तीखी दृष्टि मेरे नयनों में डाली। मैं हार गया। गुरुदेव के पास फिर मैं नहीं गया, शैव्या के साथ आ गया।

"शूर्परक लौटते वक्त एक शाम मैं जहाज पर खडा मात्र एक स्त्री के लिए अपने वर्षों के तप और अभ्यास, आशा और स्वप्न के त्याग पर विचार कर रहा था। इतने में शैव्या मेरे पास आयी। अपनी सुन्दर आँखें मेरी आँखों में डालकर उसने पूछा, 'भगवान के लिए अपना सर्वस्व त्याग करते समय तुम्हें दुख होता है ?' मैंने स्वस्थ होने का प्रयत्न किया। उसने अपना हाथ मेरे हाथ पर रखा। उसके समीप्य से मेरे रोम-रोम में आग भडक उठी। मैंने कहा, शैव्या, तुझे पाने के लिए सब कुछ छोडना पडे, तब भी मुझे कोई अफसोस नहीं। मैं क्या कर रहा हूँ, यह सोचे बिना ही मैंने शैव्या को अपनी ओर खींचा और अपने बाहुपाश में ले लिया। क्रुद्ध बाघिन की तरह झटका देकर वह मुझसे अलग हो गयी और लाल आँखें करती हुई बोली, 'मुझे स्पर्श नहीं करना। मैं भगवान की हूँ। मुझे स्पर्श करने के पहले तुम्हें पात्रता प्राप्त करनी होगी। भगवान सम्मति दें, तभी तुम मुझे प्राप्त कर सकते हो।' मैंने एक गहरा आघात अनुभव किया। वह शृगलव की थी। मेरी तो उसके मन कोई गिनती ही न थी। मैं शर्मिंदा हो गया। मैंने उससे क्षमा याचना की, परन्तु दो क्षण बाद शैव्या के सान्निध्य का सभी आह्लाद जाता रहा। मुझे प्रतीति हो गयी कि मैं जिस मार्ग पर चला आया उससे लौटने की अब मेरे लिए कोई आशा नहीं रही।

"शृगलव ने मेरा आदर किया। अपनी सैनिक शिक्षणशाला का उसने मुझे आचार्य नियुक्त किया। करवीरपुर के युवकों को शस्त्रों का उपयोग भी नहीं आता था। चलते हुए रथ में वे स्थिर खडे भी नहीं हो सकते थे। इन युवकों को मैंने शिक्षित किया। इसके बाद मुझे दूसरा

महत्त्व का काम मिला। तुम मेरे अंगों पर स्वर्ण और रत्न देखते हो न? उन्हें हम दूर जंगलों में से लाते हैं। इनका रहस्य हमारे सिवाय और कोई नहीं जानता। स्वर्ण प्राप्त करने का काम मुझे सौंपा गया था।" श्वेत-केतु ने अपनी बात पूरी की।

"शैव्या का क्या हुआ?" उद्धव ने पूछा।

श्वेतकेतु ने निश्वास ली। "वह तो पतंगे के समान चंचल है। वह मुझे आकर्षित करती है, परन्तु पकड़ में कभी नहीं आती। मुझे विश्वास हो चला है कि वह मात्र खेल करती है। वह पूर्णत: शृगालव की भक्ति में रत है। मुझसे तो वह कहती है कि वह मेरी विद्वत्ता की कद्र करती है और उसी से आकर्षित है, परन्तु शृगालव के प्रति मेरी भक्ति की परीक्षा करती रहती है। उद्धव, मैंने तो गुरु को भी गंवाया और शैव्या भी हाथ में नहीं आयी। कई बार स्वयं पर बहुत क्रोध भी आता है।"

"और अब तुम हमसे यह पूछने आये हो कि शृगालव को भगवान मानने के लिए हम तैयार हैं कि नहीं?" उद्धव ने उदास स्वर में पूछा, "मित्रवर, हमारे गुरुदेव भी जिनको पूजनीय मानते हैं, ऐसे आचार्यों को तुम शृगालव को 'वासुदेव' मानकर उसकी पूजा करने को कहने आये हो?"

श्वेतकेतु कुछ भी उत्तर नहीं दे सका। उद्धव ने फिर एक बार तिरस्कार पूर्वक पूछा, "यदि तुम में साहस हो तो उन तपस्वियों में जाकर पूछो कि वे शृगालव की पूजा करेंगे या नहीं? बदले में शैव्या अपनी किंचित मुस्कान तुम्हें प्रदान करेगी। भाई, उससे अधिक पतन तुम्हारा क्या होगा?"

श्वेतकेतु अवाक् हो गया। लज्जावश सिर झुकाये, रुंधे हुए कंठ से बोला, "उद्धव मैं पापी हूँ। मेरा पतन हुआ है। जाता हूँ, फिर कभी यहाँ नहीं आऊँगा।"

"लेकिन इससे तुम्हारा या हमारा क्या हित होगा? यदि तुम्हें सत्य ही पश्चात्ताप हो, तो मुझे यहाँ से निकलने और कृष्ण को सचेत करने में मदद करते रहो, नहीं तो कृष्ण भी इस नर्क में फँस जायेंगे।"

"पर, मैं कैसे तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ? शृगालव के प्रति द्रोह मैं कैसे कर सकता हूँ?"

"तुम गुरुदेव के प्रति द्रोह कर सकते हो, उनका हृदय विदीर्ण कर

सकते हो, धर्म के प्रति द्रोह कर सकते हो, परन्तु अपने प्रिय मित्र कृष्ण के लिए शृगालव से एक बार भी द्रोह नहीं कर सकते ! अरे भाई, मुझे यहाँ से निकल जाने में मदद करोगे, तो शैव्या को खबर भी नहीं पड़ेगी।"

वे बात कर रहे थे कि पुनर्दत्त के नाना आचार्य रुद्र वहाँ आ पहुँचे। "वत्स, तुम यही पूछने आये हो न, कि शृगालव की पूजा के लिए हम तैयार हैं अथवा नहीं ?" मृदुस्वर में उन्होंने पूछा। श्वेतकेतु इतना लज्जित हुआ कि धरती यदि मार्ग देती, तो वह उसमें समा जाता। वृद्ध आचार्य ने फिर कहा, "उससे कहना वत्स, कि इस जगत में अब भी ऐसे मनुष्य जीवित हैं, जो असत्य को स्वीकार करने के बदले मर जाना अधिक पसंद करते हैं, और शृगालव हलाहल है, असत्य है !" वृद्ध गौरवपूर्वक अपने मार्ग पर चले गये। श्वेतकेतु का कंठ अवरुद्ध हो गया। उसने कहा, "उद्धव, मैं तुम्हारी मदद करूँगा, पर बताओ, किस प्रकार ?"

उद्धव ने बेहोश सहकारी के वस्त्र, रुपहरी पट्टा, हार और बाजूबंद उतारकर स्वयं पहन लिये और श्वेतकेतु के सहकारी के रूप में उसके साथ टोकरी में बैठकर ऊपर आ गये।

२२

कृष्ण के साथ मैं लड़ नहीं सकूँगा

शृगालव वासुदेव के महल में आज उत्सव मनाये जाने की धूम थी। दरबारी प्रातः ही से सुन्दर-सुन्दर वस्त्रालंकारों से सज्जित हो राज-दर्शन के लिए एकत्र होने लगे थे। श्वेतकेतु तथा उसके सहायक अधिकारी के रूप में उद्धव भी वहाँ उपस्थित थे। उद्धव ने इस आशंका से कि कोई पहचान न ले, अपनी दृष्टि नीचे झुका ली थी। शाम तक तो उसके नगर से बाहर निकल जाने का प्रबंध श्वेतकेतु करने ही वाला था, परन्तु तब तक के लिए तो उसे यह स्वांग रचे बिना चारा नहीं था।

शृगालव के आते ही उसका स्वागत करने के लिए इत्र, पुष्प, रंग,

संगीत सभी का प्रबध पहले से ही तैयार था। प्रमुख पुजारियो के अग स्वर्णालिकाओ मे प्रदीप्त थे।

शृगालव आ पहुचा। उसके प्रवेश के साथ ही वातावरण शखनाद और जय-जयकार से गूंज उठा। रत्नमुकुट, कण्ठहार, बाजूबद, कमरबद इत्यादि रत्नजडित अलकारो पर पड रहे सूर्य प्रकाश के कारण शृगालव के चारो ओर एक तेज वर्तुल की रचना हो गयी थी। गजराज की सी मथर गति से वह आगे बढा। सभी लोगो ने उसके चरणो मे साष्टाग प्रणाम निवेदन किया। अपने आसन पर बैठने के बाद जब उसने चारो ओर भुजा उठाकर सबको आशीर्वाद दिया तो फिर एक बार शखध्वनि हुई। तब एक अन्य सुन्दर स्त्री ने हाथ मे आरती लेकर प्रवेश किया। उसके पीछे एक प्रौढ स्त्री थी। उद्धव को लगा कि वह रानी पद्मावती होनी चाहिए। पहली सुन्दर स्त्री को उसने शैव्या समझा। शैव्या की सुन्दरता की सराहना स्वय उद्धव ने की और श्वेतकेतु को उसके अपराध के लिए मन ही मन क्षमा प्रदान की। वह अनिद्य सुन्दरी थी और कोई भी उसके रूप से मोहित हो सकता था। उसके सामने रानी पद्मावती फीकी पडती थी। कभी वह सुन्दर रही होगी, परन्तु अब तो वह कृशकाय और भीत लगती थी। उद्धव को लगा कि रानी सतत भय के वातावरण मे ही जीती होगी, यहाँ तक कि शैव्या से भी वह भयभीत जान पडती थी। उद्धव को सहज ही उसके प्रति सहानुभूति हो गयी।

आरती के बाद सभी एकत्र स्त्री-पुरुषो ने शृगालव के चरणो मे फिर प्रणाम किया और 'देवाधिदेव भगवान वासुदेव की जय", के नारे लगाये। रानी से लेकर सभी ने चरणामृत लिया। उद्धव ने देखा कि रानी इस विधि मे यत्रवत् भाग ले रही थी, जब कि शैव्या एक प्रेरक और अपूर्व भक्तिभाव से उसमे रस ले रही थी। भगवान वासुदेव के प्रशस्तिपत्र गाये गये। शैव्या ने वासुदेव के भक्तिस्तोत्र गाये और लोगो ने उसका अनुकरण किया। विधि जब पराकाष्ठा पर पहुँची, तब दुर्गपाल तेजी से महल मे आता दिखायी पडा। वह वेगवान अश्व पर आया था। अश्व पर से कूद कर वह सीधा दरबार-गृह मे ही चला आया। दरबारी और सेवक स्तोत्र गाने मे लीन थे, परन्तु शृगालव की दृष्टि तत्काल उस पर गयी।

शृगालव के हाथ उठाने पर सभी शात हो गये। उसने दुर्गपाल को हाथ के सकेत से पास बुलाया। दुर्गपाल ने आकर, प्रणाम निवेदन किया

और हाथ जोडकर खडा हो गया।

"क्यों, क्या बात है?" शृगलव ने गौरवपूर्ण स्वर से पूछा।

"भगवान वासुदेव की जय हो! भगवान, कृष्ण .बा " वह हिचकिचाया और शब्द ढूंढने लगा। "मथुरा का यादव,कृष्ण बाहर दरवाजे पर खडा है और कहता है कि भगवान के दर्शनार्थ आया है। वह किले मे प्रवेश पाना चाहता है!" उसने कपमान स्वर मे कहा। शृगलव का चेहरा विकराल बन गया।

दुर्गपाल के शब्द सुनकर उद्धव का हृदय चचल हो उठा। कृष्ण आये हैं, और उन्हे यह भी मालूम नही कि उद्धव का क्या हुआ और यहाँ आने मे क्या खतरा है!

"हम ऐसे आदमी को दर्शन नही देते। श्वेतकेतु, यहाँ आओ!" शृगलव ने कहा।

"श्वेतकेतु भी दुर्गपाल की खबर से चिंता मे पड गया था। शृगलव के बुलाने पर और भी बौखला गया।

"श्वेतकेतु, तुम कृष्ण की भाषा जानते हो। तुम जाकर उससे पूछ आओ कि हमसे उसे क्या काम है!" शृगलव ने कहा।

श्वेतकेतु क्षणभर दुविधा मे पड गया।

"जाओ, जल्दी जाओ और जल्दी ही लौट आओ। यहाँ हम तब तक पूजनविधि पूरी कर लेते है," शृगलव ने कहा।

श्वेतकेतु ने देखा कि अब बचने का कोई उपाय नही है। उसने प्रणाम कर विदा ली। रानी पद्मावती ने धीमी आवाज मे पूछा, "भगवान कोई अतिथि दर्शन के लिए आये, तो उसका आतिथ्य तो करना ही चाहिए न?"

शृगलव ने रानी को इस तरह घूरकर देखा कि रानी भयभीत होकर चुप हो गयी। लज्जा से उसका मुख निस्तेज हो गया। यदि शैव्या उसे सहारा न देती तो शायद वह गिर ही जाती। उद्धव ने देखा कि शृगलव रानी का खुला अपमान कर उसे सत्रस्त कर रहा है। शायद इससे उसने शैव्या को साधन बनाया होगा। उत्सव चालू रहा, लेकिन उत्सव का जोश खत्म हो गया। फिर प्रसाद बँटा, जिसे सभी ने चुपचाप ग्रहण किया। जैसे कुछ असाधारण घटित होनेवाला है, इस प्रकार का एक बोझ सभी के मन पर था। थोडी देर बाद श्वेतकेतु लौटा। उसके

चेहरे पर उत्तेजना के भाव स्पष्ट थे। प्रणाम कर वह हाथ जोड़े खड़ा रहा।

"क्या कहता है वह ग्वाला ?" शृगलव ने पूछा।

"भगवान वासुदेव", श्वेतकेतु ने कपमान स्वर में कहा, "अतिथि ने भगवान के प्रश्न के उत्तर में कहा कि मैं मथुरा के शूरों के अधिनायक वसुदेव का पुत्र हूँ। मैं अपने भाई तथा चेदिराज को पीछे छोड़कर अकेला आप से मिलने आया हूँ। करवीरपुर के स्वामी से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने की मेरी इच्छा है।' फिर कुछ हिचकिचाहट के साथ श्वेतकेतु बोला, "उसने एक कृपा की याचना की है। वह कहता है कि मेरे मित्र उद्धव को लौटा दो और जितने भी आचार्यों को कारावास दे रखा है, उन्हें मुक्त कर दो—मैं उन्हें अपने साथ ले जाऊँगा।'

शृगलव भड़क उठा। "इस दुष्ट ग्वाले को तुमने भगा नहीं दिया ?'

"भगवान, आपकी आज्ञा के बिना मैं क्या कर सकता हूँ ? परन्तु जो उद्धव को कहा वही मैंने उससे भी कहा, मेरे भगवान को एकमात्र वासुदेव भगवान मान लो, तभी वे तुम्हें दर्शन देंगे।"

श्वेतकेतु के स्मृतिपट पर कृष्ण से हुई अपनी बातचीत पूरी उभर आयी। कृष्ण उसे देखते ही पहचान गये थे और उसकी स्थिति का अनुमान भी उन्होंने लगा लिया था। माँ की ममता से कृष्ण ने पूछा था, 'श्वेत-केतु, भाई, तुम यहाँ ? हम साथ-साथ जिस प्रभु की भक्ति करते थे, उन्हें छोड़कर तुम यहाँ कैसे पहुँच गये ?" कृष्ण के इन शब्दों में अपार व्यथा थी। उद्धव के अपमान-भरे शब्दों से अधिक कृष्ण के इन स्नेहपूर्ण शब्दों ने श्वेतकेतु के हृदय में गहरा घाव कर दिया। मेरा कितना-कितना पतन हुआ है, इसका वास्तविक भान उसे तभी हुआ।

'उसने क्या उत्तर दिया ?" शृगलव ने पूछा।

श्वेतकेतु ने अपने मन से कृष्ण के प्रश्न की स्मृति को चेष्टा कर निकाल दिया और सावधान होकर बोला, "कृष्ण यादव मेरा प्रश्न सुन कर हँसा। उसने कहा कि मैं गिरिवर कैलाश पर जाऊँगा तब देवाधिदेव महादेव के चरणों में प्रणाम करूँगा। और, अभी तक मैं वहाँ गया नहीं।"

"दुष्ट अविवेकी, पापी ·" शृगलव चीख उठा, "वह अकेला है ? सशस्त्र है ?"

"वह रथ में आया है। साथ में सारथि है और ध्वजा लेकर चलने-

वाला गरुडमुख सेवक भी है। कृष्ण के पास गदा, धनुष चक्र और शख है। उसने बार-बार यही कहा है कि मेरे आने का उद्देश्य करवीरपुर के स्वामी से मैत्री स्थापित करना है," श्वेतकेतु ने कहा।

"मैत्री करनी है? यह ग्वाला भगवान वासुदेव का मित्र बनना चाहता है?" शृगलव ने तिरस्कार से होंठ बिचकाये।

"भगवान यदि अनुमति दे तो कृष्ण ने जो आगे कहा वह भी निवेदन करूँ।"

'कहो!' शृगलव ने आज्ञा दी।

"कृष्ण ने कहा, मैं थोडी देर धैर्य धारण कर प्रवेशद्वार पर खडा हूँ। पर, यदि उद्धव और आचार्यों को तुरन्त नही भेजा गया, तो दरवाजा तोडकर मैं अन्दर चला आऊगा और अपने हाथो से सबको मुक्ति दिलाऊँगा!" श्वेतकेतु ने कहा।

दरबार मे खडे सभी लोग यह बात सुनकर स्तब्ध रह गये। एक अपरिचित युवक द्वार पर खडा यह धमकी दे रहा है कि करवीरपुर का दरवाजा वह तोड डालेगा! रानी ने भय से थरथराती आवाज मे शृगलव की ओर देखकर कहा, "भगवान, कृपा कर आचार्यों को मुक्त करे!"

शृगलव ने फिर एक बार रानी की ओर विकराल दृष्टि से देखा। "हमे किसी की सलाह नही चाहिए!" रानी पद्मावती के होंठ पर ही आगे के शब्द जम गये। वह बेहोश हो गयी। शैब्या ने उसे पकड लिया। शैब्या के मुख पर स्पष्टत. भक्ति-भाव उमड आया। शृगलव का बारह वर्ष का पुत्र शक्र सिसकियाँ भरता हुआ माँ से लिपट गया।

'यादव हमारे तीर्थधाम के पवित्र द्वार का स्पर्श करे, इससे पहले ही वह हमारे क्रोध का भोग बनेगा। श्वेतकेतु, श्रेष्ठ योद्धाओं को लेकर जाओ और अपने मामा का वध करनेवाले उस ग्वाले का सिर ले आओ! बृहद्रथ का पुत्र जरासध शायद उसके सामने से भाग गया हो—वह कायर था—पर, हम इस छोकरे को अच्छा पाठ पढायेंगे!"

श्वेतकेतु को लगा कि वह स्वय बेहोश हो जायेगा। उसने शृगलव के कठोर चेहरे की ओर देखा, फिर उसकी दृष्टि शैब्या पर पडी। शैब्या गौर से उसकी ओर देख रही थी। उद्धव के चेहरे पर चिंता थी। बेहोश रानी का चेहरा एकदम निस्तेज हो गया था। श्वेतकेतु के कर्णपट पर कृष्ण का वह वात्सल्य प्रश्न गूँज रहा था "श्वेतकेतु, भाई, तुम यहाँ!

हम एक साथ जिस प्रभु की भक्ति करते थे, उन्हें छोडकर तुम यहाँ ?"

शृगलव का भय उसे सता रहा था। शैव्या का आकर्षण उसके हृदय को आंदोलित कर रहा था। परन्तु कृष्ण के शब्द, उज्जयनी मे कृष्ण के साथ की गयी भगवान महाकालेश्वर की पूजा, ये स्मरण अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए। श्वेतकेतु के मन का सघर्ष अधिक नही टिका प्रिय सखा के शब्दो की विजय हुई। उसने मस्तक उठाकर कहा, "भगवान, इसके सिवा और कोई भी आज्ञा कीजिये। कृष्ण के साथ मैं लड नही सकूँगा।"

शृगलव के चेहरे पर आश्चर्य और क्रोध-भाव देखने योग्य थे। शैव्या को अपने कानो पर विश्वास नहीं हो रहा था। उसके होंठो से चीत्कार फूट पडी।

"क्या कहा !" शृगलव गरजा।

श्वेतकेतु के कर्णपट पर फिर कृष्ण की वही मधुर वाणी गूँज उठी, "भाई, तुम यहाँ ! जिस प्रभु की भक्ति हम लोग साथ-साथ करते थे, उन्हे छोडकर तुम यहाँ ?" उसने निर्भय होकर कहा, "मैं कृष्ण के साथ नही लड़ूँगा—आप चाहे तो मेरी गर्दन उडा सकते है।"

दरबारी सभी स्तब्ध रह गये। शृगलव वासुदेव के साथ ऐसा साहस पहले किसी ने नही किया था। उद्धव को लगा कि अब उसका वहाँ रुकना अनावश्यक है। शृगलव के अधिकारी का रूप उसने धर रखा था, इसलिए वह स्वय जाकर कृष्ण के लिए द्वार खोलने की स्थिति मे था। सभी बौखलाये हुए थे, इसलिए स्थिति का लाभ उठाकर वह वहाँ से खिसका। फिर भी शैव्या की रोष भरी दृष्टि से वह छुपा न रह सका। क्रोध से उसका मुख लाल हो गया। कोई स्त्री क्रोध मे इतनी सुन्दर दिख सकती है, इसकी उद्धव को कल्पना भी नही थी।

श्वेतकेतु की धृष्टता से क्षणभर तो शृगलव भी बौखला गया। "तुम उसे जानते हो ?" उसने पूछा।

"हम दोनो गुरु सांदीपनि के आश्रम मे सहपाठी थे। वह मुझे प्रिय है, अतीव प्रिय है ?" श्वेतकेतु ने उत्तर दिया।

"तो फिर तुम्हें भी यमद्वार जाना पडेगा !" शृगलव ने कहा और रक्षको को सकेत कर बोला, 'इस द्रोही को नर्क मे डाल दो !"

श्वेतकेतु ने शस्त्र उतार दिये। रक्षको के पीछे-पीछे वह चला। शैव्या

ने चीत्कार किया। श्वेतकेतु ने पीछे मुड़कर देखा। उसकी दृष्टि मे भयानक अनादर था। शैव्या के आकर्षण का जादू अब उस पर नहीं चढ़ सकता था। शृ गलव ने कहा, "अब हम स्वयं ही जायेंगे। अपने हाथ से ही उस ग्वाले का वध करेंगे। सारथि! हमारा रथ तैयार करो! हमारा विराट् धनुष प्रस्तुत करो! यादव को उसका काल पुकार रहा है।"

तत्काल रथ आ गया। चार पहियो के इस रत्नजड़ित रथ मे करवीरपुर के चार श्रेष्ठ घोड़े जुते थे। चमचमाते स्वर्ण के बख्तर, कमरबंद और बाजूबन्द पहने दो सारथी रथ चला रहे थे। रथ मे आठ रक्षक भी खड़े थे। एक के हाथ मे शृगलव का ध्वज था और वह हवा मे फरफरा रहा था।

शृ गलव ने अपना धनुष उठाया। एक रक्षक उनके रत्नजड़ित तरकश को हाथ मे लिये खड़ा था, रथ मे कूदकर शृ गलव उच्च सिंहासन पर जा बैठा। रत्नजड़ित स्वर्णालिकारो से सज्जित आसन पर बैठा हुआ वह सत्ता और समृद्धि का स्वामी प्रतीत होता था।

२३

शैव्या का रोष

शृ गलव वासुदेव का भव्य रथ करवीरपुर के द्वार पर आकर खड़ा हुआ। मार्ग मे दोनो ओर खड़े लोगो ने "भगवान वासुदेव की जय" के नारो से उसका स्वागत किया। शृगलव ने अपने उच्च आसन पर से सामने के रथ मे खड़े छरहरे, सुन्दर युवक पर दृष्टि डाली। उसकी दृष्टि मे भारी तिरस्कार था।

शृ गलव के रथ को सामने देखकर कृष्ण ने अपना रथ आगे बढ़ाया और पाचजन्य शंख से मैत्री का स्वर फूंककर जोर से पुकारकर कहा, "करवीरपुर के महाराज शृ गलव वासुदेव! मैं मथुरा का कृष्ण वासुदेव आपका अभिवादन करता हूं, और आपके प्रति अपनी शुभेच्छा व्यक्त

करता हूँ।"

शृगालव ने इस विनयपूर्ण वाणी की अवहेलना की और अपने मुनहरे तरकश में से तीर निकालकर निशाना साधा। रथ के पहियों और घोड़ों के पदचाप की ध्वनि को दबाती हुई उसकी भर्राई हुई आवाज सुनायी पड़ी, इस त्रिभुवन में मात्र एक ही वासुदेव है।"

कृष्ण ने अपनी ओर तीर छूटते देखकर अश्वों को पीछे खींचा। शृगालव का तीर कृष्ण के बायें कंधे का सहज स्पर्श कर निकल गया। गरुड़ के मुख में मनुष्यों और प्राणियों को थर्रा देने वाली भयानक चीख निकल पड़ी। कृष्ण का रथ हल्का और गतिशील था, अश्व संकेत को भली भाँति समझ जायें इतने प्रशिक्षित थे। कृष्ण ने अश्वों को शृगालव के रथ पर दौड़ाया। वे शृगालव के अश्वों से भिड़कर उनमें गुथे बिना वापस आ गये। शृगालव के अश्व भड़क उठे और मार्ग पर उत्पात मचाने लगे।

कृष्ण अपने आसन पर खड़े हो गये। लगाम सारथि को देकर उन्होंने चक्र को अँगुली पर घुमाया। शृगालव की समझ में ही नहीं आया कि यह क्या हो रहा है। उसने दूसरा तीर लेकर धनुष पर चढ़ाने का प्रयास किया। अश्वों के भड़क उठने से उसका रथ तूफान में पड़ी नाव की तरह डगमगा रहा था। वह तीर छोड़ सके, इसके पहले ही कृष्ण की अँगुली से सुदर्शन चक्र छूटा और शृगालव का मस्तक छेदकर वापस उन्हीं के हाथ में आ गया।

शृगालव का शरीर सिंहासन पर से गिर पड़ा। उसके सारथी अश्वों को नियंत्रित न कर सके और रथ दिशाहीन हो भागने लगा। कृष्ण ने अपने रथ की लगाम फिर से हाथ में ले ली और करवीरपुर में प्रवेश किया। गरुड़ ने विजयघोष किया और उसके उस आनन्द-गर्जन से सारा आकाश गूँज उठा। बलराम और दामघोष भी कई आदमियों को लेकर पीछे से आ पहुँचे। करवीरपुर के कुछ योद्धाओं ने जब उन्हें भीतर जाने से रोका तो बलराम अपना हल लेकर कूद पड़े और क्षण मात्र में उन्हें भगा दिया। शृगालव स्वयं मृत्यु के मुख में चला गया, सेनापति श्वेतकेतु कारागार में था, इसलिए प्रतिकार करनेवाला अब कोई रहा नहीं।

कुछ ही देर में उद्धव ने पुनर्दत्त, श्वेतकेतु तथा विद्वान् आचार्यों को 'नर्क' से मुक्त कर दिया। फिर उद्धव ने कृष्ण को करवीरपुर की सारी बातें बतायीं। कृष्ण सबसे पहले रानी पद्मावती से मिले। अपने पति

की मृत्यु का समाचार सुनकर वह क्रंदन करने लगी थी। उसे भय था कि अब उसके पुत्र शक्रदेव को राजगद्दी नहीं मिलेगी। कृष्ण ने उसके पास आकर कहा

"करवीरपुर की राजमाता, मेरे प्रणाम स्वीकारें! करवीरपुर के स्वामी स्वर्ग सिधारे, इसका मुझे बहुत दुख है। उनकी मैत्री प्राप्त करने की मैंने भरसक चेष्टा की, परन्तु उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। उन्होंने तो बल्कि मुझे मार ही डालने का प्रयत्न किया। विधि की यही इच्छा थी माता!" कृष्ण ने क्षमायाचना के स्वर में कहा, "अब करवीरपुर के नये राजा के रूप में शक्रदेव की स्थापना करनी होगी। आप कोई चिंता न करें। करवीरपुर के स्वामी के अंतिम संस्कार के समय और राजकुमार के राज्यारोहण के समय मैं उपस्थित रहूंगा और इसका प्रबंध भी कर दूंगा कि राजकुमार को योग्य शिक्षा मिले।"

शृगालव का अन्तिम संस्कार राजसी ठाट से हुआ। करवीरपुर के सेनापति के रूप में श्वेतकेतु श्मशान भूमि में मृत राजा को सम्मान देने उपस्थित रहा। शृगालव ने वासुदेव-पूजा की जो परम्परा आरम्भ की थी, वह एक ही दिन में भंग हो गयी। कुछ चाटुकारों के सिवाय सभी को इससे खुशी हुई। आचार्यों को उनके आश्रम फिर से सौंप दिये गये। राजा के भय से अथवा उसको प्रसन्न करने के लिए जो धार्मिक विधियाँ बन्द कर दी गयी थीं, वे पुनः प्रतिष्ठित हो गयीं।

रानी पद्मावती ने शृगालव की पूजा में उपयोग होनेवाले स्वर्ण और रत्नों को गरीबों तथा विद्वानों को दे देने की इच्छा व्यक्त की। शृगालव के अंतिम संस्कार के बाद रानी ने संग्रहित संपत्ति का दान के रूप में वितरण प्रारम्भ कर दिया।

श्मशान भूमि से वापस आने के बाद कृष्ण, उद्धव और पुनर्दत्त बैठे थे कि वहाँ शैव्या आ धमकी। उसके बिखरे हुए केश कंधों पर फैले थे, उसकी सुन्दर आँखें सूजकर लाल हो गयी थीं। उसका चेहरा भी गुस्से से लाल हो रहा था। शृगालव की मृत देह को, श्मशान भूमि पर ले जाने से पहले जब महल में लाया गया, तो धार्मिक मान्यताओं का अनादर कर वह उस पर गिर पड़ी थी। शैव्या अपने बाल खींच रही थी, छाती पीट रही थी और करुण विलाप कर रही थी। इस समय तो वह कृष्ण

को न कहने योग्य वचन भी बोल रही थी।

"खूनी हत्यारा तेरा सत्यानाश हो!" वह चीत्कार उठी और अपनी कमर से खंजर निकालकर कृष्ण पर टूट पड़ी। श्वेतकेतु ने तत्काल पीछे से आकर उसके हाथ में से खंजर लेने का प्रयास किया। भूखी बाघिन की तरह वह पीछे मुड़ी और श्वेतकेतु की पकड़ में से अपना हाथ छुड़ाने लगी।

"कायर, नीच मैं तुझे यहाँ लायी, तुझे प्रतिष्ठित पद दिलाया, अपना हृदय भी दिया। तूने भगवान से द्रोह किया है। इस दुष्ट का नाश नहीं किया।" शैव्या के मुँह पर झाग आने लगे, उसकी आँखें पागलों की सी हो रही थीं। श्वेतकेतु अब अपना रोष न दबा सका। उद्धव उसकी सहायता को पहुँचा, परन्तु उसे एक ओर हटाकर, श्वेतकेतु ने शैव्या का हाथ इतने जोर से मरोड़ना शुरू किया कि खंजर शैव्या के हाथ से छूट पड़ा, फिर उसे धकेलकर नीचे बैठा दिया। शैव्या अब भी क्रोध से काँप रही थी। श्वेतकेतु ने कहा.

"राक्षसी, तू मुझमें दोष निकालती है? तूने मुझे अपने धर्म से, गुरुदेव के प्रति मेरे कर्तव्य से च्युत किया, मुझे दास बनाया ताकि शृगालव की सेना को प्रशिक्षित करूँ और उस मिथ्याभिमानी मूर्ख की भक्ति करूँ। मैं तो समझता था कि तू मुझे चाहती है और मुझसे ब्याह करेगी। परन्तु तूने अपना प्रेम मुझे कभी नहीं दिया। तू अपने चाचा की ही बनी रही, उसके अहं को पोषती रही और रानी तथा उसके पुत्र पर अत्याचार कर सभी पर शासन चलाती रही। तूने मेरे जीवन का सत्यानाश किया है। इसी से सन्तोष न पाकर अब तू चाहती है कि मैं अपने प्रिय मित्र कृष्ण का वध करूँ? राक्षसी, जिस दिन मैं तेरे जाल में पड़ा, वह काला दिन उगता ही नहीं तो कितना अच्छा होता।"

शैव्या अब तक नीचे ही बैठी थी। उसके हाथ को श्वेतकेतु ने मरोड़ रखा था, ताकि वह खड़ी होकर नखों से उसकी आँख न निकाल ले। शैव्या ने नखों और दाँतों से उसे खूब घायल किया था। तब कृष्ण खड़े हुए। उन्होंने श्वेतकेतु की दृढ़ पकड़ में से शैव्या को मुक्त किया।

"श्वेतकेतु, तुम इसे क्यों दोष देते हो? इसकी ओर जो तुम आकर्षित हुए, वह क्या तुम्हारा दोष नहीं था?" कृष्ण ने अधिकारपूर्वक कहा, "अपनी निर्बलता के कारण ही तुम इसके जाल में फँसे। तुमने शृगालव

की भक्ति को भी, इसीलिए स्वीकार किया कि तुम्हें सत्ता और कीर्ति
की चाह थी। इस आशा मे कि शैव्या कभी न कभी तुम्हारे साथ विवाह
करेगी, तुमने अपने भगवान को गुरुदेव को, तथा आचार्यों को त्याग
दिया, उन्हें भुला दिया!"

कृष्ण के स्वर मे अनुकंपा थी। "और मेरा वचन है कि शैव्या तुम्हारे
साथ विवाह करेगी। यह तुम्हारी ही कामना करती है। इसका सब-कुछ
तो चला गया — इसके चाचा, इसके भगवान, इसकी श्रद्धा, इसका जीवन-
स्वप्न। तुम्हारे सिवाय अब इसका रहा ही कौन?"

"वासुदेव, तुम नही जानते कि यह कितनी निर्दयी है। मैं तो इसकी
बाजी मे मात्र प्यादा हूँ।" श्वेतकेतु ने क्रोध से काँपते हुए कहा।

"भाई, तुम इन स्त्रियों को जानते नही," कृष्ण ने हँसते-हँसते कहा,
"हम सभी इनके हाथ मे प्यादे है, परन्तु ये हमे जगत् मात्र को प्यादा
बनाने की शक्ति भी देती है। शैव्या अभी तुम्हारे साथ किस तरह बात
कर रही थी, यह देखा तुमने? इसने अपना सारा जीवन तुम्ही पर
केन्द्रित कर रखा था। अब इसे लगता है कि इतनी लगन से तैयार की
गयी सारी योजना चूर-चूर हो गयी है। तुम इसे बलपूर्वक भी यहाँ से
ले जाओ—यह इस समय बस तुम्हें ही चाहती है।"

शैव्या दंग रहकर कृष्ण की बाते सुन रही थी। जिस शत्रु का वह
वध करना चाहती थी, वह उसके हृदय की थाह पा गया था। हाँ, वह
इस समय श्वेतकेतु को ही अपना हृदय समर्पित करना चाहती थी।
वहाँ उसे चाहनेवाला और था भी कौन?

फिर कृष्ण ने शैव्या की ओर मुड़कर कहा, "शैव्या, मै श्वेतकेतु
को कुंडिनपुर भेज रहा हूँ। यदि उसके साथ विवाह कर तुम उसके साथ
नही जाना चाहती, तो फिर मेरे साथ मथुरा चलो। तुम शायद अपने
चाचा को कभी नही भूलोगी, परन्तु रानी पद्मावती भी तो तुम्हें कभी
नही भूल सकेगी! उसे तुमने किस स्थिति मे रखा था, यह याद है न?"

"दुष्ट, हत्यारा!" शैव्या ने दाँत कटकटाये।

"तुम्हारी वाणी मे अर्ध सत्य है", कृष्ण ने कहा, "मैने तुम्हारे चाचा
की हत्या की, परन्तु दुष्टता से प्रेरित होकर नही। तुम्हारे चाचा को तो
मैं तुम्हें वापस नही दे सकता, पर तुम्हें एक ऐसी माँ अवश्य दे सकूँगा,
जो तुम्हारी सगी माँ की कमी पूरी कर सके, एक भाई दे सकता हूँ, जो

तुम्हारे अपने भाई जैसा ही होगा। शायद वह वीर श्वेतकेतु भी कभी तुम्हें मिल सकेगा—यद्यपि वह तो अभी भी तुम्हारा ही है।'

शैव्या ने असहाय भाव से कृष्ण की ओर देखा। उनके शब्द उसके विषाद के परदे को भेदकर उसे सांत्वना दे रहे थे।

"शैव्या, खड़ी हो, मुँह धो ले। आँसुओं से तेरा सुन्दर मुख भीग रहा है" कृष्ण ने स्नेहपूर्ण स्वर में कहा।

"नहीं, मैं खड़ी नहीं होऊँगी,' शैव्या ने दृढ़ता से कहा।

"तू खड़ी जरूर होगी, होगी न ?" कृष्ण ने उसको खड़ी करने का प्रयास करते हुए कहा।

"तेरी आँख निकाल लूँगी !" और कुछ कहना न सूझ पड़ने पर शैव्या ने यही कहा।

"अपने इन नखों का उपयोग तू उस समय करना, जब श्वेतकेतु मथुरा में मिले, भाई पर उनका प्रयोग क्यों करना चाहती है ? नहीं हो, चल, होश में आ ! माँ देवकी तेरी प्रतीक्षा कर रही है' कृष्ण ने मुस्करा कर कहा।

"मिथ्या वासुदेव !" शैव्या बोली।

"तू है तो मुझसे बड़ी, पर बोलती है ठीक मेरी छोटी बहन की तरह !" कृष्ण ने हँसकर कहा, "मथुरा आ और मेरे पिता वसुदेव से मिल। वही बतायेंगे कि मैं उनका पुत्र हूँ, मिथ्या वासुदेव नहीं। वे तो तुझे भी अपनी पुत्री के रूप में ही स्वीकार करेंगे।"

'मुझे मथुरा नहीं आना !' शैव्या ने कहा।

"तो श्वेतकेतु के साथ विवाह कर उसके साथ विदर्भ जा। रानी पद्मावती के साथ तो तू नहीं रहना चाहेगी, क्यों ?' कृष्ण ने पूछा।

शैव्या को अब अपनी असहाय स्थिति का बोध हुआ। उसने कातर दृष्टि से कृष्ण की ओर देखा और रोने लगी।

'रो मत ! मैं तुझे मथुरा ले जाऊँगा और तेरा भाई बनकर रहूँगा। श्वेतकेतु भी वहाँ पहुँच जायेगा। अपने नाखून तैयार रखना। मैं पहले से ही तुम्हें सावधान किये देता हूँ कि यह बहुत दुष्ट आदमी है। जब तक तुमने इसके जीवन में प्रवेश नहीं किया था, तब तक तो यह मुझसे भी अधिक अच्छा निशाना साध लेता था !" कृष्ण ने शरारत भरी मुस्कराहट के साथ कहा और शैव्या को खड़ी किया। "उद्धव, शैव्या को

अत पुर मे ले जा।"

उद्धव ने शैव्या का हाथ इस प्रकार पकडा, मानो वह जलती हुई मशाल छू रहा हो।

शोक के तेरह दिन बीत गये। शक्रदेव का करवीरपुर के महाराज के रूप मे राज्याभिषेक हुआ। रुद्राचार्य ने राज्य के प्रमुख आचार्य-पद को सभाला। पुनर्दत्त बाल-राजा के शिक्षण के लिए वही रुक गया। पद्मावती ने कृष्ण का आभार माना।

दामघोष और कृष्ण ने श्वेतकेतु के साथ लबी मत्रणा की। अवति के राजकुमार, विंद-अनुविंद को तो श्वेतकेतु ने शिक्षा दी थी, इसलिए वह इस योजना मे ठीक बैठता था। दूसरे दिन सवेरे श्वेतकेतु करवीरपुर के वेगवान अश्व पर बैठकर उसी मार्ग चल पडा, जिससे कुछ दिन पहले जरासध गया था।

२४

जरासंध का नया व्यूह

अनुविंद का रथ द्रुत गति से चल रहा था। जरासध उसमे आँख मूंदे निश्चेष्ट पडा था। उसके चक्रवर्ती पद को जहाँ अनन्य पराजय स्वीकार करनी पडी, वहाँ से वह शीघ्रातिशीघ्र दूर चले जाना चाहता था। अतीत की स्मृतियाँ उसके मानसपट पर उभर आयी। जब वह जन्मा तब उसके सभी अग विकृत रूप से पृथक-पृथक थे। जरा नाम की दासी ने उसके अगो को जोडा। उसीने उसका उपचार कर उसे स्वस्थ बनाया। गिरिव्रज की राज्यसत्ता जब उसके हाथ मे आयी, तब वह मात्र युवा ही था। उस समय गिरिव्रज भयकर आतरविग्रह मे जकडा हुआ था। परन्तु जरासध कूटनीति मे कुशल था, इसी से वह परिस्थिति पर काबू पा सका।

इसके बाद उसने गिरिव्रज की शक्ति को सगठित किया, मगध मे त्राहि-त्राहि मचाकर सभी को अपने अधीन बनाया। उसने पक्षपात,

चालाकी, द्रोह और विजय का जाल फैलाया। वह सावधान, चतुर, धैर्यवान और दुर्दम्य बना। मगध के निकटवर्ती राज्यों ने तो तुरन्त उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। दामघोष डटकर लड़ा, परन्तु उसे भी मगध का सामन्त बनने पर मजबूर होना पड़ा। विदर्भ के कौशिक का घोर पराभव होने के बाद उसके पुत्र भीष्मक ने स्वयं आकर मगध का आधिपत्य स्वीकार किया। और भी कई छोटे-छोटे राज्यों ने मगध के साथ सन्धि कर इस भय को टालने का प्रयत्न किया।

वर्षों तक जरासंध का सितारा बुलन्दी पर रहा। उसकी पुत्री का विवाह कंस से हुआ। बदले में उसे एक शक्तिशाली समर्थक मिला। मथुरा आर्यावर्त का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था और यादव एक शक्तिशाली जाति थी। कंस के साथ-साथ बहुत से छोटे राज्य जरासंध के साम्राज्य में आये। उसने अश्वमेधयज्ञ कर चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। चेदि के अश्व के साथ चल रही सेना का नायक कंस ही था। उसने जरासंध के चक्रवर्ती पद को सर्वत्र स्थापित किया। अश्वमेधयज्ञ की जब विजयी पूर्णाहुति हुई तब जरासंध ने परम संतोष का अनुभव किया।

अब केवल देश के तीन महान् राजा ही उसके चक्रवर्तीत्व को स्वीकार नहीं करते थे—पांचाल का द्रुपद, हस्तिनापुर का धृतराष्ट्र और नैऋत्य में बसी भयंकर प्रजा का नायक कालयवन। पांचाल देश तो उसके साथियों से घिरा था, इसलिए द्रुपद से भिड़ना इतना मुश्किल नहीं था। वह अब इसी दिशा में प्रयत्नशील था कि एकाएक कंस का वध हो गया। उसके साम्राज्य-व्यूह की इससे एक महत्त्वपूर्ण कड़ी टूट गयी। पहले तो उसे लगा कि वसुदेव के पुत्रों को पदभ्रष्ट कर वहाँ किसी यादव बालक को बैठाना बायें हाथ का खेल होगा, और इस प्रकार उसकी पुत्रियाँ राजमाता के रूप में शासन चला सकेंगी। परन्तु उसकी योजनाएँ विफल हो गयीं। कृष्ण-बलराम भाग गये और अब मगध का यह दुर्जेय सम्राट् दो छोकरों से पराजय पाकर स्वयं भाग रहा था। उसकी कितनी अपकीर्ति हुई। जिसकी हत्या करने वह निकला उसी श्रीकृष्ण ने यदि उसे न बचाया होता तो शायद बलराम उसकी खोपड़ी चूर-चूर कर देता। अब सभी राजा उसकी इस अपकीर्ति पर हँसेंगे—छोटे बालक भी उसकी मजाक उड़ायेंगे।

रथ में लेटे-लेटे जरासंध इस अपकीर्ति की घूँट गले उतार रहा था।

न वह हिलता-डुलता था, न बैठता था और न आंखें ही खोलता था। अनेक बार जिसे विपत्तियों में से बचाया वह साथी और मित्र दामघोष द्रोही निकला! पर नहीं, उसने यदि ठीक समय पर बीच-बचाव न किया होता तो वह जीवित नहीं रहता! उसके विचार अबाध गति से चल रहे थे। इस संकट में से बच निकलने के लिए उसे कुछ करना चाहिए। जिस सत्ता के वस्त्र को बुनने में उसकी आयु व्यतीत हो गयी, वह अब तार-तार हो रहा था। अब उसे कुछ आकार देना होगा। हताश होकर बैठने या निरर्थक क्रोध करने से कोई लाभ नहीं। अहम को निगल जाना होगा। उपहास का सामना करना होगा और नये सिरे से सारी योजना बनानी होगी। इस बात में अब कोई शंका नहीं थी कि वसुदेव के पुत्रों ने महान शक्ति प्राप्त कर ली थी। उनका काँटा अब सरलता से नहीं निकाला जा सकेगा। उन्हें तो धीरज धारण कर, मौके से ही परास्त किया जा सकेगा, तब तक मित्रों को प्रोत्साहित कर उन्हें संगठित रखना जरूरी था।

जरासंध ने सोचा मगध के सबसे अधिक शक्तिशाली साथियों में चेदि का दामघोष और विदर्भ का भीष्मक मुख्य है। वह विचार करता रहा, योजनाएं गढ़ता रहा। उसने अहंकार को दबाकर मित्रों पर फिर से प्रभाव डालने का निश्चय किया। एकाएक उसे कुछ सूझा। साँझ हुई, उसने अनुविंद से रथ रोकने के लिए कहा, "हम अब यहीं शिविर करें और अन्य राजाओं की प्रतीक्षा करें।"

इस शिविर में उसने रात बेचैनी में काटी। भाँति-भाँति के विचार उसे सता रहे थे। सवेरे उसने कहा, 'रुक्मी और दूसरे राजा जब तक न आ जायं, तब तक हम यहीं रुकेंगे।' शाम तक सभी आ पहुँचे। वे तो जरासंध को उग्र और आवेशित देखने की अपेक्षा रखते थे, परन्तु इसके बदले उसे स्वस्थ और शांत देखकर सभी अचंभे में पड़ गये। वे लोग वहाँ दो दिन तक पड़ाव डाले रहे। जो भी खाद्य सामग्री उनके पास बच गयी थी उसे शेष कर डाला। सुरापान से सभी में नया जोश पैदा हुआ, अपकीर्ति का बोझ हल्का हुआ। अधिकांश नरेश जब दामघोष पर द्रोह का अभियोग थोपने लगे, तब जरासंध ने उसका बचाव किया। फिर सभी आश्चर्यचकित हो गये।

जरासंध ने कहा, "नहीं, दामघोष तो बाहोश और वफादार है। यदि

उसने समय पर बीच-बचाव न किया होता तो रुक्मी की और मेरी जान बचना असम्भव था। वसुदेव के पुत्र यहाँ तक सक्षम होंगे, इसकी किसी को कल्पना भी नहीं थी। और कृष्ण ने तो लगभग चमत्कार ही किया न! नहीं तो समुद्र आकर गोमान्तक पहाड़ी को किस प्रकार बचाता?'

जरासन्ध कुशल खिलाड़ी था। उसने त्यागी होने का ढोंग किया और सारा दोष अपने माथे ले लिया। दमघोष और रुक्मी की उसने प्रशंसा की। उसकी वक्तृत्व कला का जादू फिर सब पर चढ़ने लगा। ऐसी पराजय में भी जिसकी स्थिरबुद्धि बनी रहे और दोष लेने की हिम्मत भी जो रखता हो, ऐसे नायक के प्रति उनके मन में नवीन आदर का भाव प्रकट हुआ।

दूसरे दिन वह दल एक छोटे से राज्य की राजधानी में पहुँचा। वे सब महान् राजा थे, किस उद्देश्य से आये हैं, इसका विचार न कर वहाँ के ठाकुर ने उनकी अच्छी आवभगत की। वे वहाँ तीन दिन रहे, खूब शिकार किया, गोष्ठियाँ कीं और आनन्द मनाया। चौथे दिन श्वेतकेतु वहाँ आ पहुँचा। वह दिन-रात, कहीं रुके बिना, घोड़ा दौड़ाता हुआ आया था।

श्वेतकेतु ने अनुविन्द से कहा, 'जब मैं करवीरपुर में था, तब तुम सबकी खबर मुझे मिली। उन जंगलों में तो खूनी जातियाँ बसती हैं। मुझे भय था कि कहीं तुम मुश्किल में न पड़ जाओ। मैं शृगालव का सेनापति हूँ और इन जातियों को अच्छी तरह जानता हूँ। तुम लोग यहाँ तक सकुशल आ पहुँचे, यह देखकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है।'

अनुविन्द आभारवश हो गया। उसने जरासंध तथा अन्य राजाओं से 'आचार्य' श्वेतकेतु का परिचय देकर कहा, 'ये सांदीपनि के पट्ट शिष्य हैं, इन्होंने ही मुझे शस्त्रविद्या सिखायी थी।'

"कृष्ण वासुदेव से मिले तुम?" रुक्मी ने पूछा।

"मैंने शृगालव वासुदेव को कृष्ण वासुदेव से मिलने करवीरपुर के बाहर जाते देखा था!" श्वेतकेतु ने स्वस्थता से कहा।

रुक्मी तथा अनुविन्द ने श्वेतकेतु से कुण्डिनपुर चलने का आग्रह किया। श्वेतकेतु तो इसी आमंत्रण की प्रतीक्षा में था। उसने तुरन्त स्वीकार कर लिया। मार्ग में श्वेतकेतु ने सुना कि कृष्ण और बलराम ने इन सब राजाओं को किस प्रकार खदेड़ा था। उसका मन बार-बार शृगालव के अवसान के बाद की घटनाओं पर जाता था। कृष्ण ने परिस्थिति को कैसे सँभाल

लिया। शैव्या कितनी क्रोधित हुई थी—परन्तु कृष्ण की मधुर वाणी ने उसे कैसी सात्वना दी! यह एक चमत्कार ही था। उसके मानस पर शैव्या के विविध चित्र उभर रहे थे। शैव्या ने उसका मन हर लिया था, उसे करवीरपुर खीच लायी, परन्तु शृगलव के प्रति उसकी भक्ति अप्रतिम थी। इसी भक्ति के आवेश मे तो उसने रानी पद्मावती को सदा दुखी रखा और स्वय को अपना दास बनाये रखा। शृगलव की मृतदेह पर वह किस प्रकार रुदन कर रही थी। पर, पीछे वह चडिका का रूप धारण कर कृष्ण को मारने और अपने चाचा का बदला लेने भी आयी थी! श्वेतकेतु को तो वह द्रोही दास ही मानती थी! परन्तु कृष्ण की ममता के सामने फिर सिसकियाँ भरने लगी। शैव्या की स्मृतियाँ सुखद नही थी, परन्तु अब कृष्ण की छाया मे उसे स्नेह और शाति दोनो मिलेगे, यदि कृष्ण को उसने अपना शत्रु नही माना तो!

थोडे दिन बाद ये लोग कुडिनपुर पहुँचे। राजा भीष्मक ने ठाट मे इनका स्वागत किया। जरासध के स्थान पर और कोई होता तो इतना स्वस्थ नही रह सकता था, परन्तु यहाँ पर उसने जो बातचीत की उसमे तो दामघोष के औदार्य का गुणगान था। यदि चेदि नरेश बीच-बचाव नही करते तो रक्तपात होता, शायद वसुदेव को अपने दोनो पुत्रो से हाथ धोना पडता। जरासध ने कहा, 'मुझे भी दामघोष की यह सलाह उचित जान पडी कि सम्राट् को इन दो किशोरो पर उनके उपद्रवो पर इतना कुपित नही होना चाहिए। जरासध ने बार-बार यही बात नयी-नयी घटनाओ के सदर्भ मे कही। यह सुनकर रुक्मी भी इसे ही सत्य मानने लगा।

"भीष्मक, दामघोष सच ही कहता था। कृष्ण और बलराम राजा नही, वे तो शूरो के के नायक के पुत्र है। उन्हे भुलाकर हमे अपनी दृष्टि राजनीति पर ही केन्द्रित करनी चाहिए," जरासध ने कहा।

"अब आगे क्या करना है?" भीष्मक ने पूछा।

"उन ग्वालो के पीछे पडने के बजाय हमे राजाओ का एक शक्तिशाली सघ स्थापित करना चाहिए।"

जरासध की जिद के कारण ही सभी सह्याद्रि मे कृष्ण को ढूँढने गये थे, यह बात भूल जाने मे ही सबको भलाई लगी।

"कस की मृत्यु हुई है और मथुरा चक्रवर्ती के प्रभाव मे नही, यह देखते हुए अपने साथियो की शक्ति अब और अधिक सुदृढ करनी चाहिए।'

यह स्थिति बहुत देर नहीं टिकेगी, इसलिए इसकी मुझे इतनी चिन्ता नहीं," जरासंध ने कहा, "इस बीच मैं अपने कौटुम्बिक सम्बन्ध अधिक दृढ़ करने की इच्छा करता हूँ। रुक्मी को मैं अपनी पौत्री विवाह में देना चाहता हूँ।"

भीष्मक आश्चर्य में पड़ गया। सम्राट् अपनी पौत्री रुक्मी को दे देंगे, इसकी तो कल्पना भी उसने नहीं की थी। अब तक तो यही माना जाता रहा था कि जरासंध अपनी पौत्री का विवाह दामघोष के पुत्र के साथ करेगा। रुक्मी खुश था कि अब उसे कंस का दर्जा मिलेगा, सम्राट् का जवाई और उसका दाहिना हाथ बनेगा।

"मैंने तो सोचा था कि आप अपनी पौत्री का विवाह अन्यत्र करने वाले हैं!" भीष्मक ने बात को पक्की करने के लिए पूछा।

"दामघोष के पुत्र शिशुपाल का विवाह तुम्हारी पुत्री रुक्मिणी के साथ हो, यह अधिक अच्छा है। इस प्रकार हमारे तीनों घराने एक-दूसरे के अधिक नजदीक आ जायेंगे।'

राजा शाल्व सम्राट् की चाल समझ गया। जो कुछ घट गया था, उसे देखते हुए दामघोष जरासंध के कुटुम्ब में ऐसा सम्बन्ध स्थापित करना न भी पसन्द करे। दामघोष की पत्नी श्रुतश्रवा वसुदेव की बहन होती है। वह जरासंध की पौत्री को अपनी पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करना पसन्द नहीं करेगी। अपने भाई के पुत्र के प्रति उसकी ममता स्वाभाविक है। रुक्मी का विवाह सम्राट् की पौत्री से हो और जिसके सौन्दर्य का गुणगान सर्वत्र होता है वह रुक्मिणी चेदि में जाये तो जरासंध का साम्राज्य अटूट रह सकता है। जरासंध ने यह अद्भुत मार्ग खोज निकाला है, इसकी प्रतीति शाल्व को हुई।

रुक्मी ने उत्साहपूर्वक कहा, "शिशुपाल जैसा बहनोई मुझे मिले तो बड़े आनन्द की बात होगी। वह वीर और उदार है, रुक्मिणी के लिए आदर्श पति है।"

'मुझे भी ऐसा ही लगता है," जरासंध ने कहा।

"परन्तु यह बात इस प्रकार पक्की नहीं हो सकती," भीष्मक ने कहा, मेरे वृद्ध पिता कौशिक इसका विरोध करेंगे। हमारे कुल में कन्याओं का विवाह स्वयंवर से ही होता है। रूप, गुण और शौर्य में जिसे वह सर्वोत्तम समझे, उसी को कन्या वरमाला पहनाती है।"

"देखो भीष्मक !" जरासंध ने कहा, "स्वयंवर की व्यवस्था मैं कर दूंगा। शिशुपाल समर्थ योद्धा है, शस्त्रविद्या में बेजोड़ है। कन्या को वह पसन्द आ ही जायेगा। यह सब मुझ पर छोड़ दो। मैं ऐसी व्यवस्था कर दूंगा कि और कोई स्पर्धा में आये ही नहीं और शिशुपाल को ही कन्या वरे !"

"पिताजी, यह सब व्यवस्था तो हो सकती है। बहुत से घरानों में स्वयंवर की योजना इसी प्रकार होती है कि कन्या पूर्व निश्चित वर को ही चुनती है।"

"ठीक, तो फिर सब-कुछ तुम्हीं पर छोड़ देता हूं," भीष्मक ने कहा।

"पर, अभी यह बात बाहर न फैले !" जरासंध ने कहा, "मैं पहले शिशुपाल से बात करूंगा। फिर दमघोष को कोई आपत्ति नहीं हो सकेगी। इस बीच हमारी व्यवस्था ठीक हो इस हेतु भीष्मक अपनी पसंदगी के राजाओं को निमंत्रण भेजेगा।"

"और, रुक्मी के विवाह का क्या होगा ?" भीष्मक ने पूछा।

"हमारे मगध में स्वयंवर का प्रचलन नहीं है। रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से होते ही तुम सब बारात लेकर गिरिव्रज आना !" जरासंध ने हँसकर कहा, "वहाँ धूमधाम से विवाह होगा। मेरी तो यही इच्छा है कि रुक्मी मेरे साम्राज्य का स्तम्भ बनकर रहे !"

रुक्मी का हृदय आशा और आनन्द से छलक पड़ा।

२५

रुक्मिणी का विद्रोह

राजमहल की छत पर राजाओं में मंत्रणा हो रही थी और छत के पास ही एक छोटी-सी कोठरी में बैठकर दो युवतियाँ छत पर खुलते चोर दरवाज़े पर कान लगाये इस मंत्रणा को बड़े ध्यान से सुन रही थीं। इनमें से एक थी रुक्मी की पत्नी सुव्रता। पति द्वारा वर्णित रोमांचक की

पराक्रमकथा में उसे विश्वास न था। बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर स्वागों के पीछे जाने वाले इन महाराजाओं के खाली हाथ वापस आने में क्या रहस्य था यह जानने के लिए वह उत्कंठित थी। दूसरी युवती थी सुव्रता की ननद, रुक्मिणी। वैसे तो ननद-भौजाई में अधिक पटती नहीं थी पर इस रहस्य जानने में दोनों की समान रुचि थी, क्योंकि जब से महारथि के लिए रवाना हुए थे तब से वह बेचैन थी और जरासन्ध, रुक्मी तथा अन्य राजाओं के उनका पीछा करने पर तो वह अत्यन्त चिन्तातुर हो उठी थी।

रुक्मिणी रात-दिन इसी आशंका से पीड़ित रहती कि उसके स्वप्नों के राजकुमार कृष्ण को कहीं कुछ हो न जाय, कहीं उनका वध कर डालें। उसने कई मनौतियाँ मानी थीं कि रुक्मी और उसके साथियों की योजना असफल हो। जब रुक्मी ने रोमांचक में अपने पराक्रम की कथा कही, तब रुक्मिणी को यह जानकर सन्तोष हुआ कि कृष्ण जीवित हैं। उसका भाई इतना औदार्य बतायेगा यह बात उसके मानने में नहीं आती थी। उसे लगा कि ऐसी कुछ घटना घटी है जिसे ये सब राजा छुपाना चाहते हैं। सुव्रता के साथ सन्धि कर वह यह भेद लेना चाहती थी।

जरासन्ध और भीष्मक की बातचीत सुनकर दोनों युवतियों के तन-बदन में आग लग गयी। सुव्रता इसलिए क्रुद्ध थी कि रुक्मी उसके ऊपर एक सौत लाना चाहता था, और रुक्मिणी को यह दुख था कि शिशुपाल के साथ उसका विवाह निश्चित हो रहा है। रुक्मिणी ने सुव्रता से इस अवसर पर मेलजोल बढ़ाना ही उचित समझा। उसने सुव्रता से हँसकर कहा, "क्यों भाभी, अब तो जरासन्ध की पोती तुम्हारी सौत बनकर आ रही है। तुम मेरे साथ रोज झगड़ती थी न? इसी भाग की हो तुम! वह मेरे साथ झगड़ा तो नहीं करेगी!"

"मुझे मत छेड़ो!" सुव्रता ने क्रोध में आकर कहा। उसकी आँखों में आँसू छलक आये थे, "मैं अभागिन जनमते ही क्यों न मर गयी!"

"भाभी, अब तुम युवा नहीं रही, और मेरे भाई को युवती भाभी चाहिए," रुक्मिणी ने कहा।

"चुप रहो जी! तुम्हें या तुम्हारे भाई का मैं कब अच्छा लगती हूँ!" रुक्मिणी ने कहा।

"मैं तो भाभी, तुमसे कितना प्यार करती हूँ! तुम ही बेकार मुझ पर गुस्सा होती हो!"

"नहीं ! तुम ही मुझे बार-बार छेड़ा करती हो !"

"तो मैं क्या करूँ ! मेरे विरुद्ध कोई भी बात हो तो तुम मेरे भाई का ही साथ देती हो न ?" रुक्मिणी के स्वर मे आत्मीयता थी।

"नहीं बहिन !" मैं तो तुम्हारे भाई से कितनी ही बार कहती हूँ कि अपनी बहन के साथ इतनी सख्ती मत बरता करो ! पर, तुम तो जानती ही हो उनका स्वभाव !' सुव्रता ने कुछ कटुता से कहा।

"जानती हूँ, भाभी ! जानती हूँ ! तुम न होतीं तो रुक्मी मुझे और भी तंग करता। खैर, कोई बात नहीं। तुम और मैं बराबर ही हैं।"

"मेरे तो दुख का पार नहीं !" सुव्रता ने अवरुद्ध कंठ से कहा।

"मैं देखती हूँ मेरा भाई मगध की छोकरी को किस तरह यहाँ लाकर तुम्हारे ऊपर बिठाता है ! मगध की वह उजड्ड लड़की मेरी भाभी नहीं बन सकती ! रुक्मी तुम्हारे जैसी अच्छी भाभी के लायक ही नहीं !" रुक्मिणी ने ममत्व से कहा।

"अपने भाई को तुम चक्रवर्ती की पौत्री से विवाह करने से नहीं रोक सकती। उनकी महत्वाकांक्षाओं का छोर नहीं !" सुव्रता ने कहा।

"हताश न हो भाभी ! कोई-न-कोई उपाय हम जरूर ढूँढ लेंगी," रुक्मिणी ने सान्त्वना देने के स्वर में कहा। उसके मन मे तो योजना तैयार थी, पर उसे प्रस्तुत करने का अवसर वह ढूँढ रही थी।

"कोई उपाय नहीं ! तुम्हारे भाई चक्रवर्ती के जमाई बनने का अवसर कभी नहीं खोयेंगे," सुव्रता ने कटुता से कहा।

"मैं देखती हूँ, कैसे बनता है वह चक्रवर्ती का जमाई ! पहले शिशु-पाल का व्याह मुझसे हो, तभी तो वह मगध की राजकुमारी को ला पायेगा ! और यदि मेरा व्याह शिशुपाल से हो ही नहीं, तो फिर तुम्हारे सौत भी नहीं आयेगी," रुक्मिणी ने कहा।

"तुम्हें चेदि की महारानी बनना पसन्द नहीं ?" सुव्रता ने आश्चर्य से पूछा।

"भाभी, तुम्हारे सुख के लिए क्या इतना त्याग भी मैं नहीं कर सकती ?" रुक्मिणी ने भाभी का आलिंगन करते हुए कहा, "चलो, हम किसी योजना का आविष्कार कर डालें !"

फिर भी रुक्मिणी के मन में एक विचार रह-रह कर टीस पैदा कर रहा था। कृष्ण इस लड़ाई मे मारे नहीं गये इसका उसे आनन्द था, परन्तु

रुक्मी तथा उसके साथियों द्वारा उन्हें जीवनदान मिला यह सोचकर वह दुखी हो रही थी। तो कृष्ण भी दूसरों के समान ही निकले! उसके मुख से दीर्घ निश्वास निकल गयी।

दूसरे दिन सदा की भाँति जब वह कौशिक दादा को प्रणाम करने गयी, तब उसने उन्हें एक अपरिचित नवागन्तुक से गुप्त मंत्रणा करते देखा। उसे आश्चर्य हुआ। कौशिक ने मुस्कराकर रुक्मिणी को पास बुलाया। उस अपरिचित युवक ने उसे प्रणाम किया।

"रुक्मिणी, तू इस युवक को जानती है!" दादा ने कहा।

रुक्मिणी ने अस्वीकृति में सिर हिलाया।

'ये आचार्य श्वेतकेतु हैं—गुरु सदीपनि के शिष्य और अवन्ती के राजकुमार अनुविन्द के मित्र," कौशिक ने बताया।

"हूँ!" रुक्मिणी ने बिना ध्यान दिये ही कहा।

"ये उद्धव और कृष्ण वासुदेव के भी मित्र हैं," कौशिक ने कहा।

"हूँ!" रुक्मिणी अब एकाग्र हो उस युवक को देख रही थी।

"ये करवीरपुर से आये हैं—कृष्ण ने उन्हें भेजा है,' कौशिक बोले।

"कृष्ण सकुशल हैं न?" रुक्मिणी से पूछे बिना नहीं रहा गया।

वृद्ध कौशिक हँस पड़े और बोले, 'विदर्भ की कुँवारी राजकन्या को इस युवा ग्वाले में इतना रुचि दिखाना उचित नहीं!"

'दादाजी, मुझे चिढ़ाइये मत!' रुक्मिणी ने कहा, मैं कृष्ण के बारे में सब कुछ सुनना चाहती हूँ!"

गोमान्तक में कृष्ण और बलराम ने जो पराक्रम दिखाया था, उसकी कथा श्वेतकेतु ने तब सविस्तार कही और यह भी बताया कि कृष्ण और दामघोष ने किस प्रकार जरासंध के प्राण बचाये। शृगालव के वध और आचार्यों की मुक्ति की कथा भी उसने कही और करवीरपुर की घटनाओं की तथा स्वयं वहाँ किस प्रकार आया उसकी भी चर्चा की।

यह अपूर्व शौर्य और कीर्तिवान विजय की कथा थी। रुक्मिणी आँखें बन्द कर बड़े ध्यान से इसे सुन रही थी। उसका हृदय विजय के स्वरों से गूँज उठा था। उसके सपनों का राजकुमार दूसरों की भाँति सामान्य पुरुष न था, पुरुषोत्तम था, प्रभु था! कृष्ण ने शैव्या के क्रोध को किस प्रकार शान्त किया। यह जानकर रुक्मिणी की आँखों में आँसू छलक आये।

"कथा या काव्य में भी ऐसा पराक्रम तो कभी सुना नहीं!" कौशिक

ने "कहा, दुर्जन, और महान जरासंध इन दो ग्वालों से जान बचाकर भागा, यही न ? हा हा हा हा ! आर्यावर्त का यह महान् दिवस है। जरासंध को अपना साम्राज्य स्थापित करने में तीस वर्ष लगे और एक ही दिन में वह नष्ट हो गया। रुक्मिणी तेरा जन्म भी नहीं हुआ था, तब जरासंध ने हमारी सेनाओं को नष्ट किया था, हमें अपमानित किया था। इसी से मैंने राजगद्दी तेरे बाप को सौंप दी। आज मेरे वैर का बदला पूरा हुआ। उद्धव की तरह मुझे भी अब लगता है कि कृष्ण भगवान है!"

"उन्होंने शैव्या के मन को जिस प्रकार जीता वह तो कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। वे भगवान हैं, शृगालव वासुदेव जैसे बनावटी नहीं, सच्चे भगवान!" श्वेतकेतु ने कहा।

"यदि वे राजा या राजकुमार होते तो!" रुक्मिणी के मुख से निकल पड़ा।

"तो उन्हें स्वयंवर में आमंत्रण मिल जाता, यही न ?" कौशिक ने हँसकर कहा, "लड़की! उस ग्वाले का स्वप्न छोड़ दे! तू राजकुमारी है, तुझे किसी राजकुमार से ही विवाह करना होगा।"

रुक्मिणी का चेहरा निस्तेज हो गया। निश्वास दबाकर और बात का विषय बदलते हुए उसने कहा, "आचार्य वासुदेव और रुक्मी के बीच क्या हुआ, यह मुझे बतायें। मैं रुक्मी के मुँह पर ही उसे दोहराऊँगी!"

रुक्मिणी मानो स्वप्न देख रही थी। उसने देखा कि घनश्याम वर्ण का वह तरुण रुक्मी को पराजित कर रहा है, जरासंध के प्राण बचा रहा है, शृगालव वासुदेव का वध करता है, आचार्यों को मुक्ति दिलाता है, शैव्या को बहन के रूप में स्वीकार करता है। उसे शैव्या से ईर्ष्या हुई। कृष्ण के साथ बात करने का भी अवसर उसे तो नहीं मिला था। लोग जिसकी चर्चा करते थकते नहीं, उस कृष्ण की मधुर मुस्कान उसने कहाँ जी भर पायी है? फिर भी दिन-रात कृष्ण का ही विचार उसके चित्त में समाया रहता है, पल भर के लिए भी वह उन्हें भूल नहीं पाती!

परन्तु वह तो मात्र एक ग्वाला है, अधिक-से-अधिक यादव शाखा के नायक का पुत्र! और वह स्वयं एक राजकुमारी है। इस घनश्याम वर्ण के युवक के साथ विवाह करने का स्वप्न भी वह कैसे देख सकती है? उसके लिए तो चेदि का राजकुमार शिशुपाल ही है। स्वयंवर की योजना होगी, जरासंध एक नाटक की रचना कर देगा, शिशुपाल कोई पराक्रम कर दिखा-

येगा, स्पर्धा में कोई आयेगा नहीं और शिशुपाल वरश्रेष्ठ सिद्ध होगा। इस स्वयंवर में तो मात्र राजा ही आमंत्रित होंगे न! बाजार में बिकते पशु की तरह उसे पकड़कर कोई ले जायेगा। राजकुमारी होने के बदले में ग्वालिन बनकर ही जन्म लेती तो! उसने सोचा।

जरासंध और अन्य राजागण अपने-अपने राज्य में जाने के लिए विदा हुए, श्वेतकेतु वहीं रुक गया। भीष्मक ने आज्ञा की कि विदर्भ के नवा सेनापति को आचार्य श्वेतकेतु शस्त्रविद्या सिखायेंगे। भीष्मक और रुक्मी को भी यह विचार पसन्द आया। श्वेतकेतु ने कुण्डिनपुर में आश्रम स्थापित करने का निर्णय किया।

रुक्मिणी ने आचार्य श्वेतकेतु का [illegible] परिचय प्राप्त किया। श्वेतकेतु ने फिर से कृष्ण की पराक्रम-कथा कही और बताया कि यदि कृष्ण बीच में न पड़ते तो रुक्मी और जरासंध दोनों के ही प्राण नहीं बचते। सुव्रता का रोष नियंत्रित न रह सका। एक दिन जब रुक्मी गोमान्तक के युद्ध में अपने पराक्रम की डींगें हाँकने लगा तो सुव्रता ने साफ कह दिया "यह झूठ है— तुमको तो कृष्ण ने जीवनदान दिया। उस वीर पुरुष के प्रति इतने अकृतज्ञ मत बनो और जरासंध की पोती के साथ विवाह करने का विचार छोड दो।' घर में कलह छिड गया—पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे से बोलते भी नहीं।

प्रवासी, यात्रीगण, भटकते हुए साधु, यज्ञयागादि के निमित्त स्थान-स्थान पर जाते ब्राह्मण, गोमान्तक की लड़ाई में भाग लेनेवाले और वहाँ से लौटे हुए सैनिक—सभी कृष्ण के पराक्रम की कथा गाँव-गाँव, नगर-नगर में फैला रहे थे। सच्चे वासुदेव का उदय हुआ है। इस वासुदेव ने जंगली गरुडों को सम्स्कार सम्पन्न किया, दलित यादवों का उद्धार किया, गोमान्तक की रक्षा करने समुद्र को आज्ञा दी, अपने प्रभाव से जरासंध को भगाया, शृगालव 'वासुदेव' का वध किया और आचार्यों का 'नर्क' में से उद्धार किया।

आग की तरह यह खबर फैलती गयी और कर्णोपकर्ण प्रसारित बातों में अनेक चमत्कार भी जोड दिये गये। कुंडिनपुर में भी ये बातें पहुँची। प्रजाजनों ने यह खबर बडे चाव से सुनी-सुनायी कि राजकुमार रुक्मी किस अपमानित दशा में पहुँच गया था और उसे जीवनदान किस प्रकार मिला। कुंडिनपुर के राजमहल में रुक्मिणी हर्ष से नाच उठी। अब उसका मन इस

भगवान मे ही रम गया था। श्वेतकेतु से वह बारबार कृष्ण की बाते सुनती। कृष्ण को उनके साथी प्राणपण से चाहते थे, यह सुनकर उसे परम सतोष का अनुभव होता।

रुक्मिणी अपने राजवश पर शाप बरसाती। यदि उसका जन्म राजकुमारी के रूप मे न होता तो कितना अच्छा होता तो वह त्रिवक्रा की तरह उनके चरणो मे गिर पड़ती और उनकी देवी बन जाती। "मै ग्वालिन ही क्यो न हुई ?" वह कई बार सोचती। राजमहल की अटारी मे बैठकर वह कई बार बाहर चरती गायो को देखती रहती, मानो उनसे पूछ रही हो कि गोपाल की वधू कैसे बना जाय !

रुक्मी शिशुपाल से मिलने चेदि गया। रुक्मिणी समझ गयी कि वह उसी की शादी तय करने गया है। जब वह लौटा तो दरबारी विशेष रूप से पसन्द किये गये राजाओ को यह सदेश देने निकल पड़े कि राजा भीष्मक की पुत्री का स्वयवर मृगशीर्ष के साथ जिस पूर्णिमा को पूर्णचन्द्र की प्रतीति होती है, उस दिन आयोजित किया गया है।

रुक्मिणी के हृदय मे कुछ आत्मस्फुरणा हुई। जब उसका भाई कुडिनपुर लौटा तो उसने पिता तथा विश्वसनीय अधिकारियो के समक्ष उसकी भर्त्सना की। उसे कायर कहा और जरासध की कूटनीति का प्यादा बता कर बोली, "क्या तू अपनी बहन का चेदि के राजकुमार के साथ सौदा कर चक्रवर्ती की पौत्री प्राप्त करना चाहता है ?" उसने आँसू बहाये, बाल बिखेर लिये और प्रतिहारियो पर अकारण गुस्सा किया। यदि रुक्मी ने उसे शिशुपाल के साथ विवाह करने पर मजबूर किया तो वह आत्महत्या करेगी। यह धमकी भी उसने दी।

श्वेतकेतु के साथ उसने महत्त्वपूर्ण मत्रणा की और फिर राजमहल के एकात कक्ष मे जाकर बैठ गयी और किसी से भी मिलने की मनाही कर दी। पर, वहाँ भी एक बात का विस्मरण वह न कर सकी। सतत यही विचार उसके मन मे उठता रहता, 'मैं एक साथ ग्वालिन और देवी कैसे बन सकती हूँ ?'

थोड़े दिन बाद आचार्य श्वेतकेतु मथुरा गये। करवीरपुर की राजकुमारी से उनके विवाह की सधि निश्चित होनी थी। यह अर्धसत्य था। श्वेतकेतु के मन से शैव्या अभी दूर नही हुई थी।

अल्पकाल मे ही राजपरिवार की बाते सब जगह फैल गयी। नगर

भर में चर्चा होने लगी कि रुक्मी को जरासंध की पौत्री से विवाह करना है, इसलिए वह अपनी बहन को जबर्दस्ती शिशुपाल के हाथ में सौंप रहा है। रुक्मिणी को यह सम्बन्ध स्वीकार नहीं, इसलिए उसे महल में बन्द कर दिया गया है। जरासंध के प्रति वैसे ही विदर्भ की जनता में रोष था, रुक्मी के बर्ताव से वह और भी भड़क उठा। रुक्मी और उसके साथियों ने इन बातों का विरोध यह कह कर किया कि ये सब अफवाहें हैं, इनमें तथ्य नहीं! परन्तु लोगों के मन में जो बात बैठ गयी थी, उसे हटाया नहीं जा सकता था।

२५

रेवती

करवीरपुर से कृष्ण के साथ मथुरा जानेवाला दल काफी बड़ा हो गया था। बैलगाड़ियाँ, अनुचर तथा आवश्यक सामग्री के साथ-साथ रानी पद्मावती ने आग्रह कर कृष्ण को जो बहुत बड़ी स्वर्णराशि तथा तांबे के भालों और तलवारों से सज्जित छब्बीस घुड़सवार भेंट स्वरूप दिये थे, वे भी उसमें थे। कृष्ण, बलराम, दामघोष, शैव्या तथा उसकी दासियों इत्यादि की सवारी के लिए रथ तो थे ही। उद्धव को इस दल का नेतृत्व-भार सौंपा गया। वह घोड़े पर सवार था।

रानी, बाल-राजा शक्रदेव, नये गुरु तथा सेनाध्यक्ष पुनर्दत्त तथा करवीरपुर के नागरिकों ने अश्रुपूर्ण नयनों से उनको विदा दी। पद्मावती ने कृष्ण और बलराम को आशीर्वाद दिये। बाल-राजा ने उनको प्रणाम किया। पुनर्दत्त गले मिला। मात्र शैव्या ही पाषाणवत् खड़ी रही। रानी पद्मावती को उसने हाथ भी नहीं जोड़े सभी के लिए उसके मन में तिरस्कार और धिक्कार था। वृद्ध दामघोष ने, विदा देने जो भी लोग आये थे, उन सबको आशिष दिया।

युवक गरुड़ ने कृष्ण को साष्टांग दंडवत् प्रणाम किया। वह इस सब

मे स्वय सम्मिलित होना चाहता था, परन्तु गोमानक मे उसके पिता बीमार पड़े थे, इसलिए वहाँ जाना बहुत जरूरी था। अपने पिता के स्थान पर अब वही गरुडो का मुखिया होने वाला था। वहाँ सभी उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

ब्राह्मण वेदमन्त्रो का गान कर रहे थे। योग्य शकुन होते ही सब की यात्रा प्रारम्भ हो गयी।

सदेशवाहको ने आगे बढकर मार्ग मे सभी को अग्रिम सूचना दी। जरासध की पराजय किस प्रकार हुई, शृगलव का मस्तक क्यो छेदा गया, गोमातक की रक्षा कैसे हुई, आचार्यों को नर्क' मे से किस प्रकार उबारा गया और शक्रदेव का राज्यारोहण किस भाँति हुआ, ये सब समाचार जान कर लोगो ने कृष्ण और बलराम दोनो भाइयो के, विशेषकर कृष्ण के विषय मे, भाँति-भाँति की कल्पनाएँ की। कृष्ण के बारे मे तो वे वर्षोसे अनेक दन्तकथाए सुन रहे थे। कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाया, कालिया नाग का दमन किया, त्रिवक्रा के विकार ठीक किये, पागल हाथी कुवलयपीड को वश मे किया, कस और चाणर जैसे वीरो का वध किया, और गोमातक की रक्षा के लिए समुद्र तक को उन्होने आज्ञा दी। इद्र के वज्र से भी अधिक शक्तिशाली और सूर्य के समान तेजस्वी शस्त्र का उपयोग कर उन्होने शृगलव का मस्तक छेद दिया। यह खबर आग की तरह चारो ओर फैल गयी। इन खबरो मे चमत्कार के अश जोडे गये और सभी को लगा कि मानवजाति का उद्धार करने स्वय भगवान ने अवतार लिया है।

अत कृष्ण और उनके साथियो को देखने के लिए मार्ग भर मे अपार भीड का उमड़ना स्वाभाविक ही था। स्त्री-पुरुष-बालक दूर-दूर से गाडियो मे या पैदल आ-आकर जिधर से कृष्ण गुजरने वाले होते, वहाँ आकर मार्ग मे पहले से ही प्रतीक्षा मे बैठ जाते। खाने-पीने की सामग्री वह अपने साथ ही ले आते अथवा वृक्षो के नीचे वही कुछ बनाते। कृष्ण और बलराम अपने दलसहित ज्यो ही आते दिखायी पडते कि सभी लोग उनके दर्शन करने दौड़ पड़ते। घनश्याम वर्ण के कृष्ण को देखकर तो वे साष्टाग प्रणाम करते और उनकी चरणरज लेकर जय-जयकार करते।

लोगों ने कृष्ण की बाँकी छवि, मोहक मुस्कान, उनकी ममताभरी आँखें और आशिष देने के लिए उनके उठे हुए कमलहस्त देखे और उनका सुन्दर बदन, पीतवसन, पुष्पमाला, मुकुट पर शोभायमान मोरपख उनके

हृदय में सदा के लिए बस गये। बालक पुष्पों की वृष्टि करते और आनन्दित हो जयनाद करते। कृष्ण किसी के मस्तक पर हाथ रखते तो प्यार से किसी का गाल छूते। युवतियाँ सस्मितवदन कृष्ण को प्रशंसा-भाव से देखतीं।

संघ अवन्ती की ओर जैसे-जैसे बढ़ा, वैसे-वैसे दामघोष यह देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए कि विविध क्षेत्रों में कृष्ण के प्रति कितना उत्साह है। प्रातःकाल कृष्ण आचार्यों के साथ ही जग पड़ते, स्नान कर अग्नि को आहुति देते, आचार्यों के स्वर में स्वर मिलाकर वेद की ऋचाओं का गान करते। चेदिराज मंत्रमुग्ध हो सुनते। उसके बाद कृष्ण शिकार को जाते अथवा शस्त्राभ्यास में लग जाते। वे फिर आगन्तुकों से मिलते अथवा अश्वपालों को अश्वों की देखभाल करने में सहायता करते। पशुओं से भी उन्हें उतना ही प्रेम था, जितना अन्य प्राणियों से।

सूर्य के मध्याह्न में पहुँचने पर कृष्ण फिर आचार्यों के साथ मध्याह्न संध्याविधि में भाग लेते। फिर सबके साथ भोजन करते और उसके उपरान्त मिलने के लिए आये हुए लोगों से बातचीत करते या कभी-कभी दामघोष और बलराम के साथ स्त्राचार्य से धर्मविषयक व्याख्यान सुनते। नीति और राजनीति के बारे में गंभीर प्रश्न पूछते।

दोपहर बाद फिर शास्त्राभ्यास होता। संध्यास्नान, प्रार्थना और भोजन के बाद रात्रि में वृक्षों की छाया तले सोने जाने से पहले वे आचार्यों को प्रणाम करते। उनके एक ओर बलराम तथा दूसरी ओर उद्धव सोते थे। दामघोष कृष्ण के अधिकाधिक निकट आते गये और कृष्ण के स्वरूप को अच्छी तरह समझने लगे। उनकी शक्ति अपार थी और उनकी तेजस्वी दृष्टि प्रत्येक परिस्थिति में विशिष्ट रीति से मार्ग ढूँढ लेती, उनके वर्तन की ऊष्मा अपरिचित को भी अपने साथ एकात्मक कर लेती थी।

उद्धव की देखभाल में यह संघ धीरे-धीरे उज्जयिनी पहुँचा। गुरु सांदीपनि, राजा जयसेन और उनके पुत्र विन्द-अनुविन्द कृष्ण-बलराम और राजा दामघोष का स्वागत करने आये। अनुविन्द कुंडिनपुर से लौटा था, और अब वास्तविकता को समझने लगा था। अब वह जरासंध के जादू से मुक्त हो चुका था और पुरानी मित्रता को याद कर कृष्ण ने उसका वध नहीं किया, इसके लिए कृतज्ञ था।

दूसरे दिन उद्धव सहित दोनों भाइयों ने गुरु के आश्रम में एक दिन

बिताने का निश्चय किया। तीन वर्ष पहले जब कृष्ण पुनर्दत्त को लौटा लायें थे, तब वे वहाँ गये थे। उद्धव को आगे के प्रवास की तैयारी करनी थी, फिर भी कृष्ण ने उसे अपने साथ चलने का आग्रह किया। गुरुदेव ने अपने शिष्यों की सभी बातो को सुना। उनका हृदय आनन्द और गर्व में छलक उठा। गुरु की और कौन-सी कामना हो सकती है सिवाय इसके कि उनके शिष्य अपनी आकाक्षा पूर्ण करे। जिस नम्रता से अपनी सिद्धियों को कृष्ण लघु दिखा रहे थे, यह देखते हुए तो इस शिष्य के चरणों मे प्रणाम करने का गुरुदेव का मन हुआ।

बलराम ने भी उत्साह से जरासध के साथ हुए अपने द्वद्व-युद्ध की चर्चा की। अपने साहस की बात करते समय उनका मन उत्साह से भर जाता था। वे मुक्त रूप से हँस रहे थे और विनोद तथा मजाक भी कर लेते थे। बलराम को इस प्रसन्नता मे एक ही कमी लग रही थी—यहाँ अमृतरस नही मिल रहा था।

बलराम जब बाते कर रहे थे, तब दो युवतियाँ जलपान लेकर आयी। उनमे से एक नाजुक और रमणीय थी। दूसरी ऊँचे कद की, कचनवर्णी और स्नायवद्ध होने पर भी अतीव सुन्दरी लगती थी। उसकी विशाल आँखो मे अपूर्व तेज था। गति मे मोहकता थी। बलराम आश्चर्यचकित हो उसी की ओर देख रहे थे। उनका वाक्य अधूरा रह गया। सादीपनि यह देखकर हँस पडे। उन्होने कहा, "वसतिका को तो तुम पहचानते हो न? यह श्वेतकेतु की बहन है। और यह दूसरी है रेवती। यह मेरी उत्तम शिष्या है। मेरे सभी शिष्यो मे इसके जैसा युद्ध करने मे और कोई प्रवीण नही। घुडसवारी भी यह सबसे अच्छी करती है।"

बलराम ने कोई उत्तर नही दिया। जब तक रेवती वहाँ से उठ न गयी, तब तक उनकी दृष्टि भी बराबर उसी पर लगी रही। अत मे कृष्ण बलराम की मदद को आये। उन्होने पूछा, "ये रेवती कौन है? शस्त्रविद्या की शिक्षा यह क्यो ले रही है?"

"कृष्ण, रेवती की कथा बडी करुण है। प्रभास तीर्थ के पास कुश-स्थली की चर्चा तुमने सुनी है न? वह सागर किनारे पर स्थित है और विदेशों से उसका बहुत बडा व्यापार होता है। वर्षों पहले पुण्यजन राक्षसो ने कुशस्थली पर आक्रमण किया था। उन्होने सारे नगर मे आग लगा दी। कुशस्थली का राजा कुकुद्मीन वहाँ से भाग छूटा।

"राजा कुकुद्मीन की दशा अत्यन्त करुण थी। उसके तीन भाई और सात पुत्र रणक्षेत्र में मारे गये, उसके परिवार की स्त्रियों की अपकीर्ति हुई और उनकी बड़ी क्रूरता से हत्या की गयी। उस जलते हुए शहर से वह अपनी बालपुत्री और कुछ विश्वसनीय अनुचरों को लेकर भागा और पहाड़ियों में जा छिपा," सांदीपनि ने बताया।

बलराम पूरे ध्यान से यह बात सुन रहे थे। वे अभी रेवती की सुपुष्ट और सुन्दर देह को भूल नहीं पाये थे। गुरुदेव ने आगे कहा, "परन्तु कुकुद्मीन दृढ़ निश्चय और मनोबल का आदमी था। उसने सौगंध ली कि वह कुशस्थली वापस लेगा ही। सहायता पाने के लिए वह स्थान-स्थान पर भटका, परन्तु किसी ने उसकी सहायता नहीं की। उसके अनुचर मारे गये। जो बचे, वे वृद्ध होने लगे। उसके पास कुछ भी साधन नहीं थे। वह क्षत्रियों के प्राचीन कुल का है, अभी जो आर्य राजा है, उनके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं।

"कुकुद्मीन हताश हुआ, परन्तु अभी भी वह अपना सर झुकाने के लिए तैयार नहीं था। बदला लेने की प्रतिज्ञा की। उसकी एकमात्र संपत्ति थी उसकी पुत्री और इस पुत्री को सुदृढ़ और पराक्रमी बनाने की उसकी चाह थी। अच्छे-अच्छे युवक भी जिससे थक जायें, ऐसा कठोर परिश्रम इस लड़की ने किया। कुकुद्मीन उसे शूर्पारक ले गया और वहाँ भगवान परशुराम के पास जाकर उसने प्रार्थना की कि मेरी पुत्री को वैसी ही शस्त्रविद्या सिखाने की कृपा करें, जैसी पुरुषों को दी जाती है। वहाँ शिक्षा प्राप्त कर वह भगवान की आज्ञानुसार शिक्षा के अंतिम वर्ष बिताने यहाँ चली आयी। भगवान ने मेरे प्रति औदार्य दिखाकर शिक्षा के अंतिम वर्ष यहाँ बिताने की रेवती को आज्ञा दी। रेवती और उसके पिता अब यहाँ रहते हैं। रेवती की शिक्षा अब सम्पूर्ण हुई है। कुकुद्मीन की यही एकमात्र आशा है।"

"यदि ये कुशस्थली फिर से प्राप्त नहीं कर सके तो?"

"तो पिता और पुत्री दोनों ने अग्नि में आत्मसमर्पण का निर्णय किया है।"

"हे भगवान! यह पिता तो बड़े भयंकर होने चाहिए। अपनी पुत्री का इस प्रकार बलिदान वह कैसे कर सकते हैं?"

सांदीपनि ने कहा, "पुत्री ने स्वयं ही प्रतिज्ञा की है कि या तो वह

कुशस्थली विजय करेगी अथवा मृत्यु को प्राप्त होगी। परन्तु मुझे विश्वास है कि ये पराक्रमी पिता-पुत्री दुष्ट पुण्यजनो पर विजय प्राप्त कर सकेंगे।"

"राजा कुकुद्मीन से हम मिल सकते है," कृष्ण ने पूछा।

"हाँ, मै तुम्हे उनके पास ले जाऊँगा। वह शिप्रा-तट पर एकात गुफा मे रहते है। पर एक बात मे सावधान किये देता हूँ कि वह अपनी पुत्री के सिवाय और किसी से मिलना-जुलना पसद नही करते,' सादीपनि ने कहा।

२६

बलराम की प्रतिज्ञा

राजा कुकुद्मीन बलराम से भी ऊँचे कद के व्यक्ति थे। उनके चेहरे पर विषाद की रेखाएँ स्पष्टत अकित थी। जब गुरु सादीपनि, बलराम और कृष्ण ने उनकी गुफा मे प्रवेश किया, तब वह किसी रेगिस्तान मे युगो की आँधियो से टक्कर लेते एक पुराने वृक्ष की तरह अचल बैठे थे। सादीपनि ने जब अपने दोनो शिष्यो का परिचय उनसे कराया, तब भी वह वैसे ही बैठे रहे और एकटक दोनो भाइयो को देखते रहे। ऐसा लगता था मानो मानवजाति मे अब उन्हे कोई रुचि नही रही।

सान्दीपनि ने इन दोनो भाइयो के पराक्रमो की कथा कुकुद्मीन से कही। वृद्ध राजा ने जरा भी विक्षेप किये बिना उसे सुना। किसी असाधारण पराक्रम का उल्लेख होता, तब उनकी आँखे अग्नि के समान चमक उठतीं।

इतने मे कुकुद्मीन की पुत्री रेवती अन्दर आयी और पिता की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगी। उसकी आँखें अनन्य आदर भाव से पिता पर स्थिर थी। बलराम उसके साथ दृष्टि मिलाने का निष्फल प्रयास कर रहे थे। बलराम मे हुए इस परिवर्तन से कृष्ण अपरिचित नही थे। अब तक बलराम स्त्रियो के आकर्षण से सर्वथा मुक्त थे। नाजुक रमणियो मे

उन्हे कोई रस न था। सुन्दर युवतियों के साथ भी वे केवल वक्त काटने के लिए रहते थे। उनमे कोई स्थायी रस बलराम के हृदय मे उत्पन्न नही हुआ। कभी-कभी कृष्ण को प्रतीत होता कि उनके बड़े भाई इसीलिए हमेशा उदास रहते है, यद्यपि बलराम ने अपनी यह उदासी प्रकट नही की थी। शायद अपनी भावनाओं का इतना सूक्ष्म विवेचन करने की उनकी प्रवृत्ति ही नही थी। परन्तु कृष्ण इस उदासी को लक्ष्य कर सके थे।

पहली ही बार बलराम ने ऊँचे कद की एक अप्रतिम सौन्दर्यवाली नारी देखी थी। उस नारी की ओर बलराम आकर्षित हुए, यह कृष्ण से छिपा न रहा। इससे पहले बलराम ने कभी किसी युवती के साथ दृष्टि मिलाने का प्रयत्न नही किया था। ऐसा लगता था कि अब उन्हे भी कामबाण लगा है।

बहुत दिनो से कृष्ण सोच रहे थे कि सभी प्रकार विजय, पराक्रम, पूजा और लोकप्रियता उन्हे ही मिलती रही है। बलराम का हृदय इतना उदार था कि उन्हे कभी इससे ईर्ष्या नही हुई, बल्कि वे तो यही चाहते थे कि सारा यश कृष्ण को ही मिले। फिर भी यह तो सच ही था कि कृष्ण के पराक्रमो की कीर्तिप्रभा मे बलराम फीके पड़ जाते थे। इसीलिए कृष्ण एक ऐसे अवसर की प्रतीक्षा मे थे, जिसमे बलराम महापराक्रमशाली सिद्ध हो और अपना गौरव तथा महत्त्व समझे।

कृष्ण ने कुकुद्मीन से कहा, "महाराज, कल गुरुदेव के पूर्ण शिक्षा प्राप्त शिष्यो के बीच गदायुद्ध की स्पर्धा का आयोजन हुआ है। मुझे आशा है कि आपकी पुत्री रेवती भी उसमे भाग लेगी। गुरुदेव रेवती की खूब प्रशसा करते है।"

"रेवती स्पर्धा मे भाग नही लेगी। वह तो समय आने पर ही युद्ध मे अपना कौशल दिखायेगी!" कुकुद्मीन ने दृढता से कहा। एक-एक शब्द उनके मुंह से इस प्रकार निकलता था, मानो बोलने की आदत ही उन्हे नही रही।

"मेरे बड़े भाई गदायुद्ध मे निष्णात् है। वे शायद रेवती को कुछ नवीन युक्तियाँ सिखा सकेंगे," कृष्ण ने कहा।

बलराम विचलित हो उठे, परन्तु शान्त रहे और प्रशसायुक्त दृष्टि से रेवती की ओर देखते रहे।

"रेवती, बेटा, तो फिर तू भी इस स्पर्धा मे भाग ले। ये युक्तियाँ

हमारे लिए उपयोगी भी सिद्ध हो सकती है," कुकुद्मीन ने कहा।

"जैसी आज्ञा, पिताजी!" रेवती ने कहा।

कृष्ण और बलराम अपने डेरे पर लौटे। मार्ग में कृष्ण ने कहा, "बड़े भइया, राजा यदि अपना सर्वस्व गवा दे, तो उनकी स्थिति करुणाजनक ही कही जायेगी। पर यह राजा तो अद्भुत है। इसे कोई आशा नहीं, केवल स्पर्धा है। और, इन पिता-पुत्री के बीच जिस मूक और ममतापूर्ण अनुबन्ध की सृष्टि हुई है, वह तो अनुपम है। तुमने उसे लक्ष्य किया? क्यों है न बहुत सुन्दर?" कृष्ण ने पूछा।

"अरेरे!" बलराम ने निःश्वास लेकर कहा, "यह बेचारी नन्ही-सी नाजुक लड़की किस प्रकार कुशस्थली पर विजय प्राप्त कर सकेगी!"

कृष्ण ने मुस्कराकर कहा, "मैं सोचता हूँ कि यदि हम इनकी सहायता करें तो ठीक रहेगा। परन्तु, दुर्भाग्यवश हमारा मथुरा जाना भी जरूरी है, वहाँ सारा प्रबन्ध करना है। ऐसा करो न भइया, कि तुम मथुरा चले जाओ और मैं सौराष्ट्र जाता हूँ।" कृष्ण ने कहा।

बलराम की आँखें उत्साह से भर गयी। वे बोल उठे, "मथुरा में मुझसे अधिक तुम्हारी जरूरत है। मैं ही कुकुद्मीन की सहायता करने जाऊँ तो अधिक अच्छा रहेगा।"

"नही, नही बड़े भइया, तुम्हारे बिना मै क्या कर सकूँगा? मथुरा मे मै अकेला बेकार ही सिद्ध होऊँगा!" कृष्ण ने कहा।

"अब इतने विनम्र न बनो, कृष्ण! बल्कि मुझे ही यह कहना चाहिए कि तुम्हारे बिना मैं क्या कर सकूँगा?"

कृष्ण ने दीर्घ श्वास लेकर कहा, "आवश्यकता पड़ने पर आश्रय लेने के लिए यदि कुशस्थली जैसा स्थान हो, तो हमें इतनी दूर गोमान्तक जाने की जरूरत ही क्यों रहे?"

"ठीक तो है! कुशस्थली राजा कुकुद्मीन के हाथ मे हो तो वहाँ हमारा स्वागत निश्चय ही होगा," बलराम ने कहा।

"हाँ, बड़े भइया, यदि आप मदद कर सकें तो कुकुद्मीन फिर से कुशस्थली प्राप्त करने में अवश्य सफल होगा। परन्तु मैं आपको किस प्रकार जाने दूं? आप के बिना मेरा क्या होगा।"

बलराम ने कृष्ण की पीठ पर धौल जमाते हुए कहा, "चिन्ता किस बात की कृष्ण? अब तुम्हे मेरे बिना भी काम चला लेना सीखना चाहिए।"

बलराम इस समय बड़ी प्रसन्न मुद्रा में थे।

कृष्ण ने कुशस्थली जीतने की योजना पर विचार किया। उनको उद्धव की याद आयी। इस समय इस प्रिय सखा का विचित्र बर्ताव उनके मन में समस्या बन रहा था। इस बर्ताव का क्या रहस्य है, यह उनकी समझ में नहीं आया। उन्होंने उद्धव से ही पूछ लेने का निर्णय किया। एक बात तो निश्चित थी कि बलराम की तरह उद्धव को भी वैयक्तिक सिद्धि में प्राप्त श्रद्धा के बल की आवश्यकता थी, और यदि उद्धव बलराम के साथ हो तो दोनों कुशस्थली पर अवश्य विजय प्राप्त कर सकेंगे।

"भइया, यदि तुम जाओ तो बड़ा उत्तम होगा। तुम अवश्य विजयी बनोगे। पर मैं यदि तुम्हारे स्थान पर होता, तो इसे अवसर पर उद्धव को जरूर अपने साथ रखता। वह पंचजन्य जहाज के नाविक भिखू तथा दूसरे लोगों से भली प्रकार से परिचित है। ये लोग उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। कुशस्थली बन्दरगाह है और उसे प्राप्त करने में जहाज की जरूरत पड़ेगी ही।" कृष्ण ने कहा।

दूसरे दिन सान्दीपनि के पूर्ण शिक्षित शिष्यों के बीच स्पर्धा हुई। यह स्पर्धा बल की नहीं, कुशलता की थी। कृष्ण प्रथम दौर के बाद स्पर्धा से निवृत्त हो गये। बलराम भारी उत्साहित थे। रेवती का मुकाबला करने की घड़ी जब आयी, तब उनका हृदय जोरों से धड़कने लगा। सुवेष्टित व्याघ्र-चर्म में रेवती शक्तिशाली बाघिन की तरह लग रही थी।

रेवती ने बड़े साहस के साथ बलराम का सामना किया। उसके पास अशेष आत्मबल था, उसके स्नायु सुदृढ़ थे। बलराम को तुरन्त ही लगा कि रेवती गदायुद्ध में अत्यंत कुशल है। प्रारम्भ में तो उन्होंने अपनी गदा इस प्रकार सम्हाल-सम्हाल कर चलायी कि मानो रेवती के बल का अन्दाज लगा रहे हों। परन्तु जब उन्होंने देखा कि प्रतिस्पर्धी बराबर टक्कर ले सकती है, तब उन्होंने गदा को गजब की निपुणता के साथ घुमाना शुरू किया। एक कुशल चाल चलकर उन्होंने रेवती की गदा को हवा में उछाल दिया।

बलराम के इस कौशल को देखकर सभी ओर से 'साधु-साधु' की पुकार होने लगी। अभी तक रेवती गुरुदेव के शिष्यों में अग्रस्थान पर रही थी। अपनी इस पराजय पर वह रो पड़ी और दोनों हाथों में मुँह छिपाकर दौड़ गयी।

बलराम क्षण भर तो शान्त खडे रहे। उन्होने रेवती को जाते हुए देखा। इस नवशिक्षित नारी पर स्वय को सर्वोपरि बनाने मे उन्होने जो शीघ्रता की, इसका उन्हे पश्चात्ताप हुआ। कृष्ण उनके पास आये और बोले, "भइया, ऐसे जड भरत की तरह क्या खडे हो? उसके पास जाओ और कहो कि मै तो गदायुद्ध की एक नयी चाल तुम्हे सिखा रहा था। उसे ढाढस बंधाओ, यह अवसर मत चूको।"

कृष्ण के वचनो से प्रेरित होकर बलराम रेवती के पीछे गये। परन्तु इस विचित्र परिस्थिति मे किस प्रकार वर्तन करे, यह उनकी समझ मे न आया। उन्हे लगा कि कुकुद्मीन की मैत्री प्राप्त करने का अवसर उन्होने गँवा दिया। वे गुफा मे गये। रेवती पिता की गोद मे मस्तक रखकर फफक-फफककर रो रही थी। वह कह रही थी, "पिताजी, मै बिल्कुल निकम्मी सिद्ध हुई! आपका सारा परिश्रम व्यर्थ चला गया।" कुकुद्मीन की आँखो मे आँसू नही थे। वह रेवती के बालो मे हाथ फेर रहे थे।

बलराम गुफा के द्वार पर जाकर ठिठक गये। इस मायूस वातावरण मे किस प्रकार प्रवेश करे, इसी की चिन्ता उन्हे सता रही थी। "महाराज मुझे क्षमा करे!" अन्तत उन्होने मौन तोडा।

"चले जाओ यहाँ से!" कुकुद्मीन ने भारी आवाज मे कहा।

"रेवती भली प्रकार लड सकती है," बलराम ने कहा।

"मैं कोमल कली नही!" रेवती ने पिता की गोद मे से मस्तक उठाकर कहा। उसकी अश्रुपूर्ण आँखो मे से भी मानो अंगारे बरस रहे थे। बलराम की समझ मे नही आया कि वह क्या उत्तर दे। वे अवाक् खडे रहे।

"चले जाओ यहाँ से!" कुकुद्मीन ने फिर कहा।

अचानक बलराम अपना सयम खो बैठा। उसका असली स्वभाव फिर प्रकट हो गया। उन्होने कुकुद्मीन से भी अधिक भारी आवाज मे कहा, "अब आप चिल्लाएँ नही! मैं यहाँ केवल धन्यवाद देने नही आया। आपकी पुत्री युद्ध मे कुशल है, परन्तु वह आपके लिए कुशस्थली फिर से प्राप्त करने मे अकेली समर्थ नही।"

गुस्से में कुकुद्मीन की भौहें सिकुड गयी।

बलराम बोले, "आप सुन रहे हैं न! युद्ध की आपकी रीति पुरानी पड चुकी है। आज उस रीति मे नही लडा जाता, न उससे कुशस्थली

पर विजय प्राप्त की जा सकती है। अब दुनिया बदल चुकी है।"

"तुम यहाँ से चले जाओ!" ककुद्मीन ने फिर कहा। रेवती भी घृणापूर्ण नेत्रों से बलराम की ओर देख रही थी। उसका सारा शरीर क्रोध से थर-थर काँप रहा था।

"मैं चले जाने के लिए यहाँ नहीं आया", बलराम ने कहा, "मैं आपके साथ चलूँगा और कुशस्थली को आपके लिए फिर से प्राप्त करूँगा। मैं, वसुदेव का पुत्र, परमात्मा को साक्षी रखकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि कुश-स्थली के राजसिंहासन पर फिर से आपको बैठाऊँगा!"

वृद्ध ककुद्मीन बलराम के रोष-भरे चेहरे की ओर देख रहे थे। रेवती की आँखों में एक नयी चमक दिखायी पड़ी।

"सुनिये, मैं आपकी पुत्री को शस्त्रों का कुशल उपयोग करना सिखा-ऊँगा!" बलराम ने सच्चे हृदय और साहसपूर्ण स्वर में कहा, "वह जिस प्रकार लड़ती है, उस प्रकार युद्ध में नहीं लड़ा जाता। मैं उसे लड़ना सिखाऊँगा। कुशस्थली से एक-एक पुण्यजन राक्षस को मैं निकाल बाहर करूँगा। वर्तमान कुशस्थली को भस्मीभूत कर एक नयी कुशस्थली का निर्माण आपके लिए करूँगा। वह इन्द्र की अमरापुरी जैसा नगर होगा। अब फिर आपने यदि मुझसे चले जाने को कहा तो आपको और आपकी पुत्री दोनों को शिप्रा के जल में फेंक दूँगा और आपके बिना भी अकेले अपने बाहुबल से कुशस्थली को जीतकर बता दूँगा। अब कहिये कि मैं यहाँ से अकेला चला जाऊँ कि आप मेरे और उद्धव के साथ सौराष्ट्र चलते हैं?"

रेवती इस प्रचण्डकाय वीर को मुग्ध नयनों से निहार रही थी और यह प्रतीक्षा कर रही थी कि उसके पिता उसे क्या उत्तर देते हैं।

"वसुदेव के पुत्र, देवाधिदेव ने ही तुम्हें मेरे पास भेजा है। चलो चलें!" ककुद्मीन ने कहा। उनकी आँखों में एक नवीन आशा की किरण चमक उठी थी

२७

प्रेम की वेदी

सारी रात कृष्ण उद्धव की चिन्ता करते रहे। उद्धव के साथ ही खेलकर वे बड़े हुए थे, परन्तु इतना उन्मन उन्होंने उद्धव को पहले कभी नहीं देखा था। मितभाषी तो वह अवश्य था, साथ ही सीधा, शान्त और स्नेहशील भी था।

प्रथम रथ में दामघोष, बलराम और कृष्ण बैठे थे। पीछे के रथ में शैव्या और उसकी दासियाँ थी। उसके पीछे के रथों में आचार्य थे। बहुत से आचार्य तो पैदल ही चल रहे थे। उद्धव इस सारे समुदाय का संचालन कर रहा था, इसलिए घोड़े पर सवार था। प्रत्येक रात्रि वह कृष्ण के पास आकर बैठ जाता और उनसे दिनचर्या के विषय में खुलकर बातें करता। प्रवास के आरम्भ में ही कृष्ण को उद्धव में कुछ परिवर्तन दिखायी पड़े, परन्तु स्पष्टतः कुछ समझ में नहीं आया। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वह अधिक गुमसुम रहने लगा। पिछली दो रातों में तो ऐसा लगता था मानो वह कृष्ण से बचने की कोशिश कर रहा है। दिन में भी वह कृष्ण से दूर भागता।

उस रात कृष्ण ने उद्धव को विशेष रूप से मिलने के लिए बुलाया। कुछ देर बातें करने के बाद कृष्ण, बलराम और उद्धव तीनों सो गये। बलराम तो तुरन्त ही निद्रामग्न हो गये। कृष्ण भी सामान्यतः आँखें मूँदते ही निद्राधीन हो जाते थे, परन्तु आज वे जागते रहे। उन्होंने देखा कि उद्धव बेचैनी से करवटें बदल रहा है। कृष्ण उठ बैठे और उद्धव के पास जाकर बड़े प्यार के साथ उन्होंने अपना हाथ उसके कन्धे पर रखा। उद्धव चौंक-कर उठ बैठा। कृष्ण ने उसे अपने आलिंगन में ले लिया।

वृक्ष की शाखाओं में से छनकर आती चाँदनी कई मनोहर प्रतिमानों की रचना कर रही थी।

"उद्धव, मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं। चलो!" कृष्ण ने कहा।

उद्धव खड़ा हो गया और कृष्ण के पीछे-पीछे चला। कृष्ण एक वृक्ष के नीचे बनाये गये मिट्टी के चबूतरे पर जा बैठे। उद्धव को उन्होंने अपनी बगल में बैठाया। और बड़ी देर तक उसके चेहरे की ओर ताकते

रहे। उद्धव अस्वस्थ था, यह बात कृष्ण साफ देख रहे थे।

"भाई, तुम तो आजकल बहुत बदले हुए मालूम होते हो। क्या बात है!" कृष्ण ने मृदु स्वर मे पूछा।

उद्धव चौंका। उसका यह भाव कृष्ण से छिपा न रहा। "मैं बदल गया हूँ? नहीं तो! तुम भूल समझ रहे हो।" उद्धव ने होंठो पर मुस्कराहट लाने का प्रयास किया।

'उद्धव, हमारे बीच कुछ हो गया है। मुझसे कुछ ऐसी-वैसी बात तो नही हुई जिससे तुम्हे बुरा लगा हो?' कृष्ण ने पूछा।

"मुझे बुरा लगे—तुम्हारी किसी बात मे!" उद्धव डूबते हुए मनुष्य की भाँति कृष्ण से लिपट गया। 'तुम्हारे किसी काम से मुझे बुरा नही लग सकता। तुम चाहे कुछ करो, मै बुरा मान ही नही सकता। क्या इसमे भी कोई शका है तुम्हे, कृष्ण?" उसने आतुरता मे पूछा।

"नही उद्धव। परन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम्हे क्या कष्ट है!" कृष्ण ने देखा कि उद्धव के सारे शरीर मे सिहरन दौड गयी। "मुझे बताओ भाई, निसकोच होकर कहो!"

"मैं क्या कहूँ? खुद मेरी समझ मे कुछ नही आता!" उद्धव ने कृष्ण से मुँह फिराकर कहा।

कृष्ण बोले, "मैं तुम्हारी खातिर उसे समझने का प्रयत्न करूँगा। करवीरपुर छोडने के बाद तुममे कुछ परिवर्तन हुआ है। ऐसा कुछ घटा है, जिससे तुम व्याकुल रहते हो।"

"कुछ तो नही हुआ मुझे! मैं तो सदा तुम्हारे साथ ही रहता हूँ न!" उद्धव ने फिर एक बार हँसने का प्रयत्न किया।

कृष्ण मुस्कराये। "यही तो मैं जानना चाहता हू कि हमारे साथ रहते हुए भी तुम्हे यह क्या हो गया है? तुम कभी इतने खोये-खोये से दिखायी नही पडे। कहो उद्धव, मुझसे छिपाने की कोशिश मत करो!" उद्धव को सीने से लगाकर उन्होने कहा।

एक निश्वास लेकर कम्पित स्वर मे उद्धव बोला, "यदि तुम जानना ही चाहते हो तो इतना ही कहूँगा कि जीवन से मै निराश हो गया हूँ। यह ससार छोडकर मैं बद्रीआश्रम मे जाकर रहना चाहता हूँ।" इतना कहकर वह इस प्रकार रुक गया मानो और कुछ कहने के लिए शब्द ढूंढ रहा हो, पर उन्हे पा नही रहा हो।

"सन्यासी क्यो बनना चाहते हो तुम ? हम यहाँ जीवन का समर्थन करने और उसका अतिक्रमण करने के लिए आये है। जीवन का तिरस्कार करने के लिए नही !" कृष्ण ने कहा।

"तुम ऐसा कर सकते हो, क्योंकि तुम भगवान हो तुम्हारा सृजन ही जीवन के अधिष्ठाता के रूप मे हुआ है, परन्तु मेरा नही ! उद्धव ने असहाय होकर कहा।

"जीवन जीने के लिए है। भगवान परशुराम ने भी यही कहा था। और, अब तक तो हम दोनो भली प्रकार ही जीते आये है।" कृष्ण बोले।

"कृष्ण, अब मुझे इस प्रकार जीने मे कोई रुचि नही रही। मेरे मुँह से अधिक कुछ कहलाकर मुझे दुखी मत करो। मैंने अपना निर्णय कर लिया है !" उद्धव ने कहा।

हृदय की अधिक गहराई मे न उतरने के लिए आर्तस्वर उसकी वाणी मे सुनायी पडता था।

"भाई तुम्हारे दुख मे यदि मै भाग लूँ तो इससे तुम्हारा दुख बढेगा नही !" कृष्ण ने कहा। फिर अचानक खडे होकर उन्होने उद्धव के मुख पर अपनी दृष्टि स्थिर कर पूछा, "तुम शैव्या पर मोहित हो गये हो ?"

उद्धव ने कृष्ण के वक्ष मे मुँह छिपाकर कहा, "कृष्ण, यह मत पूछो मुझसे।"

"हूँ ! तो तुम कामदेव के तीर से घायल हुए हो। उद्धव अब मैं तुम्हारी वेदना समझ सकता हूँ," कृष्ण ने समभावपूर्वक कहा, "परन्तु शैव्या ने श्वेतकेतु का वरण किया है। मेरे पास से तुम उसे ले जा भी नही सकते, न उसके बिना रह सकते हो। इसीलिए सन्यासी बनना चाहते हो, क्यो ?"

"नही, कृष्ण, नही !" उद्धव फफक पडा। "मैं पागल हो गया हूँ, मैं पापी हूँ !"

"इस प्रकार अपने-आपको दुखी मत करो मित्र ! तुम्हारी वेदना स्वाभाविक है। कामदेव के तीर जब हम पर चलते है, तब स्त्री अग्नि ज्वाला के समान बन जाती है। वह जिसका स्पर्श करती है, वह सुलग उठता है," कृष्ण ने कहा।

"मैं भी उसी ज्वाला का स्पर्श कर सुलग उठा हूँ। अब मुझे भस्मी-

भूत हो जाना चाहिए। परन्तु तुम मेरी भावना को कभी नही समझ सकोगे, कृष्ण ! गोपियो से तुम प्रेम भी कर सकते हो और एक भी नि श्वास लिये बिना उनका त्याग भी कर सकते हो।"

"उद्धव, तुम भूल कर रहे हो,' कृष्ण ने अस्वस्थ स्वर मे कहा।

"कृष्ण, तुम हमसे बहुत अलग हो,' उद्धव ने नि श्वास लेकर कहा। उसके संकोच का बाँध टूट गया। "तुमने जब पूछा ही है तो तुम्हे साफ-साफ सब-कुछ कह डालना चाहता हूँ। एक दिन तुम्हे सब-कुछ कहना चाहता भी था ! तो आज ही क्यो न कह दूँ ? करवीरपुर छोडने के बाद मुझ पर क्या बीती है, इसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। सोते-जागते शैव्या की अश्रुपूर्ण, सुन्दर आँखे मेरे सामने सतत तैरती रहती हैं। उसे स्वप्न मे भी मैं देखता हूँ। उसका आकर्षण अद्भुत है।" वह कुछ रुका और संकोच से बोला, "जब यह याद आता है कि श्वेतकेतु और शैव्या ने एक दूसरे को वचन दे रखा है, तो ऐसा लगता है, जैसे मैं कोई चोर हूँ।"

"अचानक ये सब हुआ कैसे ?" कृष्ण ने समभाव से पूछा।

"हम लोग जब रवाना हुए तब शैव्या की खबर पूछने मैं उसके पास गया। वह रथ मे बैठी थी। उसका मुँह उसके घुटनो मे छिपा हुआ था। मैंने पूछा, "तुम्हे कुछ चाहिए ? ' उसने अपनी रोषपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा। उसकी आँखें मुझे इतनी अद्भुत लगी कि मै स्तब्ध होकर उन आँखो को, चेहरे को और उसकी सुडौल देह को निहारने लगा। मेरी नस-नस मे आग सुलग उठी—मुझे लगा कि मैं बेहोश हो जाऊँगा !" उद्धव ने कहा।

"कामदेव इसी प्रकार आग भडकाते हैं", कृष्ण ने कहा।

"अब तुम जो भी कहो !" उद्धव ने कहा।

"दासी जो दूध लेकर आयी थी, वह पी लेने के लिए मैंने उसे कहा। उसने दासी के हाथ मे से मिट्टी का पात्र लेकर मुझ पर दे मारा।"

उद्धव सहज ही सकुचा गया। उसने नि श्वास लेकर कहा, "मुझे लगा कि वह किसी प्रकार कुछ खाये या पिये, यह अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए मैं जिद कर वही खडा रहा और दासी को दूसरा पात्र ले आने के लिए कहा। दासी के हाथ से पात्र लेकर मैं स्वय खडा रहा, वह मेरी ओर ताकती रही। मैं हँसता रहा। अन्त मे उसने वह पात्र लेकर मुझसे कहा, "तुम्हारी यही इच्छा है न, कि मैं इसे पी जाऊँ ?" और वह सारा

दूध एक साँस में पी गयी। खाली पात्र दासी को लौटाते हुए, उसने फिर मुझसे कहा, "अब जाओ, ज्यादा तंग मत करो!" मैं चला आया। परन्तु आते वक्त उसने जो दृष्टि मुझ पर डाली, वह मैं अभी तक भूल नहीं सका। इसके बाद तो मैं फिर हमेशा दिन में दो या तीन बार जाकर उसे दूध तथा भोजन पहुँचाता रहता। प्रत्येक बार वह मेरी ओर ताकती, फिर भोजन स्वीकार करती और हाथ जोड़कर मुझे चले जाने को कहती। प्रतिदिन यही होता, और कौन जाने किस प्रकार मेरे पैरों के नीचे से धरती खिसकती मालूम पड़ती। ऐसा लगता, मानो मैं हवा में उड़ रहा हूँ। सभी कुछ धुँधला दिखायी पड़ता—तुम भी .."

कृष्ण समभावपूर्वक हँसे। "आकाश के सुदूर तारे की तरह ही धुँधला लगा हूँगा मैं, क्यों?" उन्होंने मजाक में पूछा।

उद्धव ने मानो यह प्रश्न सुना ही नहीं। उसने कहा, "सोते-जागते उसकी रोषभरी आँखें, क्रोध में तप्त उसका अपूर्व सौन्दर्य मेरी आँखों के सामने तैरता रहता है ."

"अर्थात्, एक आकर्षक बाघिन रोज इस बेचारे, गरीब उद्धव को घुड़की दिखाती रहती है, यही न?" कृष्ण ने विनोद के स्वर में कहा।

"मुझे चिढ़ाओ मत कृष्ण! तुम नहीं जानते कि मेरी स्थिति कैसी विषम है?" उद्धव ने कहा।

"मैं जानता हूँ कि तुमने अपनी नींद खो दी है', कृष्ण ने कहा।

"कई बार मैं आधी रात के बाद जाग पड़ता हूँ, मेरा सारा शरीर कंपमान हो उठता है; मेरी नसों में मानो अग्नि प्रवाहित हो जाती है; मेरे कानों में सतत कोई स्वर गूँजा करता है।" उद्धव ने कहा। और फिर सहज संकोच के स्वर में बोल पड़ा, "मैं उसे देखता हूँ, उसे ही देखा करता हूँ कृष्ण! मेरा अध:पतन हुआ है, अब मुझे कोई नहीं बचा सकता। कभी कभी तो नींद में मुझे ऐसे भयंकर सपने आते हैं, मानो मैं श्वेतकेतु की हत्या कर शैव्या को भगा ले जा रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि तुम स्त्रियों को पशुओं की तरह हर कर ले जाने के हमारे क्षत्रियों के मार्ग का विरोध करते हो।"

"हाँ, इसे अधर्म ही कहा जायेगा", कृष्ण ने कहा। डूबते हुए मनुष्य की भाँति उद्धव कृष्ण से लिपट गया और बोल उठा, "मैं अध:पतित हूँ। वासना, मोह, लोभ और ईर्ष्या की आग में जल रहा हूँ। जब मुझे

ख्याल आया कि मेरा पतन हुआ है, तब मैंने तीव्र आघात का अनुभव किया। जो श्वेतकेतु का है, उसे मै कभी ले नही सकता, परन्तु उसे छोड सकने की स्थिति में भी मैं नही हूँ। इसलिए उत्तम मार्ग यही है कि मैं इस संसार का ही त्याग कर दूँ।"

"उद्धव, बहुत थोडे लोग इस संसार का त्याग कर तपस्वी का जीवन जी सकते है। सभी इतने भाग्यशाली नही है। तुम बद्रीआश्रम जाओगे, तब भी किसी-न-किसी रूप मे शैव्या तुम्हारा पीछा करेगी, वह तुम्हारे एकान्त को नष्ट कर देगी। तुम तपस्वी नही बन सकते—स्त्रियों को भूल भी नही सकते हो" कृष्ण ने कहा।

"मैं स्त्रियो को भूल जाना चाहता हूँ" विशेष कर शैव्या को, नहीं तो मैं पागल हो जाऊँगा। मगर यह किस प्रकार सम्भव है?" उद्धव ने पूछा।

"अपने-आप पर संयम रख कर।"

"किस प्रकार संयम रखूं? यही तो समझ मे नहीं आता," उद्धव ने कहा, "ऐसा मुझे पहले कभी नही हुआ।"

कृष्ण क्षण भर तो शान्त रहे, फिर ममतापूर्ण स्वर मे बोले, "मैंने तुमसे कहा कि जब भी कामदेव का बाण लगता है, तब स्त्रियां अग्नि के समान लगने लगती है। हम इस अग्नि को पडाव पर की धूनी समझ लेते हैं और एक रात की ऊष्मा उससे प्राप्त कर आगे बढना चाहते है। परन्तु यह आग रुकती नहीं है, वह हमारे पैरों के नीचे की घास और मस्तक पर के-वृक्षो को भी प्रज्ज्वलित कर देती है।"

"मैं भी इस आग मे भस्मीभूत हो जाऊँगा," उद्धव ने हताश होकर कहा।

"एक ही रास्ता है—जिससे यह ऊष्मा भी मिलेगी और आग की ज्वालाओं मे जलना भी नही पडेगा," कृष्ण ने कहा।

"यह कहना ही सरल है। परन्तु ऐसा हो क्यों कर सकता है। मै तो निःशेष हो गया हूँ!" उद्धव ने असहाय स्वर मे कहा।

"चेष्टा का त्याग मत करो। क्या तुम सचमुच ही शैव्या की कामना करते हो?" कृष्ण ने पूछा।

"हाँ, परन्तु मै अपने मित्र श्वेतकेतु के साथ विश्वासघात नहीं करना चाहता।"

"तुम किसी भी स्त्री को अपने जीवन मे सलग्न कर सकते हो। मात्र इस रास्ते पर की धूनी को वेदी की पवित्र अग्नि मे पलटना होगा।"

"रास्ते पर की धूनी कैसे ?" उद्धव ने पूछा।

"क्योकि यह आग किस प्रकार प्रकट हुई, यह देखने के लिए तुम रुकते नही। जहाँ तुम ऊष्मा प्राप्त करते हो, वहाँ पहले किसने ऊष्मा प्राप्त की, यह जानने की भी जरूरत नही समझते। उसको छोडकर गये बाद उसका क्या होगा, इसकी भी चिन्ता तुम नही करते। मात्र कुछ क्षणो की ऊष्मा के लोभ मे ही तुम उसे तापते हो। यह भी विचार नही करते कि इसका प्रभाव बाद मे तुम पर क्या होगा, और यह भी इच्छा नही रखते कि वह तुम मे शक्ति प्रेरित करे," कृष्ण ने कहा।

"ओह ?" उद्धव बोल उठा।

"रास्ते पर की धूनी का आकर्षण तो अपने-आप कम हो जायेगा, परन्तु वेदी पर की आजीवन पूजा सदा ऊष्मा देती रहेगी," कृष्ण ने उद्धव के कन्धे पर हाथ रखकर कहा। उनकी आवाज मे सत्ता की, निश्चय की झनकार थी।

"कृष्ण, मेरे साथ इस प्रकार पहेलियो मे बाते मत करो—मुझे साफ-साफ समझाओ", उद्धव ने असहाय होकर कहा।

"तुम शैव्या को चाहते हो न ?"

"हाँ, परन्तु श्वेतकेतु के साथ विश्वासघात कर नही ?" उद्धव ने कहा।

"तो तुम अपने निश्चय पर अडिग रहो। उसके आसपास भक्ति की, यज्ञवेदी की रचना करो। जो भी तुम दे सकते हो उस मूल्यवान वस्तु की यज्ञ मे आहुति दो। इस यज्ञवेदी की ऊष्मा और शक्ति तुम्हे सदा मिलती रहेगी।"

"इस प्रकार तो वह कभी मेरी नही बन सकेगी, कृष्ण!" उद्धव ने कहा।

"उद्धव, यज्ञवेदी सर्वस्व त्याग करनेवाले को ही आशिष देती है। सब-कुछ माँगने वाले को नही।"

"शैव्या मेरी नही हो सकेगी। यह विचार ही मुझे पागल बना देता है," उद्धव ने सर धुनते हुए कहा।

"क्या मैं नही जानता कि शैव्या कितनी अद्भुत स्त्री है ? उसमे वन्य

हरिणी की चचलता है, उसकी शक्ति और भक्ति और भक्ति का पार नहीं। केवल इसी समय वह सारी दुनिया में विरक्त है। उसे जब मैंने पहली बार देखा था तब मैं भी उसकी ओर आकर्षित हुआ था। मैंने उसके आस-पास यज्ञवेदी की रचना की। मेरे जीवन में प्रवेश करनेवाली प्रत्येक स्त्री के साथ मैं यही करता हू। माँ यशोदा, गोपियाँ, विशाखा, राधा, माँ देवकी और त्रिवक्रा—इन सबके आस-पास भी मैंने एक पवित्र प्रेम की वेदी की रचना की है", कृष्ण ने कहा।

यह सब तुम्ही कर सकते हो, मैं नहीं। मैंने तो एकामत्र तुम्हारे ही आस-पास ऐसी भक्ति की वेदी रची थी, आज तो वह भी छिन्न-भिन्न हो गयी है!" उद्धव ने कहा।

"मैं तुम्हे वेदी की रचना करना सिखाऊँगा, उद्धव ' यह विकट नहीं। शैव्या के साथ बीते एक के बाद एक दिनो मे जो हजारो शूले गडी है, उन्हे तुम सहन कर सकते हो ?"

"तुम ऐसा क्यों पूछते हो, कृष्ण ? ये शूले असह्य है। प्रतिदिन मेरी कामना आकाश को छूती है। प्रतिदिन मुझे प्रतीति होती है कि मैं उसे कभी नही प्राप्त कर सकूँगा", उद्धव ने कहा।

"मेरे प्रश्न का उत्तर दो। शैव्या तुम्हारी कुलवधू बने तुम्हारी सन्तानो की माता हो, तुम्हारे कुल की देवी बने और तुम्हारी सन्तानो का तुम्हारी कुलपरम्परा के अनुसार लालन-पोषण करे, क्या तुम यह चाहते हो ?"

"मैंने अभी तक इस पर विचार नहीं किया ", उद्धव ने कहा।

"तो तुम स्वार्थी हो। तुम्हे उसके प्रति भक्ति या प्रेम नहीं—तुम तो केवल रास्ते पर की बत्ती की तरह ही उसका उपयोग करना चाहते हो।"

उद्धव नतमस्तक होकर अवाक् खडा रहा।

"विचार करके कहो। तुम उसे ऐसी दैवी शक्ति बनाना चाहते हो कि नहीं, जिसको तुम्हारे बालक प्यार करे और पूजे ?" कृष्ण ने पूछा।

"हाँ", उद्धव ने कहा।

"वह वृद्ध हो, उसकी देह का आकर्षण आज जैसा न रहे, तब भी क्या तुम उसके प्रेम से ऊष्मा प्राप्त करते रहोगे ?"

"यह मैं कैसे कह सकता हूं ? तुम्हारे प्रश्न मुझे अवाक् कर देते हैं।" उद्धव ने कहा।

"यदि तुम इन प्रश्नो का स्पष्ट उत्तर नही दे सकते हो तो शैय्या के आस-पास यज्ञवेदी की रचना किस प्रकार कर सकोगे ?" कृष्ण ने धीरे से कहा। इन शब्दो का उच्चारण करते समय वे मानो स्मृति के ससार मे खो गये।

"उद्धव, तुम और बलराम कई बार मुझ पर यह लाछन लगाते हो कि मैने राधा को वृन्दावन मे छोड दिया। मैने ऐसा इसलिए किया कि मै चाहता था कि मेरा प्रेम पवित्र बना रहे। यदि मुझ वृन्दावन मे ही नहीं रहना होता तो मै राधा के प्रेम मे नही पडता। परन्तु विधि का विधान कुछ और था। मथुरा से बुलौवा आया, वसुदेव के पुत्र के रूप मे जब मैं मथुरा जा रहा था, तब राधा को साथ ले जाना अनुचित ही कहा जाता। वह तो वसन्त के कोमल पुष्प की तरह थी। मेरे जीवन को जो गर्म हवाओं के थपेडे सहने पडे है, उसमे वह मुरझा जाती। कृष्ण वासुदेव मे उसे उसका 'कान्ह' कही दिखाई नही पडता। मुझे एक नये जीवन-कार्य का भार लेना पडा। इसे पूर्ण करने मे मैं उसका प्रिय ग्वाला कभी नही बन सकता था। इसीलिए मुझे उससे विदा लेनी पडी। वह सदा के लिए प्रेम की यज्ञवेदी बन गयी है—मैं उसके लिए, चिर-प्रेम की पवित्र वेदी बन गया हूँ। हमारे लिए यही एकमात्र उपाय था।" कृष्ण ने कुछ उदास होकर कहा।

"सभी को तुम जैसा ज्ञान मिला होता तो –" उद्धव ने कहा।

'तुम इस ज्ञान का रहस्य जानना चाहते हो? उद्धव, पुरुष और पत्नी एक दूसरे के साथ आजीवन बद्ध रहे, यही धर्म का मूल है। इस आजीवन प्रीति से ही सृजन का विकास होता है। रास्ते पर की आग से—एक रात की चचल ऊष्मा पाने के लिए इस धर्म का नाश नही करना चाहिए।"

"याद है, देवो को भूतकाल मे क्या करना पडा था? सृजन हो सके, इसलिए उन्हे यज्ञपुरुष की आहुति देनी पडी थी। इस प्रकार की पवित्र आहुति दिए बिना किसी प्रकार का सृजन सम्भव नहीं।" कृष्ण इस प्रकार बोल रहे थे, मानो स्वगत कुछ कह रहे हो, "तुम्हें स्त्री चाहिए तो बदले में कुछ तो देना ही पडेगा—कुछ भेंट, सौगात, आवासस्थान और आजीवन रक्षण। इस प्रकार तुम्हें स्त्री मिलेगी—उसकी देह और उसकी परिचर्या मिलेगी—परन्तु यह तो स्वर्ग मे स्थान पाने के लिए यज्ञ मे घी या पशु की आहुति देने जैसा हुआ। यदि तुम चाहते हो कि देवता तुम्हें धर्म की

ओर प्रेरित करते रहे, तुम्हारी शक्ति को शत-सहस्रगुणा करते रहे तो तुम्हें कोई अधिक विराट् बलिदान देना होगा। देवताओं ने ही कहा है कि यज्ञ की भावना द्वारा ही यज्ञ समृद्ध बनता है।"

"कृष्ण, मुझे परेशानी मे मत डालो। साफ-साफ कहो कि मुझे क्या करना है। मैंने हमेशा तुम्हारी आज्ञा का पालन किया है, अब भी तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा। तुम जो देख सकते हो, वहाँ तक मेरी दृष्टि नही जाती।"

"तो भाई, तुम यह निश्चय कर लो कि शैव्या के प्रति तुम्हारा आकर्षण क्षणिक है अथवा उसे यज्ञवेदी पर स्थापित करने की तुम इच्छा रखते हो। वह अद्भुत है ''जिस भक्ति-भाव से वह अपने गाथा को पूजती थी, उसी प्रकार का भक्तिभाव उसमे प्रेरित न किया जा सके, तब तक उसे पतिपरायण पत्नी अथवा आत्मविलोपन साधने वाली माता नही बनाया जा सकता। इस समय तो वह जगल की आग है—वह रास्ते पर की धूनी नही है, न यज्ञ की वेदी है। श्वेतकेतु या तुम दोनो मे से कोई भी इस समय उसे स्वीकार नही कर सकता। श्वेतकेतु ने मेरी बात मानी—शैव्या की ये धधकती ज्वालाएँ जब तक शान्त न हो, तब तक वह प्रतीक्षा करने के लिए तैयार है।" कृष्ण ने कहा।

"तो तुम मुझे भी यही सलाह देते हो ?" उद्धव ने पूछा।

"हाँ ! इस बीच तुम दोनो ही उसके आसपास यज्ञवेदी की रचना करो—कौन जाने कि यह ज्वाला कब शान्त होगी और किसे अपना पथ-प्रदर्शक देव बनाएगी ?"

'यह तो बहुत विषम रास्ता है," उद्धव ने कहा।

"विषम है—परन्तु उत्तम मार्ग भी है। यह सत्य मार्ग है—देह और मन की शुद्धि मे से प्रकट होनेवाली शक्ति का मार्ग है। यदि तप द्वारा वासना को शुद्ध नही किया जाए, तो स्त्रियो को रास्ते पर की धूनी बनना अच्छा लगेगा। वे रुद्र की तरह गर्जना करके धर्म का विनाश करेंगी। पुरुष और पत्नी की एकता का विच्छेद होगा, कुटुम्ब का बन्धन नही होगा। हमारे पूर्वजो के ऋत् के पन्थ का लोप हो जाएगा। इन सृष्टियो को जोडने वाली आकर्षण-शक्ति लोप हो जाएगी। स्त्री और पुरुष वासना मे चूर होंगे, अर्थात् उनका तप भग होगा। तप न रहने से ऋत् भी नही रहेगी और अन्तत धर्म भी शेष हो जायगा। स्त्रियाँ और पुरुष पशुओं

से भी बदतर हो जाएंगे !" कृष्ण ने कहा।

उद्धव नतमस्तक अपने प्रिय सखा की वाणी सुन रहा था।

"उद्धव, मैंने इतनी स्पष्ट नीति से तुम्हें कभी कुछ कहा नहीं, इसका अवसर भी नहीं आया। परन्तु हम धर्म का त्याग नहीं कर सकते। अभी हमें बहुत आगे बढ़ना है—हम दोनों को, क्योंकि तुम्हारे बिना मैं असहाय हूँ। मेरे प्रति तुम्हारी श्रद्धा ही मुझे धर्म के मार्ग पर स्थिर रखती है, यह मत भूलना।"

उद्धव ने कहा, "भगवान, मुझे क्षमा करो। मैं ऐसी ममता का पात्र नहीं हूँ। मुझे क्या करना चाहिए, वही बताइए। मैं वही करूँगा।"

"कल या परसों, बलराम राजा कुकुद्मीन के साथ कुशस्थली पर विजय प्राप्त करने के लिए जा रहे हैं। तुम भी उनके साथ जाओ। अग्नि से दूर रह कर ही अच्छी यज्ञवेदी की रचना की जा सकती है। तुम वापस आओगे, तब तक शैव्या की भभकती ज्वालाएँ भी शान्त हो जाएंगी। शायद तब तक श्वेतकेतु भी मथुरा आ जाएगा," कृष्ण ने कहा।

"तुम जो कहते हो, वह बहुत कठिन काम है, फिर भी मैं उसे करूँगा—अपने प्राण देकर भी उसे करूँगा," उद्धव ने कहा।

"उद्धव, महान कार्य सदा प्राणोत्सर्ग करके ही सिद्ध किए जाते हैं !" कृष्ण ने कहा।

२९

विजय-प्रस्थान

बलराम और उद्धव कुकुद्मीन तथा रेवती के साथ सौराष्ट्र के लिए विदा हुए। दामघोष ने सुन रखा था कि पुण्यजन राक्षस बिलकुल असभ्य हैं। वे गुलामों तथा बालकों के रक्त से अपने किसी विचित्र देवता की पूजा करते हैं। व्यक्तिगत रूप से तो उन्होंने इस विकट अभियान की सलाह नहीं दी, परन्तु बलराम के प्रति आदर से प्रेरित होकर उन्होंने अपने दस अनुभवी

और वीर योद्धा उन्हे साथ ले जाने के लिए दिए।

बलराम का उत्साह अपार था। वे अपने नए अभियान की बातें करते थकते ही नही थे और दिन-रात व्यूह-रचना के बारे मे सोचा करते थे। सांदीपनि के पाँच शिष्य भी बलराम के साहस से आकर्षित हो उनके साथ हो लिए। यह समस्त संघ एक दिन अच्छा शकुन देखकर मृगुकच्छ की ओर रवाना हुआ। राजा जयसेन ने रथो की पूर्ति की। भृगुकच्छ मे नाव द्वारा वे प्रभास गए। दूत को भेजकर प्रभास के राजा को उन्होने सन्देश कहलवाया कि जरासंघ पर विजय प्राप्त करनेवाले बलराम प्रभास तीर्थ मे भगवान सोमनाथ की पूजा करने के लिए पधार रहे हैं। गोमान्तक मे हुई विजय की खबर सौराष्ट्र के सुदूर किनारे तक पहुँच चुकी थी। इसलिए चक्रवर्ती जरासंघ पर विजय प्राप्त करनेवाले वीर का स्वागत करने के लिए लोगो की भीड उमड पडी।

बलराम ने प्रभास के राजा को अपने विश्वास मे लिया। वह भी यादव कुल का था और बलराम के पराक्रमो से गौरव अनुभव करता था। प्रभास के राजा ने इस अभियान मे सहायता करने का वचन तो दिया परन्तु एक शर्त पर—वह यह कि कुशस्थली पर विजय प्राप्त करने के बाद गिरिनगर पर भी अधिकार कर लिया जाय। बलराम पर इस समय पराक्रम का नशा छा रहा था। उन्होने यह वचन दे दिया।

मथुरा पर किसी भावी आतंक की स्थिति मे सुरक्षित रूप से रहने के लिए नए स्थल की खोज कर रखने की सूझ अब उद्धव की समझ मे आई। यह सौराष्ट्र तो मध्यप्रदेश के राजाओ के लिए भी दुर्भेद्य था और जरासंघ के लिए वहाँ पहुँचना किसी प्रकार सम्भव नही था।

बलराम पुण्यजन के किले पर कब्जा करने के लिए अधीर थे, परन्तु कुकुद्मीन और उद्धव स्वस्थता से तैयारियाँ करना चाहते थे। गुप्तचरो ने आकर यह खबर दी कि कुशस्थली पर थल-मार्ग से पहुँचना तो असम्भव ही है। थल-मार्ग से कुशस्थली को अभेद्य बनाने के लिए उन्होने तीन परकोटे बाँधे थे। ये लोग नाविक थे, इसलिए समुद्र की ओर से उन्हें कोई भय नहीं था। मात्र थल-मार्ग से अपनी सत्ता पर कोई आँच न आए, इसी के लिए सचेष्ट थे।

कुकुद्मीन तथा उद्धव ने काफी सोच-विचार के बाद समुद्र-मार्ग से कुशस्थली पर चढाई करने का निर्णय किया। पुण्यजनों के पास जहाजो का

एक बडा वेडा था और वह सरलता से हराया नही जा सकता था। गुप्तचरो ने आकर यही बताया। तभी यह समाचार मिला कि 'पचजन' जहाज कुछ ही समय मे आने वाला है। उन्होने इस जहाज की प्रतीक्षा करने का निर्णय किया। निर्धारित दिन पर यह जहाज आ पहुँचा।

भिक्कु का पौत्र खरीदी करने के लिए किनारे पर आया हुआ था। उद्धव को देखकर उसके हर्ष का पार न रहा। उसने अपने दादा को बुलाया। वृद्ध भिक्कु ने आकर जब उद्धव को देखा तो उसे तुरन्त पहचान लिया। तब रस्से डालकर सबको जहाज पर चढा लिया गया। उद्धव ने वलराम का परिचय दिया। बलराम कृष्ण के बडे भाई है, यह जानकर भिक्कु भी बहुत आनन्दित हुआ। कृष्ण को लोग ईश्वर मानकर पूजते थे। हुक्कू और हुल्लू ने भी मुस्कराकर बलराम की वन्दना करने के लिए दोनो हाथ कपाल पर रखे।

बलराम और उद्धव को भोजन कराया गया। जहाज मे सर्वत्र यह समाचार फैल गया कि कृष्ण के बडे भाई आए है। सभी नाविक ऊपर आ गए और कृष्ण के पराक्रम के स्वरचित गीत गाने लगे। भिक्कु अब जहाज का स्वामी था। उसने अपनी आत्मकथा कही। एक बार पचजन के पुत्र कुशस्थली के किनारे पर उतरे और उन्होने भिक्कु तथा उसके वफादार नाविको की हत्या करने के लिए योजना तैयार की। बढई रिड्डू को किसी प्रकार इस योजना की खबर मिल गई और उसने भिक्कु को बताया।

भिक्कु ने कहा, "इसमे गाफिल रहना हमारे लिए खतरनाक था। इस जहाज से मेरा पचास वर्षों का नाता था। अपने कौशल से मैने इसे सैकडो तूफानो मे से बचाया और भगवान कृष्ण ने यह जहाज मुझे दिया।" फिर मुस्कराकर वह आगे बोला, "मध्यरात्रि मे हम पर हमला करने की योजना थी। परन्तु हमे भ्रम मे रखने के लिए पचजन के पुत्र साँझ से ही जहाज पर चढ आए। हमने तुरन्त लगर उठाया और जहाज को रवाना कर दिया। हुक्कू और हुल्लू से मैंने बात की। ये दोनो लड़के सुरा से मदहोश थे। हुक्कू और हुल्लू दोनो ने ही उन्हे समुद्र मे फेककर स्वधाम पहुँचा दिया। इस प्रकार वे भी अपने चाचा से मिलने पहुँच गए।" भिक्कु खिलखिलाकर हंस पडा।

उसने कृष्ण के विषय मे प्रश्न किया। उद्धव ने कृष्ण और बलराम के पराक्रमो की कथा कही। बलराम अधीर हो उठे। उन्होने कहा, "देखो भिक्कु! हम यहाँ कुशस्थली पर कब्जा करने आए हैं और इसमे हमे तुम्हारी सहायता की जरूरत होगी

"कुशस्थली ? नहीं भगवान, हमारी हिम्मत नहीं है !" भिक्षु ने अपनी दाढी सहलाते हुए कहा। उसके चेहरे पर शिकनें पड गईं। "पुण्यजन हमारे शत्रु हैं। वे जानते है कि हमने पचजन और उसके मनीजों का मफाया कर दिया है। समुद्र के बीच भी हम उनके जहाजो से बचकर चलते हैं। दिखाने के लिए हमने एक मूर्ख पुण्यजन को साथ मे रखा है। कुछ होने पर जहाज के खलासी के रूप मे हम उसे आगे रखते हैं," भिक्षु ने कहा।

"कुछ भी हो, हम ता थल और जल दोनों ही मार्गों मे पुण्यजन राक्षसों पर आक्रमण करने और उनका मफाया कर देने का इरादा रखते है। मुझे तो कुशस्थली का नाश करना ही है ?" बलराम ने कहा। अपनी सफलता के बारे मे उन्हे कोई शका न थी।

"यह नही हो सकता। पुण्यजन बहुत शक्तिशाली हैं।"

"तुम लोग सहायता करो या न करो, मैं उनका नाश अवश्य करूंगा !" बलराम ने कहा, "यदि तुम हमारा साथ दोगे तो कुशस्थली मे प्राप्त होने वाले सभी जहाज तुम्हारे होंगे और यदि तुम साथ नहीं दोगे तो पहले मैं उनके जहाजों को नष्ट करूंगा, बाद मे तुम्हारे जहाजो को !" बलराम उत्तेजित हो उठे थे।

"आप शान्त होइये, हम आपका साथ क्यो नही देंगे ? मात्र इन पुण्य-जनो को छकाना सहज नही है," भिक्षु ने कहा।

बलराम बोले, 'जरासध इस दुनिया का सबसे बडा राजा है। जब गोमान्तक आग से धू-धू जल रहा था, तब कृष्ण ने सागर को आग बुझाने की आज्ञा दी। सागर ने इस आज्ञा का पालन भी किया।" बलराम ने, गोमा-न्तक आग मे से किस प्रकार बचा, इसकी कथा कही।

"हाँ, यह मुझे मालूम है। कृष्ण जब तक हमारे साथ थे, तब तक प्रति-कूल पवन भी कभी नही चला था," भिक्षु ने कहा।

"हम तो जाएंगे ही," बलराम ने कहा, "हमारे पास पाँच छोटे-छोटे जहाज हैं। मात्र तुम जैसा कोई कुशस्थली का जानकार व्यक्ति मिल जाय, तो हमारा काम सरल हो जाय। तुम यदि हमारे साथ चलोगे, तो तुम्हारे जहाज पर हम पचास अतिरिक्त योद्धा ले जा सकते हैं।"

"नहीं, मैं नहीं चलूंगा," वृद्ध भिक्षु ने अस्वीकृति मे सिर हिलाया।

"तुम यह मत भूलो कि तुम मात्र नाविक थे, पचजन के गुलाम थे।

इस जहाज का स्वामी तुम्हे कृष्ण ने ही बनाया। अब मै तुम्हे तमाम पुण्य-जन जहाजो का स्वामी बना दूंगा।"

वृद्ध की आँखे चमक उठी। उनके पौत्र कुक्कुर और बढई रिड्डू के चेहरे पर भी उत्साह दिखाई पडा।

"मैं तुम्हे कृष्ण का एक सन्देश देना भूल गया," उद्धव ने बीच मे बोलते हुए कहा।

"कैसा सन्देश?" भिक्षु ने पूछा।

"कृष्ण ने कहा था मेरे चाचा भिक्षु, मेरे भाई रिड्डू तथा मेरे मित्र हुक्कू और हुल्लू से कहना कि इन पुण्यजन राक्षसो को सौराष्ट्र मे से निकाल बाहर करना धर्मयुद्ध है। मै स्वय अपने बडे भाई के साथ इस काम के लिए आता, पर मै जानता हूँ कि जहाँ चाचा भिक्षु हो, वहाँ मुझे जाने की कोई जरूरत नही रहती।"

भिक्षु विचार निमग्न हो गया।

"दादा, कृष्ण के भाई को अकेला नही जाने दिया जा सकता। कृष्ण ने जो विश्वास हम पर किया है उसके अनुरूप हमे बनना चाहिए," कुक्कुर ने कहा, "हम पुण्यजनो को नष्ट कर देगे! भगवान ने हमे आज्ञा दी है।"

रिड्डू ने भी समर्थन मे सिर हिलाया। भिक्षु ने बलराम की ओर मुडकर कहा, "भगवान, आपके शब्द हमारे लिए आज्ञा के समान है। आप तथा आपके भाई के लिए हम अपने प्राणो का बलिदान देने मे भी नही हिचकिचाएगे, क्योकि यह जहाज भगवान श्रीकृष्ण का है।"

ऐसे आत्मघातक दिखाई पडने वाले अभियान मे सम्मिलित होना निरी मूर्खता थी, परन्तु भिक्षु कृष्ण को जहाज का इष्टदेव मानता था। यदि वह कृष्ण की आज्ञा का पालन नही करता तो उसका पौत्र और जहाज के नाविक उसे कायर समझ बैठेगे। फिर उसके अन्तर मे भी श्रद्धा का भाव जग रहा था। यदि कृष्ण उसे इस अभियान मे सम्मिलन होने की आज्ञा दे रहे है तो उनका उद्देश्य निश्चय ही समस्त पुण्यजन-जहाज तथा उनकी अपार सपत्ति का स्वामी बनाने का ही होना चाहिए।

"मुझे भय है कि कुशस्थली मे पुण्यजनो के युद्धपोत भी होगे।"

"हमारे साथ भगवान बलराम है—ये स्वय ही भगवान अनन्त है—इस पृथ्वी को धारण करनेवाले, हजार फनो के शेषनाग के अवतार है," उद्धव ने कहा।

"हाँ, पिताजी कहते है कि मैं अनन्त हूँ। जब मेरा जन्म हुआ था तब उन्होंने मुझे इसी रूप मे देखा था। और, मै कहता हूँ कि इन दुष्ट पुण्यजनों को हमारे समुद्र के बाहर फेंक देना चाहिए!" बलराम ने कहा। उन्हें भगवान अनन्त के रूप मे पहचाने जाने मे कोई आपत्ति नही थी।

इसके बाद के दिनो मे भिक्षु ने पचजन के अतिरिक्त बलराम के पाँच अन्य जहाजो का उत्तरदायित्व भी सभाल लिया। जहाजो मे उन्होंने जल, अन्न तथा शस्त्रो का पर्याप्त मात्रा मे सग्रह किया। प्रभास के राजा ने मेहमानो को भावभीनी विदा दी। अनुकूल शकुन देखकर वे जहाज रवाना हुए। उस समय मन्त्रोच्चार हुए, शख फूंके गए और नारियल फोड़े गए।

बलराम पचजन जहाज के तूतक पर खड़े थे। उनके मुख पर विजेता की मुस्कान थी। उनकी एक ओर कुकुद्मीन तथा रेवती खड़े थे, दूसरी ओर उद्धव तथा भिक्षु थे। किनारे पर खड़े लोगो की जय-जयनाद के साथ जहाज जब रवाना हुए तब बलराम ने रेवती पर गर्वभरी दृष्टि डाली और आख से इशारा भी किया। ऐसा करने की हिम्मत शायद उन्हें पहले कभी नही होती। रेवती सदा गभीर रहती थी, परन्तु इस समय वह हस पड़ी। अब क्या करना चाहिए यह निर्णय न कर पाने पर, बलराम उद्धव की ओर मुड़े और उसका एक हाथ ऊपर उठा दिया। दूसरे हाथ से उन्होंने भिक्षु के इतनी जोर से धौल जमाया कि वह घबड़ाकर गिरते-गिरते बचा।

३०

बलराम की विजय (क)

मौसम अच्छा था, हवा अनुकूल चल रही थी; इसलिए बलराम का जहाजी बेड़ा बड़े मजे मे किनारे-किनारे आगे बढ रहा था। तट पर उन्हें कभी-कभी अपनी ओर ताकते हुए लोग नजर आ जाते थे। परन्तु कुशस्थली के नजदीक पहुँचते ही उन्हें पुण्यजन के छोटे-छोटे जहाज दिखाई पड़े, जो उन्हें देखते ही, पखे की शक्ल मे आयोजित हो, सीधे उन पर चढ आए।

दो पुण्यजन जहाजों में युद्धपोतों जैसी नुकीली फालें लगी थीं, जिनसे टकराकर बलराम के कुछ जहाजों के लकड़ी के शीर्ष भाग टूट गए। सान्दीपनि के शिष्यों और दामघोष के योद्धाओं ने तत्काल तीर छोड़े और घायल तथा मृत पुण्यजनों की चीखों से आसमान गूँज उठा। एक पुण्यजन जहाज के टकराने से भिक्रु के जहाज की दोनों पतवारें टूट गईं। जहाज के खलासी घबड़ाकर चिल्लाने लगे।

बलराम ने क्रोधित हो उस आक्रामक पुण्यजन जहाज पर लोहे का एक बड़ा गोला अचूक निशाने के साथ फेंका। वह जाकर उसके पृष्ठभाग पर लगा। सारा जहाज बड़े जोरों से हिलकर रुक गया। जहाज की लकड़ियाँ चटख गईं और जहाज टूट गया। नाविक घबड़ाकर अपनी जान बचाने समुद्र में कूद गए।

रात पड़ने पर पुण्यजन जहाज कुछ दूरी पर जाकर समुद्र में खड़े हो गए। अपने आस-पास प्रकाश करने के लिए उन्होंने दिये जलाए ताकि भिक्रु के जहाज अंधकार में उन पर हमला न कर बैठें।

सागर शान्त था। भिक्रु का पतवारविहीन जहाज निश्चल खड़ा था। भिक्रु ने दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए सोचा, "मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि मेरा जहाज बिना पतवार का रह जाएगा और लट्ठों की तरह सागर में डोलेगा।" उसने जहाज में रोशनी करने की आज्ञा दी और रिड्डू ने आधी रात तक जागकर पतवारों को दुरुस्त किया।

बलराम ने सोचा कि पुण्यजन जहाज यहाँ से चल कर कहीं कुशस्थली न पहुँच जाएँ और आक्रमक जहाजी बेड़े की खबर वहाँ न पहुँचा दें, इसलिए सवेरा होने से पहले ही कुशस्थली के बन्दरगाह में पहुँच जाना चाहिए। भिक्रु ने कहा, यह बिल्कुल असम्भव है। नाविकों का उत्साह भी अब इतना नहीं रह गया था। परन्तु बलराम इस समय किसी विरोध को सहन करने की स्थिति में नहीं थे। क्रोध से उनका चेहरा तमतमा गया—सारा बदन काँपने लगा। वे भिक्रु के जहाज के अग्रभाग पर खड़े हो गए और निर्निमेष दृष्टि से सागर की ओर ताकने लगे। बलराम अब क्या करेंगे, यह किसी की समझ में नहीं आया, इसलिए सभी भयभीत और चिन्तातुर होकर दूर खड़े थे।

सहसा बलराम ने अपने दोनों हाथ ऊपर उठाए और सागर की शान्त सतह को संबोधित करते हुए बोले, "मैं इस पृथ्वी का भार वहन करनेवाला

अनन्त, तुम्हारा आह्वान करता हूँ। हे मरुतो, तुम आओ—आँधी फेंको, तूफान उठाओ, और हमें कुशस्थली पहुँचा दो।" फिर जहाज के अग्रभाग पर पैर पटकते हुए उन्होंने कहा, "हे मरुतो! मैं, सहस्रशीर्ष शेषनाग, तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि वेगवान पवन लाओ, आँधी उठाओ—हमें कुशस्थली ले जाओ।"

बलराम की आज्ञा मानो सागर ने शिरोधार्य की—सागर में ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। जहाज डोलने लगे। तेज पवन बहने लगा। मशालें हिल उठीं। आकाश बादलों से घिर गया। भिक्र और उसके नाविक चमत्कारिक रूप से तूफान उठाने वाले इस विराटकाय महामानव को दंग होकर देखने लगे।

पुण्यजन जहाज अचिन्त्य रूप से आँधी की चपेट में आ गए। मशालें हवा में उछलीं और जहाज सुलग उठे। सागर गर्जना कर रहा था। पवन बड़े वेग से चलने लगा। भिक्रु ने अपने नाविकों को अपने-अपने काम पर लगा दिया। उनका मात्र एक जहाज ही टूटा था। शेष सब जहाज बच ही गए। टूटे हुए जहाज के लोगों को दूसरे जहाज पर चढ़ा लिया गया। भिक्रु के जहाज का पाल ऊँचा उठाया गया और दुरुस्त की गईं पतवारें भी ठीक काम देने लगीं। इस जहाज के नेतृत्व में सारा बेड़ा सुगमता से आगे बढ़ा।

तूफान एकाएक रुक गया। पौ फटने पर प्रातःकाल का मंद समीर बहने लगा। भिक्रु का जहाज सीधा कुशस्थली के बंदर में पहुँच गया था। बलराम अब भी जहाज के अग्रभाग पर खड़े थे और योद्धाओं को आवश्यक निर्देश दे रहे थे। वे स्वयं सोमरस पी रहे थे और योद्धाओं में भी मुक्तरूप से बाँट रहे थे।

बंदरगाह में प्रवेश करते ये जहाज आक्रमण की नीयत से आए हैं, इसका अन्देशा किसी को नहीं हुआ। भिक्रु का जहाज वहाँ अक्सर आया-जाया करता था, इसलिए बंदर के चौकीदार भी निश्चिन्त होकर टहल रहे थे।

बलराम की आज्ञा पाकर, भिक्रु के जहाज ने बंदर में लंगर डाले और एक व्यापारी जहाज पर आक्रमण किया। इस जहाज का पाल टूट गया और ऊपर बैठे हुए आदमी घबड़ाकर समुद्र में गिर पड़े। तब बलराम के नेतृत्व में १२० आदमी इस जहाज पर चढ़े और जो भी सामने आया उसे मार गिराया। बाद में वे किनारे पर आए और कुछ ही देर में नगर के द्वार पर जा पहुँचे। अपने हल के एक ही वार में बलराम ने द्वार तोड़ डाला।

नगर मे प्रवेश करने के बाद वे चार टुकडियो मे विभाजित हो गए। एक टुकडी का नेतृत्व स्वय बलराम ने संभाला; कुकुद्मीन, उद्धव तथा रेवती ने अन्य तीन टुकडियो का नेतृत्व किया। अब सभी उत्साह मे परिपूर्ण थे। भिक्षु ने भी समझ लिया कि अब उसे क्या करना चाहिए। जहाज की रक्षा के लिए जो थोडे-से योद्धा रह गए थे, उनकी सहायता से उसने बंदर मे जितने जहाज और नावे खडी थी, उन पर कब्जा कर लिया। अधिकांशत वे व्यापारी जहाज थे। इस अचिन्त्य आक्रमण से उनके आदमी किंकर्तव्य-विमूढ से बन गए थे। टक्कू और टुल्लू के कुछ कोडे पडने पर ही सभी शरण मे आ गए।

कुशस्थली के जहाजो के मालिक तट पर बनी बंद कोठरियो मे गुलामो को कैद रखते थे। भिक्षु ने इन गुलामो को मुक्त कर जहाजो पर पकडे गए खलासियो को उनकी जगह कैद कर दिया। गुलाम स्वतत्रता पाकर बडे खुश हुए। भिक्षु ने उन्हे रसोई बनाने का काम सौपा।

बलराम और उनके साथी सारे नगर पर छा गए। जो कोई प्रतिकार करता उसका मस्तक धड से जुदा हो जाता। पुण्यजन नाविक लोग थे—थल-युद्ध से वे अनभिज्ञ थे। इस समय उनके अधिकाश जहाज बीच समुद्र मे थे, मात्र कारीगर, व्यापारी, दलाल, धर्मगुरु और निशस्त्र गुलाम ही नगर मे थे। इससे बलराम और कुकुद्मीन को नगर जीत लेने मे कोई विक्षेप नही पडा। उन्होने पुण्यजनो के मदिर को भी घेर लिया। पुजारी देवता को नरबलि देने की तैयारी कर रहे थे। बलराम ने उनको रोका और पकडकर कैद कर लिया।

मदिरा की दुकाने लूटी गई। बलराम इस 'सोमरस' का पान अधिकाधिक करते गए और इसके साथ ही उनके उत्साह की मात्रा भी बढती गई। विजय-प्रवेश पूर्ण होने के बाद उन्होने रेवती को भी आग्रह कर यह 'सोमरस' दिया। रेवती इसकी अभ्यस्त न थी, इसलिए एक घूंट भी नही पी सकी होगी कि वह बाहर निकल आया। मात्र उद्धव ने ही इस 'सोमरस' के हाथ नही लगाया। बलराम उद्धव को वैरागी ही कहते थे, इसलिए उनसे आग्रह भी नही किया। उद्धव तत्काल शहर की व्यवस्था मे लग गए। सांझ पडे जब आकाश मे चद्रमा उदय हुआ तब बलराम के सैनिक विजय और मद्य मे उन्मत्त हो कुशस्थली के राजमार्गो पर गीत गाते हुए निकल पडे।

३१

बलराम की विजय (ख)

दूसरे दिन सारे नगर को शानदार दावत दी गई। भिक्षु और कुक्कुर ने सारे जहाजों पर अधिकार कर लिया था और उन्हें इस प्रकार योजनाबद्ध खड़ा कर दिया था कि सागर के मध्य में जो पुण्यजन जहाज थे वे यदि लौटकर हमला करें तो उनका भली प्रकार प्रतिकार किया जा सके। कुकुद्मीन ने नगर-व्यवस्था का भार अपने ऊपर ले लिया। जब से पुण्यजनों ने कुकुद्मीन को पराजित किया था तब से ही कुछ शेष बचे हुए वफादार लोग भूमिगत हो गए थे। वे अब अपने गुप्त आवासों से बाहर निकल आए और कुकुद्मीन की सहायता करने लगे। उद्धव भी कुशस्थली की नव-रचना में लग गए।

बलराम इस समय अत्यन्त उत्साहपूर्ण थे। जहाँ भी रेवती जाती वहीं वे भी पहुँच जाते, भोज में रेवती को सोमरस पीने का आग्रह करते। रेवती की प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी थी, इसलिए अब उसके होंठों पर भी मुस्कान थिरकने लगी थी। वह बलराम को आदरपूर्वक नत नयनों से निहारा करती।

तीन दिन तक विजययज्ञ चलता रहा, जिसके अन्त में कुकुद्मीन ने विधिपूर्वक राजा का पद धारण किया। चौथे दिन बलराम ने अपने सैनिकों और अपने साथ आ मिले कुशस्थली के सैनिकों को कूच करने के लिए तैयार होने की आज्ञा दी।

कुशस्थली के लोग बलराम को दैवी अवतार के रूप में देखने लगे थे। यह कथा सर्वत्र प्रचलित हो गई थी कि वे अनन्त हैं, सृष्टि को धारण करनेवाले सहस्र फनवाले शेषनाग हैं। वे जहाँ भी जाते, वहीं लोग उनकी पूजा करते।

प्रभास से कुछ योद्धा आगे बढ़कर गिरिनगर की तलहटी में जंगलों में बसे नागलोगों को बलराम के आगमन की सूचना दे आए थे। ये नाग लोग भगवान परशुराम की पूजा करते थे। भगवान परशुराम ने उन्हें शार्यातों की गुलामी से मुक्त किया था। तभी से वे उनकी पूजा करते थे। उनके धर्मगुरुओं ने सदा यही कहा था कि क्वचित् राम वापस आएंगे और उन्हें फिर एक बार स्वतंत्रता दिलाएंगे। उन्होंने जब यह सुना कि यह

भविष्यवाणी सच हुई है और राम आ रहे है तो वे खुशी से झूम उठे। ढिंढोरा पीटकर सारी जनता को इकट्ठा किया गया। मृगचर्म, व्याघ्रचर्म इत्यादि धारण किए ये लोग तीर-कमान और गुलेल इत्यादि से सज्ज थे। सभी बलराम का स्वागत करने को उत्सुक थे। वे लोग गिरिनगर के राजा और प्रजा को धिक्कारते थे। गिरिनगर का राजा शक्तिशाली हथियारों के बल पर इन लोगों को कई बार गुलामी के मार्ग पर धकेल दिया करता था और कई बार तो तलवार की नोक से बडी निर्दयतापूर्वक उनकी हत्या कर डालता था।

बलराम ने गिरिनगर की तलहटी मे पडाव डाला। आसपास मे कही कोई दृष्टिगोचर नही हो रहा था। सभी लोग गिरिनगर के किले मे सुरक्षा के लिए जा चुके थे। दामघोष का एक सैनिक गिरिनगर के एक दूत को पकड लाया। दूत प्रचण्डकाय बलराम को देखकर थरथर काँपने लगा। बलराम ने उससे कहा, "जा, अपने राजा से कह कि मै बलराम, यादव श्रेष्ठ वसुदेव का पुत्र और चक्रवर्ती जरासध का विजेता, भगवान शेष, स्वय गिरिनगर मे कर वसूल करने आया हूँ। तुम्हारा राज भी मधु-यादवों के कुल का है—इसलिए वह हमारा ही सामत कहा जाएगा। अश्वो के साथ पचास रथ, पचास उत्तम अश्व और एक आदमी के वजन का सोना कर के रूप मे तुरन्त पहुँचा दे। यदि कल शाम तक नही पहुँचाया तो मैं किले को भूमिस्थ कर दूंगा और मेरे सामने जो भी आएगा, वह जीवित नही बचेगा।"

बलराम जानते थे कि राजा के पास दस अच्छे रथ अथवा एक तलवार के वजन जितना सोना भी नही है। दूत नगर मे लौटे, इससे पहले ही उद्धव ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि गिरिनगर मे बलराम द्वारा जरासध की पराजय और कुशस्थली मे उनकी विजय की कथा घर-घर पहुँच जाय। जब लोगों ने सुना कि बलराम सहस्र फनोवाले भगवान शेष का अवतार है तो उनके होश उड गए। सभी अपने घरों के दरवाजे बदकर बैठ गए और राजा को कुछ भी सहायता करने से इन्कार कर दिया। फिर राजा और उनके योद्धागण रथ मे बैठकर लडने आए। नगर के दरवाजे खुल गए और रथ बलराम की सेना की ओर बढे। बलराम की आज्ञा स्पष्ट थी। सभी को अपनी-अपनी जगह पर स्थिर रहना था। और सबसे पहला वार अश्वो पर ही करना था।

बलराम कवच और शिरस्त्राण धारण कर सबसे आगे खड़े थे। उनके हाथ में हल था। उनके पास ही रेवती हाथ में गदा लिए खड़ी थी। उद्धव के तीर अश्वों की आँखों पर अचूक निशाना साधे थे। और लोग भी अपनी तलवारें इस प्रकार ताने खड़े थे कि वे अश्वों के आरपार हो जाएं। अश्वों पर ही सर्वप्रथम आक्रमण करने का यह व्यूह रचा गया था।

जब सबसे पहला रथ नजदीक आया, तब बलराम अपना हल लेकर उसके अश्वों पर टूट पड़े। बिजली की गति से जो प्रहार उन्होंने किया, उससे घोड़े अधमरे होकर पीछे मुड़ने लगे। उद्धव के तीर कितने ही अश्वों की आंखों में जा लगे। नाग लोगों के तीर भी अपने निशाने पर अचूक पड़ते थे। रेवती की गदा गजब ढा रही थी। गिरिनगर के योद्धाओं के रथ लड़खड़ाने लगे। अपने कमानों पर तीर लगाने इतनी स्थिरता भी उनके रथों में नहीं रही। उनके अश्व इस प्रकार के युद्ध से अपरिचित थे। घायल और भयभीत अश्व रथ की धुरी छुड़ाकर भागने लगे। रथ औंधे पड़ गए और रथ में बैठे सभी धराशायी हो गए।

बलराम और उनके सैनिकों ने इन लोगों का पीछा किया। राजा मारा गया। बलराम के हल के एक प्रहार से गिरिनगर के दरवाजे खुल गए। नागरिकों ने बलराम का इतने उत्साह से स्वागत किया कि उनके हर्षनादों से आकाश गूंज उठा। बलराम ने आनन्दातिरेक में रेवती की पीठ पर एक धौल मारा। वे आवेश में आकर कई बार यह भूल जाते थे कि रेवती स्त्री है और जब सोमरस के प्रभाव में होते तब तो उसके साथ मित्र की तरह ही व्यवहार करते थे। रेवती भी जब कवच धारण किए रहती तब यह भूल जाती थी कि ऐसी छूट किसी अपरिचित पुरुष को नहीं देनी चाहिए। वास्तव में बलराम के बर्ताव से उसे खुशी ही होती थी।

चौथे दिन कुकुद्मीन गिरिनगर आ पहुँचा और उसने अपनी भूतपूर्व राजधानी पर अधिकार जमा लिया। एक मास तक बलराम ने वहाँ रंगीन दावतों का तांता लगा दिया। एक दिन कुकुद्मीन अपने इस तारणहार के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और बोला, "बलराम आप स्वयं भगवान अनन्त हैं। आप शक्ति के देव हैं। अब मैं वृद्ध हो चला। शासन करने की शक्ति मुझमें नहीं रही। आप मेरे राज्य को स्वीकार करें। जिनके चार मुखों से वेद की वाणी का पवित्र प्रवाह सतत बहता है, उन भगवान ब्रह्मा का मैं पूजक हूँ। मुझे भगवान ब्रह्मा ने ही वचन दिया था कि अपनी मृत्यु के

पहले मैं अपना राज्य फिर से प्राप्त कर लूँगा। इस वचन के सहारे ही मैंने अपने दुःख के दिन काटे है। अब मैं वृद्ध हो गया हूँ। जिस युग मे मै जीता था, वह युग भी अब समाप्त हो गया है। नया युग आया है। और यह युग तुम्हारा है। मुझे मात्र रेवती की चिन्ता है। वह बहादुर लडकी है। मेरी प्रार्थना है कि आप उसे स्वीकार करे।"

"आखिर यहाँ तक नौबत आई तो!" बलराम हँस पडे। "देखो तो यह रेवती पुरुष की पोशाक मे सज्जित हुई है—तब भी कितनी शरमा गई है। मैं कह सकता हूँ कि यह मुझे अच्छी लगती है और मैं भी उसे अच्छा लगता हूँ। परन्तु अब आप वृद्ध हो चले है और कुशस्थली तथा गिरिनगर के शासन मे आपको रेवती की सहायता आवश्यक होगी।"

"आप यही आ कर रहे और हमारे राजा बने," कुकुद्मीन ने कहा।

"श्वसुर की छाया मे तो केवल गुलाम ही रह सकते है। पत्नी को तो पति के पास ही रहना चाहिए।" और बलराम खिलाखिला कर हँस पडे। परन्तु फिर गम्भीर होकर बोले, "राजन्, आपका यह अनुरोध मुझे पसन्द है। परन्तु इस समय तो मुझे मथुरा जाना ही पड़ेगा। किसी समय मैं वापस आऊँगा और अपनी वधू को ले जाऊँगा—यदि तब तक वह मेरी राह देखने को राजी हो। रेवती, तुम मेरी राह देखोगी न? तुम्हारे पिता ने ब्रह्मा का वचन परिपूर्ण होने तक इतने वर्षों प्रतीक्षा की, तो तुम क्या कुछ समय तक भी मेरी राह न देख सकोगी?"

रेवती का मुख लज्जा से लाल हो गया। दोनो हाथो से उसने अपना मुँह ढँक लिया, परन्तु अंगुलियो के बीच में से झाँकती उसकी आँखो मे उसका उत्तर स्पष्ट पढा जा सकता था।

३२

वे आ रहे है (क)

कृष्ण और बलराम जब गोमान्तक मे थे, तब मथुरा मे अनेक प्रकार के षड्-यन्त्र और छलकपट चल रहे थे। यादवगण उन्मुक्त प्रवृत्ति के थे। कंस

के वध के बाद जो यादव-सरदार मथुरा लौटे उन्होंने तो न्याय अपने हाथ में ही ले लिया था और मनमानी करने लगे थे। इस परिस्थिति को नियन्त्रित रखने की सामर्थ्य राजा उग्रसेन में न थी। वसुदेव प्रभावशाली नायक थे, परन्तु वे आवश्यकता से अधिक सज्जन थे। अक्रूर को सभी का आदर प्राप्त था किन्तु वे साधु पुरुष थे। इन बिगड़े दिमाग यादवों को अंकुश में रखना उनके वश की बात नहीं थी।

उग्रसेन के महल में भी अनेक प्रकार के षड्यन्त्र चल रहे थे। किसी भी समय उनके विरुद्ध विद्रोह भड़क सकता था। कंस की मृत्यु पर जो लड़ाई हुई उसमें उग्रसेन के सभी नौ पुत्र मारे गए थे। उनकी पाँच पुत्रियों का विवाह वसुदेव के पाँच भाइयों के साथ हुआ था। ये पाँच पुत्रियाँ अपनी-अपनी महत्त्वाकांक्षा सिद्ध करने के लिए अब मैदान में कूद पड़ी थीं। सबसे बड़ी पुत्री कंसा वासुदेव के भाई देवभाग से ब्याही थी। वह अपने पिता की लाड़ली थी। पिता की सेवा भी वह दत्तचित्त हो करती। जब उग्रसेन राजमहल में बन्दी थे, तब भी वह उनकी सेवा में रत रहती थी। कंस की मृत्यु के बाद तो वह अपने वृद्ध पिता की सेवा में दिन-रात रहती और केवल तीज-त्योहार पर ही पति से मिलने जाती।

कंसा के तीन पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र चित्रकेतु को शूर होने का गर्व था और वह कुलनायक वसुदेव के प्रति अगाध भक्तिभाव रखता था। कंसा को अपने पुत्र की पितृकुल के प्रति इतनी अधिक भक्ति अच्छी नहीं लगती, इसलिए चित्रकेतु से वह स्वतः दूर हटती गई। छोटा पुत्र उद्धव तो उसे फूटी आँखों नहीं भाता था। जब वह बहुत छोटा था, तब कंसा की मर्जी के खिलाफ कृष्ण के साथ रहने के लिए वृन्दावन भेज दिया गया था। तभी से वह बुरा मान गई थी। उद्धव जब मथुरा लौटा, तब वह पूरा कृष्णभक्त बन गया था। यह देखकर कंसा और भी क्षुब्ध हो गई। शूर कुटुम्ब का एक लड़का गुलाम होकर रहे और ऐसा पुत्र उसकी कोख से पैदा हो, इसके लिए वह अत्यन्त लज्जा का अनुभव करती।

इसीलिए उसका सारा मातृ-प्रेम अपने बीच के पुत्र बृहद्बल पर उमड़ पड़ा था। वह सुन्दर था, और माँ का लाड़ला भी। कंसा अपने पिता के पास सब समय रहती थी और बृहद कंसा के पास; इसलिए उग्रसेन को भी बृहद से मोह हो गया था। जब कंसा के सभी भाई मौत के घाट उतार दिए गए, तब उसे लगा कि युवराजपद उसके पुत्र बृहद को ही मिलना चाहिए।

परन्तु वृद्ध राजा के मन मे अब भी न्याय-भावना नि:शेष नही हुई थी। वह तो यही मानते थे कि मात्र कृष्ण ही मथुरा का शासन करने योग्य है। उन्होंने कृष्ण को राजा बनाने की घोषणा भी की। यह 'अन्याय' कसा से नही देखा गया। इसीलिए जब कृष्ण और बलराम मथुरा छोडकर चले गए, तब कसा के मन से भारी बोझ हट गया। अवसर पाते ही वह कृष्ण और बलराम की कायरता पर व्यग-वाक्य कसे बिना नही रहती। उनके पुत्र बृहद ने विलक्षण कूटनीति दिखाकर मथुरा को सम्राट् के क्रोध से बचा लिया था, यह सुन कर तो उसके हर्ष की सीमा नही रहती।

बृहद ने राजा उग्रसेन और यादव सरदारो के सम्मुख नम्रतापूर्वक, फिर भी अतिशयोक्तिपूर्ण, जरासध के साथ हुई अपनी मन्त्रणा का वर्णन किया। सभी के मन मे यह बैठ गया कि बृहद ही मथुरा का रक्षक है। अक्रूर और गड ने भी इस मान्यता का खण्डन नही किया, यद्यपि उन्हे दृढ आशका थी कि बृहद जरासध के जाल मे फँस गया है और कृष्ण के बारे मे सभी सूचना सम्राट् को दे चुका है।

कसा को अपनी बहनो पर भी विश्वास नही रहा। उसने अपनी बहनो से कहा था कि वे अपने-अपने पति को राजा पर दबाव डालने के लिए मजबूर करे। परन्तु किसी ने कसा की बात नही मानी। बहने और बहनोई तो यही मानते थे कि कृष्ण और बलराम ईश्वर के अवतार है और वे अवश्य वापस आएगे। परन्तु कस-वध के पश्चात् मथुरा लौटे हुए महत्त्वाकाक्षी यादव सरदारो ने बृहद को अपना समर्थन दिया। वे कस को धिक्कारते थे और उससे छुटकारा पाने पर प्रसन्न थे। फिर भी कृष्ण और बलराम के बल मे हो रही वृद्धि से वे प्रसन्न नही थे। इन यादव सरदारो के अग्रणी थे सत्रजित और सात्यकी युयुधन।

कृष्ण और बलराम जब मथुरा छोडकर चले गए तब बृहद और उसके साथियो को स्वर्णिम अवसर मिला। उन्होंने यह कहना शुरू कर दिया कि कृष्ण और बलराम की कायरता यादवकुल के लिए कलक है। बृहद का युवराज बनना इन लोगो के लिए सुविधाजनक था, क्योकि निर्बल राजा के शासन मे ही वे अपना लाभ देखते थे।

कसा ने अपने पति देवभाग को बहुत समझाया कि तुम उग्रसेन से मिलकर बृहद को ही युवराजपद देने के लिए प्रार्थना करो। पर देवभाग तो इस चर्चा से ही चिढ जाते थे। वह कुल के अग्रणो वसुदेव की इच्छा के

विरुद्ध कुछ करना नहीं चाहते थे। आर्यकुल परपरा मे परिवार के बडो की इच्छा ही सर्वोपरि मानी जाती और इस इच्छा को न मानने के लिए देवभाग तैयार नहीं थे।

कसा इससे दुखी हो गई थी, परन्तु उसने अपने कष्ट को चेहरे पर प्रकट नहीं होने दिया। न जाने क्यो, उसके मन मे यह श्रद्धा गहरी बैठ गई थी कि मेरा पुत्र वृहद ही मथुरा की राजगद्दी पर बैठेगा। उसका युवराज के रूप मे अभिषेक क्यो नहीं होगा ? कृष्ण ने तो राजगद्दी स्वीकार नहीं की। वृहद राजा उग्रसेन का ही पौत्र है, उसने मथुरा को जरासध के क्रोध मे बचाया है, यादवो की कृपा प्राप्त की है, और वृहद यदि युवराज बनता है तो कस की नीति के कारण विलग हुए अधको और शूरो के कुल फिर से एक हो सकते है।

अपने पुत्र के हित की कामना करती हुई कसा अब उसके समर्थको को एकत्र करने लगी। इनमे सात्यकी सबसे अधिक चपल और चतुर था। वह दिग्विजय के सपने देखा करता था। वृहद राजा हो, वह स्वय उसका दाहिना हाथ बने और विश्व-विजय के लिए निकले, यह चित्र उसकी कल्पना को झकझोर डालता था। कसा सात्यकी को प्रशसा के फूल चढा कर उसकी अधीरता को बढाती रहती।

राजा उग्रसेन जरा भी राज-काज मे फुर्सत पाते कि कसा तत्काल अपने पुत्र की बात छेड देती। परन्तु राजा उग्रसेन का यह दृढ विश्वास था कि कृष्ण ही यादवो की रक्षा कर सकता है, और कृष्ण की सम्मति बिना वृहद का युवराज के रूप मे अभिषेक करना उनकी दृष्टि मे किसी प्रकार सभव नहीं था।

महीनो तक कृष्ण की कोई खबर नहीं मिली। वर्षा प्रारम्भ हो गई। राजा बीमार पडे। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर कसा ने फिर अपने पुत्र को युवराज बनाने के लिए उनसे विनती की। वृहद बडा अच्छा लडका है। वह आपकी सेवा कितनी लगन से करता है! उसने जरासध के क्रोध से मथुरा की रक्षा की। सभी का वह प्रिय पात्र भी है। कृष्ण और बलराम की तो कोई खबर ही नहीं—साल भर पूरा हो गया फिर भी स्वय वासुदेव को भी वृहद के युवराज बनने मे कोई आपत्ति नहीं। उन्होने मुझसे कहा था कि यदि "राजा उग्रसेन इसे युवराज नियुक्त करे तो मैं अपनी स्वीकृति दे दूंगा।"

३३

वे आ रहे हैं (ख)

कमा ने अश्रुपूर्ण नेत्रो मे, "अब तो न्याय कीजिए" की कातर भावना मे पिता की ओर देखा। वृद्ध पिता अब किसी भी समय मृत्यु का वरण कर सकते थे। कृष्ण अवश्य लौटेंगे, उनकी यह श्रद्धा भी अब डगमगाने लगी थी। इसलिए उन्होंने कमा की प्रार्थना पर विचार करना स्वीकार किया। उन्होंने महर्षि गर्गाचार्य को बुलाया। महर्षि ने कहा, "इस समय तो दक्षिणायन चल रहा है। अभी कोई शुभ कार्य नही किया जा सकता।"

उग्रसेन ने दयार्द्र स्वर मे कहा, "आचार्यवर, यादवो की दशा बिगडती दीखती है। कम की दुष्टता ने उनका नाश कर दिया। कृष्ण ने कम का वध किया, तब कुछ शान्ति मिली। मैंने सोचा कि कृष्ण के नेतृत्व मे यादव शक्तिशाली बनेंगे। परन्तु मेरी यह श्रद्धा भी सत्य सिद्ध नही होती दिखाई पडती।"

"राजन्, कृष्ण मे मुझे अटल श्रद्धा है। कोई भी उसका बाल बाँका नहीं कर सकता। वह धर्म-संस्थापन के लिए आया है और धर्म की स्थापना करके ही विश्राम लेगा। मुझे दु ख है कि अपनी यह श्रद्धा मै आपको नही दे सकता।"

"परन्तु वह मेरे पुत्र के मार्ग मे क्यो आएगा ?" कसा ने पिता पर पखा झलते हुए कहा, "मेरा पुत्र तो धर्म-संस्थापन के कार्य मे विघ्न-उपस्थित नही करता।"

"कोई कर भी नही सकता," उग्रसेन ने थके हुए स्वर मे कहा, "परन्तु कृष्ण की अनुपस्थिति मे युवराज का अभिषेक करना मुझे ठीक नही लगता। कृष्ण के बिना यादवो का उद्धार नही हो सकेगा।"

"और यदि मान लो, कृष्ण न आए तो ?" कमा ने पूछा।

गर्गाचार्य ने मस्तक हिलाया। बाहर कुछ आवाजे इस प्रकार सुनाई पडने लगी मानो कमा के प्रश्न का उत्तर दे रही हो। दुर्गपाल शकु ने खड मे प्रवेश किया।

"महाराज, वे आ रहे है, आ रहे है!"

"कौन आ रहे हैं ?" उग्रसेन भय से शैया पर उठ कर बैठ गए। वे

तो कितने ही ममय मे यमदून की प्रनीक्षा कर रहे थे ।

"कृष्ण वामुदेव ! उन्होंने जरामघ को पराजित कर दिया है !" शकु ने उत्माह मे आकर एक ही साँम मे कह डाला ।

"भगवान, तेरी लीला अपरम्पार है !" उग्रमेन ने कहा और फिर निश्चित हो शैया पर लेट गए । गर्गाचार्य भी आँखें मूंदकर प्रभु की प्रार्थना करने लगे । कमा अपना सिर धुनकर अश्रुपूर्ण नयनो मे वाहर चली गई ।

बृहद अपने माथियो के माथ मद्यपान कर नशे मे चूर था । उमे अब विश्वास हो चला था कि वही युवराज बनेगा और आनेवाली स्वर्णिम घडी का उत्मव अभी से मनाने लगा था । इतने मे मात्यकी ने प्रवेश किया । उमका सुन्दर मुख क्रोध मे नमनमा रहा था । उमने कहा, "मूर्खो, बन्द करो यह रागरग !"

"आओ मित्र, तुम भी मुरापान करो !" बृहद ने कहा । वह इम ममय पूर्ण नशे मे था । उमे दुनिया गुलावी लग रही थी । वह बोला, "युवराज की आज्ञा है, मात्यकी, पीओ ··· जी भर के पीओ !"

"पीना वन्द कर, वेवकूफ ! तू अब युवराज वन चुका !" मात्यकी ने कहा और बृहदवाल के हाथ मे से पात्र लेकर धरती पर फेंक दिया ।

"मूर्ख !" कोई नशे मे मतवाला बोला ।

"पर, हुआ क्या ?" सात्यकी के इस वर्ताव से होश मे आकर बृहद ने पूछा ।

"वे आ रहे है," सात्यकी ने कहा ।

"कौन आ रहे है ?"

"अभी-अभी दूत सदेश लेकर आए हैं कि कृष्ण ने जरासघ को परास्त कर दिया और चेदिराज के माथ वे यहाँ आ रहे हैं ।"

क्षण भर तो सभी मौन रहे । फिर विराट ने चुप्पी तोडते हुए कहा 'मात्यकी, अब और अधिक मज़ाक न करो ।"

"यह मज़ाक नही । कृष्ण ने जरामघ को पराजित किया, करवीरपुर के शृगलव वामुदेव का हनन किया और अब अवती के मार्ग पर है । कुछ सप्ताह बाद वह यहाँ पहुँच जाएगा ।

सभी का नशा हिरन हो गया । बृहद के चेहरे पर विपाद की रेखाएँ

उभर आई।

"मै तो समझता था कि वह मर-खप गया होगा।" उसने दाँत किटकिटा कर कहा।

"हाँ, उसे मर जाना चाहिए था।" पास ही खडा एक यादव युवक बोला।

"वह जीवित है।" सात्यकी ने सभी को चुप करते हुए कहा, "होश मे आओ और अब क्या करना चाहिए, इस पर विचार करो।"

कृष्ण के मथुरा छोडकर चले जाने पर वसुदेव को अपनी बहन कुन्ती का यह सदेश मिला कि मेरे पाँचो पुत्रो पर भय मँडरा रहा है। इसलिए उन्होने अक्रूर को वास्तविक परिस्थिति का पता लगाने के लिए हस्तिनापुर भेजा। भीष्म पितामह और राजा धृतराष्ट्र से भी मिल आने को कहा। वापस आते समय अक्रूर कुरुक्षेत्र मे रुके। वहाँ पवित्र सरस्वती मे स्नान कर उन्होने महर्षि वेद व्यास के दर्शन किए। मथुरा लौटकर उन्होने उग्रसेन और वसुदेव से हस्तिनापुर का हाल कहा। उन्होने बताया कि बडे-बूढे तो पाडवो के प्रति आदरभाव रखते है, परन्तु धृतराष्ट्र के दुर्योधन आदि पुत्र और सारथीपुत्र कर्ण पाडवो को तग करने मे कोई कसर नही रखते। फिर भी, महर्षि वेद व्यास ने कहा है कि पाडवो पर तत्काल कोई आपत्ति आने की सम्भावना नही है।

यादव-वरिष्ठो से मिलने के बाद अक्रूर देवकी से मिलने गए। देवकी उस समय अपने पूजागृह मे बालकृष्ण की स्वर्ण प्रतिमा को झुला रही थी। देवकी ने अक्रूर को प्रणाम किया।

"देवकी, अब भी बालकृष्ण की पूजा कर रही हो?" उन्होने हँसते-हँसते कहा, "वह अब बालक कहाँ रहा है? वह तो हम सभी का तारनहार बन गया है।"

"अक्रूर जी, मैंने तो कृष्ण को बालक के रूप मे ही देखा था। उसके बाद और किसी रूप मे मैंने उसे देखा नही। वह त्रिभुवन का स्वामी बने तब भी मेरा तो लाल ही रहेगा न?" देवकी ने कहा।

"सुभद्रा क्या कर रही है?" अक्रूर ने पूछा। सुभद्रा देवकी की सबसे छोटी बेटी थी।

"वह, वह खेल-कूद में मगन है, बहुत सुन्दर है।" देवकी ने कहा।

"तुम्हारे कृष्ण-प्रेम को देखकर उसे दुःख नहीं होगा?" अक्रूर ने पूछा।

"अक्रूर जी, सुभद्रा को मैं बहुत चाहती हूँ, पर कृष्ण की तो बात ही न्यारी है। वह तो मेरा जीवन है, मेरा ईश्वर है। इस लोक में और परलोक में वही मेरा सर्वस्व है। कुन्ती और उसके पाचों पुत्र कैसे है?" देवकी ने पूछा।

अक्रूर ने हस्तिनापुर की बात सक्षेप में कही। फिर बोले "अभी मैं महर्षि वेद व्यास के दर्शन करने गया था, तब उन्होंने भक्ति के विषय में व्याख्यान दिया था। उनकी वाणी में दैवी प्रेम का मर्म मुझे मिला, और अब कृष्ण के प्रति तुम्हारी भक्ति का अर्थ मेरी समझ में आया। परन्तु देवकी, तुम बाल-गोपाल में ही रमी रहती हो, फिर सुभद्रा की ममतामयी माता कैसे बन सकती हो?"

"यह कुछ कठिन नही। कारागार में दस वर्षों तक मैंने कितनी यातनाएँ सही, यह तो आप जानते ही है। मेरा एकमात्र आश्वासन मेरा होनेवाला आठवाँ पुत्र था। तब कृष्ण का जन्म हुआ। यादवो का भले ही वह तारनहार हो, मेरा तो वह भगवान है। उसके जन्म के बाद कितने ही वर्षों तक मैं उसकी एक झलक पाने के लिए तडपती रही। अपनी तीव्र उत्कठा के आवेश में कई बार इस बालक को मैंने प्रत्यक्ष देखा। मैं उसे झुलाती, लोरियाँ गाकर सुलाती। वह मेरा न था, पर मैं अपने शरीर में प्राण रहते उसकी थी। आज भी वह मेरे साथ है। वह मुझसे बाते करता है। उसकी इच्छा के अनुसार ही मैं चलती हूँ। जीवन कृष्णमय ही बन गया है। आप भी कृष्ण को अवतार मानते है, अक्रूर जी! फिर भी मेरी स्थिति को आप नही समझ सकेंगे। कई स्त्रियाँ समझती है कि मै पागल बन गई हूँ। परन्तु मुझ में मेरा कुछ रहा ही नही। मैं बालगोपालमय बन गई हूँ। सर्वत्र मैं उसी को देखती हू।" देवकी ने कहा।

"देवकी की पुत्री, तुम पागल नही हो। तुममे दैवी अश प्रकट हुआ है। तुम्हारे इस बर्ताव में मुझे भक्ति का साक्षात्कार होता है, महामुनि नारद जिसका पार पाए थे उस भक्ति का।"

"कैसी है वह भक्ति?" देवकी ने पूछा।

"वह है एकान्तिक भक्ति। प्रजापति ने विवस्वान मनु और इक्ष्वाकु

को इस भक्ति का उपदेश दिया था।"

"मुझे समझा कर कहिए। मैं भी इस भक्ति का रहस्य जानना चाहती हूँ।" देवकी ने कहा।

"अवश्य!" अक्रूर बोले, "एक बार महामुनि नारद नारायण के पास गए और बोले कि हे देवाधिदेव, लोग आपकी भक्ति करते हैं, परन्तु आप किसकी भक्ति करते है? नारायण ने उत्तर दिया कि तुम मेरे भक्त हो, परन्तु तुमने जो जिज्ञासा की है उसका उत्तर शब्दो में नही दिया जा सकता। जिसके आसपास ब्रह्माण्ड फिरता है उस मेरु पर्वत पर जाओ। वहाँ से फिर श्वेतदीप। वहाँ पर बृहस्पति एकता, द्विता, त्रिता और वासु उपरिचार मिलेंगे। उनसे वह रहस्य पूछना जिसकी खोज वे कर रहे है।"

"महामुनि नारद श्वेतदीप गए?" देवकी ने पूछा।

"हाँ परन्तु उन्होंने देखा कि बृहस्पति नारायण को पा न सके थे। वे तो केवल वेद और कर्मकाड के ज्ञाता थे। एकता, द्विता और त्रिता भी नारायण को न पा सके थे। वे प्रायश्चित करने मे ही ऊपर नही उठ पाए थे। मात्र वासु उपरिचार ही उन्हे पा सके थे" अक्रूर ने कहा।

"किस प्रकार?"

"जिस प्रकार तुमने अपना सर्वस्व बाल-कृष्ण को समर्पित कर दिया है, उसी प्रकार उन्होंने अपना सर्वस्व नारायण को समर्पित कर दिया था। उन्होने जब अपना जीवन भगवान को समर्पित कर दिया तब भगवान ने उनके जीवन मे प्रवेश किया।"

"नारद ने क्या किया?"

"उन्होने दैवी प्रेम की महिमा जानी। जब वे नारायण के पास वापस गए तो उनका हृदय प्रेम से छलक रहा था। नारायण ने अपना वासुदेव रूप उनके समक्ष प्रकट किया। मैंने जब यह वृत्तात महामुनि से सुना तब मुझे तुम्हारी ही याद आ गई थी।"

"आपने जो कहा वह सब मैं समझ सकती तो कितना अच्छा होता परन्तु मैं इतनी विद्वान कहाँ?" देवकी ने कहा।

"तुम विद्वानो से भी महान् हो! तुम्हारा बालकृष्ण के प्रति प्रेम वैसा ही है जैसा कि विद्वान लोग एकान्तिक भक्ति को बताते है। इस प्रेम के बदले में कुछ पाने की कोई भावना नही रहती; न स्वर्ग की ही कामना रही है। यह अहेतु प्रेम है, इसलिए तुम्हारा प्रेम नारायणीय रूप का है,"

अक्रूर ने कहा।

"आप आज मुझे बहुत ऊँचा चढा रहे है, अक्रूर जी! यदि बालकृष्ण के प्रति मेरा प्रेम नारायणीय भक्ति हो तो मेरा कृष्ण नारायण है।" देवकी ने हँसकर कहा।

"कौन जाने? वह नारायण हो भी सकता है।" अक्रूर ने कहा, "जब मै उसे मथुरा ला रहा था तब क्षण भर तो मुझे भी ऐसा लगा कि मैं नारायण वासुदेव के दर्शन कर रहा हूँ।"

"अक्रूर जी, यह रहस्य किसी पर प्रकट न करे। हर एक की यह समझ मे नही आएगा और कृष्ण के और अधिक दुश्मन खड़े हो जाएगे," देवकी ने कहा।

'हाँ, यह रहस्य हम तक ही रहे, देवकी!"

आगे वे कुछ बात करे, इसके पहले ही वसुदेव ने खड मे शीघ्रता से प्रवेश किया। उनके उत्साह और हर्ष की सीमा नही थी।

"वे आ रहे है।" वसुदेव ने कहा।

'कौन?" देवकी के चेहरे पर आशा की रेखा प्रकट हुई। वह समझ गई कि कौन आनेवाला है।

"कृष्ण आ रहा है। दामघोष उसके साथ है। उन्होंने जरासध और उसके साथियो को पराजित किया है," वसुदेव ने कहा। अत्यधिक उत्साह के कारण उनके वाक्य भी टूट-टूट जाते थे।

"हे नाथ नारायण, तुम आए।' देवकी आनन्द मे पुलकित हो उठी।

अक्रूर ने भक्तिभाव से आँखे मूँदकर कहा, "हे नाथ नारायण वासुदेव!"

३४

विजयकूच (क)

कृष्ण और दामघोष वर्षा के कारण जहाँ-तहा रुकते हुए धीरे-धीरे मथुरा आ पहुँचे। राजा वसुदेव और उनके नेतृत्व मे सारी मथुरा नगरी कृष्ण

के स्वागत में उमड़ पड़ी। स्त्री-बालक-वृद्ध, जिस किसी के पैरों में चलने की शक्ति थी, वे सब अपार उत्साह के साथ कृष्ण को मनाने आए। पत्तों के बीच श्रीफल रखे हुए थे। ऐसे जलकुंभ सिर पर धरे स्त्रियाँ सबसे आगे चल रही थीं और मंगल गीत गा रही थीं। गर्गाचार्य और अन्य ब्राह्मण, कृष्ण और राजा दामघोष को प्रभु का आशीर्वाद प्राप्त हो, इस आशय की प्रार्थना वाले मंत्रों का उच्चार कर रहे थे।

मथुरा ने ऐसा विजयोल्लास कभी नहीं देखा था। मथुरा के तारणहार अब विजेता बनकर लौटे थे—चक्रवर्ती जरासंध को पराजित कर। रानी पद्मावती ने भेंट में जो रथ, अश्व, स्वर्ण से लदी गाड़ियाँ इत्यादि दी थीं, उन्हें देखकर तो लोग जयघोष के नारों से गगन गुँजाने लगे। कृष्ण ने पीला पीतांबर पहन रखा था। गले में रेशमी दुपट्टा और सिर पर मोरपंख से सज्जित मुकुट सुशोभित था। उनके रथ पर गरुड़ के चिह्न वाली ध्वजा फहरा रही थी।

राजा उग्रसेन, पिता वसुदेव, गर्गाचार्य, अक्रूर तथा अन्य बड़े-बढ़ों के कृष्ण ने चरण छुए। फिर अपनी माता तथा अपर माताओं के पैर पड़े। त्रिवक्रा आगे बढ़कर कृष्ण के चरणों में गिर पड़ी। और भी कई स्त्री-बालकों ने उन्हें प्रणाम किया। स्त्री-पुरुष उन पर पुष्पों की वर्षा कर रहे थे। कृष्ण उनके लिए ईश्वर का आशीर्वाद जो लेकर आए थे।

कृष्ण के साथ-साथ ही गुरु सांदीपनि भी आ गए। उन्होंने कृष्ण को आशीर्वाद दिया। चेदिराज दामघोष का भी भव्य स्वागत हुआ। उग्रसेन और वसुदेव उनसे गले मिले।

जब दामघोष के रथ में से शैव्या उतरी, तब सभी आश्चर्य से चकित हो गए कि यह अनुपम रूप सुन्दरी कौन है। उसकी सुन्दर आँखें गर्वोन्मत्त भंगिमा, अद्‌भुत पोशाक तथा मात्र रुद्राक्ष की माला के अलंकार सभी की दृष्टि अपनी ओर आकृष्ट कर रहे थे। जब दामघोष ने उग्रसेन और वसुदेव से शैव्या की चर्चा की तभी सभी का कौतूहल कम हुआ। शैव्या को देवकी के सुपुर्द कर दिया गया। कृष्ण ने माता से प्रणाम कर कहा, "माँ, तेरे लिए एक बेटी ले आया हूँ।" इन शब्दों को सुनकर देवकी की आशंकाएँ शमित हुईं।

त्रिवक्रा से मिलते समय भी कृष्ण शैव्या को नहीं भूले। "त्रिवक्रा, तुम शैव्या का सदा ध्यान रखना। यह राजकुमारी है, परन्तु बहुत दुखी

है। इमकी मभाल ऐमी रखना मानो यह माँ देवकी की ही पुत्री हो," उन्होंने कहा। त्रिवक्रा के लिए तो कृष्ण की हर इच्छा का पालन करना ही परम कर्त्तव्य था। उमने शैव्या की देखभाल का काम अपने ऊपर ले लिया।

कृष्ण बडे-बूढों मे हाथ जोडकर और बालकों मे मुस्कराकर मिले। वे सभी मे एक ममान स्नेह के माथ बात कर रहे थे। मभी को ऐमा प्रतीत हुआ मानो कृष्ण उन्हे विशेषरूप मे याद रखते हो। कमा और उमके पुत्र वृहद का विचित्र और अप्रमन्नतामूचक व्यवहार भी उनमे छिपा नही रहा, परन्तु अपने महज उत्माह मे उन्होंने कोई फर्क नही आने दिया।

मभी पैदल चलकर नगर मे वापम आए। मबके आगे मत्रोच्चार करते हुए ब्राह्मण थे। पीछे मगलगान करती हुई स्त्रियाँ चल रही थी। अश्व झूम रहे थे, हाथी आनन्दोन्मत्त हो सूंड उछालते थे। मभी मार्गों पर तोरण सजे हुए थे। लोग भाँति-भाँति की क्रीडाएँ—खेल करते चल रहे थे। कविगण विजय के गीत गा रहे थे। और यादवो की कीर्तिगाथा का स्मरण कर रहे थे।

विजयोत्मव पूर्ण होने के बाद राजा दामघोष ने अपने राज्य मे जाने के लिए विदा ली। कलह मे कब मे फँमी मथुरा नगरी ने अतत. चैन की साँम ली। मभी लोग कृष्ण की बाते करते थे, उनमे मिलने के लिए अधीर रहते थे। कृष्ण ने क्या किया, आगे व क्या करेंगे, यही जानने के लिए मब आतुर थे। और मब कोई—कमा, वृहद् और उमके साथी भी—कृष्ण से कैसे मेल किया जाए, इसी द्विधा मे थे।

कृष्ण ने आते ही नगर के विषय मे रुचि लेना प्रारभ कर दिया। इससे बृहद् और उमके माथी चितातुर हो गए। राजा ने मभी युवकों को सैनिक शिक्षा लेने की आज्ञा दी। यमुना तट पर स्थित आम्रकुज म गुरु सादीपनि ने इमके लिए एक आश्रम की स्थापना की। अब तक अश्वपालन का कार्य वृद्ध गरुड की देखरेख मे होता था अब इमका भार यादव सेना के सेनापति शकु को सौपा गया।

अश्वो को पालने और शिक्षित करने तथा युद्ध के रथ तैयार करने के लिए आज्ञा दी गई। रानी पद्मावती द्वारा दिए गए स्वर्ण से उत्तम अश्व खरीदने के लिए अन्य देशो मे लोग भेजे गए।

यह नई आज्ञा सुनकर लोग दंग रह गए। प्रत्येक यादव सरदार के पास युद्ध के रथ होने ही चाहिए। कार्तिक मास की पूर्णिमा को रथ स्पर्धा की योजना होगी। कंस ने वर्षों पहले यादव सरदारों की सत्ता का नाश करने के लिए इस स्पर्धा को बन्द कर दिया था। अब यादव सरदार मात्र अतीत के गौरव का स्मरण कर निरुद्देश्य एकत्रित होने के बदले एक नई चेतना का स्पन्दन अनुभव कर रहे थे। कृष्ण और बलराम के पराक्रमों ने उनमें एक नई आशा का संचार किया। सभी सोच रहे थे कि अब जरासंध मथुरा पर अपनी पराजय का बदला लेने का प्रयत्न करेगा। परन्तु अब सभी को एक नया ध्येय मिल चुका था—कृष्ण धर्म की रक्षा के प्रतीक बन गए थे।

कृष्ण के जीवन की महान घटनाओं की चर्चा हर एक की जबान पर थी। गोमान्तक और करवीरपुर की पराक्रम गाथा बार-बार सुनने से कोई अघाता नहीं था। बलराम और उद्धव ने जिस नए अभियान के लिए प्रस्थान किया था, वह भी सभी की चर्चा का विषय था। मथुरा को अजेय बनाने और जरासंध की दुर्जेयता को भंग करने की यह नई योजनाएँ सभी के हृदय में बस गई थीं।

कृष्ण की आज्ञाओं का पालन यादवगण सहर्ष करने लगे। उन्हें प्रतीति हो गई कि मस्तक पर जब तक मगध का भय झूलता रहेगा, तब तक स्वतंत्रता और सत्ता को कभी स्थायी नहीं माना जा सकता। वसुदेव ने मथुरा के दुर्ग को अधिक दृढ बनाने और उसके आसपास की खाइयों को अधिक चौडी और गहरी बनाने की आज्ञा दी। कृष्ण ने कहा, "अब वीर विकद्रु को कभी यह नहीं कहना पडेगा कि यादव शत्रु का सामना नहीं कर सकते।"

बृहद के लिए तो यह परिस्थिति बडी विषम थी। उत्साह के इस नए वेग में उसे तथा उसके मित्रों को कोई याद भी नहीं करता था। यह स्थिति हो गई थी कि उन्हें या तो इस नए प्रवाह में सम्मिलित हो जाना चाहिए अथवा अलग रहकर उपेक्षणीय बन जाना होगा। बृहद को सबसे अधिक क्रोध तो कृष्ण पर था। वे जहाँ भी जाते वहीं लोगों की भीड उमड पडती। प्रातःकाल स्नान करने जाते तो नदी तट पर अनेक लोग उनके दर्शनार्थ एकत्र हो जाते। शिवमंदिर में दर्शन करने जाते तो वहाँ भी लोगों की भीड उमड़ पडती। देवकी को प्रणाम करने जब वे घर पहुँचते तो उस समय

नगर की अधिकाश नारियाँ देवकी से मिलने चली आती। कृष्ण जब व्यायामशाला मे होते तो नगर के युवाओ का दल वहाँ उपस्थित रहता। जब कृष्ण गोशाला में जाते, तब जिस प्रकार प्राणी उनके वश मे हो जाते, यह देखकर तो सभी दग रह जाते। स्पर्धा के मैदान मे जब कृष्ण अपना रथ चलाते, तब लोग मत्रमुग्ध होकर उनकी चपलता और स्फूर्ति को देखा करते।

वृहद बिलकुल शान्त हो गया था। युवा वृष्णी, नायक सात्यकी भी अपना आत्म-विश्वास खो बैठे थे। उन्हे अब स्वच्छन्द विहार मे रुचि नही रही। वे जानते थे कि कृष्ण को वे अच्छे नही लगते और कृष्ण के मन-चाहे वैसा आचरण करना उनके लिए सुखद नही था। वृहद युवराज बनने के सपने देखता था, परन्तु अब यह सम्भव नही था। वह जरासध का साथी बनने की कल्पना करता था, परन्तु कृष्ण ने जरासध को पराजित कर दिया था। अब मथुरा सम्राट् की हँसी उडाना था और वृहद भी भयभीत था कि शायद कृष्ण को यह खबर न लग जाए कि उसने जरासध को कृष्ण के बारे में सब खबर दे दी थी।

वृहद की माता कसा ईर्ष्या से पागल बन गई थी। वृहद को युवराज बनाने की बात तो मानो किसी को याद ही नही रही। मथुरा को शक्तिशाली बनाने की महत्त्वाकाक्षा ही सबके मन मे बसी थी। इससे युवराज पद की बात का कोई महत्त्व ही नही रहा। कसा किसी ऐसे कुकृत्य की कल्पना कर रही थी, जो देखने मे तो अकस्मात ही जान पडे, परन्तु उसका चिन्तित कार्य जिससे सम्पन्न हो जाए।

इस नई परिस्थिति के साथ अनुसधान साधने मे सात्यकी सर्वप्रथम था। उसने अपने मित्रो से चुपचाप इस नए उत्साह में सम्मिलित होने के लिए कहा। वृहद भी सात्यकी की सलाह मानकर मल्लयुद्ध, रथ-सचालन तथा शस्त्रविद्या की शिक्षा प्राप्त करने मे लग गया।

शैव्या अभी इस नए वातावरण के अनुकूल नही हो पाई थी। वह अब भी अपने चाचा की मृत्यु पर विलाप करती। देवकी और त्रिवक्रा ने उसके मन को स्वस्थ करने के अनेक उपाय किए, परन्तु वे सब निष्फल रहे। मात्र देवकी की बालकृष्ण-पूजा को वह दिलचस्पी से देखती। स्वय अपने चाचा के स्वर्ण-काल मे उसकी नित्य पूजा किया करती थी, उसका स्मरण इस पूजा से हो जाता था। शैव्या का मिजाज जितना तेज था—

उतनी ही तेज उसकी जबान थी। परन्तु देवकी के साथ तो झगड़ा करना असम्भव ही था। शैव्या कई बार देवकी को अविवेकी प्रश्नों में असमंजस में डालने का प्रयास करती, परन्तु देवकी सदा शान्त और स्नेहिल स्वर में उसके सभी प्रश्नों का उत्तर देती।

त्रिवक्रा कुछ और ढंग की थी। वह बहुत ममतामयी और उदार थी। कभी-कभी जब शैव्या का दिल रुदन करने को होता तो उसे जी भर कर रो लेने देती। शैव्या जब रुष्ट होती, तब वह चुप रहती, परन्तु यदि शैव्या कृष्ण के विषय में कुछ अपमानसूचक शब्द कहती, तब उससे विरोध किए बिना नहीं रहा जाता। वह कृष्ण की उदारता की प्रशंसा करती, कृष्ण के चमत्कारों की बात कहती, और कृष्ण ने किस चमत्कारिक रूप से उसे सुन्दर बना दिया था, उसका स्मरण कृतज्ञतापूर्वक करती। वह शैव्या से कहती, "तुम अकृतज्ञ हो, ऐसे पुरुष के गुण भी तुम स्वीकार नहीं करती?" दोनों देर तक विवाद करती रहती, परन्तु अन्त में शैव्या थक जाती और असहाय होकर आँसू बहाने लगती। तब त्रिवक्रा उसके पास बैठ कर उसे सान्त्वना देती।

३५

विजयकूच (ख)

त्रिवक्रा अब देवकी के साथ ही रहने लगी थी। दो-चार दिनों में जब कृष्ण वहाँ जाते, तब वे ही उसे बाहरी दुनियाँ की खबर देते थे। एक दिन कंसा सहित अन्तःपुर की अनेक स्त्रियाँ वहाँ उपस्थित थी। तब शैव्या ने देवकी से पूछा, "माँ, आप इस स्वर्ण-प्रतिमा के नित्यप्रति भोग किसलिए लगाती हैं, उसे वस्त्र क्यों पहनाती है?"

"यह मेरे भगवान है, बेटी," देवकी ने धैर्यपूर्वक कहा। शैव्या के अटपटे सवालों में अब वह बुरा नहीं मानती थी।

"अच्छा, यह तुम्हारे भगवान है? मगर ये है कौन?" शैव्या ने

तिरस्कारपूर्वक पूछा।

"यह मेरा पुत्र कृष्ण है, तुम तो जानती ही हो," देवकी ने उत्तर दिया।

"आपका पुत्र—यह नन्हा-सा बालक आपका पुत्र है ? आपका पुत्र तो अब बडा हो गया है।" शैव्या ने कहा।

माता देवकी जिस भक्तिभाव और आदर से बालकृष्ण की पूजा करती थी उसे देखते हुए शैव्या के इन प्रश्नो मे अत पुर की स्त्रियाँ बडी असमजस मे पड गई।

"मेरे लिए तो यह सदा बालकृष्ण ही रहेगा," देवकी ने कहा, "तुम जानती हो कि उसके जन्म के बाद सोलह वर्षो तक मै उसका मुख न देख सकी। उस समय यदि मैं इसकी पूजा यो न करती तो शोक के मारे मर जाती।"

"परन्तु यह प्रतिमा तो वैसी नही जैसे कृष्ण इस समय दिखते है वह आपको बचपन की इस प्रतिमा की पूजा कैसे करने देते हैं ? शैव्या ने पूछा।

"उसे सब-कुछ मालूम है।"

"नही, उन्हे कुछ नही मालूम। करवीरपुर मे उन्हे मैंने यह कहते हुए सुना था कि मेरे चाचा वासुदेव नही। इसीलिए सबने उनकी पूजा करना छोड दिया, और यहाँ आप अपने पुत्र को ही भगवान मानकर पूज रही है!" शैव्या ने कटुतापूर्वक कहा।

"तुम्हारी दृष्टि मे ही कुछ चूक है, बेटी! फिर, कृष्ण जब आए तब उससे ही पूछ लेना। कोई भी अपनी कल्पना के रूप और प्रिय वस्तु मे भगवान को देख सकता है। तुम अपने चाचा को भगवान मानकर पूजती थी, उसमे क्या कुछ अनुचित नही था ?"

"आपके कृष्ण ने तो मेरे भगवान वासुदेव की हत्या कर डाली!" शैव्या ने कहा और रो पडी। कमा शैव्या के पास आई और उसे सान्त्वना देकर हृदय से लगा लिया।

"रो मत, बेटी, रो मत। विधि ने जो ललाट पर लिख दिया, वह तो होकर ही रहता है। चल मेरे साथ!" यह कह कमा शैव्या को अपने कक्ष मे ले गई।

× × ×

दूसरे दिन जब कृष्ण त्रिवक्रा के साथ आए, तब शैव्या वसुदेव के निवासस्थान की अटारी पर खड़ी-खड़ी दूर क्षितिज मे ताक रही थी। उसकी आँखो के सामने करवीरपुर के सुखी जीवन के चित्र तैर रहे थे।

"शैव्या, देख, मैं तेरे लिए क्या लाया हूँ!" कृष्ण ने कहा।

"क्या है?" शैव्या बाघिन की तरह कृष्ण की ओर मुड़ी।

"कल तुम माँ से कह रही थी न कि तुम्हे बालकृष्ण की प्रतिमा अच्छी नही लगती। मुझे भी वह अच्छी नही लगती। पर, माँ को न जाने क्यो मेरा बालरूप ही इतना भाता है। आज मै तुम्हारे लिए तुम्हारे चाचा की स्वर्णप्रतिमा ले आया हूँ। शायद तुम्हे इस प्रतिमा की पूजा करना अच्छा लगे।"

त्रिवक्रा ने रुपहली मंजूषा खोली। उसमे शृगलव वासुदेव की एक छोटी-सी स्वर्णप्रतिमा थी। कृष्ण ने उसे शैव्या को देना चाहा।

"तुम्ही ने तो उनकी हत्या की और अब यह खिलौना देकर मेरा मन बहलाना चाहते हो? इस निर्जीव स्वर्ण के टुकडे को लेकर मै क्या करूँ?" शैव्या ने रोष भरकर कहा।

"क्यो? जब वह जीवित थे तब उनकी जैसी पूजा करती थी, वैसी ही पूजा अब नही कर सकती? अपने भक्ति-भाव से इसमे प्राणप्रतिष्ठा कर, यह तुम्हे सुखी कर सकेगी।"

"तुम धोखेबाज हो—चोर हो!" शैव्या बोली।

कृष्ण की आँखे शरारत से चमक उठी। "मैं जब बालक था तब भी सब मुझे चोर कहते थे। मैं माखन चुराकर खाता था न! वे लोग सच ही कहते थे, और आज तेरी बात भी शायद सच हो। पर, मै तो तेरे लिए तेरे चाचा की प्रतिमा लाया हूँ। तुझे इस मृत पुरुष की प्रतिमा का आदर करना चाहिए। इन्होने कितने लाड-प्यार से तुझे रखा था, यह भूल गई।"

"यह बात तुम—तुम उनके हत्यारे मुझसे कहते हो?" शैव्या क्रोधित हो गई। परन्तु कृष्ण की नितान्त मधुरता ने उसके रोष को अश्रुओ मे बदल दिया।

"रो मत! यह प्रतिमा अपने पास रख। माँ से मैने कहा है—वह इस मूर्ति की प्रतिष्ठा के लिए एक सुदर स्थान तुझे दे देगी। यदि अच्छा लगे तो इसकी पूजा करते समय मुझे भी बुला लेना," कृष्ण ने कहा।

"धूर्त ! दभी ! मै जाननी हू, तू मुझे किसलिए यह प्रतिमा दे रहा है। तू चाहना है कि मै तुझे क्षमा कर दूँ, पर मैं तुझे कभी क्षमा नही कर सकती, कभी नही !" शैव्या ने कहा।

"भले ही क्षमा न कर। परन्तु इस प्रतिमा ने तो तेरा कुछ नही बिगाडा न ?"

"हा, मै इसे रखूगी। इसकी रोज पूजा करूंगी। यह मूर्ति मुझे प्रति-दिन याद दिलाएगी कि तूने इनकी हत्या की है।" और क्षमा तो मै तुझे कभी नही करूँगी।" शैव्या ने कृष्ण के हाथ से मूर्ति लेकर पूज्यभाव से अपनी आँखो से लगाई।

"अब तुझसे मुझे एक ही काम है।" कृष्ण ने हँसते-हँसते कहा।

'मै जानती हूँ कि तेरा कुछ आशय होगा। क्या है ?"

"त्रिवक्रा, तेरे लिए सुन्दर वस्त्र और अलकार लाई है। योग्य वस्त्रा-लकार धारण किए बिना अपने चाचा की पूजा करना तेरे लिए उचित नहीं होगा।"

शैव्या ने अलकार लेकर कृष्ण पर फेक मारे। कृष्ण ने नीचे झुककर एक के बाद एक सभी अलकार ले लिए और फिर हँसने लगे।

"तुझे हो क्या गया है, शैव्या। अपने चाचा की पूजा करते समय यह अलकार धारण नही करेगी। यह भूल गई कि करवीरपुर मे तू कैसे शृगार किया करती थी ?"

शैव्या ने कृष्ण की ओर देखा। उनके शब्दो मे किसी प्रकार का व्यग नही था, बल्कि पूरी गभीरता थी। यह देख कर वह कुछ ढीली पडी। उसने कहा, "अच्छा, रहने दो इन अलकारो को। मैं इनको धारण करूंगी, पर तुम्हारे लिए नही, अपने वासुदेव के लिए।"

"यही तो मैं कह रहा था।" कृष्ण ने उत्तर दिया।

"पर, तुम्हारे मन में कुछ और ही है।" शैव्या ने कहा।

"यदि मैं वासुदेव होती तो तुम्हारे गाल पर एक तमाचा जड देती !" त्रिवक्रा ने शैव्या से कहा।

"शैव्या, इसकी बात न सुन। यदि यह कृष्ण होती तो त्रिवक्रा नही होती। और शैव्या शैव्या ही है। अच्छा, अब मैं चलता हू। वैसे भी मेरी उपस्थिति तुझे बहुत अच्छी नही लगती।"

"हाँ, जाओ, और मुझे अकेली पडी रहने दो।" शैव्या ने कहा और

वह शोकाकुल बन गई।

इस बीच एक और बड़ी अच्छी खबर मिली। बलराम विजयी हो गए थे। कुशस्थली पर उनका अधिकार हो गया और पुण्यजन राक्षसों का नाश भी हो गया। गिरिनगर का भी पतन हो गया और वृद्ध कुकद्मीन फिर एक बार सिंहासनारूढ़ हुआ।

कुछ दिनों के बाद बलराम और उद्धव स्वयं ही मथुरा आ पहुँचे। उनका भव्य स्वागत हुआ और सारी मथुरा नगरी में आनन्द-उल्लास छा गया।

बलराम कंधे पर हल लिए सर्वत्र घूमते फिरते। उनके 'अमृत रस' पान की मात्रा बढ़ने से अब वे अधिक वाचाल हो गए थे। जो कोई मिलता उसी को वे गोमानक, कुशस्थली और गिरिनगर की पराक्रम-गाथा कहने बैठ जाते, और इस बीच जब भी रेवती का जिक्र आता तब उद्धव की ओर देख कर आँख मारते। कृष्ण ने इस परिस्थिति को अच्छी तरह समझ लिया। उन्हें इस बात का सतोष था कि उनके बड़े भाई को अपना मन-पसन्द प्रेमपात्र मिल गया है।

कुछ दिनों बाद तीन कारीगरों को कुशस्थली के नवनिर्माण के लिए भेजा गया। उनके साथ रेवती के लिए बलराम का सदेश लेकर एक सन्देश-वाहक भी गया। उद्धव अब सुदृढ और स्नायुबद्ध होने के साथ-साथ शात भी बन गए थे। उन्होंने चुपचाप अपने लिए कृष्ण के प्रिय सखा का स्थान बना लिया। अपनी माता कसा में हुए परिवर्तन से उन्हें आश्चर्य हुआ। वह शैव्या को सहानुभूति देकर कृष्ण के प्रति उसके असतोष को भड़काती थी। एक बार उद्धव ने अपनी माँ से कहा कि वह शैव्या के उद्दड बर्ताव को बढ़ावा न दे। कसा ऐसे अवसर की तलाश में ही थी। वह आँसू बहाने लगी और बोली, "हाँ, मैं ही एक ऐसी अभागी हूँ। भगवान ने मेरी ओर क्यों नहीं देखा? पिता जी ने भी सभी सन्तानों में से मेरे साथ ही ऐसा बर्ताव किया। बृहद अब बड़ा हो गया है, शूरवीर है। उसके साथ अब न्याय होना चाहिए। पर, उसके काम की ही किसी को कद्र नहीं।"

इस प्रकार कसा अपने भाग्य को कोसती हुई आँसू बहा कर उद्धव की अनुकपा को जगाने का प्रयास करने लगी। उसने फिर कहा "उद्धव, एक तू है, सो तू भी कृष्ण का दास बन गया। तुझे तेरा अपना भाई ही अच्छा

नही लगता। तू देवकी के पुत्र की सेवा करता है। बृहद के भविष्य की ओर तेरा ध्यान ही नही। कृष्ण की कीर्ति कैसे बढे, बस यही फिक्र तुझे है। उद्धव, तू बिलकुल मूर्ख है। कृष्ण कभी तेरा नही होगा। उसे तो अपनी महिमा बढानी है। यदि उसकी महिमा बढे तो वह मथुरा का बलिदान-देने मे भी बाज न आए।"

अत मे उद्धव का दया भाव जगाने के लिए अति आर्द्र स्वर मे कसा ने पूछा, "बेटा, मुझसे साफ-साफ कह कि कृष्ण तेरे भाई के भविष्य मे रोडे अटकाए और तू चुपचाप देखता रहेगा या फिर उसकी मदद करेगा ?"

"माँ, कृष्ण कभी किसी सच्चे आदमी का नुकसान नही करता।"

"तो तू यह मानता है कि बृहद सच्चा नही है ?" कसा क्रोधित हो गई।

"यदि वह सच्चा होगा तो कृष्ण स्वय उसे युवराज बनाएगा और यही क्यो, वह तो इतना भी करेगा कि बृहद सभी प्रकार से एक महान् राजा बने। वह क्यो नही कृष्ण के पक्ष मे हो जाता ?" उद्धव ने पूछा।

"दुष्ट! मैंने तुझे जन्म ही क्यो दिया!" कसा रो पडी, "तू अपने सगे भाई का शत्रु निकला।"

"माँ, तुम समझती क्यो नही। बृहद राजा बने, यह तो मैं भी चाहता हूँ, पर राजा बनने से पहले उसे उसके योग्य भी तो बनना चाहिए।"

उद्धव ने इसकी चर्चा कृष्ण से की और कुछ करने के लिए उनसे कहा। कृष्ण बोले, "कसा मौसी और बृहद दोनो ही मुझसे द्वेष रखते हैं, यह तो मैं जानता था। एक प्रकार से यह ठीक भी है। बृहद को हमने पीछे धकेल दिया है। हम लोग जीवित लौट आए यह भी उन्हे पसन्द नही।"

३६

कृष्ण की मोहिनी (क)

वृन्दावन मे यह सदेश लेकर कई लोग आए कि नन्द और यशोदा कृष्ण और बलराम को मिलने के लिए वृन्दावन बुला रहे है। यमुना नदी कुपित हो गई है और किनारे पर के लोगो और पशुओ को छोडकर वह दूर चली गई है। इस क्रुद्ध नदी-देवता को मनाने के लिए कुछ तो करना ही होगा और मात्र कृष्ण-बलराम से ही ऐसे कार्य की आशा की जा सकती है।

"चलो कृष्ण, एक बार वृन्दावन हो आएँ और अतीत की मधुर स्मृतियो को ताजा कर फिर अपने उन साथियो से मिल आएँ।' बलराम ने कहा।

"तुम ही जाओ भैया। मुझे तो इस रथ-स्पर्धा की तैयारियाँ करनी है।" कृष्ण ने कहा।

"तुम नही चलोगे तो मै भी नही जाऊँगा।"

"नही, नही। बडे भैया तुम्हे जाना ही चाहिए। यमुना मात्र तुम्हारा ही कहा मानेगी। स्त्रियो का हृदय जीतना तुम्हे खूब आता है!" कृष्ण ने मुस्कराते हुए कहा।

"यह मत कहो! तुम तो कुछ किए बिना ही स्त्रियो का हृदय जीत लेते हो!" बलराम ने कहा।

"और तुम? सौराष्ट्र के सागरतट पर इस समय एक युवती तुम्हारी राह मे आँखे बिछाए बैठी है—क्या भूल गए तुम?" कृष्ण ने खिलखिला कर कहा।

"पर, तुम्हारे लिए तो घर-घर मे स्त्रियाँ पलक बिछाए बैठी है।" बलराम अपने ही मजाक पर हँस पडे और फिर बोले, "दुष्ट, वृन्दावन मे राधा तेरे लिए नही तडपती होगी?"

"इसीलिए तो मै वहाँ नही जा रहा हूँ।" कृष्ण ने गम्भीर होकर कहा।

"इतना क्रूर मत बन!"

"नही, मैं क्रूर नही हूँ। यदि मैं वहाँ जाता हूँ तो कुछ देर के लिए

तो सभी खुश होंगे, पर जब यहाँ लौटूँगा, तब सभी के हृदय चूर-चूर हो जाएँगे।"

"तू हृदयहीन है कृष्ण ! जिन्हे तू इतना अधिक चाहता था, उनका विरह क्या तुझे कभी व्याकुल नही करता ?" बलराम ने पूछा।

"मैं अब भी उन्हे इतना ही प्रेम करता हूँ बडे भैया ! इसीलिए मैं उनका विचार करता हूँ अपना विचार नही।"

"उनका विचार करता है, इस प्रकार ? वर्षों बीत गए और फिर भी उनसे मिलने नही जाता ?"

"इस समय तो वे अपना दुख सुखद स्मृति मे बिसर गए है। अपने प्रिय गोविन्द के रूप मे वे मुझे याद करते है। परन्तु यदि अपने गोविन्द से वे अब मिलेंगे तो वे उसे मात्र जरासंध पर विजय प्राप्त करनेवाले, शृगालव वासुदेव का हनन करनेवाले वासुदेव के रूप मे ही देखेंगे। वे जिस गोविन्द को चाहते है, जिसकी स्मृति को हृदय मे सजोए है और जिसके गीत गाते है, वह गोविन्द उन्हे कही दिखाई नही पडेगा। उनके लिए मैं उनका प्रिय बालगोविन्द ही बना रहूं, यही उत्तम है।" कृष्ण ने कहा।

"तो फिर मेरे बारे मे वे क्या सोचते होंगे ?" बलराम ने पूछा।

"तुम हमेशा बडे भैया ही रहे हो, दयालु, सहायक और मिलनसार। यदि तुम यमुना को वापस वृन्दावन मे ले आते तो वे सदा तुम्हे बडे भैया के रूप मे याद करेंगे।" कृष्ण ने कहा।

"कृष्ण, तुम क्या मेरी कोई बात नही मानोगे ?"

"बडे भैया, वृन्दावन के लोगो के इस समय तुम ही सहायक बन सकते हो। अपना हल साथ मे जरूर ले जाना। यदि आवश्यकता हो तो यमुना देवी को दण्ड देकर भी वापस वृन्दावन ले आना। वृन्दावन मे लोग तुम्हे देवता मानकर पूजेंगे।" कृष्ण ने कहा।

"और तुम उन लोगों को अपने सदेश मे कुछ मीठे बोल भी नही कहना चाहते।" बलराम ने पूछा।

"चाहता हूँ" कृष्ण ने कहा, "उनसे कहना कि मैं उन्ही मे जीता हूँ। मैं सदा उनकी याद करता हूँ। मैं हमेशा उन्ही का हूँ। उनसे कहना, मैं जहाँ भी रहूँगा, वृन्दावन ही मेरा घर होगा। वही मैं सदा रहूँगा।" कृष्ण ने कहा।

वृन्दावन के लोगों को कष्ट देनेवाली यमुना देवी को सबक सिखाने के लिए कृतनिश्चय होकर बलराम ने विदा ली।

इस बीच श्वेतकेतु मथुरा आ पहुँचा और कुडिनपुर मे जो कुछ घटा, उसका सारा विवरण कृष्ण को दिया। उसने बताया कि जरासंध और उसके साथियों ने एक नई योजना तैयार की है। रुक्मिणी और शिशुपाल का विवाह कर राजकुमारी रुक्मी चेदि और विदर्भ के सम्बन्ध सुदृढ करना चाहता है। और, दामघोष उससे बच न सके, इसकी व्यवस्था जरासंध करेगा।

शिशुपाल का रुक्मिणी के साथ विवाह होते ही विदर्भ के राजकुमार रुक्मी का विवाह जरासंध की पौत्री अप्लवी के साथ कर दिया जाएगा। इस प्रकार रुक्मी सम्राट् का प्रमुख सामंत बनेगा। इसी योजना को सफल बनाने की चेष्टाएँ की जा रही है। विदर्भ के राज-परिवार मे स्वयंवर का आयोजन करने को प्रथा है। यह स्वयंवर पूर्वयोजना के अनुसार ही होगा। उसमे शिशुपाल के साथ अन्य नरेश गम्भीर स्पर्धा मे नहीं उतरेंगे और उसे जीतने देंगे, जिससे रुक्मिणी को शिशुपाल के साथ विवाह करने पर बाध्य होना पड़ेगा।

सारी योजना तैयार है। माघ मास की शुक्लपक्ष पचमी, अर्थात् बसत पचमी को स्वयंवर रचा जाएगा। उसमें भाग लेने के लिए निमन्त्रण भी भेजे जा चुके है।

श्वेतकेतु ने अन्त मे कहा, "मथुरा के किसी राजकुमार को निमत्रण पत्र नही भेजा गया है। सभी को भय है कि आप स्वयंवर मे भाग लेकर रुक्मिणी को ले जाएँगे।"

"परन्तु इस प्रकार मैं किसी राजकुमारी से विवाह नही करना चाहता। स्वयंवर मे तो कन्या को अपने पसन्द के वर को वरमाला पहनाने का अधिकार होना चाहिए, क्यो ?" कृष्ण ने कहा।

"वासुदेव, रुक्मिणी आपके साथ ही विवाह करना चाहती है श्वेतकेतु ने कहा।

"गोमातक जाते समय कौशिक के साथ जो कुछ दिन हमने व्यतीत किए थे, तभी इसका अनुमान मुझे लग चुका था।" उद्धव ने कहा।

"इस समय तो विवाह का विचार करने का ही हमें समय नही।

गोमानक मे हुए अपमान को जरासंध कभी नहीं भूल सकेगा । हमें उसके आक्रमण का सामना करने के लिए हर वक्त तयार रहना चाहिए ।" कृष्ण ने कहा ।

"परन्तु राजकुमारी रुक्मिणी अन्य किसी को पति के रूप मे स्वीकार नही करेगी। वह दृढ मनोबल वाली स्त्री है ।' श्वेतकेतु ने कहा ।

"दृढ मनोबल वाली स्त्रियाँ निकम्मे लोगो के पल्ले पडे, यह भी तो उससे नही देखा जाएगा ।" कृष्ण ने हँसते-हँसते कहा ।

"यादव भी क्या ऐसा खुला अपमान सहन कर लेंगे ? मथुरा के किसी भी यादव सरदार को निमंत्रण नही भेजा गया ।' उद्धव ने कहा ।

"अपने सम्मान को इस तरह हम धक्का नही पहुँचा सकते । पिताजी से कहूँगा कि वे यथासंभव शीघ्र ही सरदारो की सभा बुलाएँ ।" कृष्ण ने कहा ।

बृहद के मित्र यह विचार करने के लिए एकत्र हुए कि अब उन्हे क्या करना चाहिए । जब से महाराज ने सरदारो और उनके पुत्रो को रथस्पर्धा के लिए अनिवार्य रूप से शिक्षा लेने की आज्ञा दी, तभी से वे कृष्ण के प्रति कुपित हो उठे थे । उन्हे विश्वास हो गया था कि कृष्ण ही इस सबके पीछे है । ये लोग अब तक ऐश-आराम की जिन्दगी बिता रहे थे । परिश्रम से वे बचना चाहते थे । कइयो का अनुमान था कि कृष्ण स्वयं राजा बनना चाहते है । कुछ लोग यह मानते थे कि इन तैयारियो से जरासंध का क्रोध भड़क उठेगा और वह मथुरा पर आक्रमण कर देगा । जो भी हो, सभी को कृष्ण खटक रहा था । कृष्ण की लोकप्रियता के कारण भी वे ईर्ष्यालु हो उठे थे । बृहद कब मथुरा का राजा बने और अपनी-अपनी शक्ति हम बढाएँ, इसी की प्रतीक्षा मे मग्न थे, परन्तु अब इसकी कोई आशा नही रही थी ।

बृहद के साथियो ने लोगो मे कृष्ण के प्रति असंतोष फैलाने का प्रयास किया । परन्तु लोग उनकी बातें सुनकर भी अन्त मे यही कहते, "भई, जो चाहे सो कहो, पर यह कृष्ण तो कुछ अद्भुत व्यक्ति ही दिखाई पडता है !" कुछ ने तो सीधे कृष्ण से ही इस असंतोष की बात कर लेने की सलाह दी । इससे बृहद के साथी रोष से भर गए ।

कंस की हत्या के बाद मथुरा मे वापस आए कई युवा यादवो ने तो हद कर दी । 'अब किसी अत्याचारी का शासन हम सहन नही करेंगे ।"

सत्राजित ने हाथ मे लम्बी तलवार चमकाते हुए कहा। इस सारे समुदाय मे सत्राजित बडा था, पर वही सबसे उद्दंड भी था।

"भाई, वह तो तारनहार है, तारनहार!" दूसरे सरदार ने अपना भाला उछालते हुए कहा। उसकी आवाज मे गहरा कटाक्ष था।

"जो भी हो, कस से तो उसने हम सबको बचाया ही है!" तीसरे सरदार ने कहा।

"उसने कस की हत्या इसलिए की कि कस स्वय उसे अपने मार्ग मे हटाना चाहता था।" सत्राजित ने कहा।

"परन्तु तुम उसे कहना क्या चाहते हो?" एक लम्बे, कृशकाय युवक ने पूछा। उसका नाम विराट था। उसने कहा, "जब तुम लोगो ने उसे यहाँ बुलाया है तो यह तय कर लो कि उससे तुम किस बात की इच्छा रखते हो?"

"वह भगवान है। उसे तीनो काल का ज्ञान होगा?" किसी ने विनोद किया।

"हम उसे स्पष्ट कह देगे कि हमारे विषय मे वह खोपडी न लडाया करे!" सत्राजित ने तलवार ऊँची कर कहा।

"परन्तु हमारे विषय मे क्या और उसके विषय मे क्या?" विराट ने पूछा, "और उसकी इच्छा को रोकने मे हम किस प्रकार सफल होगे? अधिकाश अग्रज तो उसके साथ है।"

"तू तो निरा बुद्धू है, विराट!" भद्रक ने तलवार की नोक विराट के सामने गडाते हुए कहा, "उसे हमारे रास्ते से हट जाना चाहिए।"

बृहद ने हाथ ऊँचा किया। सभी शात हो गए और यह जानने के लिए आतुर हुए कि बृहद क्या कहना चाहता है। "विराट की यह बात सच है। जब तक हम यह निश्चय नहीं कर लेते कि हम उससे क्या चाहते है तब तक उसे रोकने मे हम असमर्थ होगे। हमे उसके साथ क्या व्यवहार करना चाहिए?"

"वह हमारे साथ ऐसा वर्ताव न करे, मानो वह भगवान हो! यही हम उससे कह देगे।" सत्राजित ने कहा।

"तो उससे क्या करने को कहे?" विराट ने पूछा। विराट इन उद्दड युवको के प्रति तिरस्कार की भावना रखता था।

"उससे कहेगे कि वह वापस गोमातक चला जाए और चाहे तो उस

काली पुतली को भी अपने साथ लेता जाए।" भद्रक ने कहा। कई मित्र खिलखिला कर हँस पड़े।

"जिस प्रकार मथुरा तुम्हारा घर है, उसी प्रकार उसका भी घर है।" विराट ने कहा।

३७

कृष्ण की मोहिनी (ख)

"इस रथ-स्पर्धा को बन्द कर देने को हम कृष्ण से कहेंगे। मैं तो घोड़ा की गंध से ही भड़क उठता हूँ।" सत्राजित ने कहा।

"तो लोगों में रोष फैल जाएगा।"

"लोग तो तमाशा देखने के शौकीन होते ही हैं।" विराट ने कहा, "हम उसे एक ही बात कह सकते हैं—युवराज के रूप में वृहद्बल के अभिषेक में वह रोड़े न अटकाए।"

वृहद्बल ने हँसकर कहा, "हाँ यह ठीक है। हमें धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए।"

"मैं तो उसे तत्काल सजा देना चाहता हूँ। भद्रक ने अपनी तलवार उठाकर कहा।

कृष्ण सात्यकी के साथ आ पहुँचे। उद्धव ने साथ आने का आग्रह किया था, पर कृष्ण ने उन्हें नहीं आने दिया। कृष्ण सदा की भाँति प्रसन्न वदन थे। उनके मुख पर एक मोहक मुस्कान थिरक रही थी। उन शीश-मुकुट पर मोरपंख और गले में मोगरे की माला लहरा रही बिलकुल निःशस्त्र थे। उनकी उपस्थिति में सभी शस्त्रधारी गए। उन्होंने सबको हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बड़े बल का चरणस्पर्श किया। उनके होठों पर सतत मुस्कान , परन्तु थी।

"भाई बृहद्बाल, अपने मित्रों से मिलने के लिए बुलाकर आपने मेरा बहुत सम्मान किया है।" कृष्ण ने कहा।

"हाँ, जैसे ही मैंने वासुदेव से कहा कि हम आपसे मिलना चाहते है तो ये तुरन्त यहाँ आने के लिए राजी हो गए।" सात्यकी ने कहा। सात्यकी ने समझ रखा था कि कृष्ण आने से इन्कार कर देंगे, नहीं तो अपनी अरुचि तो अवश्य ही प्रकट करेंगे। परन्तु कृष्ण जब प्रसन्नतापूर्वक शस्त्र त्याग कर उसके साथ हो लिए तो उसे भी तलवार लेकर आने के लिए ग्लानि हुई।

"वासुदेव, बैठिए तो सही!" सात्यकी ने कहा। उसका मिजाज तेज था, परन्तु उसका लालन-पालन वृष्णि-नायक के रूप में हुआ था, इसलिए उसमें सस्कारगत विवेक भी था।

"मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?" कृष्ण ने आसन पर बैठ कर पूछा।

सभी शान्त थे। किसी के मुख से उनको उत्तर देने के लिए बोल नहीं फूटे।

"रथ की स्पर्धा बन्द करो," सत्राजित ने कहा।

"मैं किस प्रकार बन्द करूँ? मथुरा के महाराजा की आज्ञा है कि सरदारों को पाँच सौ रथ लेकर उपस्थित रहना होगा। जिनको इस स्पर्धा में भाग नहीं लेना है, वे न जाएँ," कृष्ण ने हँसकर कहा।

"कृष्ण, तुम युद्ध की तैयारी कर रहे हो? मुझे साफ-साफ बताओ," बृहद्बाल ने पूछा।

"युद्ध का निर्णय तो हमारे अग्रज ही कर सकते हैं। परन्तु यदि धर्म-युद्ध हुआ तो मैं उसके लिए सदा तैयार रहूँगा। यदि धर्म के विरुद्ध युद्ध होगा तो उसमें मैं कभी भाग नहीं लूँगा," कृष्ण ने कहा।

"धर्मयुद्ध और धर्मविरुद्ध युद्ध का अर्थ क्या है?" एक युवक ने पूछा।

"युद्ध याने युद्ध, और क्या?" सात्यकी ने कहा।

"तीनों लोकों को धारण करनेवाले धर्म से ही हम जीते है, यह तो तुम जानते ही हो?" कृष्ण ने पूछा।

"जो कुछ तुम चाहते हो वही तुम राजा से कैसे करा लेते हो?" उद्धव ने पूछा। अन्य उपद्रवी युवक कृष्ण की पूर्ण सत्ता के सामने अवाक्

"सत्राजित, यहाँ तुम भूल कर रहे हो। मैं तभी बोलता हूँ, जब मुझसे कुछ पूछा जाता है, और जब बोलता हूँ तो जो कुछ मुझे उचित लगता है, वही कहता हूँ। परन्तु मेरी बात स्वीकार करना या न करना राजा तथा अन्य अग्रजों पर निर्भर है," कृष्ण ने कहा।

"पर, तुम युद्ध की तैयारी कर रहे हो, इतना तो स्पष्ट ही है," सात्यकी ने कहा।

"तुम यह बात छिपा किसलिए रहे हो?" भद्रक ने पूछा, "तुमने क्या हमें नन्हे बच्चे समझ रखा है?"

"मैं कभी कुछ छिपाता नहीं", कृष्ण ने भद्रक के प्रश्न में जो रोष था, उसे पीकर कहा, 'जरासंध अधर्मी है। जीवन भर उसने आर्यावर्त पर अपना रौब जताना चाहा है। मथुरा का नाश करने की उसने प्रतिज्ञा ली है। यदि वह आक्रमण करे तो उसका प्रतिकार करने के लिए हमें तैयार रहना ही चाहिए।"

"तो फिर जब बलराम उसे मार डाल रहे थे, तब तुमने उन्हें रोका क्यों?" उद्योत ने पूछा।

"उसके कई कारण थे। एक तो यह कि यदि जरासंध की हत्या गोमान्तक में हो जाती तो उसके साथी तत्काल मथुरा पर आक्रमण कर बैठते और तब मथुरा में उनका प्रतिकार करने की शक्ति नहीं थी।"

"तुम तो भगवान हो। इन्द्र का वज्र लेकर उसे खत्म क्यों नहीं कर देते?" एक उद्दंड युवक ने पूछा और विनोद भरे स्वर में हल्के से हँसा।

"बस, बहुत हो गया!" सात्यकी ने सन्तापूर्ण स्वर में कहा। कृष्ण की कार्यवाही का कारण अब उसकी समझ में आ गया था। उसने पूछा "वासुदेव, तुम यह गम्भीर रूप से मानते हो कि हमें युद्ध के लिए तैयार रहना चाहिए?"

"हाँ, यदि युद्ध हम पर लादा गया तो?"

"तुम इसे जरूरी समझते हो?" सात्यकी ने पूछा।

"जरासंध को मैं जैसा जानता हूँ, उससे लगता है कि यह युद्ध अनिवार्य है। हाँ, हम अपनी स्वतन्त्रता खोकर गुलामी स्वीकार कर लें तो बात अलग है।'

"यदि जरासंध लड़ने आएगा तो हम तुम्हारे साथ युद्ध करेंगे, परन्तु तुम्हें सब-कुछ खोलकर हमें बताना होगा", सात्यकी ने कहा।

"सात्यक के प्रतापी पुत्र, तुमसे क्या कभी मैंने कुछ छिपाया है?" कृष्ण ने कहा।

"तो तुम बृहद्वाल के युवराज बनने में क्यों विघ्न उपस्थित करते हो?"

"महाराज से इस विषय में मेरी कोई बात हुई ही नहीं, सात्यकी!" कृष्ण ने कहा। उनकी आवाज में जो सचाई थी, उसने सभी को स्पर्श किया। उन्होंने फिर कहा, "महाराज ही यह निर्णय ले सकते हैं। मैं भी पसन्द करूँगा कि बृहद्वाल युवराज बने, यदि ...।"

"यदि क्या?" बृहद्वाल ने भौंहें सिकोड़कर कहा।

"यदि" कृष्ण ने बृहद्वाल की ओर मुड़ कर कहा, "यदि तुम धर्म के पक्ष में रह सको तो!"

"तुम समझते हो कि बृहद्वाल यह उत्तरदायित्व निभाने के लिए तैयार नहीं होगा?" विराट ने पूछा।

"नहीं, ऐसी बात नहीं है। बृहद्वाल जब भी यह उत्तरदायित्व स्वीकार करने के लिए तैयार होगा, तभी हम सब उसकी एक आज्ञा पर अपना प्राण भी देने के लिए राजी होंगे," कृष्ण ने उच्च स्वर में कहा।

"बृहद्वाल यदि युवराज बने तो तुम उसके पक्ष में रहोगे? सौ बात की यही एक बात है!" सात्यकी ने पूछा।

कृष्ण क्षण भर शान्त रहकर सात्यकी की ओर मन्द मुस्कान के साथ देखते रहे। सभी उपस्थित लोगों की दृष्टि कृष्ण पर टिकी थी कि देखें वे इसका क्या उत्तर देते हैं।

"भाई, यह मेरा वचन है," कृष्ण ने बृहद्वाल की ओर देख कर कहा, "यदि तुम धर्म के पक्ष में रहे तो मैं सदा तुम्हारा पक्ष लूँगा और मित्रो, तुम सब भी उसके पक्ष में रहो, यही मेरी इच्छा है। अपने शस्त्र तैयार रखो। हम सब मिलकर जरासंध का सामना करेंगे!" कृष्ण ने, जो कई लोगों के हाथों में शस्त्र थे, उन्हें देखते हुए कहा, "और विजय निश्चित हमारी होगी।"

कृष्ण की वाणी से दिग्मूढ बने युवक एक साथ बोल उठे, "हाँ, विजय निश्चित हमारी होगी।"

सात्यकी उत्साह में आकर कृष्ण के गले लग गया।

"साधु, कृष्ण साधु!" उसने कहा और सभी "साधु, साधु!" कह

उठे।

कृष्ण को शका की दृष्टि से देखनेवाला बृहद्बाल इस उत्साह के वातावरण से आश्चर्य मे पड गया। इससे पहले कि वह सम्हले, कृष्ण ने उसका चरणस्पर्श कर प्रणाम किया, दूसरो को हाथ जोड कर नमस्कार किया और सभी की ओर प्रसन्नतापूर्ण मुस्कान बिखेरते हुए वे शाति से चले गए।

३८

बृहद्बाल की द्विधा (क)

उस रात यादव सरदारो की बैठक राजा उग्रसेन के महल मे हुई। श्वेतकेतु ने जरासध द्वारा अपनी सत्ता दृढ करने के लिए रचे गए व्यूह की बात कही और बताया कि स्वयवर किस कारण और किस प्रकार नियोजित हो रहा है तथा मथुरा के यादवो को निमन्त्रण न देकर उनका अपमान किया गया है।

जरासध के इस व्यूह से उत्पन्न परिस्थिति पर सभी सरदारो ने विचार-विमर्श किया। इतना तो स्पष्ट ही था कि मथुरा के यादवो को राजपरिवारो से नीचे का दर्जा देकर उनका अपमान किया गया था। साथ ही यह भी स्पष्ट था कि यदि मथुरा के यादव बलपूर्वक वहाँ गए तो उसका परिणाम भयकर होगा।

विकद्रु स्वभाव से ही भीरु था, इसलिए उसने तो यह अपमान पी जाने की ही सलाह दी। उसने कहा, "इस समय तो मथुरा की शक्ति बढाना ही सबसे अधिक महत्त्व की बात है।" शक्रु यहाँ तक सहमत हुआ कि प्रतिकार करने के लिए यादव अभी पूर्णरूप से तैयार नही है, परन्तु उसे लगता था कि यदि इस अपमान को सह लिया गया तो यादवो की हिम्मत टूट जाएगी। बृहद्बाल और सात्यकी के नेतृत्व मे जो तरुण थे, वे सभी यादवो की प्रतिष्ठा पर हुए इस आघात का सचोट उत्तर देने के लिए तत्पर थे। आमत्रण बिना ही कुडिनपुर जाकर रुक्मिणी को हर लाने के पक्ष

मे वे थे। उनकी मान्यता थी कि तीन महीनो मे तो हम पूर्णरूपेण से सज्ज हो जाएँगे। वसुदेव, अक्रूर और अन्य सरदारो को विकद्रु की सलाह ही ठीक लगी, क्योकि कोई कडी कार्रवाई करना उन्हे पसद नही था।

अन्त मे राजा उग्रसेन ने कृष्ण की ओर देखा. कृष्ण ने अब तक इस चर्चा मे भाग नही लिया था।

"वासुदेव, तुमने कुछ कहा नही! तुम्हारा क्या मत है?" उग्रसेन ने पूछा।

"महाराज! अब तक जो कुछ कहा गया है उससे यदि मैं सहमत नही होऊँ तो मुझे क्षमा करे। परन्तु मैं समझता हूँ कि राजा भीष्मक ने जो हमे निमन्त्रण नही भेजा, वह उचित ही है," कृष्ण ने शाति से कहा।

सभी आश्चर्य मे पड गए। बृहद के दल ने तो इस कथन के प्रति अपने तिरस्कार को छुपाने का भी प्रयत्न नही किया।

"क्या तुम यह कहना चाहते हो कि हम भीष्मक के चरण छुएँ?" बृहद ने कहा।

कृष्ण ने स्वस्थता से उत्तर दिया, "इसमे हमारा अपमान हुआ ही नही। स्वयवर मे सामान्यत राजाओ और राजकुमारो को ही आमन्त्रित किया जाता है। और महाराज, आपकी वय स्वयवर मे जाने की है नही, तथा मथुरा के युवराज के रूप मे अभी तक किसी का अभिषेक नही हुआ है।"

"क्या मतलब? हममे से कई सरदार अपने-अपने गाँवो के स्वामी है," शकु ने कहा।

"राजा भीष्मक अपनी पुत्री का विवाह किसी सरदार के साथ नही, बल्कि राजा या राजकुमार के साथ करना चाहते है। राजन्, हमारे किसी यादव सरदार का स्थान राजा भीष्मक की पुत्री के स्वयवर मे नही हो सकता," कृष्ण ने कहा।

सभागृह मे शाति छा गई। यह बात सच थी कि स्वयवर मे भाग ले सकने लायक कोई युवराज मथुरा में न था।

"कृष्ण, तुम तो युवराज से भी विशेष हो," राजा ने कहा, "मैं तो अब भी यह राजगद्दी तुम्हे सौंपने को आतुर हूँ, बस तुम्हारे हाँ भरने की देर है।"

बृहदबाल ने रोष से कृष्ण की ओर देखा। उसे लगा कि कृष्ण फिर

एकबार राजगद्दी हड़पने की चाल चल रहा है।

"राजगद्दी के बारे में मेरे मन में अब भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ, महाराज!" कृष्ण ने मुस्कराकर कहा, "आपकी इस कृपा के लिए मैं कृतज्ञ हू, पर मैं गोपाल ही बना रहना चाहता हूँ। मेरी बात मानें तो अपनी पसंद के युवराज को ही आप इस पद पर नियुक्त करें।"

सभी लोग बड़े ध्यान से कृष्ण को सुन रहे थे। उन्होंने आगे कहा

"राजन्, गोमातक से हमारे लौटने से पहले जब यह शंकास्पद था कि हम आएँगे या नहीं, तब आपने बृहदबाल को युवराज के पद पर नियुक्त करने का विचार किया था। उत्तरायण प्रारंभ होते ही आप उनका अभिषेक करें।"

बृहदबाल और उसके मित्र आश्चर्य-चकित हो गए। कई वरिष्ठ लोग भी कृष्ण की इस उदार उक्ति की मुग्ध-प्रशंसा भाव से सुन रहे थे। कृष्ण अपूर्व समझदारी के साथ राज्य में बढ़ रही आन्तरिक अशान्ति को मिटाने का प्रयास कर रहे थे। एकमात्र अक्रूर ही आँखें फाड़े आश्चर्य से देख रहे थे। उनका विचार था कि यदि बृहद मथुरा का राजा बना तो सब चौपट हो जाएगा। परन्तु कृष्ण में उन्हें श्रद्धा थी, इसलिए अपनी शंकाओं को प्रकट करना उन्होंने उचित नहीं समझा।

"राजन्, इसके बाद राजा भीष्मक को आप यह संदेश भेज सकेंगे कि हमारे युवराज बृहदबाल को भी निमन्त्रण भेजा जाना चाहिए। यदि वे निमन्त्रण भेजने में इन्कार करें तो यह हमारा अपमान समझा जाएगा और फिर यदि महाराज की आज्ञा होगी तो हम इस अपमान का बदला भी ले सकेंगे," कृष्ण ने कहा।

"परन्तु इसका अर्थ तो यही हुआ कि कुण्डिनपुर के पास लड़ाई होगी" वसुदेव ने कहा।

"अपमान का बदला यदि लेना हो तो लड़ाई तो होगी ही", सेनापति शकु बोले।

"लड़ाई तो होगी ही," सत्राजित ने कहा। वह युद्ध के लिए अधीर हो रहा था। "और आर्यावर्त के लिए यह कोई नई बात नहीं है। धर्म के अवतार स्वयं भीष्म पितामह क्या काशीराज की तीन पुत्रियों का हरण नहीं कर लाए थे?"

"परन्तु जरासन्ध की सेना ने हमें हरा दिया तो?" उग्रसेन ने कहा।

बृहद्‌वाल का चेहरा फीका पड गया ।

"यह तो निश्चित है कि यदि भाई बृहद्‌वाल कन्या का अपहरण करेंगे तो जरासंध और भीष्मक की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगेगा", कृष्ण ने स्वस्थता से कहा।

"मान लो कि बृहदवाल हार जाए तो ?" विकद्रु ने पूछा।

"हम लोग सब यदि इनके पीछे जान की बाजी लगा दे तो यह नही हारेंगे," कृष्ण ने कहा, "परन्तु भाई बृहद्‌वाल और अपने तरुण सरदारो को गुरुदेव सादीपनि के पास जाकर शस्त्रशिक्षा लेनी होगी। हमारी रथ-स्पर्धा भी हमारे रथियो को युद्ध के लिए तैयारी करने का मौका देगी।"

"और तुम वहाँ आओगे ?" बृहदवाल ने पूछा।

"उद्धव तो आयेगा ही। मेरे बडे भैय्या भी आएँगे। रही मेरी बात, सो मै राजकुमारी या किसी भी स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध ले जाना धर्म के विरुद्ध मानता हूँ। फिर भी जब लडाई छिडेगी तो भाई बृहद के एक इशारे पर मैं उनकी मदद को पहुँच जाऊँगा।"

चर्चा समाप्त होने पर, बृहद्‌वाल अपने समक्ष भावी सम्भावनाओ को सोचकर काँप उठा। विकद्रु ने जिस पराजय की सभावना पर जोर दिया था, उसे वह सच लगी। 'मैं हारूँ तो क्या ? कृष्ण की यह भी एक चाल ही है,' वह मन-ही-मन बडबडा उठा।

घर लौटते समय श्वेतकेतु ने कृष्ण से कहा, "वासुदेव, बृहद्‌वाल अपहरण कर लाया तो भी राजकुमारी रुक्मिणी उससे विवाह नही करेगी।"

"धीरे-धीरे वह भी मान जाएगी", कृष्ण ने हँसी मे टालना चाहा, "कितनी ही राजकुमारियाँ अपहरण किए जाने के बाद अपहरणकर्ता से विवाह कर सुखी हुई हैं।'

"पर, फिर तुम्हारा क्या होगा ?"

"मैं किसी कन्या से इस तरह विवाह नही करना चाहता", कृष्ण ने कहा।

सभा के समाप्त होते ही बृहद अपनी माता से मिला। कमा भी यह जानने के लिए अधीर थी कि सभा मे क्या हुआ। बृहद क्रोध से लाल-पीला होकर गया और बोला, "माँ, इस ग्वाले ने आखिर हमे अपने फदे मे फाँस ही लिया। मुझे तो खत्म ही कर डाला इसने!"

"किस प्रकार ?"

"मुझे अपने रास्ते मे हटाने का उसने उपाय ढूँढ लिया है", बृहद ने असहाय भाव से कहा। फिर सभा मे जो कुछ हुआ उसका विवरण देते हुए बोला, "कृष्ण बहुत चतुर है। वह मुझे युवराज पद पर देखना चाहता है। वाह, भाई, वाह! कितना उदार है तू! जरासंध और उसके साथियों के सम्मुख युद्ध मे मुझे धकेल देने की कैसी युक्ति है! वाह रे उदारता! यदि आवश्यकता हुई तो वह मेरी सहायता करने भी आएगा, और विजय का यश स्वयं ले जाएगा स्वार्थी, स्वार्थी!"

"फिर महाराज ने क्या कहा?" कमा ने पूछा।

"महाराज ने युवराज पद पर मुझे नियुक्त करना स्वीकार किया, क्योंकि रुक्मिणी के स्वयंवर मे मुझे भेजने के कृष्ण के प्रस्ताव पर उन्होंने सहमति दी।"

"इससे बचना कठिन है", कमा ने कहा, "यदि तू युवराज-पद पर बैठता है तो तुझे मौत के मुँह मे धकेल दिया जाएगा। और यदि उससे इन्कार करता है तो तेरा सब किया-धिया मिट्टी मे मिल जाएगा।"

"और जिंदगी-भर कायर कहलाऊँगा यह ऊपर से।" बृहद्बाल बोला, "सात्यकी तो यह जानकर प्रसन्न हो उठा है कि मैं युवराज बन जाऊँगा। वह तो युद्ध मे पराक्रम दिखाना चाहता है। उसे मृत्यु का भी भय नहीं!"

"हम लोग कुछ उपाय सोच ही लेंगे, बेटे! तू चिन्ता मत कर" कमा ने आश्वासन दिया।

३६

बृहदबाल की द्विधा (ख)

बृहदबाल अपनी पत्नी विशाखा से मिल गया। उसे आशा थी कि विशाखा अपने पति पर आई इस विपत्ति को जानकर रोने लगेगी। और उसे सान्त्वना देगी। बृहद ने सारी बात बताकर कहा कि मुझे मिटाने के लिए

कृष्ण की यह नई चाल है। विशाखा अधक सरदार और कम के सेनापति प्रद्योत की पुत्री थी। उसका मन इसी कल्पना से विभोर हो उठा कि उसका पति जरासध के विरुद्ध लडनेवाली सेना का नायक होगा। पिता से मिली हुई उसकी वीरता की विरासत जाग उठी। बृहद की घबडाहट देखकर वह क्रोधित हो उठी और बोली, "यह तो अपनी योग्यता दिखाने का आपके लिए अपूर्व अवसर है। आपको यादवो की रक्षा करनी होगी। राजनीतिक खेल के प्यादे की तरह राजकुमारियो की इस अदलाबदली को रोकने का आपको अनायास ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यदि आप सफल हुए तो आपकी कीर्ति दिग्दिगत मे फैल जाएगी। भगवान महादेव ने आपको यह ऐसा सुअवसर दिया है जो वीरो को भी शत-शत जीवन मे एकाध बार मिलता है। कृष्ण, बलराम और उद्धव आपके सहायक होगे तो विजयश्री निश्चित ही आपके चरण चूमेगी।"

'तो तुम भी यही चाहती हो कि मै मर जाऊँ!" बृहदबाल ने कटुता से कहा।

"आपका कुछ अनिष्ट नही होगा। मेरे पिता तो मुझे सदा यही कहा करते थे कि कायर की पत्नी होने से वीर की विधवा होना अधिक श्रेयस्कर है।" विशाखा ने तिरस्कार से कहा और पति की ओर से मुँह फेर कर रोने लगी।

दूसरे दिन बृहद अपनी माता से मिला। वह रो रही थी। उसने कहा, "इस समय तेरे अनिष्ट ग्रहो का प्रभाव बढता दिखाई देता है।"

बृहद ने सात्यकी, विराट सत्राजित और भद्रक को बुलाकर उनकी सलाह ली।

"कृष्ण तो स्यार की तरह चालाक है। उसने मेरे लिए कैसा जाल बिछाया है।"

"इसमे जाल क्या है?" सात्यकी ने पूछा, "उसने तो अपना वचन ही निभाया है। हमे ऐसा अवसर दिया है, जिसकी प्रतीक्षा हम इतने दिनो से करते थे। भीष्मक की पुत्री का जरासध की आँखो के सामने अपहरण करना क्या कम साहस का काम है? यह तो महान् अवसर है।" सात्यकी ने उत्साह से कहा।

"मै कायर नही हूँ," बृहद बोला, "रणक्षेत्र मे मृत्यु का वरण करने

को मै तैयार हूँ, परन्तु जीतने की कोई सभावना तो होनी चाहिए ! इस युद्ध मे मुझे तो कोई वीरता नही दिखाई देती—यह तो निरा पागलपन है '

"परन्तु कृष्ण ने साथ देने का वचन दिया है", सात्यकी ने कहा। वह इस नए अभियान मे अपूर्व साहस दिखाने के सपने देख रहा था।

वह हमारे साथ तो होगा, पर हमारी सहायता करेगा ही यह कहाँ निश्चित है ?' बृहद ने शका प्रकट की।

"छी, हम जरासध से हारे तो क्या वह मुँह ताकता रहेगा ?"

"जरासध उसे मारना चाहता है, मुझे नही। कृष्ण मेरी ओट मे छिपना चाहता है," बृहद ने कहा।

"पर यदि हम उसकी मदद से भी जीते तो विजय हमारी ही कही जाएगी न !" विराट ने कहा।

"मानो कि वह पहले ही वार मे खतम हो गया, तो ?' बृहदवाल ने कहा।

"हूँ !" सात्यकी ने तिरस्कार से कहा, "तुम्हे तो घर पर ही बैठे रहना है !"

"पर यह तो साक्षात् मौत के मुँह मे ही जाना होगा," विराट ने कहा, "मुझे तो बृहद की बात ही सच लगती है।"

सात्यकी अब रोष से भर गया। उसने कहा, "तुम सबको हो क्या गया है ? पहले तो हम सबने बृहद को युवराजपद दिलाने के लिए कृष्ण से वचन लिया। कृष्ण ने केवल एक शर्त रखी कि बृहद को धर्म का पक्ष लेना होगा। यादवो की प्रतिष्ठा की रक्षा करना और झूठे स्वयवर को रोकना हमारा धर्म है। बृहदवाल, तुम युवराज तो बनना चाहते हो, पर उसका उत्तरदायित्व निभाने के लिए राजी नहीं हो।"

"परन्तु यह "

"मुझे तुम्हारी बात समझ मे नही आती। हम मथुरा पर शासन करना चाहते है, पर खतरे मे भागते है—कृष्ण अपनी जिदगी खतरे मे डालने को तैयार है तब भी ! हम कायर है, निरे कायर ! हमे धर्म की रक्षा करने जाना ही होगा। बृहद को युवराजपद स्वीकार कर यादवो की प्रतिष्ठा की रक्षा करनी ही होगी।"

"मुझे लगता है कि हमारे लिए और कोई चारा नही रहा। खूब फँसे

है हम लोग !" विराट ने कहा ।

"तुम लोग मुझे कृष्ण को ही खत्म कर देने की इजाजत दे देते तो मैं तो तैयार था", भद्रक ने कहा ।

"मैं कृष्ण की कुटिल चाल का भोग बनने को तैयार नहीं हूँ, बृहद्-बाल ने कहा ।

'पर हम तुम्हारी कायरता का भोग बनने को भी तैयार नहीं हैं । तुम युवराज बनना चाहते हो तो हमारी प्रतिष्ठा की रक्षा करो, नहीं तो अपनी महत्त्वाकांक्षा ताक पर रखो ।" सात्यकी ने कहा और चला गया ।

बृहद ने सोचा कि परिस्थिति भयंकर हो चली है । चंदन और पुष्प से सज्जित हो बलिदान के बकरे की तरह उसे यज्ञवेदी में बलि बनना होगा । वह चाहे जो भी कहे ! उसमें विरोध करने की भी शक्ति कहाँ है । उसे तो स्त्री की पोशाक पहननी होगी—जरासंध की तलवार उसके गले पर जरूर पड़ेगी ।

क्या ये यादव मूर्ख नहीं हैं ? इसमें अपमान की कौनसी बात है ? भीष्मक की पुत्री का स्वयंवर है, उसमें किसे बुलाना और किसे नहीं बुलाना, यह उसका काम है । फिर उसकी बात सच्ची भी है । उग्रसेन वृद्ध हुए हैं, युवराज कोई है नहीं और यहाँ क्यों, प्राचीन परंपरा के अनुसार तो कोई यादव राजा हो भी नहीं सकता ।

हाँ, भीष्मक ठीक ही तो कह रहे हैं । यादवों के पूर्वज यदु को उनके पिता ययाति का शाप था कि उनके पुत्र कभी राजा नहीं हो सकते । उग्रसेन को सब मानपूर्वक ही राजा कहते हैं । ऐंद्र अभिषेक से उन्हें राज्यपद पर कब नियुक्त किया गया था ? मथुरा में राजा ही न हो तो फिर युवराज कहाँ से आए ? इसीलिए कृष्ण चतुर बनकर राजा होने से इन्कार करता है !

यह गलत है—नियम के विरुद्ध जाना गलत है । कंस ने उसका भंग किया और उसका क्या अंत हुआ । उसकी माता कंसा ही मूर्ख थी—राजमाता बनने की लालसा में वह अपने ही पुत्र का अहित कर बैठी ।

मित्र सभी स्वार्थी हैं । उन्हें तो मेरी ओट में अपनी सत्ता बढ़ानी है । सात्यकी तो युद्ध पर तुला हुआ है । विशाखा भी मूर्ख है । वह तो चाहती है कि उसका पति सुख से न जीकर वीरमृत्यु प्राप्त करे । बाप के यहाँ शिक्षा ही गलत मिली न !

मभी की दृप्टि मीमित है। किमी को जगमध की शक्ति का अदाज नही। ये मब बडी उम्र के बच्चे है। मेरे मित्र शिक्षित योद्धा भी नही। गपशप और मद्यपान मे जीवन बिताते है, इमीलिए तो उन्हे रथ-स्पर्धा भी पसद नही थी। युद्ध मे तो ये पहले ही वार मे माफ हो जाएगे, अथवा कायरो की तरह भागेगे। कृष्ण की बात मच थी। उन्हे तालीम देनी चाहिए। मथुरा को युद्ध के लिए तैयार करने की उमकी योजना अब ममझ मे आती है। तब तो मुझे इमकी कल्पना ही नही थी।

वह कुटिल चाल चला तो उमे भी उमका उत्तर कुटिल चाल से ही देना चाहिए। कृष्ण ने जो जाल फैलाया है, उममे वह खुद ही फँमेगा। वह निश्चित ही मरेगा। यदि मुझे ही मरना हो तो मैं कृष्ण की पमद की हुई मौत क्यो मरूँ ? अब मैं भी वीर बनने के मोह मे चूर मात्यकी जैमे मित्रो को मिद्ध कर दूँगा कि वे कितने मूर्ख है!

बृहद्बाल उत्माहित हो उठा। उम रात वह राजा उग्रमेन के पास गया और उन्हे नम्रतापूर्वक प्रणाम किया।

"महाराज, इस ममय आकर जो मैंने विक्षेप किया, उमके लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ, परन्तु मुझे आपमे एक अत्यन आवश्यक निवेदन करना है," उमने कहा।

'क्या है ?" महाराज ने श्रमित स्वर मे पूछा।

"श्रीकृष्ण ने अत्यन्त उदारतापूर्वक कहा कि मुझे युवराज पद स्वीकार करना चाहिए परन्तु यादवो के मच्चे तारनहार कृष्ण ने तो बचपन मे ही कैमे-कैमे चमत्कार दिखाए है! वह भगवान यदि नही भी है तो भगवान जैमा तो है ही। अन्य किमी की महायता के बिना भी उमने तथा बलराम ने जरामध को परास्त कर दिया था। वह हम सब मे महान् है और धर्मानुरागी है। मथुरा मे भी, आपके बाद उमका ही स्थान हो मकता है। उमकी जगह मैं वह स्थान लूँ, यह मुझे उचित नही जान पडता," बृहद ने कहा।

"अच्छा!" अपने नाती मे इम प्रकार की ममझदारी देखकर आश्चर्य-चकित होते हुए राजा उग्रसेन बोले, "तो तूने भली प्रकार मोच लिया है न ?"

"मै सच कहता हूँ, महाराज! कृष्ण ही हमारे पूर्वजो की कीर्ति को उज्ज्वल कर मकता है। मै सदा उमके प्रति वफादार रहूँगा। कभी

अन्याय नहीं करूँगा', वृहद ने प्रशंसा के पुल बाँधते हुए कहा।

"तो तू युवराज नहीं बनना चाहता?" राजा ने मुक्ति की साँस लेते हुए कहा, क्योंकि उनके मन ने वृहद को कभी युवराज पद के लिए स्वीकार नहीं किया था।

"मेरी तो यही इच्छा है महाराज, कि कृष्ण कुंडिनपुर जाकर हमारी प्रतिष्ठा की रक्षा करें। वह वीर है, उसके लिए यह कोई बडी बात नहीं।"

"वत्स, तुममें सुबुद्धि जागी, यह देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। युवराज-पद पर तुझे बिठाने का फैसला मैं अवश्य बदल दूँगा," राजा ने आनन्दपूर्वक कहा।

"और कृष्ण कुंडिनपुर जाएगा। मुझे विश्वास है कि वह जीतेगा ही!" वृहद ने विडबनात्मक स्वर में कहा।

"मैं जानता हूं कि वह जरूर जीतेगा!" राजा ने श्रद्धापूर्वक उत्तर दिया।

४०

श्वेतकेतु का शैव्या से पुनर्मिलन

उस रात कसा को नींद नहीं आई—वह इसी चिन्ता में करवटें बदलती रही कि इस नई समस्या का समाधान किस प्रकार निकले। सुबह होते ही वह वसुदेव के महल में गई और माता देवकी से शिष्टाचारवश मिलकर तुरत शैव्या के पास जा पहुँची।

कसा ने कुछ ही दिनों में शैव्या के दिल में घर कर लिया था। शैव्या को उस समय किसी की सहानुभूति पाने की नितान्त आवश्यकता थी। कसा सदा उस पर दया दिखाती, उसकी विपत्ति पर झूठे आँसू बहाती और इससे उत्साहित हो शैव्या बडे चाव से अपने चाचा के देवत्व की, करवीरपुर के अपने स्वर्णिम दिनों की और कृष्ण की घात तथा अपने प्रति किए गए उनके दुर्व्यवहार की चर्चा करने बैठ जाती। वह बिलख-बिलख

कर बताती कि कृष्ण ने कैसे उसका जीवन बर्बाद कर दिया।

कसा बडी सहानुभूति से शैव्या की बाते सुनती और फिर अपना दुखडा सुनाने बैठ जाती कि किस प्रकार कृष्ण ने स्वय उसका भी जीवन सकटमय कर दिया है। वह खूब नमक-मिर्च लगाकर कृष्ण के करतब बताती—किस प्रकार उन्होंने एक के बाद एक अपने सभी शत्रुओ का सफाया कर दिया, स्वय अपने मामा को निर्दयतापूर्वक मार डाला। कृष्ण के प्रति समान शत्रुभाव रखने मे ये दोनो नारियाँ एक-दूसरी से घुलमिल गई थीं कृष्ण-द्वेष ने उन्हे एक बना दिया था। कृष्ण की नित्यप्रति निदा सुन-सुनकर शैव्या भी उनसे घोर घृणा करने लगी थी।

आज भी कसा ने अपनी नई समस्या का वर्णन बडे नाटकीय ढग से किया। स्वर मे करुणा भरकर वह बोली, "इस कृष्ण ने तो हम पर विपत्तियो का पहाड ही ढा दिया है। अब मेरा बेटा राजकुमार तो क्या बनेगा, उल्टा विचारा एक जाल मे फँस जाएगा। उसे मृत्यु के मुख मे झोकने के लिए ही कृष्ण ने यह खेल खेला है। हे भगवान, इस एक आदमी की दुष्टता ने हमे किस मुसीबत मे डाल दिया है! मेरे पति-पुत्र तो बेचारे इतने भले है कि उन्हे दुनिया की किसी बात से कोई मतलब नही। वे तो कुल के अग्रज वसुदेव को ही अपना सब-कुछ माने बैठे है। छोटा लडका उद्धव तो उनसे भी गया-बीता निकला—वह तो कृष्ण का पूरा दास ही बन बैठा है!"

शैव्या ने कसा की बातो का समर्थन किया। कसा अपनी नाटकीयता को पराकाष्ठा पर ले गई और रोते-रोते वह शैव्या से लिपट कर विलाप करने लगी, "हे भगवान, इस गोपाल को कब मौत आएगी? बेचारी शैव्या ने तो करवीरपुर मे ही उसे खत्म करने का प्रयास किया था—तभी वह क्यो नही मर गया।"

शैव्या अपना दुख भूलकर कसा को सान्त्वना देने लगी। वह बोली, 'आप मेरी चिंता न करे। मुझे दृढ विश्वास है कि मेरे वासुदेव की हत्या करनेवाला अवश्य अपनी मौत मरेगा!"

शैव्या रात्रि भर कृष्ण से प्रतिशोध लेने के बारे मे ही सोचती रही। उसे लगा कि शृगलव वासुदेव की आत्मा को कृष्ण की बलि पाकर ही सतोष होगा। और किसी प्रकार उन्हे शान्ति नही मिलेगी।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही नहा-धोकर वह अपने चाचा की मूर्ति की पूजा करने बैठी। बड़े भक्ति-भाव से प्रतिमा के आगे नतमस्तक हो उसने शक्ति की याचना की और बोली, "मेरे वासुदेव, अपने हत्यारे को मृत्यु प्रदान करो!"

बगल के खंड में माँ देवकी बालकृष्ण की प्रतिमा की पूजा कर रही थी। वे बड़े प्रेम से और ध्यानमग्न हो उनकी आरती उतार रही थीं। त्रिवक्रा मंजीरे बजाती हुई कृष्ण-भक्ति के गीत गा रही थी। उनकी आवाज सुनकर शैव्या ने नाक-भौं सिकोड़कर कहा "ये स्त्रियाँ भी कितनी मूर्ख हैं! कृष्ण के पीछे दीवानी हो रही हैं, बल्कि कृष्णमय ही बन रही हैं। वह कृष्ण जो मेरे चाचा का हत्यारा है।" तभी वसुदेव का कंठस्वर बाहर से सुनाई पड़ा। शैव्या कान लगाकर सुनने लगी। वसुदेव सारथी को रथ तैयार करने की आज्ञा दे रहे थे। वे कृष्ण को लिवा लाने वहाँ जा रहे थे जहाँ यादव सरदार रथ-स्पर्धा की तैयारी में तालीम ले रहे थे।

उसने सोचा, ये वसुदेव भी कृष्ण पर कितना स्नेह रखते हैं। कृष्ण लौटेंगे तभी सब पुरुष भोजन करने बैठेंगे। माँ देवकी अपने हाथ से परोसेंगी। कैसे विचित्र हैं ये लोग! करवीरपुर में तो ऐसे परिवार कहीं नहीं दिखाई पड़ते। यहाँ पर माता-पिता का सभी लोग अत्यंत आदर करते हैं। अपने से बड़ों के प्रति सभी का विनम्र भाव रहता है। कमा और वृहद्बाल इतने असंतुष्ट होते हुए भी कभी शिष्टाचार का त्याग नहीं करते।

क्षण भर के लिए अपने शत्रु कृष्ण की मोहिनी छवि शैव्या की आँखों के आगे छा गई। उनका सस्मित वदन, भावपूर्ण नयन, सुन्दर व्यक्तित्व, अपार शक्ति और अनन्त करुणा उन्हें असाधारण बना देती है। वे कितने विनम्र, कितने विवेकपूर्ण हैं। माँ देवकी कहती हैं कि कृष्ण भगवान हैं। मेरे चाचा तो दिन-रात स्वयं को भगवान घोषित करते रहते, परन्तु कृष्ण तो अपने मुख से भगवान होने का कभी कोई दावा नहीं करते। कहते हैं कि जब ये बालक थे, तब वृन्दावन की गोपियाँ इनकी प्रशंसा में गीत गाती थीं, इनके साथ नृत्य करती थीं। यहाँ पर भी ये सभी से समान स्नेहभाव रखते हैं। छोटे-से-छोटे आदमी के लिए भी इनके मन में उपेक्षा नहीं रहती। इस घर के दास-दासी भी कृष्ण को अपना ही समझते हैं।

ये तो मेरे भी बड़े भाई बनते हैं—दंभी कहीं के! मैं इतने-इतने

कठोर शब्दों का प्रयोग इनके लिए करती हूँ, और एक ये है कि इनके चेहरे पर कभी कोई शिकन नहीं ! बल्कि उल्टे मुझे ही प्रसन्न रखने की इनकी चेष्टा निरन्तर रहती है— कई बार मेरे लिए अमूल्य भेंटें भी लाते रहते हैं !

करवीरपुर के राजप्रासाद में तो सभी एक-दूसरे से झगड़ते रहते थे। स्निग्ध व्यवहार तो कोई जानता ही नहीं था। और एक यह वसुदेव का परिवार है—कितना भिन्न ! केवल कसा और वृहद यह मानते हैं कि कृष्ण दुष्ट है, फिर भी ऐसा किसी के सामने कभी कहते नहीं।

हाँ, मैं कृष्ण को धिक्कारती हूँ। कसा के खड में जो कटार पड़ी मैंने देखी थी उसे मैंने चुपके से उठा लिया। कसा का ध्यान उस ओर नहीं गया या तो जानबूझ कर वह अनजान बन गई। अब मैं कृष्ण की प्रतीक्षा करूँगी—वे आज शाम को या कल सवेरे मुझसे मिलने अवश्य आएँगे।

शैव्या माँ देवकी के पास गई। देवकी उस समय मध्याह्न भोजन के लिए तैयारी कर रही थी। शैव्या चुपचाप जाकर उनका हाथ बँटाने लग गई ताकि किसी को कोई सन्देह न हो।

आँगन एकाएक शोरगुल से भर गया। रथों की गड़गड़ाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट और पुरुषों की हँसी वातावरण में गूँज उठी। कृष्ण के कोमल और शान्त स्वर को शैव्या ने तुरन्त पहचान लिया। एक और परिचित स्वर भी उसे सुनाई पड़ा।

हाँ, वह श्वेतकेतु का ही स्वर था। श्वेतकेतु के आगमन के समाचार उसे मिल चुके थे। कभी वह श्वेतकेतु को बहुत चाहती थी। परन्तु इसी श्वेतकेतु ने उसके प्यार की परवाह न कर उसके साथ दगा किया—उसके और उसके वासुदेव दोनों के प्रति विश्वासघात किया। वह विचित्र उत्तेजना का अनुभव कर रही थी। कभी यह स्वर उसे अत्यन्त प्रिय लगता था। उसने तो सोच रखा था कि श्वेतकेतु शृगालव वासुदेव का सम्पूर्ण अनुचर बनकर रहे तो चाचा के आशीर्वाद प्राप्त कर वह उसका वरण करेगी। और श्वेतकेतु ने धोखा दिया—इस दुष्ट कृष्ण के लिए !

अब पुरुष भोजन करने बैठे। परिवार के प्रमुख के नाते वसुदेव मध्य में बैठे। उनके बाद उनके भाई और फिर कुटुम्ब के सभी बड़े-छोटे।

कृष्ण इन सबके बीच उद्धव के साथ बैठे। वे इन सब बातों में बड़े कुशल थे। श्वेतकेतु तो अब आचार्य थे इसलिए वे गर्गाचार्य और अन्य आचार्यों के साथ बैठकर ही भोजन कर सकते थे। परन्तु वे भी कृष्ण की ही बगल में बैठे।

कई महीनों में शैव्या ने श्वेतकेतु को नहीं देखा था। उनका व्यक्तित्व अब अधिक आकर्षक बन गया था। उनके गुच्छेदार बाल, काली दाढ़ी ललाट पर त्रिपुंड और व्याघ्रचर्म का कमरबंद अत्यन्त शोभायमान लगते थे। श्वेतकेतु की आँखें भी शैव्या को ही ढूँढ रही थीं। दोनों की आँखें मिलीं। शैव्या बिलकुल शीत और उदासीन दिखना चाहती थी, परन्तु श्वेतकेतु के देखते ही उसका दिल जोरों से धड़कने लगा। श्वेतकेतु मुसकराया। शैव्या ने निश्चय किया कि इस दगाबाज के सामने कठोर मुख-मुद्रा बनाए रखे, परन्तु न जाने किस प्रकार उसके बंद होंठों में मुसकान फूट ही पड़ी। वह बड़बड़ा उठी, "हे भगवान! यह श्वेतकेतु यदि कृष्ण का दास न बन गया होता और मेरे चाचा जीवित रहते तो हम दोनों करवीरपुर में कितने सुखी होते!"

अन्य स्त्रियों की भाँति वह परोसने का काम करने लगी। जब वह वहाँ आई जहाँ कृष्ण और श्वेतकेतु बैठे थे, तो उसका हृदय जोरों से धड़कने लगा। इनमें से एक की वह आज रात हत्या करनेवाली थी! और दूसरा अब उसका कहाँ रहा? परोसते-परोसते उसके हाथ काँपने लगे।

'ऐ छोटी बहन, खा-पीकर जब तुम निपट लोगी तब इस महान् आचार्य को तुमसे मिलाने के लिए मैं लाऊँगा," कृष्ण ने धीरे से कहा।

शैव्या को बड़ा क्रोध आया और हाथ की थाली कृष्ण के सिर पर पटक देने का मन हुआ। परन्तु कृष्ण हँस रहे थे। श्वेतकेतु का मुख लज्जा से लाल हो गया। "पहले भी जब मैं कुछ कहती तब यह शरमा जाता था। दुष्ट अब भी मुझे प्यार करता है!" शैव्या ने मन-ही मन कहा। बड़ी मुश्किल से वह अपने पर काबू रख सकी। उसे लगता था कि उसका हृदय कहीं अधिक ज़ोर से धड़कता-धड़कता फट न जाय!

पुरुषों का भोजन हो जाने के बाद स्त्रियाँ खाने बैठीं। शैव्या मुश्किल से दो-चार कौर खा सकी। भोजन के बाद उसने सोने का प्रयत्न किया, पर वह आँखें न मूँद सकी। अपने शत्रु और अपने द्रोही की प्रतीक्षा उसे

सतत विचलित कर रही थी, दुःख दे रही थी ।

बाहर पदचाप सुनाई पड़ा । वह उठ बैठी । एक बार फिर उसका हृदय जोरों से धड़कने लगा । त्रिवक्रा—कृष्ण की दासी उसे बुलाने के लिए आ रही थी । वह खड़ी हो गई—वस्त्रों और अलंकारों को ठीक किया । पीछे के उद्यान में आम्रवृक्ष के नीचे कृष्ण और श्वेतकेतु उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे ।

यह आम्रवृक्ष कृष्ण को बहुत प्रिय था । दिन में वे और उद्धव वहाँ बैठते, रात में वहीं सो रहते । अत्यधिक शीत या वर्षा के अतिरिक्त परिवार के अविवाहित युवक मैदान में ही सोते थे । शैव्या को मालूम था कि रात में कृष्ण कहाँ सोते हैं । आज मध्यरात्रि में वह वहीं जानेवाली थी ।

"देखो बहन, यह मेरे मित्र, गुरु और महाविद्वान् आचार्य श्वेतकेतु हैं," कृष्ण ने विनोद के स्वर में कहा, "इन्होंने कुंडिनपुर के भोज योद्धाओं को शिक्षा देने के लिए वहाँ एक आश्रम की स्थापना की है । ये तुम्हारे साथ विवाह करने के लिए इच्छुक हैं और तुम्हारा बड़ा भाई होने के नाते मेरी अनुमति लेने आए हैं । ये कहते हैं कि मुझे शैव्या से ही विवाह करना है, और इसके लिए अब प्रतीक्षा करने को ज़रा भी तैयार नहीं हूँ ।"

शैव्या ने कृष्ण की ओर रोषपूर्ण दृष्टि से देखा । इस समय इस द्रोही की उपस्थिति में विवाह की कोई बात करना उसे पसंद नहीं था ।

"त्रिवक्रा को और मुझे अब बहुत से काम हैं, इसलिए हम लोग जा रहे हैं," कृष्ण उसी तरह मज़ाक के लहजे में बोले, "और श्वेतकेतु, यदि कुछ कठिनाई का अनुभव हो तो इसे लेकर भाग जाना । बड़ा भाई होने के नाते मुझे पीछा करना पड़ेगा, परन्तु जा, मैं तुझे वचन देता हूँ कि मैं तेरा पीछा नहीं करूँगा ।" हँसते-हँसते कृष्ण चले गए । त्रिवक्रा ने भी उनका अनुसरण किया ।

शैव्या वृक्ष के चारों ओर बने चबूतरे के सामने दृढ़ता से खड़ी रही । कुछ देर तक वह या श्वेतकेतु किसी के मुँह से बोल नहीं फूटा ।

"शैव्या, कृष्ण की यह बात सच है कि मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकता । दिन-रात मैं तुम्हारे लिए तड़पता रहता हूँ । मैं तुम्हें अपनी पत्नी बनाने और कुंडिनपुर ले जाने के लिए आया हूँ," श्वेतकेतु ने कहा ।

"तुम झूठ बोलते हो !" शैव्या चिल्ला उठी, "तुम अपने प्रिय मित्र को यह समाचार देने आए हो कि राजा भीष्मक ने स्वयंवर की योजना की

है और इसमें उसे निमन्त्रित नहीं किया गया।'

"तुम्हारी जानकारी तो कुछ कम नहीं लगती। हाँ, मैं सम्राट् जरासंध द्वारा कृष्ण और मथुरा के यादवों का नाश करने के लिए रचे गए भयंकर षड्यन्त्र की खबर देने आया हूँ।"

"वह मर जाय तो अच्छा!" शैव्या ने दाँत पीसते हुए कहा, "तुम्हें इस मनुष्य में इतनी रुचि क्या है? इसी के लिए तुमने मेरे साथ दगा किया और इसी के लिए अब भीष्मक के साथ विश्वासघात कर रहे हो। तुम्हारा यह द्रोह तुम्हें कहाँ ले जाएगा?" शैव्या ने उत्तेजित होकर कहा।

"शैव्या, शैव्या, तुम कैसी बातें कर रही हो? तुम तो करवीरपुर के नियम ही यहाँ लागू करना चाहती हो!" श्वेतकेतु ने उदास होकर कहा।

"वे नियम तुम्हारे नियमों से अधिक अच्छे थे।

"होंगे। पर, यहाँ और बात है। हम लोग धर्म के लिए जीते हैं। हमारे पूर्वज धर्मप्रवर्तन के लिए जिए और मरे। हमारे राजा कभी धर्म की सेवा से विमुख नहीं होते," श्वेतकेतु ने कहा।

"मेरे चाचा का क्या कोई धर्म नहीं था? जरासंध क्या किसी धर्म का पालन नहीं करता?" शैव्या ने पूछा।

"नहीं!" श्वेतकेतु ने दृढ़ता से उत्तर दिया, "वर्षों से जरासंध धर्म की अवहेलना करता आया है। वह स्त्रियों की लज्जा लूटता है, पुरुषों को दास बनाता है, हत्याकांड करता है, आश्रमों को उजाड़ता है। अब हमारा तारनहार हमें मिला है।"

"यह गोविन्द—यह ग्वाला तुम्हारा तारनहार है? मेरे चाचा और स्वयं अपने मामा का हत्यारा—यही तुम्हारा तारनहार है?" शैव्या ने तिरस्कार से पूछा।

"तुम जब तक करवीरपुर की दुनिया से बाहर नहीं आती, तब तक तुम यह नहीं समझ सकोगी," श्वेतकेतु ने लाचार हो कर कहा, "देवों के प्रताप और मनुष्यों के सुख का आधार यही धर्म है। राजा की इच्छा धर्म नहीं। राजा तो केवल धर्म का साधन है। कंस और तुम्हारे चाचा दोनों ने धर्म का तिरस्कार किया था, अपनी इच्छा को ही उन्होंने शासन बना दिया था। जरासंध भी यही कर रहा है। धर्म का पुनः संस्थापन होना ही चाहिए,"

श्वेतकेतु ने अन्तिम वाक्य पर जोर देते हुए कहा।

"अब तुम जरासंध का नाश कर अपने मित्र को धर्म की स्थापना करने में मदद दोगे—यही न ?" शैव्या ने पूछा।

"नहीं, वह जरासंध को धर्म की मर्यादा में लाएगा।"

"मानो कि तुम्हारा मित्र इतना न जिए तो ?"

"यह कभी नहीं हो सकता," श्वेतकेतु ने श्रद्धापूर्वक कहा, "देवर्षि नारद और महर्षि वेदव्यास ने कहा है कि उसने अधर्म को निर्मूल करने के लिए जन्म लिया है। गुरुदेव और आचार्य गर्ग ने उसके विकास में योग दिया है। धर्मसंस्थापन में उसकी सहायता देने का उन्होंने वचन दिया है।"

"अच्छा, तो यह बात है!" शैव्या ने वक्र हँसी हँसते हुए कहा, "तो फिर तुम यह झूठी बात क्यों करते हो कि तुम मुझ से विवाह करने के लिए आए हो!"

"क्या तुमने हर बात को उल्टी समझने की कसम खा रखी है ? इस समय जो परिस्थिति पैदा हो गई है, उसमें मुझे तुम्हारे साथ की बड़ी आवश्यकता है। हम साथ-साथ कुंडिनपुर जाएंगे," श्वेतकेतु ने कहा।

"यानी कि तुम मुझे अपने मित्र की गंदी चाल की एक गोटी बनाना चाहते हो ?"

"शैव्या, तुम अपने हृदय से पूछो कि श्वेतकेतु ऐसी किसी चाल में शरीक हो सकता है ?" श्वेतकेतु ने भावनावश होकर पूछा, "प्रभास में प्रथम बार तुमसे भेंट होने के बाद मैं तुम्हारे प्रत्येक चरण की पूजा करता था। यदि तुम एक बार हाँ कह देती, तो मैं तुम्हारे साथ विवाह-बंधन में बंध जाता। मैं अब भी तुमको चाहता हूँ, तुम्हारी कामना करता हूँ, तुम्हारे लिए तरसता हूँ। और यदि तुम विवाह करने से इन्कार करती तो मैं तब तक तुम्हारी प्रतीक्षा करता जब तक कि यमराज स्वयं आ कर तुम्हारे स्नेह बंधन से मुझे मुक्त न कर देते! और कौन जानता है, यमलोक में भी शायद मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा करता रहूँगा!"

"पर, अब प्रतीक्षा मत करो, क्योंकि तुम्हारे मित्र को मेरी जरूरत है," शैव्या ने तिरस्कारपूर्वक कहा।

"मैं अब और राह देखने की स्थिति में नहीं हूं", श्वेतकेतु ने दृढ़ता से कहा, "हम दोनों मिल कर अपने जीवन का एक अनोखा कार्य करने-

वाले है ।"

"यह अनाग्वा कार्य फिर कौनमा है ?"

' कृष्ण का नाश करने के लिए जरामध ने चेदि के माथ मम्बध म्थापित करने का निश्चय किया है । हम लोग उमकी इम मुराद को कभी पूरी नही होने देगे । इसके लिए रुक्मिणी और शिशुपाल के विवाह को रोकना होगा ।"

"त्रिवक्रा मुझे बना रही थी कि रुक्मिणी तुम्हारे मित्र के प्रेम मे पडी है ।"

"हॉ, वह उमके प्रेम मे पागल वन गई है । पर, पहले तो मै इम झूठे म्वयवर को विफल बना देना चाहता हूँ । फिर कृष्ण के माथ रुक्मिणी का विवाह करने मे मुझे तुम्हारी महायता की आवश्यकता होगी," श्वेतकेतु ने कहा ।

"परन्तु तब तक यदि रुक्मिणी किमी और से विवाह कर ले तो ?"

' रुक्मिणी को मै अच्छी तरह मे जानता हूँ । वह दृढ मनोबल की म्त्री है । वह और किमी मे विवाह करने के बजाय मरना अधिक पमद करेगी ।"

"मभी म्त्रियॉ ऐमा ही कहती है और फिर जहॉ भी माता-पिता रिश्ता तय करते है, वही चली जाती है," शैव्या ने मुँह बिगाडकर कहा ।

"तुम तो मेरे मिवा और किमी से विवाह नही करोगी, न ?" श्वेत-केतु के कपित म्वर मे पूछा, "शैव्या, हम भूतकाल को भूल जाएँ और भविष्य पर दृष्टि रखे । मुझे तुम्हारी आवश्यकता है । मुझे तुम्हारी मदा आवश्यकता रहेगी । अब तो मेरे कार्य मे भी तुम्हारे सहयोग की जरूरत है ।"

"कृष्ण रुक्मिणी के माथ विवाह करना म्वीकार करेगा ?" शैव्या को अब इम बात मे रम आने लगा था ।

"तुम उमकी बहन हो, तुम्ही मना लेना न !" श्वेतकेतु हँम पडा ।

"देखो श्वेतकेतु !" शैव्या ने कहा, "मै तुम्हारे कृष्ण को धिक्कारती हूँ । मैं उसकी कोई महायता नही करूँगी । मेरा वम चले तो अपने चाचा के हत्यारे को मैं मृत ही देखूं । तुम्हारे माथ विवाह करने की भी मेरी कोई इच्छा नही । तुमने मेरे चाचा और मेरे माथ विश्वासघात किया है ।

मै तुमसे व्याह नही करूँगी—कृष्ण की बाजी का प्यादा बनने के लिए तो कभी नही। अब तुम जा सकते हो।"

"शैव्या, कृष्ण ने तुम्हे अधा बना दिया है।" श्वेतकेतु चबूतरे पर से उठ खडा हुआ और शैव्या की ओर देखते हुए बोला, "मै तुम्हारी ना तो सुनने वाला ही नही हूँ। कुछ दिन और मै यही हूँ और तुम्हे लेकर ही कुण्डिनपुर लौटूंगा—यदि तुम्हे जबरदस्ती उठा ले जाना पडा तो भी।"

'इस समय तो तुम चले जाओ।" शैव्या चीत्कार कर उठी। श्वेतकेतु की ओर पीठ कर वह चलने लगी।

'इस समय तो मै चला जा रहा हूँ, पर मै वापस आऊँगा—जरूर आऊँगा। तुम्हारा हृदय परिवर्तन न हो तब तक आता ही रहूँगा।" श्वेतकेतु ने कहा।

४१

शैव्या का वैर

श्वेतकेतु के चले जाने के बाद शैव्या बहुत देर तक विमूढ बनी चबूतरे पर बैठी रही। जिस स्थान पर वह जन्मी और जियी वहाँ के लोगो की रुचि सकुचित थी और जीवन का स्तर भिन्न था। उसे इस बात की कल्पना भी नही थी कि राजा की इच्छा के परे भी इस प्रकार नीति-शासन मे लोग जीवित रह सकते है। उसके चाचा की प्रसन्नता प्राप्त कर धर्म की उपेक्षा करने के बजाय नर्क मे रहना पसद करनेवाले आचार्यो की याद उसे आई। उसने सोचा यह दुनिया ही अजीब है, यहाँ कृष्ण जैसा हत्यारा तारनहार माना जाता है।

कृष्ण के विषय मे कुछ ऐसी बाते थी जो उसकी समझ मे नहीं आती थी। करवीरपुर को जीत कर उसने शक्रदेव को सौप दिया। करवीरपुर के लोग इस औदार्य की कल्पना भी नही कर सकते थे। कृष्ण ने रानी पद्मावती को भी अपनी सेवा करने के अपमान से बचा लिया था। यदि

वे ऐसा नहीं करते तो रानी के लिए आत्महत्या के सिवा और कोई उपाय नहीं था।

त्रिवक्रा थाली लेकर आई। उसमें मिष्ठान्न और अलंकार थे। उसने कहा, "माता देवकी ने यह सौगात भेजी है। उन्हें इसी समय मालूम हुआ कि तुम्हारी सगाई श्वेतकेतु से हुई है। यह जानकर वे बहुत प्रसन्न हुई हैं।"

"कौन कहता है कि मेरा विवाह श्वेतकेतु से होनेवाला है?" शैव्या ने रोष से पूछा।

"कृष्ण ने यह खबर दी।" त्रिवक्रा ने उत्तर दिया।

"कृष्ण, कृष्ण—बस सारा दिन कृष्ण! मैं श्वेतकेतु से विवाह नहीं करूँगी। कृष्ण क्या मुझे निकालना चाहता है? मैं उसे धिक्कारती हूँ!" शैव्या बोली।

त्रिवक्रा भी अपना सन्तुलन खो बैठी और तिरस्कार तथा क्रोध के स्वर में उसने कहा, "तेरी इस धिक्कार की बात सुनते-सुनते मेरे कान पक गए हैं। अब साफ़-साफ़ यह कह देती हूँ, उद्दंड बालक जैसा यह तेरा वर्ताव बर्दाश्त के बाहर हुआ जा रहा है। बहुत सह लिया अब सबने! तू स्त्री है—तुझे सत्य की प्रतीति जितनी जल्दी हो उतना ही तेरे लिए हितकारी होगा!" त्रिवक्रा अब क्रोधित हो गई थी। "सत्य यह है कि तू कृष्ण से ही विवाह करना चाहती है!"

"मैं और कृष्ण से विवाह करूँ? पागल हो गई क्या त्रिवक्रा?" शैव्या ने चौंककर कहा।

"नहीं, तू भी इस सत्य को जानती है। कृष्ण पर तेरी नजर कभी की गड़ी है।" त्रिवक्रा ने शैव्या पर रोषपूर्ण दृष्टि डालते हुए कहा, "तू जानती है कि कृष्ण तुझ से कभी विवाह नहीं करेगा। इसीलिए तू उसे धिक्कारती है।"

"तू दुष्ट है त्रिवक्रा! मेरे मन में ऐसा विचार तक नहीं उठा।" शैव्या त्रिवक्रा के कोप के उद्रेक से काँप रही थी।

"शैव्या, मैं बचपन से ही इस महल में बड़ी हुई हूँ। मैंने ये दिन यों ही नहीं गँवाए।" त्रिवक्रा ने तिरस्कार से कहा, "मैंने तुझे यह विष दिया है, उसे एक ही घूंट में पी जाने या पचा जाने का फ़ैसला तुझे ही करना है। या तो उसकी बहन रहकर ही संतोष मान, अथवा उसे सदा के लिए खो बैठ!

त्रिवक्रा ने कहा।

शैव्या का कंठ क्रोध से अवरुद्ध हो गया। वह एक शब्द भी आगे नहीं बोल सकी। फिर कुछ देर बाद स्वस्थ होकर बोली। "तू बार-बार जाकर कमा बुआ से कृष्ण की निन्दा-शिकायत करती है और उसकी सुनती है। वह तेरे मन में बूंद-बूंद जहर डालती है। मेरी बात मान वह जब बोले तब अपने कान बंद कर लिया कर! सुन रही है न? मेरी सलाह तेरे हित में है।" यह कह कर त्रिवक्रा ने उसके सामने थाली पटक दी।

त्रिवक्रा का क्रोध अब सीमा पार कर चुका था। 'अब अपनी प्यारी बुआ से मिले तो कहना कि यदि वह अपने लाडले को मथुरा का युवराज बनाना चाहती है, तो कृष्ण कहे वैसा करे। मा के आंचल में सिर छुपाए बैठा रहेगा, तो यादवों का युवराज नहीं बन सकेगा,' उसने जाते-जाते कहा।

त्रिवक्रा ने जिस प्रकार उसके अन्तमन की बात जान ली थी उससे शैव्या को आश्चर्य हुआ। पहले तो उसे लगा कि वह श्वेतकेतु से ही विवाह करना चाहती है, फिर सोचा कि यदि मेरे चाचा स्वेच्छा से कृष्ण को पसंद करते तो क्या वह उन्हें पति के रूप में स्वीकार करती?

"नहीं, नहीं हे भगवान, मैं कभी भी तुम्हारा द्रोह नहीं करूंगी। कृष्ण को मर ही जाना होगा!' उसने कहा। अपने कपड़ों की तह में छिपी कटार उसने उठा ली, उसकी ओर कुछ देर तक देखा और फिर उसे वहीं वापस रखते हुए बोली, "आज, आधी रात को।"

त्रिवक्रा ने उसे बुरी तरह चौंका दिया था। देवकी उस पर स्नेह करती थी। त्रिवक्रा निष्ठापूर्वक उनकी सेवा करती थी। वसुदेव उस पर ममता रखते थे। ये सभी कृष्ण को चाहते थे, इसलिए इसे भी चाहते थे। वह स्वयं विचित्र दुनिया में थी इस ग्वाले की इच्छा पर ही सब उसकी सभाल रखते थे।

वह विचारमग्न हो गई। धीरे-धीरे वह भान खोती गई। अर्द्ध-जागृत और अर्द्ध-स्वप्नावस्था में वह ऊपरी परिस्थिति से अपरिचित हो गई। दिन बीत गया, रात्रि हुई, फिर मध्यरात्रि आ पहुंची। वह विचार कर रही थी: अपने चाचा की आत्मा की शांति के लिए मुझे यह बलिदान देना ही होगा। उनके हत्यारे को मारकर मुझे वैर लेना है। जीवन में मुझे

अब और किसी बात मे रुचि नही रही—मात्र अपने मृत चाचा की आत्मा को शांति देनी है—और उन्हे शांति कृष्ण का बलिदान पाकर ही मिलेगी।

शैव्या ने कटार अपने हाथ मे ली, साडी मे उसे छिपाया और पीछे के आँगन मे चली गई। वहाँ वह कैसे पहुँची, इसका भी ख्याल उसे नही रहा। रात अँधेरी थी। धीरे-धीरे वह वहाँ पहुँची जहाँ कृष्ण सो रहे थे।

तारामो के प्रकाश मे उसने देखा कि उसका शत्रु बाहु पर मस्तक टिका कर सोया है। उसके होंठो पर मुसकान थिरक रही थी। वह सदा ही मुसकराता रहेगा—मृत्यु के मुख मे भी मुसकराता रहेगा। पर, अंत मे वह हँसता हुआ मुख अग्नि के अर्पित कर दिया जाएगा।

अब प्रतीक्षा करने का कोई अर्थ नही था। उसकी ओर देखना भी निरर्थक था। इसकी मनोहर मुखछवि शायद उसके निश्चय को डिगा दे। शैव्या का चित्त एक विचित्र स्मृति मे झकृत हो उठा। त्रिवक्रा कह रही थी कि मै इसके साथ विवाह करना चाहती हूँ। मै अपने चाचा की हत्या करने वाले व्यक्ति से कभी विवाह नही करूँगी। यदि सयोग कुछ भिन्न होते तो ! ओह, चाचाजी इस समय दूसरी दुनिया मे है, और वे इस तर्पण की प्रतीक्षा करते होगे।

उसने कटार उठा ली और सामने लेटी हुई काया पर वार किया—एक वार, दो वार, तीन वार। कोई प्रतिकार नही हुआ। एक भी चीख सुनाई नही पडी। खून भी नजर नही आया। वह यह देखने के लिए भी तब न रुकी कि आखिर हुआ क्या। कटार फेंक कर वह भाग गई।

आसपास का अधकार हटने लगा। वह घर मे गई माता देवकी बालकृष्ण की स्वर्ण-प्रतिमा को छाती से लगाए धरती पर पडी थी। वह तो अब मृत्यु के मुख मे चला गया। स्वय उसने—शैव्या ने यह जघन्य कर्म किया था।

शैव्या ने वसुदेव को देखा। वे सारे घर मे बावरे बन कर घूम रहे थे और पल-पल "हे कृष्ण ! हे कृष्ण !" की रट लगा रहे थे। वह वसुदेव के पास से भी भागी। वह जानती थी कि उनके दुःख का कारण वह स्वयं ही है।

उसे एक तीक्ष्ण शिशु-स्वर सुनाई पडा "भैय्या ! गोविन्द ! भैय्या !" उस स्वर को उसने पहचाना। यह तो उस हँसमुख बालिका सुभद्रा का स्वर है। सदा कृष्ण के हाथो मे ही खेला करती थी। हाँ

सुभद्रा का हृदय टूट गया। "भैय्या ! भैय्या !" पुकार कर वह रो रही थी। शैव्या अब इस रुदन को सुन नहीं सकती थी। कानों पर हाथ रख कर वह भागी।

उसे चारों ओर मृत देहें ही दिखाई पड़ी। उसने देखा, उद्धव मृत पड़ा है। उद्धव का हृदय आघात से निष्पंद हो गया था। श्वेतकेतु ने कटार खा कर आत्महत्या कर ली थी। वह जब उस पर झुकी तो वह मानो खड़ा हो कर उसकी आँखों में आँखें डालकर देखने लगा। श्वेतकेतु की आँखों में अभी भी वही स्नेह था। "शैव्या, तुमने तुमने ऐसा किया ! मेरे प्रिय कृष्ण की तुमने हत्या की ! यह मेरी ही हत्या थी, शैव्या !"

वह इन सबसे दूर भागी। उसके हृदय में असह्य पीड़ा हो रही थी। उसे लगा कि मानो शतसहस्रों दैत्य उसका पीछा कर रहे हैं। वह महल की ओर दौड़ी। उसे लगा कि शायद वहाँ उसे संरक्षण मिलेगा। परन्तु वहाँ भी शांति नहीं थी। द्वार पर महाराज और कितने ही अन्य लोग खड़े थे।

वह यमुना-तट की ओर दौड़ी। कृष्ण रोज इस नदी में स्नान करने आते थे। नदी के तीर पर भारी कोलाहल था। स्त्रियाँ और पुरुष रो रहे थे, छाती पीट रहे थे और शैव्या पर शाप बरसा रहे थे। वहाँ से भी वह लौट आई।

मात्र एक कंसा ही हँस रही थी। पर, वह भी क्या सचमुच प्रसन्न थी! वह तो इस प्रकार अट्टहास्य कर रही थी मानो पागल हो गई हो।

वृक्ष के नीचे बलराम हल टिका कर खड़े थे। वे अकेले ही खड़े थे। उन्होंने रोषपूर्वक शैव्या की ओर देखा। उनकी दृष्टि आग उगल रही थी।

जब वह दौड़ रही थी तब उसे बालकों का आक्रंद सुनाई पड़ा "कृष्ण, कहाँ हो ?" दूर-दूर से लोगों की आवाजें आ रही थीं, "हा कृष्ण, गोविन्द, हा नाथ !" और चारों ओर इनकी प्रतिध्वनियाँ गूँज रही थीं। इनमें से एक आवाज जो स्पष्ट सुनाई पड़ी। वह अक्रूर चाचा की थी। लोगों का कहना था कि अक्रूर ने कृष्ण का भगवत स्वरूप देखा था।

वह भाग रही थी, परन्तु कहीं भी ठहरने का स्थान दिखाई नहीं पड़ता था। उसके पैर अब थक चले थे, आवाज अवरुद्ध हो गई थी। आकाश लाल-लाल हो रहा था। मकान जल रहे थे। उसे लगा कि भगवान शंकर का तीसरा नेत्र खुल गया है और त्रिभुवन में आग लग गई है।

वह उस नगर से बाहर निकलना चाहती थी। उसने देखा कि नगर की दीवारें टूट-टूट कर गिर रही हैं। दीवारों के पार से एक कठोर आवाज आ रही थी 'कृष्ण की मृत्यु हो गई है।' शैव्या को न जाने क्या, यह आवाज जरासंध की ही लगी। 'धर्म की मृत्यु हो गई है' दसों दिशाओं में यही ध्वनि गूंज रही थी।

वह अब किसी ऊँचे स्थान पर खड़ी थी और वहाँ से मथुरा के खंडहरों को देख रही थी। गर्गाचार्य और सांदीपनि को हाथों में जंजीरें बाँधकर ले जाया जा रहा था। उनकी गति धीमी थी। उनकी आँखें निष्प्रभ हो गई थीं।

हाँ, यह सच था। उसके चाचा शृगालव वासुदेव की यह आज्ञा थी। उन्हें उनके हत्यारे के रक्त से तर्पण दिया गया था—उनकी आत्मा अब प्रसन्न थी।

शैव्या का कंठ अवरुद्ध हो गया। कृष्ण कहाँ है ? उसे मात्र एक ही बात का स्मरण था। एक जघन्य कार्य उसने किया है, पर वह कार्य क्या था, यह भी वह भूल गई थी।

उसने एक प्रज्ज्वलित चिता देखी, जिसकी अग्निशिखाएँ आकाश तक पहुँचती थीं। कपाल पर कुंकुम अर्चित कर एक रूपवती राजकन्या चिता पर आरोहण कर रही थी। वह कौन थी ? शैव्या ने उसे कभी देखा नहीं था। फिर भी वह परिचित-सी ही जान पड़ती थी। हाँ, उसका नाम तो याद नहीं आ रहा, पर श्वेतकेतु उसी की बात कर रहा था। उसने कृष्ण के अलावा और किसी से विवाह न करने का निश्चय किया था। अब यह राजकुमारी चिता पर आरोहण कर रही थी, क्योंकि शैव्या ने यह जघन्य कर्म किया था।

शैव्या सोच रही थी : सभी को तो कृष्ण की आवश्यकता थी। कोई भी कृष्ण के बिना जीवित नहीं रह सकता था। कृष्ण नहीं रहा, तो अब मैं भी जीकर क्या करूँगी! श्वेतकेतु भी उनके साथ चला गया। मेरे तो भाई भी न रहा और प्रेमी भी न रहा। मैंने ही यह नीच कर्म किया और त्रिभुवन रक्त-रंजित हो गया। मैं ही दुष्ट हूँ, धर्म की हत्या मैंने ही की।

उसने अपने हाथों की ओर देखा—उनसे रक्त चू रहा था। वह चीख पड़ना चाह रही थी, पर स्वर उसके कंठ से फूट नहीं रहे थे। उसका अंग अंग थर-थर काँप रहा था।

हवा मे ये शब्द गूँजते सुनाई पडे—"हा नाथ, नारायण, वासुदेव!" हाँ, यह माँ देवकी की आवाज थी। गजब है! यह उन्हीं की आवाज है! अभी मैंने उनको मृत देखा था।

हाँ, माँ अपने बालकृष्ण की पूजा करते समय सदा यही स्तुति करती हैं पर, अब वासुदेव कहाँ है

उसके हृदय मे भय का सचार हुआ। उसने चीत्कार करने का प्रयास किया, पर आवाज गले मे ही अटक गई। वह बैठ गई और अपनी आँखे मूँद ली। उसके हाथ काँप रहे थे। उसके मुख मे से एक ही शब्द बाहर आने को मचल रहा था 'वासुदेव।'

"डर गई क्या, शैव्या?" एक परिचित स्वरध्वनि उसे सुनाई पडी। अरे, यह तो वही आवाज है—पर यह कहाँ से आई? उसने आँखे खोली—उसकी यह भी समझ मे नही आया कि वह कहाँ है।

द्वार मे से अस्तमान सूर्य की किरणे आ रही थी। उनके सुनहरे प्रकाश मे उसने पीत वस्त्र देखा, पुष्पहार देखा, मोरपख देखा, लावण्य मे छलकते शरीर को देखा, सदा विलसती मुसकान को देखा, अपूर्व ममत्व से पूर्ण नयन देखे, उनके हाथो मे सदा प्रसन्न रहनेवाली सुभद्रा थी।

उनके पीछे श्वेतकेतु खडा था।

"कृष्ण!" शैव्या ने किंचित् भय और कुछ सात्वना के साथ कहा। उसने अपने मस्तक पर हाथ रखा। ऐसा लगता था कि वह फट जाएगा।

"हाँ, बहन! क्या हुआ तुम्हे?"

इस स्नेह स्निग्ध वाणी को सुनकर भी वह उनसे आँख न मिला सकी। वह किसी भ्रम मे तो नही है न? उसे अब किसी बात पर श्रद्धा नही थी। उसके पैर काँप रहे थे। 'मैंने ही यह दुष्ट कर्म किया है' यही शब्द उसे सर्वत्र सुनाई पड रहे थे।

इस समय तो वे जीते-जागते उसके सामने खडे थे।

"शैव्या! उठ! मैं कृष्ण हूँ। उठ!" यह आवाज सुनाई पडी।

वह बावरी बनकर जागी और एकाएक अपना मस्तक कृष्ण के चरणो पर रख दिया।

"शैव्या, रो मत! मैं यही हूँ!" उनके शब्दो मे सात्वना थी।

कृष्ण ने सुभद्रा को भूमि पर रखा। शैव्या के पास बैठकर उन्होने उसका हाथ अपने हाथ मे लिया, उसकी आँखो पर आई लटो को हटाया

और अपना दाहिना हाथ उसके मस्तक पर रखा।

"शैव्या, रो मत! हँस। यह मेरी आज्ञा है," उन्होंने स्नेह-सिक्त मृदु स्वर मे कहा, "तू कब विवाह करना चाहती है?"

सुभद्रा धीरे-धीरे डग रखती हुई आई और पीछे से उस पर झुक कर उसके बाल खीचकर बोली, "शैव्या बहन!"

"गोविन्द, गोविन्द," शैव्या ने कहा। अब भी उसकी सुबकियाँ थम नही रही थी। उसने अपना मस्तक कृष्ण के कधो पर रखकर कहा. "गोविन्द, अभी मुझे यह मत पूछो—कृपा कर अभी नहीं। आप जैसा कहेंगे वैसा ही मैं करूगी।"

"कोई बात नहीं, शैव्या! तुम जब भी विवाह करना चाहोगी तभी विवाह होगा।"

"भगवान, भगवान," शैव्या बोली—उसकी आवाज मे रुदन और हास्य का मिश्रण था। वह फिर एक बार कृष्ण के चरणो मे गिर पडी।

४२

शरणागति

त्रिवक्रा बचपन से ही राजमहल के षड्यत्रो से परिचित थी। वह काफी सतर्क रहती थी। कुछ भी उसकी दृष्टि से छिपा नही रहता था। सभी रहस्यों की गध उसे आ जाती थी। अवसर आने पर प्रशसा करने, चुटकी लेने और मसनेवाले को चुप कराने से भी वह कभी चूकती नही थी। वह माँ देवकी का दाहिना हाथ थी। वसुदेव के पाँच भाइयो, उनकी पत्नियो, पुत्रो, पौत्रो इत्यादि के विशाल परिवार की सारी देख-रेख उसके जिम्मे थी।

इतना होने पर भी त्रिवक्रा की रुचि कृष्ण पर केन्द्रित थी। शैव्या आई तब से उसे अच्छी नही लगती थी। शैव्या अत्यत सुदर थी परिवार मे अनेक युवक थे, इसलिए भी उसका आना उसे पसद नही आया। फिर, शैव्या के तेज मिजाज से भी वह तग आ गई थी। उसका ख्याल था कि

देवकी के शांत निवासस्थान में ऐसी उच्छृंखल स्त्री को स्थान नहीं मिलना चाहिए। इस पर कृष्ण के प्रति शैव्या का तिरस्कार और द्वेष उसे फूटी आँखों नहीं भाता था। उसे विश्वास हो गया कि यह श्याम रंग की सुंदरी भली स्त्री नहीं। मन-ही-मन वह उसे खब धिक्कारती थी।

त्रिवक्रा को कृष्ण के बारे में भी चिंता रहती। कृष्ण ने जब कंस का वध किया तब त्रिवक्रा ने रुक्मिणी को देखा था। तब से कृष्ण की वधू के रूप में वही उसके मन में बस गई थी। उसने रुक्मिणी के हृदय में कृष्ण के प्रति आदर की भावना में वृद्धि की थी। कृष्ण की सिद्धियों की सूचना रुक्मिणी तक पहुँचाने का कोई भी अवसर उसने नहीं खोया। यही कारण था कि करवीरपुर की इस राजकुमारी का आगमन उसे अधिक भाया नहीं। यह सच था कि शैव्या कृष्ण से असीम प्रेम करती थी, परन्तु वह यह भी जानती थी कि स्त्रियों के इस प्रकार के द्वेष को आकर्षण का आवरण बनते देर नहीं लगती। उसे कृष्ण का व्यवहार भी अच्छा नहीं लगता था। वे शैव्या को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देते थे। वे उससे मिलने रोज आते, उसकी उच्छृंखलता को मधुर मुसकान के साथ सह लेते और इस पागल लड़की के साथ बड़े स्नेह से बातें करते। त्रिवक्रा हरदम यही सोचती रहती कि इससे पहले कि इस आकर्षण का कोई और परिणाम सामने आए, उसे कुछ करना चाहिए।

उद्धव जब मथुरा आया तब से वह शैव्या के साथ कैसा बर्ताव करता है, यह भी त्रिवक्रा ताड रही थी। उद्धव शैव्या से दूर रहता, परन्तु दूर रहने के लिए उसे जो प्रयास करना पड़ता वह त्रिवक्रा की तेज नजरों से छिपा नहीं रहा। वह शैव्या से आँख भी नहीं मिलाता। सामने पड जाने पर भी नजर चुरा लेता। एक बार कृष्ण ने उद्धव की जो टीका की थी, उससे त्रिवक्रा सब-कुछ भाप गई थी। उसने एक दिन बातों-ही-बातों में ऐसे पूछा, मानो कुछ हुआ ही नहीं हो, "भगवान, उद्धव कुछ बदला हुआ-सा दीखता है!"

"इसकी चिंता न कर, त्रिवक्रा! उसके रोग की दवा बहुत दूर नहीं!" कृष्ण ने कहा, और उनके कथन का आशय त्रिवक्रा समझ गई।

उसने बिलकुल अनजान बनकर उद्धव को कई प्रश्न पूछे। शैव्या के बारे में प्रश्नों का उत्तर नहीं देने अथवा उसका नाम भी नहीं उच्चारने के उद्धव के प्रयत्न को वह देख सकी। त्रिवक्रा ने शैव्या और उद्धव को एक-

न्वित करने का प्रयत्न किया। परतु प्रत्येक बार जब वह शैव्या के रूप की प्रशसा करती तो उद्धव चुप हो जाता और चला जाता।

त्रिवक्रा ने निश्चय कर लिया कि कृष्ण को बचाने के लिए भी उद्धव को शैव्या के साथ विवाह कर लेना चाहिए। परिवार में उद्धव के विवाह की चर्चा चल रही थी। परन्तु कृष्ण के साथ उसके परिभ्रमण पर निकल जाने के बाद यह बात भुला दी गई थी।

शैव्या का मिजाज जब ठीक होता, तब त्रिवक्रा उद्धव के बारे मे उससे बात करती। शैव्या ने एक बार कहा था "यह उद्धव भला आदमी है। यदि यह न होता तो मथुरा पहुँचते-पहुँचते मै भूखी-प्यासी मर जाती। जब वह कुकुद्मीन के साथ चला गया था तो मैं दुःखी हो गई थी। अब भी देखो न, वह कृष्ण के पीछे रात-दिन फिरता रहता है, पर मेरे साथ बात करने की उसे पल भर भी फुर्सत नही।" त्रिवक्रा के लिए यह अभिमत उत्साहवर्धक था—परन्तु स्वय उद्धव उदासीन था। वह तो कोई-न-कोई काम का बहाना निकालकर हरदम बाहर ही रहता।

परिस्थिति नियत्रण के बाहर जा रही थी। त्रिवक्रा को, जो कुछ हो रहा था, वह जरा भी अच्छा नही लगता था। तभी श्वेतकेतु रुक्मिणी का सदेश लेकर आया। वह शैव्या से विवाह करना चाहता है, यह जान कर त्रिवक्रा ने उसके बारे में सब पता लगा लिया। उसने बात-ही-बात मे एक दिन उद्धव से कहा, "यह श्वेतकेतु तो शैव्या से विवाह करने के लिए ही आया जान पडता है।" उद्धव ने इसका कोई उत्तर नही दिया। परन्तु त्रिवक्रा को यह समझते देर न लगी कि तीर निशाने पर ही लगा है।

इसके बाद वह श्वेतकेतु से मिली और उसे भी बातो-ही-बातो मे बता दिया कि उद्धव शैव्या से विवाह करने के लिए इच्छुक है। शैव्या को भी उससे सहानुभूति है। परन्तु दोनो में से कोई श्वेतकेतु का हृदय दुखाना नही चाहता, इसलिए दोनो दुखी है।

श्वेतकेतु के लिए यह सूचना अचिन्त्य आघात पहुँचानेवाली थी। वह शैव्या को एक निष्ठा से चाहता था। उसे देवी मानकर पूजता था। शैव्या के साथ विवाह करने के सपने वह वर्षो से सजोता आया था। शैव्या की सहायता लेकर ही तो वह कृष्ण का रुक्मिणी से व्याह रचाने और इस प्रकार जरासध के मथुरा पर षड्यत्र को निष्फल करने की

सोचता था। उसे लगा कि वह स्वयं छिन्न-भिन्न हो रहा है।

श्वेतकेतु का हृदय ईर्ष्या से चूर-चूर हो गया। क्या उद्धव ही उसे हटाकर शैव्या से विवाह करेगा? यह तो अतिक्रूर प्रहार होगा। अब उसे जीवन के प्रति कोई आकर्षण न रहा। महत्त्वाकांक्षाओं का अब क्या अर्थ था? उसने व्यथित हृदय से सारी परिस्थिति पर उदारतापूर्वक दृष्टि डाली। कामदेव की लीला न्यारी है। वह स्त्री और पुरुषों को पागल कर सकता है। शैव्या सुन्दर और सरस स्त्री थी, परन्तु जब से करवीरपुर में उसने द्रोह किया तब से वह उसे धिक्कारने लगी थी। उद्धव संयमी और निष्ठावान है। वे दोनों एक दूसरे की ओर आकर्षित हुए तो इसमें मात्र कामदेव का ही दोष है।

श्वेतकेतु शैव्या को हृदय से चाहता था। इसलिए उसे यही सोचना था कि शैव्या किस प्रकार सुखी हो। उसका अपना जीवन तो समाप्त-प्राय था। उसे तो अब आजीवन ब्रह्मचारी ही रहना होगा। उसे तो बस यही देखना है कि शैव्या इससे सुखी हो। शैव्या को उद्धव से अच्छा पति और कौन मिलेगा? उद्धव मुझसे भी अच्छा व्यक्ति है। वह कितना उदास रहता है! अब इसका रहस्य समझ में आया। वह अलग-अलग रहता है, स्नेह भी दिखाने की कोशिश करता है, पर पहले जिस सहज भाव से मिलता था, वैसे अब नहीं।

उद्धव सचमुच ही महान् है। उसने मित्र के लिए शैव्या के साथ अपने प्रेम का बलिदान करने का निश्चय किया है। यदि उद्धव और शैव्या दोनों एक-दूसरे की कामना करते है, तो वह क्यों बीच में आए? उसे तो दूर हटकर उन्हें सुखी करना चाहिए। आखिर, उद्धव उसके छोटे भाई जैसा ही तो है!

श्वेतकेतु अपने जीवन के अवशेषों पर करुणा भरी दृष्टि डाल रहा था। वह आचार्य बनने के सपने देखता था, परन्तु शैव्या को देखकर उसके आकर्षण के कारण गुरु का त्याग किया। उसमें अपार महत्त्वाकांक्षा थी, परन्तु जब उसने शृगलव वासुदेव की आज्ञा का अनादर कर कृष्ण के साथ लड़ना अस्वीकार किया, तब से वह भी चूरचूर हो गई। वह राजनीति में पड़ने गया—शैव्या की मदद लेकर जरासंध को छकाना चाहता था, पर अब तो शैव्या ही उसकी नहीं रही। उसके भाग्य में जीवन की भस्म ही शेष रही थी।

वह ब्राह्मण था। विद्या का उसने वरण किया था। आयुधकला में भी वह कुशल था। यदि वह ब्राह्मण का गौरव पुन प्राप्त कर सके तो जीवन के भग्न खंडहरों में भी वह अडिग रह सकता है। यह ब्राह्मणत्व तपस् में—इन्द्रियों के आकर्षण और सिद्धि की आशा से परे होने में था। करवीरपुर में शृगालव वासुदेव की कृपादृष्टि और शैव्या की प्रेमदृष्टि प्राप्त करने के प्रयत्नों ने उसे पामर बना दिया था। उसके पास न रहा ब्रह्मतेज, न रहा क्षात्रतेज। उसे शृगालव से सत्ता प्राप्त करने और शैव्या से विलास पाने की इच्छा थी, पर आज कुछ भी नहीं रहा।

पर अब श्वेतकेतु को अपना स्वत्व प्रकट करने का अवसर मिला था। उसे शैव्या को लेकर अपनी निर्बलता का त्याग कर देना चाहिए और उद्धव तथा शैव्या को सुखी बनाना चाहिए। कृष्ण के साथ रह कर उसे धर्म के लिए लड़ना चाहिए। अहं को जीतकर उसे गुरु सांदीपनि जैसा बनना होगा। निर्भय और निर्मम बनकर उसे मात्र धर्ममय जीवन बिताना चाहिए।

श्वेतकेतु ने निर्णय कर लिया कि अब उसे क्या करना होगा। वह उद्धव को लेकर गुरु के निवास-स्थान के पीछेवाले छोटे-से वन में गया।

"उद्धव, प्रिय सखा, मेरा एक काम करो," श्वेतकेतु ने बड़ी मुश्किल के साथ अवरुद्ध कंठ से कहा।

"काम ? मैं तो सदा तुम्हारी सेवा में ही हाजिर हूँ। जब चाहो, आजमा लो !" उद्धव को श्वेतकेतु की बात में कुछ आश्चर्य और कौतुहल भी हुआ।

"तुम जैसे थे वैसे ही बने रहो—जैसे कि हम करवीरपुर में मिले तब थे।"

"क्यों, मुझे क्या हुआ है !" उद्धव ने स्वस्थ दिखाने का प्रयत्न करते हुए कहा, पर उसके हृदय की बात मित्र से छुपी न रह सकी।

"हमारे बीच कोई भेद नहीं रहना चाहिए," श्वेतकेतु ने सिर हिलाते हुए कहा, "तुम बदल गए हो, और ··और उसका कारण शैव्या है।"

"शैव्या !" उद्धव ने कृत्रिम आश्चर्य से पूछा।

"मैं सब जानता हूँ, उद्धव ! तुम दोनों को एक-दूसरे के प्रति प्रेम है। मात्र आर्य पुरुष होने के नाते तुम अपने मित्र के साथ द्रोह नहीं कर

सकते । इसी से प्रियजन का त्याग करने को तत्पर हो । शैव्या भी मुझको दिए गए अपने वचन का भंग करना नहीं चाहती," श्वेतकेतु ने कहा ।

"परन्तु तुम्हें किसने ऐसा कहा ? किसने ये बातें तुम्हारे दिमाग में भर दीं ?" उद्धव ने सहज उत्तेजित होकर पूछा । उसकी मान्यता थी कि उसके हृदय का घाव भर गया है । परन्तु श्वेतकेतु के इन शब्दों से यह घाव फिर ताजा हो गया ।

"मैं जानता हूँ कि तुम दोनों संयमी हो, पर कामदेव बड़ा निर्दय है । मैं तुम लोगों के बीच में आना नहीं चाहता । मैं तुम्हारे लिए शैव्या का परित्याग करता हूँ, भाई !" श्वेतकेतु ने कहा । उसका अवरुद्ध कंठ उसकी किसी निर्बलता को प्रकट न कर दे, इसलिए उसने होंठ भींच लिए ।

उद्धव आश्चर्य-मुग्ध हो ये बातें सुन रहा था । अपने हृदय की धड़कन तक उसे सुनाई पड़ती थी । क्या वह शैव्या को प्राप्त कर सकेगा ? परन्तु दूसरे ही क्षण उसे लगा कि श्वेतकेतु शैव्या को संपूर्ण हृदय से चाहता था । उसका यह बलिदान वह कैसे स्वीकार करे ?

"किस विचार में पड़ गए उद्धव ?" श्वेतकेतु ने पूछा । "तुम शायद मेरी हताशा का ख्याल कर रहे हो । यह सच है कि मैं शैव्या को चाहता था । उसे अपनी पत्नी बनाने के सपने सजोता था । परन्तु तुम शैव्या के लिए अच्छे पति बन सकोगे । वह तुम्हारे साथ विवाह कर शूर कुल की कुलवधु बनेगी । इस गरीब ब्राह्मण की कुटीर में यह राजकन्या सुखी नहीं हो सकेगी । हाँ, देवभाग की पुत्रवधु के रूप में वह अवश्य सुखी होगी ।"

"फिर तुम्हारा क्या होगा ? तुम्हारी आशाओं का मन्दिर क्या भग्न नहीं हो जाएगा ? क्या इस प्रकार तुम अपने जीवन का बलिदान नहीं दे रहे हो ।

"अपने सुख की इमारत मैं अपने दो अति प्रिय स्वजनों के दुख पर खड़ी नहीं कर सकता । इसके लिए जो भी त्याग मुझे करना पड़ेगा उसके लिए मैं तैयार हूँ," श्वेतकेतु ने कहा ।

उद्धव ने हँस कर कहा, "श्वेतकेतु, मैं स्पष्ट कहूँ ! तुम्हें जिसकी सर्वाधिक कामना है, उसका त्याग तुम कर रहे हो—केवल मेरे लिए—पर जो कुछ तुम मुझे अर्पित कर रहे हो उसका त्याग मैं कभी का कर चुका हूँ ।

तुम्हारा हृदय किस तरह तडफड़ा रहा है, यह मुझसे छिपा नहीं है। मेरा हृदय भी भग्न हुआ था, परन्तु उसका घाव अब भर गया है। मैं भी अपने सुख का महल तुम्हारी निराशा की नींव पर नहीं बनाना चाहता। इस चंचल भावी की निरर्थकता कृष्ण ने मुझे समझाई थी। कृष्ण के शब्द अब भी मुझे याद है मानवश्रेष्ठ कभी भी विचलित नहीं होता। कोई भी शिकायत किए बिना सहन करते जाने की शक्ति उसमें रहती है।'

"हमें एक-दूसरे के योग्य बनना चाहिए। पर, उद्धव, तुम क्षत्रिय हो। कृष्ण के श्रेष्ठ मित्र हो। मैं तुम्हारे हृदय को विदीर्ण कर जीवित नहीं रह सकता। मैं ब्राह्मण हूँ, इस जगत के आकर्षण का त्याग करना ही मेरा धर्म है," श्वेतकेतु ने कहा।

अचानक पीछे से त्रिवक्रा ने प्रवेश किया। वह रोषपूर्वक बोली . "मूर्खो! तुम शैव्या का सौदा कर रहे हो?" दोनों मित्र आश्चर्य से खड़े हो गए। परन्तु शैव्या तुम्हारे बारे में क्या सोचती है, इसकी खबर तुम्हें है? उसने कृष्ण को पसंद किया है और कृष्ण ने भी उसे स्वीकार कर लिया है…"उसने कटुता से कहा और तेजी से चली गई।

उद्धव और श्वेतकेतु दोनों एक-दूसरे का मुख निहारने लगे।

"स्त्री! विधाता की सृष्टि का अजीब जीव है!"

"और कृष्ण! मुझे तो वह भी विचित्र लगता है!" उद्धव ने आश्चर्य-सहित कहा।

"बहन, मैं खुश हूँ कि आज तुम्हें नया अवतार मिला है," कृष्ण ने आसन लेते हुए कहा। उनकी गोद में सुभद्रा बैठी थी।

"भगवान, मुझे बहन न कहें! मैं आपकी दासी हूँ, चरण की रज हूँ! मैंने अब तक आपकी कितनी निन्दा की, कैसे-कैसे अपशब्द आपको कहे! आपकी हत्या तक का विचार किया!" शैव्या ने कहा। उसके स्वर में प्रायश्चित के भाव थे।

"मैं इसी क्षण की प्रतीक्षा करता था। मुझे विश्वास था कि यह घड़ी आएगी ही। हाँ, मेरे अनुमान से कुछ पहले अवश्य आई," कृष्ण ने कोमल स्वर में कहा।

"तुम्हारा निर्माण विजयिनी होने के लिए हुआ है। तुमने रोष और

द्वेष पर विजय प्राप्त की है। अपनी आत्मा मे से तुमने हिंसा की भावना को निकाल दिया है। बहुत कम सन्त ऐसा कर सकते है," कृष्ण ने कहा।

"मैंने कुछ नही किया प्रभु—यह सब आपकी ही कृपा है।"

"नहीं, तुमने ही अपने आत्मबल मे वासनाओं पर विजय प्राप्त की है। अपनी भावी के विषय मे तुम्हे स्वय ही निर्णय करना है,' कृष्ण ने कहा।

"भगवान, आपकी इच्छा ही मेरा निर्णय होगा," शैव्या ने समर्पण के भाव मे कहा।

"नही, अपनी इच्छा के अनुसार ही निर्णय लो।"

"मेरा मार्गदर्शन कीजिए प्रभू!" शैव्या ने कहा, "मुझे पति के रूप मे किसे वरण करना होगा?"

"तुम किसके साथ विवाह करना चाहती हो? उद्धव के साथ या श्वेतकेतु के साथ!" कृष्ण ने मुसकराकर पूछा।

"श्वेतकेतु ने मेरे साथ विश्वासघात किया!" शैव्या मे फिर एक बार पुरानी कटुता भडक उठी। पर, स्वय को नियन्त्रित करते हुए उसने हँसकर पूछा, "भगवान, मुझे कोई तीसरे व्यक्ति को चुनने का अवसर नही देगे?"

"यदि इस तीसरे व्यक्ति को तुम सुखी कर सको तो अवश्य यह अवसर तुम्हे दे सकता हूँ।'

"यदि आपको ऐसा विश्वास हो जाए तो मुझे यह अवसर देगे न? मुझे वचन दीजिए!" शैव्या ने आकर्षक मुसकान बिखेरते हुए कहा।

"जब तक तुम्हारी पसदगी का पात्र मै न होऊँ तब तक अन्य किसी को पसन्द करने की छूट तुम्हे मैं देता हूँ।" कृष्ण शैव्या का आशय समझ गए थे।

शैव्या भडक उठी। "तुम्हे क्यो नही? मैने वरण कर लिया है मैं आपकी दासी हूँ!" उसने दृढता से कहा।

'मै जानता हूँ कि मै तुमको एक ही प्रकार से सुखी कर सकता हूँ—तुम्हारा भाई रहकर!" कृष्ण ने कहा।

"आप मुझे पत्नी के रूप मे स्वीकार नही कर सकते?" शैव्या ने पूछा।

"शैव्या, मै यह भी नही जानता कि मै किसी भी पत्नी को सुखी कर सकूँगा या नही। करवीरपुर की राजकुमारी जैसी गर्वीली स्त्री को सुखी

करना मेरे बूते के बाहर है। मैं बहुतेरों का हूँ—और इनमें भी अधिक धर्म का हूँ। इस घडी—और यह स्थिति कब तक बनी रहेगी यह मैं खुद नही जानता—मैं विवाह करने को प्रस्तुत नही," कृष्ण ने कहा। फिर क्षण भर रुककर गम्भीर वाणी मे बोले, "शैव्या, तुम्हारे रक्त मे राजधर्म बहता है। मेरी बात तुम्हारी समझ मे आएगी। इस समय एक-एक क्षण मेरे लिए जोखिम भरा है। मथुरा पर और यादवो पर घोर विपत्ति के बादल मँडरा रहे है। अधर्म अपना हिंसक मुख प्रसारित कर सभी को—विशेषकर मुझे तो—ग्रसने को तत्पर है। विराट सत्ताधारी मेरा विनाश करना चाहते है। और सभी का स्नेह पाकर भी मुझ अकेले को ही उनसे लडना है, क्योंकि द्वेष की शक्तियों को एकत्रित करने का काम मेरा नही।"

"हाँ, यह मैं जानती हूँ। मैं स्वय आपके शत्रुओ के हाथ मे निमित्त बन गई थी," शैव्या ने कहा।

"मेरे इस सघर्ष मे तुम उद्धव या श्वेतकेतु किसी की पत्नी बनकर सहायता कर सकती हो। दोनों व्यक्ति अच्छे है, वीर पुरुष है।"

"इन दोनो मे से किसी के साथ मैं विवाह नही कर सकूँगी," शैव्या ने कहा। उसकी आँखो मे एक चमक आ गई। "क्या आप भी मेरा उपयोग एक निमित्त के रूप मे करना चाहते है ?" उसने पूछा।

"सभी महापुरुष धर्म के निमित्त बनकर ही जिये है। मैं भी धर्म के लिए ही जीवित हूँ।"

"इन दो पुरुषो मे से आपके लिए कौन अधिक उपयोगी हो सकता है ? यह मत भूलिए कि मैं आपकी दासी हूँ और आपके शब्द मेरे लिए आज्ञा के समान हैं।"

"तुम जिसे पसन्द करो उसी से विवाह कर सकती हो—एक मेरे सिवाय," कृष्ण ने हँसकर कहा।

"यह सच है कि श्वेतकेतु जरासघ के षड्यन्त्र को निष्फल बनाने का प्रयत्न कर रहा है, और आप क्या यह समझते है कि कुडिनपुर मे मैं आपकी अधिक सहायता कर सकूँगी ?" शैव्या ने पूछा।

"यदि तुम जरासघ के षड्यन्त्र को निष्फल बनाने मे मदद करो, तो मथुरा के यादवो को तुम भय से मुक्त कर सकोगी। तुम उनकी मुक्ति-दाता बन जाओगी !"

करवीरपुर के सत्ता और प्रभाव के दिनो मे जैसी दिखाई पडती थी

वैसी ही चमक शैव्या की आँखो मे दिखाई पडी ।

अचानक द्वार पर माँ देवकी आकर खडी हो गई । उनकी-आँखें सजल थी । उनके पीछे त्रिवक्रा खडी थी । उसकी आँखे भी रो-रोकर फूल गई थी । उसने देखा कि कृष्ण शैव्या की ओर देखकर मुसकरा रहे थे और शैव्या की आँखो मे एक अद्भुत चमक थी । माँ देवकी ने खभे का सहारा ले लिया ।

"कृष्ण, कृष्ण, यह मै क्या सुन रही हूं ?" माँ ने पूछा ।

कृष्ण और शैव्या दोनो खडे हो गए । शैव्या ने माँ का चरणस्पर्श किया ।

कृष्ण माँ की क्षुब्धता का कारण समझ गए । उन्होने शैव्या से कहा, "बहन शैव्या, माँ को अपना निर्णय सुनाओ ।"

"तुम किससे विवाह करना चाहती हो ?" माँ ने पूछा । कृष्ण ने शैव्या को बहन कहा, इसलिए वे असमजस मे पड गई ।

"माँ, मै अभी विवाह करना ही नही चाहती !" शैव्या ने स्वस्थता से कहा, "मै पहले करवीरपुर जाकर अपने चाचा की ओर से क्षमा माँगूँगी । सर्वप्रथम मुझे हृदय शुद्धि की साधना करनी है । आचार्य श्वेतकेतु के साथ कुडिनपुर जानेवाले सघ मे मै शामिल हो जाऊँगी ।"

माँ हँस पडी । त्रिवक्रा की ओर विजय की मुसकान फेककर वे बोली, "झूठी कही की ! क्या मै अपने पुत्र को नही पहचानती ?"

"माँ, तुम्हारे पुत्र के भाग्य मे अभी लडकी बदी ही नही है," कृष्ण ने प्रसन्नमुख मुसकराते हुए कहा ।

४३

रुक्मिणी को धर्म का रहस्यबोध

रुक्मिणी के क्रोध का पार नही था। सारी बाते ही उल्टी हो रही थी। उसके स्वयवर की तैयारियाँ जोरो से चल रही थी । दादा कौशिक ने तो कुछ भी

सहायता करने में अपनी असमर्थता प्रकट कर दी थी। भीष्मक स्वभाव से ही निर्बल थे। रुक्मिणी का क्रोध या उसके आँसू रुक्मी के विरुद्ध कुछ भी आवाज उठाने में उन्हें प्रेरित नहीं कर सके।

रुक्मी ने अपनी बहन का विवाह चेदिराज दामघोष के पुत्र शिशुपाल से करने का निश्चय कर लिया था। इसके बदले में उसे सम्राट् जरासंध की पौत्री अश्वनी से विवाह करने का अवसर मिल रहा था। योजना सुनियोजित थी, भली प्रकार कार्यान्वित की जानेवाली थी। राजाओं को निमन्त्रण भेजे जा चुके थे। सभी राजप्रतिनिधि भी अपने-अपने राजाओं के लिए पूर्व तैयारियाँ करने नगर में आ चुके थे।

रुक्मिणी ने एक बार तो कुएँ में भी गिर जाने की सोची—परन्तु दूसरे ही क्षण उसे कृष्ण का स्मरण हुआ। कृष्ण के साथ जीवन बिताने को मिले तो वह धन्य हो जाए! उसने अभी आशा नहीं छोड़ी थी। कृष्ण की चमत्कारिक शक्तियों की अनेक कथाएँ उसने सुनी थीं। उसे विश्वास था कि कृष्ण अवश्य आएँगे और उसे उबार लेंगे। इसीलिए तो उसने त्रिवक्रा के साथ और त्रिवक्रा के जरिए माता देवकी के साथ सतत सम्पर्क बनाए रखा था। इसीलिए उसने आचार्य श्वेतकेतु का आश्रय स्थापित करने के लिए पिता और दादा पर जोर डाला था। अन्तिम उपाय के रूप में उसने तरुण आचार्य को मथुरा भेजकर कृष्ण को शीघ्र आने के लिए कहलाया था। परन्तु श्वेतकेतु कोई स्पष्ट आश्वासन लिए बिना ही लौट आए थे। एकमात्र आश्वासन वे यही लाए थे कि कृष्ण इस मिथ्या स्वयंवर और राजकुमारी के उसकी इच्छा के विरुद्ध सौदा किए जाने का विरोध करेंगे। परन्तु मथुरा में ही कृष्ण के लिए परिस्थिति विषम बन गई थी, और रुक्मिणी को बचाने के लिए कृष्ण युद्ध छेड़ेंगे, इसकी सम्भावना बहुत कम थी।

परन्तु श्वेतकेतु के साथ आई राजकुमारी शैव्या रुक्मिणी के लिए प्रेरणा का स्रोत बन गई। वह करवीरपुर जा रही थी, पर मार्ग में उसने कुछ दिन कुंडिनपुर में मुकाम किया था। रुक्मिणी शैव्या को देखते ही उसकी ओर आकर्षित हो गई थी। कुछ ईर्षा भी उसके मन में जागी। यह रमणीय और चित्ताकर्षक युवती कृष्ण के संसर्ग में रही है, शायद उसने कृष्ण का चित्त-हरण कर लिया हो। परन्तु जब उसने शैव्या के समक्ष अपना हृदय खोला तब वह तत्काल रुक्मिणी की सहायता करने को तत्पर हो

गई ।

"रुक्मिणी, तुम्हारी यह निराशा मिथ्या है !" शैव्या रुक्मिणी से कोई चार वर्ष ही बडी होगी, पर उसने बडी बहन की अदा से कहा, "एक बात अच्छी तरह समझ ले । यदि तुम्हारी इच्छा अडिग होगी तो तुम्हे कोई आँच नहीं आएगी ।" शैव्या के शब्दो मे सत्य की करुणा मिश्रित झकार थी ।

"पर, तुम्हे मालूम है कि यहाँ क्या हो रहा है !" रुक्मिणी ने अधीरता से कहा, "यहाँ सब-कुछ तैयार है । एकाध महीने मे सभी राजकुमार आ जाएँगे । स्वयवर की तिथि निश्चित हो गई है और उसी दिन मेरे भाई और जरासध के दुष्ट व्यूह की वेदि पर मेरा बलिदान दे दिया जाएगा ।"

"तुम बलिदान बनने से इन्कार कर सकोगी ?"

"यदि कृष्ण मेरी सहायता को नही आते तो मेरे लिए फिर नदी या कुएँ का ही आश्रय बच जाएगा !" रुक्मिणी ने कहा ।

"तुम मे गोविन्द के प्रति इतना अनुराग कैसे हुआ ?" शैव्या ने पूछा ।

"उन्हे देख लेने के बाद मै यही भूल गई कि मै क्या हूँ," रुक्मिणी ने सच्चे हृदय से कहा ।

"हाँ, उनकी मोहिनी ही ऐसी है" शैव्या ने हँसकर कहा, परन्तु इस हास्य मे करुणा का पुट था । रुक्मिणी इसका कारण नही समझ सकी ।

रुक्मिणी ने कहा, "उन्होंने जब कस और चाणूर का वध किया तब मैंने उन्हे देखा था आँधी के बीच मरुतो को आज्ञा देते हुए इन्द्र के समान प्रतापी वे दीख रहे थे । माता देवकी के आश्लेष मे जब वे स्नेहपूर्वक समा गए तब भी मैंने उनको देखा था । उसी क्षण मै उनकी हो गई । तब से रोज रात को मै उनके सपने देखती हूँ । हवा मे लहराता उनका मोरपख मेरे हृदय मे बस गया है । उनके पीछे मै कितनी पागल हो गई हूँ इसका तुम्हे ख्याल भी नही हो सकता । तुम तो स्वस्थ हो, पर मै नही ।"

उत्तर मे शैव्या ने फिर एक बार करुणा भरा स्मित किया । उसके मुँह से एक हल्की-सी नि.श्वास भी निकल गई । उसने प्रयत्नपूर्वक हँसते हुए कहा, "परन्तु वे इस समय किसी से विवाह करेंगे नही ।"

"क्यो ?" रुक्मिणी ने पूछा, "उनके और मेरे बीच मे क्या बाधा है ? मेरे लिए तो गोपाल ही एक वर है और सब अवर है ।"

"उन्हे अपनी ही कोई समस्या है । मुझ से तो वे ऐसा ही कह रहे थे ।"

रुक्मिणी का गौर अंग ईर्षा से रक्तिम हो गया। वह बोली, "मुझ से कोई कह रहा था कि कृष्ण स्त्रियो मे बडी जल्दी फँस जाते है।"

"ईर्षा न करो, राजकुमारी! मैं तो मात्र उनकी दासी हूँ," शैव्या ने उदास होकर आँखें मूँद ली।

"ऐसा कहो न, कि तुमने उन्हे जीत लिया है!" रुक्मिणी के स्वर मे रूखापन था।

"राजकुमारी, यह तुम्हारी भूल है—उन्हे जीतना ही मेरा लक्ष्य हो तो अभी मेरे सामने बहुत लबा मार्ग है।"

"तुमने ऐसा किस आधार पर कहा कि वे स्वय इस समय विवाह नही करना चाहते?" रुक्मिणी ने शैव्या का रहस्य जान लेने के लिए सीधा सवाल किया।

"उन्होने मुझसे कहा कि अधर्म अपना मुँह खोले उन्हे निगल जाने को तत्पर है। फिर तुम राजकुमारी हो, वह मात्र ग्वाला है। वे किसी भी स्त्री का जीवन नष्ट करने को तैयार नही," शैव्या ने कहा।

"मुझे तो विश्वास था कि वे अभय है। उन्हे किसका भय है?" रुक्मिणी ने पूछा, क्या ही अच्छा होता यदि मैं मात्र ग्वालिन होती। मैं उनके साथ खेतो मे जा सकती—उनके लिए घी दूध मक्खन ला पाती। कहते है कि वृन्दावन की गोपियो ने यही किया था—वे कैसी भाग्यवान थी! पर, मैंने तो राजकुमारी बनकर जन्म लिया—अपनी राजकीय प्रतिष्ठा की बदिनी बनकर, जरासंध की शतरज का एक प्यादा बन कर "

"इतनी उत्तेजित न हो, रुक्मिणी!" शैव्या ने कहा, "उन्हे जीतने के लिए तुम्हे स्वस्थ बनना होगा।"

"जिस पर मैंने अपनी सभी आशाएँ केन्द्रित कर रखी है, क्या वे मुझे बचाने नही आएँगे?' रुक्मिणी एकाएक असहाय, निराधार बन गई।

शैव्या हँस पड़ी। उसने कहा, "राजकुमारी, तुमने उनके योग्य बनने के लिए क्या किया?'

"योग्य बनने के लिए? क्यो कुडिनपुर की राजकुमारी उनके योग्य नही?"

"एक ग्वाले के लिए?"

"क्षमा करो!" रुक्मिणी ने नम्रतापूर्वक कहा, "मै मूर्ख थी—राज-

कुमारी बनना मुझे अच्छा नहीं लगता। फिर भी यह भुलाना भी मेरे लिए मुश्किल है कि मैं राजकुमारी हूं। मैं मूर्ख हूं!" रुक्मिणी की आंखों में अश्रुओं की अविरल धारा बहने लगी।

"एक रहस्य की बात बताऊं रुक्मिणी?" शैव्या बोली, "यदि तुम चाहो, हृदय से चाहो कि कृष्ण तुम्हारी सहायता करें, तो सहायता किए बिना वह रह ही नहीं सकते।"

"मैं तो यही मनाती हूं कि वे मेरी रक्षा करें!"

"नहीं रुक्मिणी इसे इच्छा नहीं कहा जाएगा। करवीरपुर में मैं त्यक्त थी, दुष्ट, जिद्दी और स्वेच्छाचारी थी। वे मेरी मदद को आए।'

'किस प्रकार?"

"मेरा कोई न था—गोविंद ने मुझे वसुदेव जैसे पिता और देवकी जैसी माता दी। मैं उसकी हत्या करने—अपने चाचा की मृत्यु का बदला लेने की कामना करती थी। वे मेरी सहायता को आए, और मुझे शुद्ध किया। मेरी वैर-भावना को निर्मूल कर दिया।"

"मुझे तुम पर ईर्ष्या आती है, शैव्या! मैं चाहती हूँ कि वे मुझे भी शुद्ध करें!"

"जब तक तुम्हारा रोम-रोम इसके लिए पुकार न उठे, तब तक कोई लाभ नहीं होगा।"

"तुम्हारा रोम-रोम इनके लिए पुकार उठा था?" रुक्मिणी ने शैव्या का हृदय टटोलते हुए पूछा।

"हाँ मैं उन्हें धिक्कारती थी, उनकी हत्या करना चाहती थी मेरे हृदय की एक-एक धड़कन इस प्रकार उन्हें भज रही थी। इसी से वे आए और मुझे मेरे द्वेष से मुक्त किया," शैव्या ने कहा।

रुक्मिणी हँस पड़ी। "मैं तो यह सोच बैठी थी कि वे तुमसे विवाह करना चाहते होंगे!"

"प्रत्येक युवती हृदय से चाहती है कि वे उसके साथ विवाह करें। त्रिवक्रा भी युवा और अपरिणीत होती तो उसकी भी यही इच्छा होती। परन्तु वे तो तभी विवाह करेंगे जब कि · "

"जब कि?" रुक्मिणी ने अधीर होकर पूछा।

"जब कि उनके जीवन-धर्म में सहचारिणी बन सके, ऐसी पत्नी उन्हें मिले।"

"यदि मैं वैसी बन सकी तो ? अभी-अभी मैं गायों में हेत करने गौ-शाला गई थी पर वे तो मेरी ओर आँखें निकालती हैं ! यदि मैं शीघ्रता से हट न जाती तो उनमें से कोई मेरी हड्डियाँ ही तोड़ डालती ! उन्हें जीतने के लिए मैं कुछ भी करने को तैयार हूँ।"

"अपनी जान पर खेल कर भी !"

"हाँ, हाँ ! पर उनका जीवनधर्म क्या है ? यह मैं नहीं जानती।"

"यह मैं बताती हूँ। वे इस सृष्टि में धर्म की स्थापना करना चाहते हैं।"

"तब तो मैं उनके लायक ही नहीं। मुझे तो यह भी पता नहीं कि धर्म क्या है और अधर्म क्या है !"

"पर, तुम अधर्म का नाश करने में तो उनकी सहायता कर सकती हो।"

"मैं दुर्जय परशुराम नहीं ! हाथ में परशु लेकर मैं दुष्ट राजाओं के मस्तक नहीं छेद सकती।"

"पर, तुम अधर्म के साथ लड तो सकती हो न ! तुम्हारे पास अधिक शक्तिशाली अस्त्र है। जरा विचार कर देखो !" शैव्या ने कहा, "धर्म का कट्टर शत्रु कौन है ?"

"मेरा भाई" रुक्मिणी ने कहा।

"तुम्हारा भाई तो इस प्रचंड आँधी में तिनके के समान है। वास्तविक शत्रु तो जरासंध है। वह सभी धर्मों का तिरस्कार करता है। उसके अत्याचारों का शासन सर्वत्र है। वह राजाओं को बंदी बनाता है, अथवा उनका नाश करता है। दुष्टों और पापियों को उसके यहाँ आश्रय मिलता है।"

"वह मेरा भी शत्रु है," रुक्मिणी ने कहा, "मेरी तो इच्छा होती है कि उसका वध कर डालूँ। एक बार तो मैंने यह भी सोचा कि स्वयंवर में मैं उसे ही पसंद करूँगी और विवाह के बाद प्रथम मुलाकात में ही उसका गला घोंट दूँगी।"

शैव्या ने हँसकर कहा, "ऐसे पागल ख्यालों से क्या फायदा ? इनसे कुछ नहीं होगा। यदि तुम सचमुच कृष्ण की सहायता करना चाहती हो तो यह दृढ निश्चय कर लो कि शिशुपाल से व्याह कभी नहीं करोगी।"

"मैं चेदि के इस मूर्ख राजकुमार का वरण कभी नहीं करूँगी।"

"अर्थात् अयोग्य पति को अस्वीकार कर योग्य से विवाह करोगी–

यही न ? कृष्ण तुम्हे ऐसा करने को नही कहते ।"

"और मै क्या कर सकती हूँ ।"

"इस मिथ्या स्वयवर की पोल खोल दो !" शैव्या ने कहा ।

"पर इससे तो कृष्ण मेरे पास नही आएँगे !"

"आएँगे," शैव्या ने कहा, 'यदि मैं उन्हे जान सकी हूँ तो वे अवश्य आएँगे—तुम्हे जीतने नहीं, पर धर्म की स्थापना करने और मिथ्या स्वयवरो द्वारा राजकुमारियो के अनिच्छा से विवाह करने के अधर्म का नाश करने ।"

"पर तब भी क्या वह मेरे साथ विवाह करेंगे !"

"शायद करे भी—यदि तुम अपना सर्वस्व उनके जीवन-कार्य मे होमने को तैयार हो जाओ तो !" शैव्या ने कहा ।

"तुम जानती हो न कि गाये और अश्व उनके स्पर्श के लिए लालायित रहते हे । इसी प्रकार उनको चाहनेवाले स्त्री-पुरुष भी उनके लिए अपने प्राण अर्पण करने को तैयार रहते हे ।"

"बहन, मुझे तुम पर ईर्ष्या होती है । तुम कृष्ण को कितना जान पाई हो ?"

"यदि तुम चाहती हो कि वे तुमसे विवाह करे तो तुम्हे स्वय को अनेक दास-दासियो की कक्षा मे रखना पडेगा । त्रिवक्रा और शैव्या, उद्धव और श्वेतकेतु, माता देवकी और नन्ही सुभद्रा सभी कृष्ण को चाहते हं । वे सूर्य है, उनकी स्नेह किरणे उन सभी को प्राप्त हो सकती है जिन्हे प्रकाश और ऊष्मा की आवश्यकता है ।'

"अर्थात्, यदि मै उनसे विवाह करूँ तो मेरा पति सभी को प्रकाश देनेवाला होगा !" रुक्मिणी ने कृत्रिम निराशा का भाव लाते हुए कहा ।

"हाँ, सभी को उनकी इच्छानुसार प्रकाश देनेवाला ! पर, तुम उनके कार्य मे सहधर्मचारिणी बनने को तैयार हो ?"

"यदि मै हो सकी तो !"

"धर्म के लिए मृत्यु का भी वरण करने को तैयार होओ, तो तुम्हे धर्म के लिए जीना नसीब होगा । एक बार मेरे सामने उन्होने उद्धव को यही कहा था ।"

कुछ दिन बाद शैव्या अपने सघ के साथ करवीरपुर के लिए रवाना हो गई ।

४४

कन्या और गऊ

शैव्या के चले जाने के बाद रुक्मिणी विचारों में खो गई। वह सदा राज-परिवार की कन्या होने का गर्व अनुभव किया करती थी। शैव्या के साथ हुई बातचीत ने इसी गर्व पर आघात किया था। वह कृष्ण की ओर आकर्षित हुई थी। कृष्ण की चमत्कारिक सिद्धियों की बातों ने इस आकर्षण को प्रेम में पलट दिया था। उसे विश्वास था कि यदि वह अपने पिता और दादा को विवाह का प्रस्ताव भेजने के लिए राजी करे तो कोई भी व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सकता। वह स्वयं राजकन्या है। कृष्ण तो यादवों के नायक के द्वितीय पुत्र हैं। इसलिए यदि बात चलाई जाए तो 'गोपाल' नाम से पुकारे जानेवाले कृष्ण को लेशमात्र भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए। परन्तु अब उसे मालूम हुआ कि 'गोपाल' को प्राप्त करना कितना कठिन है। उसने उनके चरणों में शीश नवाया और बदले में अनादर ही मिला। क्षण भर तो उसे लगा कि वह इसी भाग की है।

उसकी आँखों में अश्रु छलक आए। शिशुपाल से विवाह करने की उसकी ज़रा भी इच्छा नहीं थी। कृष्ण भी उसे नहीं स्वीकारेंगे, और यदि स्वीकार किया भी तो गोपियों और शैव्या के बीच बँटा हुआ प्रेम ही उसे मिलेगा। विधि कितनी क्रूर है!

परन्तु इस घनश्याम की मोहन मूरत को भूल जाना भी कहाँ सम्भव है! कंस को यमद्वार पहुँचानेवाला प्रतापी किशोर अथवा माता की बाहुओं में समा जानेवाला किशोर—ये दो रूप उसके मन पर से हटते ही नहीं थे। उन्होंने त्रिवक्रा को सुडौल बनाया, नागलोक में यम को जीता, गुरु सांदीपनि के पुत्र का उद्धार किया, पंगु गरुड को दौड़ने लायक बनाया, रुक्मी के बाण को चक्र से चूर किया, सम्राट् जरासंध के प्राण बचाकर नमित किया, द्वेष और रोष से पूर्ण अपना वध करने की इच्छुक शैव्या के मन को विष मुक्त-किया।

कृष्ण के एक के बाद एक कई चित्र उसकी आँखों के आगे तैरने लगे। उसे लगा कि कृष्ण के जीवन में कुछ चमत्कारिक तत्त्व अवश्य है। ऐसे पुरुष की पत्नी बनना सद्भाग्य ही कहा जाएगा—फिर चाहे वह राजा हो

या गोपाल, या मथुरा छोड़कर भाग जानेवाला ही क्यों न हो!

रुक्मिणी परिस्थिति को समझने का प्रयत्न कर रही थी। श्वेतकेतु और शैव्या से हुई उसकी बातचीत से मालूम होता था कि मथुरा में कृष्ण के शत्रु उनका नाश करना चाहते हैं। जरासंध भी उनका वध करने को तड़प रहा है। वह स्वयं भी उनके नाश के लिए बिछी शतरंज का प्यादा मात्र है। और, वे अकेले हैं—आन्तरिक और बाह्य खतरों के बीच एकाकी हैं। उसका हृदय तड़प उठा—मुझे कृष्ण के पार्श्व में रहना चाहिए, कृष्ण की रक्षा करनी चाहिए।

एकाएक उसके चित्त में सत्य का उदय हुआ। स्वत्र उसके आसपास ही जरासंध की व्यूह रचना की गई थी। उसकी निराशा अदृश्य हो गई। उसने विजयी स्मित किया: 'गोपाल, तुम चाहे जितने दुष्ट भले ही होओ —मैं तुम्हारे व्यक्तित्व के सूर्य की सभी किरणें अपने में समा लूँगी और उन्हें प्रतिबिम्बित करूँगी। यदि इसमें मृत्यु भी आए तो क्या?" उसने कहा।

रुक्मिणी खड़ी हो गई, अपना अश्रुभीगा मुख धोया। फिर वस्त्र बदल कर अपने पिता राजा भीष्मक से मिलने गई। भीष्मक और युवराज रुक्मी झरोखे में बैठकर स्वयंवर की तैयारियों का अवलोकन कर रहे थे। उन्होंने रथ आते देखा, रुक्मिणी को उसमें से उतरते देखा। दोनों में से किसी को रुक्मिणी का इस प्रकार आना भाता नहीं था। जब भी वह आती तब झगड़ती—भाई बहन के बीच विवाद होता और अन्त में रुक्मिणी रो पड़ती।

आज उसके चेहरे पर गाम्भीर्य झलकता था। भीष्म ने दीर्घ श्वास ली। यह कोई नहीं जानता था कि रुक्मिणी की गंभीरता में से कब तूफान फट पड़ेगा। उसकी भौंवें तनी हुई थीं। उसने आते ही कहा, "पिताजी, मुझे बेच देने की आपकी योजना पूरी हो गई?"

"तू ऐसी बातें क्यों करती है?" भीष्मक ने कहा, "हम यह सब तेरे भले के लिए ही तो कर रहे हैं।"

"हाँ, हाँ—अपना भला एक मुझे ही तो नहीं मालूम!" रुक्मिणी ने कटुता से कहा।

"पुत्री को अपने कुल की प्रतिष्ठा का ख्याल रखना चाहिए। तुम अन्तःपुर में क्यों नहीं बैठी रहती?" रुक्मी ने भौंवें चढ़ाकर कहा, "तुम्हें

अच्छा तो कुछ लगता ही नही।"

"मैं सब जानती हूँ, पर मेरा सौदा करने से कुल की प्रतिष्ठा बढ़ेगी नही, घटेगी ही !" रुक्मिणी ने कहा।

"भोजकुल की प्रतिष्ठा को चोट पहुँचे, ऐसा कोई काम हम नही कर रहे !" रुक्मी ने कहा।

"तुम अपने मित्र शिशुपाल के साथ क्या मेरा विवाह नहीं करना चाहते ?" रुक्मिणी ने साहस कर पूछा और अपने भाई की ओर एकटक घूरने लगी।

"पिताजी, इस लडकी मे कोई विवेक-विचार ही नही," रुक्मी ने अपने पिता की ओर मुड कर कहा, "यह इतना भी नही जानती कि इसका भला किसमे है और किसमे नही।"

'अच्छा !" रुक्मिणी ने गुस्से मे कहा, "तो सुनो सयानो के सरदार !" उसने रुक्मी जैसी ही आवाज निकालते हुए कहा, "रुक्मिणी ही इस परिस्थिति मे उपयोगी सिद्ध हो सकती है। जरासध महान् सम्राट् है। उनकी प्रतिष्ठा अब रही नही। उनके जामाता का एक ग्वाले ने वध किया है। मैं रुक्मी, विदर्भ का उत्तराधिकारी, ही उसका स्थान ले सकता हूँ।" यह कहकर रुक्मिणी ने अपने भाई की तरह ही मूछो पर ताव दिया, और छाती फुलाई। रुक्मी अपनी बात करते समय ऐसा ही करता था।

"बेवकूफ कही की !" रुक्मी बोला।

"मैं बुद्धिमानी की बात कह रही हूँ" रुक्मिणी ने कहा और फिर रुक्मी की ही आवाज मे बोली, "महान सम्राट् जगत मे हास्यास्पद हो गए। एक ग्वाले को भी वह पकड नही सके। बल्कि उस ग्वाले ने ही उनके प्राण बचाए। मै रुक्मी, परशुराम का महान् विद्यार्थी, सम्राट् की प्रतिष्ठा को पुन स्थापित करूँगा और उनका दाहिना हाथ बनूंगा।"

भीष्मक इन भाई-बहन मे से किसी को नियत्रण मे नही रख सकते थे। ऐसे प्रसगो पर वे चुप रहना ही श्रेयस्कर समझते।

"अब तुम चुप भी रहोगी या नही ?" रुक्मी बोला।

"तुम सुनोगे या नही ?" रुक्मिणी ने पूछा और फिर रुक्मी का अनुकरण करते हुए बोली, "तू राजनीति को क्या समझे ? नादान छोकरी ! जा अतंपुर मे जा। तू तो मात्र गऊ है, और मै अच्छी-से-अच्छी कीमत पर तेरा सौदा करने को तैयार हूँ। मै तुझे शिशुपाल को सौपूँगा। इसमे दामघोष

मेरी पकड में आ जाएगा। मै सम्राट् की पौत्री अप्नवी के साथ विवाह करूँगा। मैं सभी का स्वामी वनूँगा और जरासंध की विराट सेना का सेनापति !"

रुक्मी क्रोध में भरकर उठ खडा हुआ।

"इस तरह चले मत जाओ, भाई !" रुक्मिणी ने व्यंग से कहा, "यदि तुम मेरी बात सुनो तो कूटनीति का एकाध पाठ मैं तुम्हें और सिखा सकती हूँ।" फिर एक बार और रुक्मी की नकल करते हुए बोली, "यह गऊ का सौदा जरासंध के मित्रो में कडी बन जाएगा। अवनी विदर्भ के आधीन है, वह साम्राज्य से निकल नही सकेगा। मैं रुक्मी, अपनी बहन द्वारा चेदि पर अंकुश रखूँगा, यद्यपि मेरी बहन कुछ बिगडे दिमाग की है।'

"हाँ, तू बिगडे दिमाग की ही है," रुक्मी चीख उठा।

रुक्मी की नकल इतने अच्छे ढंग से की गई थी कि भीष्मक हँस पडे। उन्होंने कहा, 'रुक्मिणी, नकल तू बडी अच्छी करती है, बहुत ही मजेदार !"

"पिताजी, आपने ही रुक्मिणी को सिर पर चढा रखा है !"

परन्तु भीष्मक को आज के विवाद में आनन्द आ रहा था। वे बोले, "रुक्मिणी को कोई नही बिगाड सकता, वह जन्म से ही ऐसी है।"

"तो सुनिए, पिताजी !" रुक्मिणी ने फिर एक बार छाती फुला और मूँछो पर ताव देकर कहा, "सुन ए मेरी बेवकूफ बहन ! मैं जरासंध और उसके मित्र शिशुपाल, शाल्व, विंद तथा अनुविंद की सेनाओ को संगठित करूँगा !" और रुक्मी की नकल करते हुए अपनी छाती ठोकी।

बहुत अच्छे ! तू तो बडी मँजी हुई नट है !" हँसते-हँसते भीष्मक की आँखो में आँसू आ गए।

"मैं रुक्मी, बडा मँजा हुआ कूटनीतिज्ञ हूँ। मैं ऐसी व्यवस्था करूँगा कि वह बूढा दामघोष हमारे बीच में दखल न दे सके। फिर मथुरा पर चढाई करूँगा और उस गोपाल को पकडकर उसका गला काट दूँगा ! रुक्मिणी ने फिर नकल करते हुए कहा।

रुक्मी को लगा कि उपहास में भी उसका सारा रहस्य प्रकट हो रहा है, इसलिए वह क्रोध से काँपने लगा। "हाँ, मैं ऐसा ही करूँगा, ठीक ऐसा ही !" उसने चिल्लाकर कहा और इस प्रकार आगे बढा मानो रुक्मिणी को मारने जा रहा हो।

रुक्मिणी अपने आसन से खड़ी होकर एक कदम आगे बढ़ी। इससे रुक्मी जहाँ था वहीं रुक गया। "और मैं रुक्मी, अपने पिता से कहूँगा कि अब आप बहुत राज कर चुके। अब इस महल में शांति से बैठे रहो। विदर्भ का राजा मैं बनूँगा। मैं राजसूययज्ञ करूँगा, और सभी नरेशों के मस्तक मेरे चरणों में झुकेंगे। मैं रुक्मी, चक्रवर्ती सम्राट् बनूँगा!"

रुक्मी के मुँह में फेन आ गए। रुक्मिणी ने उसका सारा भेद खोल दिया। जैसे-तैसे वह बोला, "अब यह बकवास बंद कर!"

"नीचे बैठ, और मेरी बात सुन, भाई! तुझे बहुत-कुछ सीखने को मिलेगा।" रुक्मिणी ने रुक्मी को धकेलकर नीचे बैठाया और नकल करते हुए फिर बोली, 'जब सम्राट् की मृत्यु होगी तो मैं उनका साम्राज्य अपने राज्य में मिला लूँगा। और यह सब संभव है, क्योंकि मेरे पास एक गऊ जैसी बहन है, जिसको मैं शिशुपाल को बेच सकता हूँ।'

और रुक्मिणी तब तक हँसती रही जब तक कि उसकी आँखों में आँसू नहीं आ गए। फिर भीष्मक की ओर मुड़कर वह बोली, "पिताजी, क्या मैं मात्र गऊ नहीं? यह मेरा भाई है, जिसका दिमाग बिगड़े साँड की तरह है। और पिताजी, यदि आप ही जरासंध के जाल में फँस गए तो आपको भी ये लोग कहीं का नहीं रखेंगे। मेरी बात सुनिए, मेरी मानिए!" उसने दोनों हाथ जोड़कर कहा। एकाएक उसकी वाणी में गंभीरता आ गई।

"मैं क्या कर सकता हूँ, रुक्मिणी? मुझे कुल की प्रतिष्ठा रखनी है। मैंने स्वयंवर का आयोजन किया है और थोड़े ही दिनों में अनेक राजा कुंडिनपुर पहुँच जाएँगे।"

"तो फिर अपना पति मुझे ही पसंद करने दें! ऐसा छल न कीजिए मेरे साथ!" रुक्मिणी ने कहा।

भीष्मक ने उसे शांत करते हुए कहा, "तब तो तू कभी सही चुनाव नहीं करेगी, पुत्री!"

"यदि आप कृष्ण वासुदेव को निमंत्रण देंगे-तो मैं सही चुनाव करूँगी। सारी दुनियाँ उनके चमत्कारों की बातें करती है।"

"पुत्री! तेरा सिर फिर गया मालूम होता है। मैं उसे स्वयंवर में कैसे बुला सकता हूँ? तू राजकुमारी है, तेरा विवाह एक नायक के पुत्र के साथ नहीं हो सकता।"

"वे सम्राट् से भी अधिक महान् हैं। उन्होंने सम्राट् को प्राणदान दिया

था," रुक्मिणी बोली।

"उसके कुटुंब अथवा उसके दर्जे की ओर तो देख! उसे निमंत्रण भेजा जाय तो कोई राजवंशी स्वयंवर में भाग नहीं लेगा", भीष्मक ने कहा।

"मान लो कि मैंने स्वयंवर में किसी को पसंद नहीं किया, तो?"

"तो अतिथि राजाओं का अपमान होगा, और वे हमसे लड़ाई ठान लेंगे।"

"यदि मैं स्वयंवर मंडप में ही मर जाऊं तो भी वे युद्ध करेंगे?"

भीष्मक ने लाचारी में पुत्री को हाथ जोड़े। "बेटी, ऐसे अपशकुन की बात मेरे सामने न कर! यदि मैं तेरी मदद कर सकता तो अच्छा होता। स्वयंवर होना ही चाहिए—स्वयंवर में तूने यदि शिशुपाल के सिवाय और किसी को पसंद किया तो वह तुझे स्वीकार नहीं करेगा। जरासंध तेरा विवाह शिशुपाल के साथ ही करना चाहते हैं।"

"आपकी भी यही इच्छा है?"

"हां! जरासंध ने मेरे पिता को किस प्रकार निवृत्त कर मुझे गद्दी पर बैठाया यह मुझे खूब याद है। यदि उस समय हमने प्रतिकार किया होता तो विदर्भ के नायक मारे जाते और कुंडिनपुर भस्मीभूत हो जाता। तू नहीं जानती बेटी, वे दिन कितने भयंकर थे! तेरा तब जन्म भी नहीं हुआ था।"

"अर्थात्, मैं इस राजसत्ता के द्वार खोलने आई हूं, यही न? अब मुझे गाय की कीमत मालूम हुई," रुक्मिणी ने कहा और फिर रुक्मी की ओर देखकर बोली, "अब मुझे मेरे बिगड़ैल भाई की योजना भी समझ में आती है।" यह कहकर वह कक्ष में से तेजी के साथ निकल गई।

४५

श्वेतकेतु का नगर-त्याग

माघ शुक्ला पंचमी के दिन, जब सारे आर्यावर्त में वसंतोत्सव मनाया जाता, तब रुक्मिणी के स्वयंवर की तिथि निश्चित हुई।

कई राजा और राजकुमार तो पौष मास के कृष्ण पक्ष में ही विदर्भ की राजधानी कुंडिनपुर में आ पहुँचे थे। वे सभी अपने पूरे दल-बल के साथ, रथ, हाथी और अश्वों की सेनाएँ लेकर आए थे। सारा नगर इस उत्सव के लिए सुसज्जित किया गया था।

भोजकुल के राजा भीष्मक ने स्वयंवर के लिए जबरदस्त तैयारियाँ की थीं। अतिथियों और उत्सव में भाग लेने आए हुए ग्रामजनों के भोजन का विशेष प्रबंध किया गया था। राजाओं के लिए सोने के चमकदार गुंबज और ध्वजा-पताकाओं से सज्जित मंडप खड़े किए गए थे। शहर के प्रत्येक भाग में नियत समय पर दुंदुभि और शहनाई के मंगल-स्वर गूँज उठते थे।

अतिथियों के लिए विशेष शिविर बनाए गए थे। सम्राट् जरासंध सर्व-प्रथम आ पहुँचे। उनके साथ कुछ राजा भी थे। भीष्मक के अतिथि के रूप में वे राजमहल में ही टिके।

चेदिराज दमघोष और उनका पुत्र शिशुपाल भी आ गया। शिशुपाल तो रूपवती विदर्भकुमारी के पाणिग्रहण के सपने देख रहा था। उन्हें विशेष आदर का पात्र मानकर राजकुटुंब की बारात को शोभे, ऐसा मध्यस्थ शिविर दिया गया।

सौभ के राजा शाल्व भी अपने साथ कुछ योद्धाओं को लाए थे। वह जरासंध का विशेष मित्र था। उसका भी जोरदार स्वागत हुआ। कारुष के दंतवक्र, अवन्ती के राजकुमार विन्द और अनुविन्द तथा जरासंध के आधीन कई राजाओं का भी उचित स्वागत हुआ। सभी अतिथि बहुत थोड़े योद्धा अपने साथ लाए थे। सभी जानते थे कि स्वयंवर का परिणाम पूर्वनिश्चित है और सामान्यतया ऐसे प्रसंगों पर जो झगड़े हो जाते हैं, उनकी कोई संभावना नहीं।

वैसे यजमान तो राजा भीष्मक थे, पर अतिथियों के स्वागत का सारा भार रुक्मी ने अपने ऊपर ले लिया था। इस स्वयंवर की आयोजना करने में उसे बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ा था। उसके लिए यह प्रथम राजकीय कार्य था। उसे मात्र एक चिंता सता रही थी, अपनी जिद्दी बहन की वह किसी भी प्रकार माननेवाली नहीं थी।

रुक्मी को लगा कि रुक्मिणी मिथ्या अंतराय उपस्थित कर रही है। वह नाहक सौदेबाजी और कन्या तथा गऊ की बातें करती है। आदिकाल से ही राजकुमारियों के विवाह तो राजपरिवारों के बीच संधियों को दृढ़

करने के लिए ही किए जाने है। बहुत कम राजकुमारियों में अपना वर पसद करने की वृत्ति या शक्ति होती है, और हो तो वे असहाय ही रहती है। वे माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध कभी नहीं जा सकती। परन्तु रुक्मिणी की समस्या सचमुच की थी। वह बचपन से ही जो चाहती, वही करती थी।

पहले तो ऐसा ही प्रतीत होता था कि वह शिशुपाल को पसद करने का विरोध करेगी। वह कुछ दिन महल से बाहर भी नहीं निकली और भोजन ग्रहण करना भी उसने अस्वीकार कर दिया। फिर लाज-मर्यादा छोडकर वह नगर मे बाहर निकल पडती और स्वयवर की व्यवस्था मे विक्षेप डालने लगती। रुक्मी की हँसी उडाने या उसका अपमान करने का कोई अवसर वह नहीं चूकती। फिर उसका विरोध घटने लगा। अब तक उसने शिशुपाल को पसद करने की स्पष्ट सहमति नहीं दी थी, परन्तु रुक्मी जानता था कि रुक्मिणी जैसी गर्विष्ट कन्या स्पष्ट शब्दो मे तो अपनी हार कभी स्वीकार करेगी नहीं।

पहले रुक्मी का ख्याल था कि मथुरा के यादव कुछ बाधा डालेंगे, परतु ऐसी कोई सभावना अब नही दिखाई पडती थी और ऐसा लगता था कि स्वयवर निर्विघ्न समाप्त हो जाएगा। पहले कुछ गुप्तचर यह समाचार लाए थे कि मथुरा के राजा उग्रसेन अपने किसी भानजे को अपना उत्तरा-धिकारी घोषित करनेवाले है और वह बिना निमत्रण स्वयवर मे भाग लेने आएगा। परन्तु नियुक्त युवराज बृहद्बल ने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया, इसलिए सारा प्रश्न खटाई मे पड गया था। उत्सव के शौकीन यादवों ने स्वयवर के दिन ही मथुरा मे रथो की दौड निश्चित की थी और रुक्मी का कट्टर शत्रु कृष्ण इस दौड की आयोजना में व्यस्त था।

माघ मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के दिन ऐसी अफवाह सुनने को मिली कि कोई राजा बडी सेना लिए स्वयंवर मे भाग लेने आ रहा है। एकत्रित अतिथियों को यह अफवाह गलत लगी। अधिकाश निमत्रित अतिथि या तो स्वय आए थे या नववधू के लिए उन्होंने उपहार भेजे थे। आर्यावर्त के दो प्रतापी नरेश, हस्तिनापुर के धृतराष्ट्र और पाचाल के द्रुपद ने स्वयंवर मे आने मे तो अपनी असमर्थता प्रकट की, पर नववधू के लिए उपहार भेजे थे। इसलिए इस स्वयवर मे बिना निमत्रण किसी के आने की सभावना नहीं थी। जरासध, विदर्भ और चेदि के सयुक्त बल के सामने टक्कर लेने का दु साहस कौन करता ?

प्रतिपदा के दिन आचार्य श्वेतकेतु उषाकाल के पूर्व ही जग पड़े। नदी में स्नान कर सन्ध्या-वन्दन के बाद उन्होंने सूर्य को अर्घ्य दिया, फिर वे नदी के तीर पर स्थित आश्रम में गए।

दादा कौशिक और राजा भीष्मक आचार्य के प्रति पूज्यभाव रखते थे। भोजकुल के नायक और कुण्डिनपुर के विद्वान ब्राह्मण भी उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे। राज्य के सामान्य नागरिक भी उनका सम्मान करते थे और उनके पास वेदपाठ करने आते थे। विद्यार्थी उनके गुणगान करते थकते नहीं थे। कद में वे छोटे थे, पर ज्ञान और शस्त्रविद्या में पारंगत थे। उनका व्यक्तित्व और उनका आदर्श सभी को प्रभावित करता था।

जब उन्होंने वेदशाला में प्रवेश किया तब शिष्यों ने दण्डवत प्रणाम किया। आसन ग्रहण कर उन्होंने शिष्यों के साथ 'होम' और 'विश्वदेव' किया—अग्नि का आह्वान करते हुए मन्त्रोच्चार किया। फिर हाथ उठा कर वे बोले

"वत्सो, आज मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। मुझे यहाँ आए साल भर हो गया। यहाँ के राजपुरुषों ने मेरा उचित आतिथ्य किया। और तुमने, मेरे वत्सो, मुझे अपना प्रेम, आदर और सेवा अर्पित की। तुममें से कई शस्त्रविद्या में निपुण हुए हो। परन्तु अब विदा की वेला आ गई है।"

शिष्य आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगे। आचार्य श्वेतकेतु ने मध्यम स्वर में फिर कहा, "मैंने दुर्गपाल को बुलाया है। उनके आते ही मैं आश्रम, धेनुएँ और अन्य सभी वस्तुएँ राजा भीष्मक को दे देने के लिए उनके सुपुर्द कर दूँगा। फिर राजा भीष्मक के पास जाकर उनसे विदा लूँगा। मेरा इस स्थान से विदा होने का समय आ गया है। लेकिन मेरे जाने से तुम लोग उदास मत होना, मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा। तुम जहाँ भी हो, जो भी करते हो, भगवान परशुराम और गुरु सांदीपनि की मेरे द्वारा सौंपी गई धरोहर को सँभालकर रखना।

"मेरे ब्रह्मचारियो, अपने तपस द्वारा तुम पृथ्वी और उसके मनुष्यों को प्रभु की ओर प्रेरित कर सकोगे। तपस पर अपनी श्रद्धा कभी विचलित मत होने देना। यदि तुमने तपस का त्याग कर दिया तो यह संसार वासना और हिंसा में चूर हो जाएगा और राक्षसी बन जाएगा।

"और मेरे वीर शिष्यो, मैं तुम्हें एक महत्त्व की सीख देता हूँ। तुम सदा धर्म के मार्ग पर ही चलना। मुझसे सीखी हुई शस्त्रविद्या का उपयोग

धर्म की रक्षा और अधर्म के विनाश के लिए ही करना। उसका उपयोग स्वार्थ के हित कभी न करना, कभी पाप में भाग न लेना।"

श्वेतकेतु ने अपनी कमर पर व्याघ्रचर्म लपेटा, अपना दंड और कमंडल लिया और खड़े हो गए। शिष्यों ने खड़े होकर उन्हें घेर लिया।

"गुरुदेव, आप हमें छोड़कर यों नहीं जा सकते" कई तरुणों ने कहा।

"तुममें से किसी को मैं तुम्हारे माता-पिता की सम्मति बिना अपने साथ नहीं ले जा सकता। और तुम भोजकुल के नायकों के पुत्र हो। मेरे जैसा कठोर जीवन तुम नहीं जी सकते।"

"हम भी आपके साथ ही चलेंगे—चाहे कुछ भी सहन करना पड़े" एक युवक बोला।

"अश्नव, तुम्हारी बात अलग है। तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं, इसलिए उनकी सम्मति लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। तुम मेरे साथ चल सकते हो। इसी प्रकार जह्नु भी आ सकता है। परन्तु हमें कई दिनों तक सोने के लिए शैय्या और पर्याप्त भोजन नहीं भी मिल सकता है।"

"परन्तु आप जा क्यों रहे हैं? एकाएक यह निर्णय किसलिए?"

"कल रात तक मैं प्रतीक्षा करता था कि भगवान कुछ चमत्कार दिखाएँगे, परन्तु उन्होंने मेरी प्रार्थना सुनी नहीं। ऐसा कोई चमत्कार हुआ नहीं। इसलिए मुझे व्रत-पालन के लिए यह निर्णय लेना पड़ा। मैं यहाँ नहीं रह सकता। और अधिक मुझसे कुछ मत पूछो", श्वेतकेतु ने स्नेहपूर्वक कहा और शिष्यों को आशीर्वाद दिया।

राजमहल में राजा भीष्मक, सम्राट जरासंध और राजा दामघोष स्वयंवर की योजना के बारे में जब चर्चा कर रहे थे, तब प्रतिहारी ने आकर आचार्य श्वेतकेतु के आने की सूचना दी। आचार्य ने जब खंड में प्रवेश किया तब भीष्मक और दामघोष खड़े हो गए। आर्य राजाओं में विद्वान आचार्यों को इस प्रकार सम्मान देने की रीति थी। परन्तु जरासंध बैठा ही रहा। उसके मन विद्वानों का आदर चारण-भाट से अधिक नहीं था। दूसरे राजाओं को भी वह सदा सचेत करता रहता कि आचार्यों—तपस्वियों को अधिक सिर चढ़ाने का नतीजा अच्छा नहीं होता।

श्वेतकेतु ने वंदन स्वीकार किया और प्रतिहारी ने जो आसन उनके लिए रखा उस पर बैठ गए। श्वेतकेतु ने आशीर्वाद दिए। फिर राजा

भी।प्मक ने पूछा, 'आचार्यश्रेप्ट, इम समय आपके आगमन का क्या प्रयोजन है ?"

"राजन्, मैं आपसे विदा लेने और आशीर्वाद देने आया हूं।"

भीप्मक आश्चर्य मे पड गए। "विदा ? आप कहाँ पधार रहे है ? अचानक, इम प्रकार ? क्या हुआ आचार्य ?"

श्वेनकेनु क्षण भर बैठे रहे, फिर बोले, "राजन्, मैं कुडिनपुर छोड कर जा रहा हूं। अपने विद्यार्थियो को मैंने दीक्षान्त आशीर्वाद दे दिया है। दुर्गपाल को मैंने आश्रम और आपके द्वारा प्रदत्त सभी सामग्री लौटा दी है। अब आपको आशीर्वाद देने और यहाँ से जाने ··"

"कहाँ ?"

"जहाँ भी भगवान ले जाए वही। परन्तु यहाँ से दूर···"

"लेकिन क्यो, किस कारण ? यहाँ क्या नही है ?" भीप्मक अब भी आश्चर्यचकित थे।

"राजन्, आप मेरे प्रति अत्यन्त उदार रहे है। परन्तु अब मैं आपका आतिथ्य स्वीकार करने की स्थिति मे नही हूं।"

'कृपा करो गुरुदेव! आपको जाना ही हो तो स्वयवर पूर्ण होने पर ही पधारे। आप उत्सव मे पहले चले जाएँगे तो अमगल समझा जाएगा," भीप्मक ने कहा।

"आपको जाना हो तो स्वयवर के बाद चले जाना", जरासध ने बीच मे बोलते हुए कहा। उसने अपने क्रोध को किसी तरह दबाकर रखा। स्वय गोमातक मे प्राण बचाकर भागा था तब से वह श्वेनकेनु को गुरु सादीपनि के शिप्य, शस्त्रविद्या मे पारगत और अवती के राजकुमारो के अध्यापक के रूप मे जानता था। वह यह भी जानता था कि कुडिनपुर और भोजकुल के युवको मे आचार्य के प्रति कितना पूज्यभाव था। ऐसे आचार्य के अचानक चले जाने से राजा अपशकुन मानेंगे, यही सोचकर उसने श्वेतकेतु को रुकने के लिए कहा।

"नही, मैं रुक नही सकता। यहाँ रुकने पर मेरे व्रत का खडन होगा।"

दामघोष को इस बात मे रुचि उत्पन्न हुई। कृप्ण और बलराम से उसने श्वेतकेतु के बारे मे सुना था। गुरु सादीपनि ने अपने उत्तम शिप्यो में श्वेतकेतु का नाम लिया था। इसलिए उसने पूछा, "परन्तु इसी समय विदा लेने का निर्णय आपने क्यो लिया ? ऐसी क्या बात हुई जिससे आप

अभी चले जाना चाहते हैं ?"

"चेदिराज", श्वेतकेतु ने गभीरता से कहा, "कल रात जब अवनी के राजकुमार मुझसे मिले तब मुझे ऐसी ही दृढ प्रतीति हुई। आप सभी जानते हैं कि कुछ वर्षों के लिए मैं अपने आचार्य के कर्त्तव्य से च्युत हो गया था। एक वर्ष पहले मैं यहाँ आया तब आपसे मैंने यह बात कही थी। करवीरपुर में चमत्कारिक रूप से जब मेरा उद्धार हुआ तब से मैंने यह प्रतिज्ञा ली है कि जहाँ भी धर्म का, ऋत् का भग हो, वहाँ नहीं रहूँगा।"

भीष्मक असमजस में पड गए। जरासध को इसमें कुछ चाल दिखाई पडी। "यहाँ रहकर धर्म का पालन क्यो नही कर सकते ? यहाँ कौन-सा अधर्म आपको दिखाई पडता है ? अब तक तो सब-कुछ ठीक ही चल रहा था। राजा भीष्मक का आतिथ्य भी आपने अब तक स्वीकार किया है। अब क्या हो गया ?" सम्राट ने भौहे चढाकर पूछा।

श्वेतकेतु ने सम्राट पर अपनी दृष्टि स्थिर की। उनकी आँखो में तेज था। वे बोले, "यह सच है कि राजा भीष्मक ने वेदोक्त कर्त्तव्यो का उचित पालन किया है और विद्या का उदार आतिथ्य किया है।"

"फिर क्या बात है ?" सम्राट ने अधीर होकर पूछा।

श्वेतकेतु ने जरा भी अस्वस्थ हुए बिना उत्तर दिया, "इन्होंने उदारता-पूर्वक मुझे अन्न और आश्रम प्रदान किया। मैं भी अपने कर्त्तव्य से पीछे नहीं हटा। मेरा जो भी धर्म था उसके अनुसार मैंने भी अपना फर्ज निभाया है। राज्यगुरु भीष्मकाचार्य की मैंने सहायता की है, सुपात्रो को वेदो का अध्ययन कराया है, भोज नायको को शस्त्रविद्या सिखाई है। परन्तु अब मैं कुछ कर सकने की स्थिति में नही हूँ। मैं खाली हाथ ही आया था, और खाली हाथ ही जा रहा हूँ, चक्रवर्ती!"

श्वेतकेतु ने जिस गौरव से जरासध को उत्तर दिया उससे राजा भी प्रभावित हुए। भीष्मक ने कहा, "आचार्यश्रेष्ठ, आपने हम पर अनेक उप-कार किए है। आप जिस अल्पकाल के लिए यहाँ थे, उस बीच कुडिनपुर अपने पाडित्य के लिए प्रख्यात हुआ है। आपसे शिक्षा पाकर हमारे युवको ने अधिक उत्साह और नई चेतना पाई है। विदर्भ की प्रजा आपके ज्ञान और पाडित्य का आदर करती है। इसीलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप न जाएँ, हमारे साथ ही रहे।"

जरासध कटुता से हँसा, उसे भीष्मक की यह विनती अर्थहीन लगी।

"मुझे अपने व्रत का पालन करना ही चाहिए" श्वेतकेतु ने कहा।

"परन्तु आपके व्रत में यहाँ कौन-सा विक्षेप पड़ता है? और फिर वह भी इतने दिनों तक रहने के बाद?' भीष्मक ने फीकी हँसी हँसकर कहा, 'यदि कहीं कुछ भूल हो गई हो तो आप हमें बताएँ, हम तत्काल उसका सुधार कर देंगे।"

'राजन्, यदि आप इच्छा करें तो भी वह भूल सुधारी नहीं जा सकती!' श्वेतकेतु ने कहा, फिर जरासंध की ओर निर्भयतापूर्वक देखते हुए बोला, "उदाहरण के लिए आप इस स्वयंवर को रद्द नहीं कर सकते।"

'इसका आपके व्रत में क्या सम्बन्ध है?" जरासंध ने उत्तेजित हो पूछा।

"चक्रवर्ती सम्राट, क्या आप अपने सामने बोले गए सत्य को सहन कर सकेंगे?" श्वेतकेतु ने पूछा।

"क्यों? मुझमें क्या भूल हुई?" जरासंध ने भौंहें चढ़ाकर पूछा।

"मैं जानता हूँ कि आप अपने समक्ष आपको जो प्रिय लगे उसी को सुनने के आदी हैं। मैं जो सोचता हूँ वह सुनना शायद आपको पसंद नहीं आएगा,' श्वेतकेतु ने दृढ़ता से कहा।

"क्या मैं इतना बुरा हूँ?" जरासंध ने तिरस्कारपूर्वक हँसकर कहा

"दुनिया यही कहती है। मैं यहाँ राजा भीष्मक को विदा के समय आशीर्वाद देने आया हूँ और शांतिपूर्वक चला जाना चाहता हूँ। पर, यदि आप सत्य जानना ही चाहते हो तो मैं यह नहीं किसी को कहने देना चाहता कि महान् चक्रवर्ती के भय से एक ब्राह्मण सच नहीं बोल सका। सुनिए? मैं यहाँ से इसलिए चला जाना चाहता हूँ कि आपके आग्रह से आयोजित यह स्वयंवर अधर्म है," श्वेतकेतु ने कहा।

"अधर्म?" जरासंध ने क्रोधित होकर पूछा, "क्यों स्वयंवर में क्या बुराई है?" उसे लगा कि मगध में यदि कोई ऐसा कहने का साहस करता तो उसका मस्तक उड़ा देने की तत्काल आज्ञा वह दे देता। परन्तु यहाँ चुप रहने में ही सार है। यह भीष्मक और दमघोष की भूमि है। यहाँ की रीति-भाँति को मानना ही होगा।

"इस स्वयंवर में क्या बुराई नहीं है?" श्वेतकेतु ने उत्तर दिया, "अब तक मैंने कुंडिनपुर में फैल रही अफवाहों पर ध्यान नहीं दिया था। कल जब अनुविन्द ने बताया तब मेरी आँखें खुलीं। आपने वर पसंद कर

ही लिया है। आपकी आज्ञा है इसलिए अन्य नरेश भी इस चुनाव पर सहमत हो गए है। आपके भय से अन्य कोई राजा शिशुपाल के साथ शस्त्रविद्या में स्पर्धा के लिए तैयार नहीं होगा। यदि कन्या किसी और को पसद करे तो भी वह उसे स्वीकार करने का साहस नही दिखा पाएगा। मेरी छोटी बहन रुक्मिणी का आपकी पौत्री अप्नवी के साथ सट्टा हो रहा है। मुझे आशा थी कि भगवान महादेव मेरी प्रार्थना को सुनेंगे, और इस स्वयवर को रोक सके, ऐसा कोई चमत्कार घटित होगा। परन्तु उनकी कृपा इस भूमि पर नहीं दीखती है। सत्ता की शतरज पर राजकुमारी का भोग चढेगा ही! मैं इसे रोक भी नही सकता। न इसे अपना आशीर्वाद दे सकता हूँ। इसीलिए यहाँ से चले जाने के सिवाय और कुछ नही कर सकता।"

श्वेतकेतु ने खडे होकर राजा की ओर देखा। "राजन्, आपको यह कटु सत्य सुनना पडा इसके लिए मुझे क्षमा करें। चक्रवर्ती ने ही मुझे मजबूर किया। अब मैं जाता हूँ। अधर्म मे चेदिराज जैसे भी भाग ले रहे है, यह जानकर मुझे दुःख हुआ। राजाओ, मैं आपको आशीर्वाद देता हूँ कि आपको धर्म का मार्ग मिले।" ऐसा कहकर श्वेतकेतु ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया और खड से चले गए।

आचार्य राजमहल से जब बाहर निकले तब उनके शिष्य और नगर मे जिस किसी को उनके जाने की सूचना मिली वह बाहर उनकी प्रतीक्षा में खडे थे। शिष्यों ने आचार्य का चरणस्पर्श किया, एकत्रित जनसमूह ने उनके आशीर्वाद की याचना की।

आचार्य एक हाथ मे दड और दूसरे मे कमडल लेकर नगर के द्वार की ओर बढे। पीछे-पीछे उनके धनुष-बाण लेकर अप्नव और जह्नु चल रहे थे। द्वार के पास पहुँचकर वे पीछे मुडे। हाथ उठाकर उन्होंने सबको आशीर्वाद दिए और नगर मे से बाहर निकलकर वन की राह ली।

कुडिनपुर मे विद्युतगति से यह समाचार फैल गया कि इस महान् आचार्य ने किसी महान् पातक के निवारणार्थ चमत्कार के लिए प्रार्थना की थी, परन्तु देवो ने उसे स्वीकार नहीं किया। इसलिए अधर्म का आचरण हो इससे पहले ही वे नगर त्यागकर चले गए है। नगरजनो ने इस अधर्म का सम्बन्ध स्वयवर से ही जोडा, क्योंकि यह तथ्य सभी पर प्रकट हो चुका

था कि यह स्वयवर आर्य-प्रणालिका का स्पष्ट अनादर कर आयोजित किया जा रहा था।

४६

कुंडिनपुर मे आगमन

राजा उग्रसेन ने दूसरे दिन कहा, "वृहदवाल ने मथुरा का युवराज बनना अस्वीकार कर दिया है।" कृष्ण को इसमे कोई अनहोनी बात नही लगी। यादव-नायक उग्रसेन से मिले और बोले कि यादवो की रक्षा के लिए कृष्ण को भेजना चाहिए। वे ही जरासध और भीष्मक का दर्प चूर करने मे समर्थ है। मात्र वे ही असभव को सभव बना सकते है।

कृष्ण ने नम्रता से कहा, "पूज्य गुरुजनो, यादवो का गौरव तो तभी अखडित रह सकता है जब वे यह समझ ले कि अडिगता मे मरना ही जीवन है। अपने पास शस्त्र है, अश्व है, रथ है, फिर भी रथस्पर्धा की आयोजना का निश्चय तक नही कर सकते। मेरे कई मित्र इसको क्षुद्र महत्त्व देते है। परन्तु यदि हम धरती को कपित करनेवाली रथस्पर्धा भी न कर सके, तो भोज, चेदि और मगध की सेनाओ का मुकाबिला किस प्रकार करेगे ? लोग सामर्थ्य का आदर करते है, युयुत्सा का नही।

"हम लडने को तैयार है, हमे प्रेरणा दो!" सात्यकी ने कहा।

"पहले रथस्पर्धा को सफल बनाने मे मेरा साथ दो, फिर आर्यावर्त के राजा यादवो का आदर करने लगेगे," कृष्ण ने कहा।

"परन्तु इस अपमान को क्या हम पी जाएँ ?"

"सामर्थ्य प्राप्त करने मे कोई अपमान नही। अपमान छिन्न-भिन्न होने मे है।"

"आप स्वयवर भग कर राजकुमारी रुक्मिणी को ले आएँ—मेरी तो यही इच्छा है," वृद्ध नायक गड ने कहा।

"मैने तो कहा ही था कि यह मिथ्या स्वयवर अधर्म है। इसी प्रकार

इनकी,इच्छा के विरुद्ध राजकुमारी का अपहरण करना भी अधर्म है। फिर यह भी नही भूल जाना चाहिए कि राजकुमारी का विवाह राजा से ही हो सकता है," कृष्ण ने किंचित मुसकराकर कहा, "और प्यारे स्वजनो, यदि आप मुझमे श्रद्धा रखे, मुझे रथस्पर्धा की योजना करने दे तो अपने शत्रुओ की आखे खुल जाएँगी। मै चाहता हूँ कि प्रत्येक यादव युवक मेरी इसमे सहायता करे।"

"गोविन्द, हमे आप मे पूर्ण श्रद्धा है," अक्रूर ने कहा।

"तुम्हे जो उचित लगे वही करो।" राजा उग्रसेन ने कहा और फिर सात्यकी की ओर मुडकर बोले, "सात्यकी, तुम शौर्य मे भरेपूरे हो—शौर्य दिखाने के अवसर की तलाश मे हो। श्रद्धा रखो, कृष्ण ही हमे विजय के मार्ग पर ले जाएँगे।"

"अवश्य! मुझे इसमे कोई शका नही है," अक्रूर ने कहा।

"सभव है कि इस समय हम असमजस मे पड गए है। कृष्ण जिस प्रकार परिस्थिति को स्पष्ट देख सकते है वैसा हम नही देख पाते। पर हम इनकी आज्ञा का अनुसरण करेगे, रथस्पर्धा को सफल बनाएँगे।"

नायको की सभा पूरी होने के बाद सात्यकी और विराट कृष्ण से मिले और बोले, "वासुदेव, हमने बृहदबाल का साथ छोड दिया है, अब हम आपके साथ है।"

"यह तुमने ठीक नही किया—इसमे तो भाई बृहदबाल के प्रति अन्याय होगा," कृष्ण ने उत्तर दिया।

"वह कायर है—हमे विजयश्री नही प्राप्त करा सकता," सात्यकी ने कहा।

"हम लोग सगठित नही होगे तो विजय कहाँ से पाएँगे? विजयी बनने के लिए भोग देना पडेगा," कृष्ण ने कहा।

"हम राजी है—बोलो, हमे क्या भोग देना है?" विराट ने पूछा।

"तुम सभी यादव युवको को एकत्र करो और उन्हे रथस्पर्धा मे भाग लेने पर राजी करो। मैं तुम्हे विजय दिलाऊँगा," कृष्ण ने कहा।

"इस खेल से विजय कैसे मिलेगी?" विराट ने पूछा।

"सैकडो यादव युवक जीवन को खतरे मे डालकर रथ चलाएँ और तुम उसे खेल ही कहोगे, विराट? यदि यह खेल हो, तो भी अतिथियो का खेल होगा।"

"आपके मन मे क्या है ?" मात्यकी ने पूछा, "आप जरासध मे लडना चाहते है ?"

"आज तो हम जरासध जैसे महान् सम्राट् तो क्या, कारुल जैमे छोटे राज्य के राजा को भी हराने मे असमर्थ हैं। परन्तु यदि यह रथस्पर्धा, जैसे मैं चाहता हूँ वैसी हो, तो महान् नरेश भी मथुरा से काँप उठेगे।

"हमे क्या करना होगा ?"

"बृहद का त्याग मत करो। उसे भी रथस्पर्धा मे लाओ। मथुरा मे चार सौ महारथी हो, इसका क्या अर्थ होगा, जानते हो ?"

सात्यकी विचार मे पड गया। "वासुदेव, आपकी बात सच्च है। हमारे सामर्थ्य मे वृद्धि हो तब तक कुडिनपुर राह देख सकता है। पर, मैं एक शर्त पर आपकी बात मानूँगा। शत्रु पर आक्रमण करने की योजना बनाएँ तब अग्रिम पक्ति मे मुझे रखना होगा।"

कृष्ण हँसे और सात्यकी के कधे पर स्नेह से हाथ रखकर बोले, "स्वीकार है ! तुम सदा युद्ध मे आगे रहना।"

दूसरे दिन राजा उग्रसेन ने घोषित किया कि माघ शुक्ला पचमी को यमुना-तट पर रथस्पर्धा होगी। एक हजार यादव युवक गुरु सादीपनि के मार्गदर्शन मे तालीम लेने लगे।

बलराम वृंदावन मे आ पहुँचे। अपने प्रसिद्ध हल से यमुना को फिर से वृंदावन मे ले आने की सिद्धि से वे प्रसन्न थे। उन्हे रथ अथवा अश्वो मे अधिक रुचि नही थी। परन्तु युवको को उत्साहित करने के लिए वे भी इसमे भाग लेने को राजी हो गए। जो भी सुस्त होता या थक जाता उसे अपनी निश्छल हँसी अथवा ललकार से वे प्रेरित करते।

स्पर्धा मे जब एक पखवाडे की देर रह गई तब एक दिन आधी रात को सात्यकी सौ यादव युवको के साथ मथुरा छोडकर चला गया। बलराम और सात्यकी के बीच झगडा होने की खबर सारे मथुरा मे फैल गई। परन्तु कृष्ण निश्चित होकर स्पर्धा की तैयारियो मे लगे रहे।

उत्सव मे जब आठ दिन बाकी रह गए तब मानो चमत्कार हुआ हो, इस प्रकार दो-दो शस्त्रसज्जित यादवो के साथ चार सौ रथ मथुरा से अदृश्य हो गए। उनके साथ कृष्ण भी चले गए। मथुरा के यादवो के हर्ष का पार नही था। ये युवक यादवो के गौरव की रक्षा करने गए थे। गोविन्द

की प्रेरणा का ही यह परिणाम था।

रथो का यह काफिला कुडिनपुर के लिए रवाना हुआ। उद्धव और सात्यकी ने मार्ग मे सभी व्यवस्था को सभाल लिया था। किसी को कानों-कान खबर हो, इससे पहले तो कृष्ण कुडिनपुर की सीमा तक जा पहुँचे।

कुडिनपुर मे एकत्र राजाओ को खबर मिली कि कोई आमत्रित राजा एक बडी सेना लेकर आ रहा है। सभी चौक उठे।

प्रत्येक शिविर मे योद्धागण नगरद्वार या दुर्ग पर यह देखने के लिए दौडे कि कौन आ रहा है। उन्हे धूल के बडे-बडे बादल नगर की ओर आते दिखाई पडे। मेघगर्जन-सी आवाज भी आ रही थी। फिर क्रुद्ध गरुडो की चीख-चिल्लाहट सुनाई पडी और इस सब शोर के बीच प्रबल शक्ति से फूंके जानेवाले एक शख की ध्वनि भी गूँजती हुई सुनाई पडी। दामघोष, विंद और अनुविंद तुरत ही इस ध्वनि को पहचान गए। यह पाँचजन्य का घोष था। कृष्ण आ पहुँचे थे!

सात्यकी रथ मे बैठकर आगे बढा। नगर-द्वार पर पहुँचकर अश्वो की लगाम खीच उसने शखनाद किया। द्वारपाल ने बाहर आकर सात्यकी का सदेश सुना :

यादव-श्रेष्ठ कृष्ण वासुदेव आए है। गोमानक जाते समय पूज्य कौशिक ने उनका जो उदार स्वागत किया था, उसके लिए वे कृतज्ञ है। उनके लिए वे उपहार लाए है। हमारे आदमी दुर्ग से अर्ध योजन दूर शिविर डालेगे। मात्र कृष्ण वासुदेव, देवभाग के उत्तम पुत्र उद्धव, आचार्य श्वेतकेतु, करवीरपुर के राजा शुक्रदेव, उनके मत्री तथा गुरु सादीपनि के पुत्र पुनर्दत्त और गरुडराज वैनतेय राजा कौशिक से मिलने जाएँगे।

"शूरो मे श्रेष्ठ देवभाग के पुत्र मित्रकेतु भी राजा उग्रसेन द्वारा राजा भीष्मक को भेजे गए उपहार लाए है। माँ देवकी ने अपनी दासी त्रिवक्रा के साथ राजकुमारी रुक्मिणी के लिए सौगाते भेजी है।

"राजा भीष्मक के पास मेरा सदेश पहुँचाओ! उनकी आज्ञा की मै प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

दुर्गपाल ने सदेश लेकर चोर-द्वार बद किया और राजमहल की ओर चला।

राजा भीष्मक यह सदेश पाकर अन्यमनस्क हो गए। उन्हे कुछ सूझ न

पडा कि क्या करना चाहिए। वे पिता कौशिक के पास जाने को उद्यत हुए और सम्राट् तथा अन्य अतिथियों को मंत्रणा के लिए बुलाया। दादा कौशिक अपनी बात पर दृढ थे। उनके अनुसार कृष्ण वीर थे। वे यादवों के नेता थे। उनकी चतुराई और पराक्रम जगप्रसिद्ध थे। वे उपहार और मैत्री लेकर आए हैं। आर्य-आतिथ्य की परम्परा स्पष्ट है। कृष्ण का सम्मानसहित स्वागत करना ही चाहिए। और, यदि कोई न जाए तो वे अकेले जाने को तैयार थे।

रुक्मिणी तो कृष्ण के आगमन का समाचार सुनकर हर्ष से पागल बन गई। वह घडी में हँसने लगती, घडी में रोने लगती, कभी क्रोध में आकर चिल्लाने लगती, कभी हर्षोन्मत्त होकर हँस पडती। उसे कोई नियन्त्रित नहीं रख सकता था।

जब दादा कौशिक कृष्ण का स्वागत करने जा रहे थे, तब रुक्मिणी सामने मिली। रुक्मिणी के प्रकट हर्ष को देखकर दादा दुखी हुए।

"बेटी, जरा संयम रख! नहीं तो दुखी होना पडेगा। गोपाल चाहे जितना अच्छा पात्र हो, पर तू उससे विवाह नहीं कर सकेगी। वह राजा नहीं और तू राजकुमारी है!" पर, रुक्मिणी तो दादा की इस डाँट से भी हँस पडी।

सारे नगर में यह खबर फैल गई। जरासंध को हरानेवाले, करवीरपुर के शृगालव वासुदेव का वध करनेवाले कृष्ण दादा कौशिक से मिलने आए हैं, उनके साथ आचार्य श्वेतकेतु भी नगरी में लौटे हैं। आचार्य के शिष्य माता-पिता के निषेध की अवहेलना कर आचार्य से मिलने नगरद्वार पर दौडे। उन्होंने आचार्य से कृष्ण के पराक्रमों की कथा बारबार सुनी थी। लोगों ने जब सुना कि दादा कौशिक कृष्ण का स्वागत करने जा रहे हैं तो वे भी उनके साथ हो लिए।

राजा भीष्मक और अन्य राज्य-अतिथि इस नई घटना से बौखला गए। रुक्मी के क्रोध का पार नहीं था। वह तो इस ग्वाले से लड लेने पर तुला था। राजा भीष्मक ने उसे रोका और कहा, "कृष्ण का मैं अतिथि के रूप में स्वागत करने वाला हूँ। श्वेतकेतु के शिष्य उसका स्वागत करने नगर-द्वार पर गए हैं, लोग उसका सत्कार करने के लिए अधीर हो रहे हैं।

कृष्ण अपने साथ कितने रथ लेकर आया है, यह कोई नहीं जानता । भोज योद्धा इस समय उससे युद्ध करने की स्थिति में नहीं है ।"

४७

बिना युद्ध के विजय

लोगों ध्यान अब भीष्मक के राजमहल पर से हटकर कुंडिनपुर के किनारे पर स्थित दादा कौशिक के महल पर स्थिर हुआ । दादा अपना अधिकांश समय यहाँ पूजा-पाठ में व्यतीत करते थे । इसी महल के विशाल चौक में तथा समीप ही आचार्य श्वेतकेतु के आश्रम में यादव सरदारों को ठहराने का प्रबन्ध किया गया ।

दादा कौशिक, राजा दामघोष, विंद और अनुविंद तथा विशाल जन-मेदिनी ने नगर-द्वार पर कृष्ण और यादव सरदारों का स्वागत किया । जनमेदनी ने "जय वासुदेव" का घोष किया ।

राजा भीष्मक के वृद्ध राजपुरोहित भी विद्वान ब्राह्मणों सहित आतिथ्य के लिए उपस्थित थे । ब्राह्मणों ने वेदमंत्रों का पाठ कर कृष्ण का सत्कार किया ।

सचिव ने कृष्ण से कहा, "भगवान, विदर्भराज रुग्ण हैं । स्वस्थ होते ही वे आपका स्वागत करने पधारेंगे ।"

'आचार्य, विदर्भराज से निवेदन करें कि उनके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ होऊँगा । मुझे कोई जल्दी नहीं । मैं तो यहाँ वसन्तोत्सव तक ठहरनेवाला हूँ," कृष्ण ने मुसकराकर कहा और साथ ही अपना यह निश्चय भी प्रकट कर दिया कि स्वयंवर से पहले वे जानेवाले नहीं हैं ।

महल का चौक गरुडों के उल्लासपूर्ण हास्य से गूँज उठा । उनके गरुड जैसे चेहरे और विचित्र रीतिभाँति लोगों का ध्यान सहज ही आकर्षित करते थे ।

महल के झरोखे में से रुक्मिणी ने रथ में से उतरते हुए कृष्ण के दर्शन

किए और रुक्मी की पत्नी सुव्रता से हर्षावेग में वह लिपट गई। उसके कंधे हिलाकर रुक्मिणी ने पूछा, "सुव्रता, कितने अद्भुत हैं ये!"

"मैं जा रही हूँ", सुव्रता ने कहा, "उस जादूगर ने तुम पर मोहिनी डाल दी है।"

"वासुदेव, पिछली बार जब आप यहाँ पधारे थे तब गुप्तावास करने का आपका निश्चय था। इसीलिए मैं तब आपका उचित आतिथ्य नहीं कर सका, परन्तु इस बार मैं यह सुअवसर खोनेवाला नहीं हूँ।" दादा कौशिक ने एकांत पाते ही कहा।

"दादाजी, ऐसे किसी उपचार की आवश्यकता मेरे लिए नहीं। मुझे राजाओं जैसा सम्मान भी नहीं चाहिए। उससे राजा भीष्मक के मेहमान राजाओं को बुरा लगेगा," कृष्ण ने नम्रता से कहा, "परन्तु मैं यह बात कभी नहीं भूल सकता कि मुझे आपने तब आश्रय दिया था जब मैं जरासंध से भाग रहा था। आपने मुझे जीवनदान दिया। यह ऋण तो मैं कभी चुका नहीं सकूँगा, पर मुझे आप अपना पुत्र ही मानें," कृष्ण ने उत्तर दिया और राजा उग्रसेन की भेजी हुई सौगातें उन्हें दीं।

"वासुदेव, भीष्मक ने आपको स्वयंवर में आमंत्रित नहीं किया, इसका मुझे दुःख है। परन्तु इसमें कुछ कठिनाई थी। आचार्यगण भी इसमें से कोई मार्ग नहीं निकाल सके", कौशिक ने असमंजस के साथ कहा।

कृष्ण ने हँसकर उत्तर दिया, "दादाजी मैं इस कठिनाई को समझता हूँ। मैं युवराज नहीं, सरदार का ज्येष्ठ पुत्र भी नहीं। किसी समय ग्वाले के रूप में मेरा पालन-पोषण हुआ था, और इसका मुझे रंज भी नहीं है। राजाओं में मेरा स्थान नहीं और यह सत्य मैं जरासंध या रुक्मी से ज्यादा अधिक अच्छी तरह जानता हूँ।"

"वासुदेव, ऐसा न कहें," कौशिक ने कहा, "आप राजाओं से भी महान् हैं। वय में छोटे हैं, पर हम सबसे अधिक समझदार हैं। परन्तु आप जानते हैं कि यदि आपको निमंत्रण भेजा जाता तो रुक्मिणी के लिए स्वयंवर की यह स्पर्धा भी संभव नहीं होती, एकत्रित राजा आपसे अधिक ऊँचे आसन का आग्रह करते और यह अत्यन्त अनुचित होता।"

"मैं यह सब समझता हूँ, महाराज! आप जैसे राजा मेरे स्वागत के लिए नगरद्वार पर आएँ, यह भी उचित नहीं था। मैंने अपने फूफा दमघोष

ओर अपने मित्र विद-अनुविद को भी राजव्यवहार के नियमो के विरुद्ध मेरा स्वागत करने आने के लिए उलाहना दिया था," कृष्ण ने कहा। उनकी आँखो मे एक मादक चमक थी।

"वासुदेव, मैंने सुना है कि आप धर्म के लिए जीते है। यदि इस समय कोई पूजा का पात्र व्यक्ति है, तो वह आप ही हैं। जो आपको भगवान मानते हैं वे लोग भी मुझे झूठे नही लगते। आप जिस प्रकार आए यही देखो न,—एक भी प्रहार किए बिना आप सारा युद्ध जीत गए है," कौशिक ने कहा।

"मेरी अति प्रशसा न करें," कृष्ण ने कहा, "आप समझदार ओर अनुभवी हैं। आपकी प्रशसा कहीं-न-कहीं मुझे पराभ्न कर देगी।"

"मैं चाहता हूं कि आप यहाँ पर एकत्र राजाओ की कक्षा मे रहकर—अभिषिक्त नरेश बनकर ही स्वयवर मे भाग ले। जब मैंने राजगद्दी छोडी थी तब एक छोटी-सी जागीर मैंने अपने लिए रख ली थी। अब भी मैं उस जागीर का स्वामी हूं। मैं यह जागीर आपको देकर आपका राज्याभिषेक करना चाहता हूँ। इससे आप अन्य राजाओ की कक्षा मे आ जाएँगे," कौशिक ने कहा।

वृद्ध राजा की इस स्नेहपूर्ण उदारता से कृष्ण गद्गद हो गए। परन्तु उन्होंने अस्वीकृति मे सिर हिलाया। "राजन्, आपके इस औदार्य के लिए मै कृतज्ञ हूं। परन्तु मैं जन्म से राजा नही, राजा बनने की वृत्ति भी मुझ मे नही। धर्म की केवल राज्यधर्म के रूप मे नही, बल्कि सर्वाङ्ग रूप मे प्रतिष्ठा करना चाहता हूं। मुझे यह सहन नही होगा कि मेरा कर्त्तव्य राज्य-धर्म की सीमाओ मे बँध जाए।"

"परन्तु आप स्वयवर मे भाग न लें, तो स्वयवर होगा ही कैसे?"

"दादा, राजा भीष्मक जिसकी आयोजना कर रहे है वह स्वयवर ही नही, यह तो छल है, और इसी को रोकने मै यहाँ आया हूँ!" कृष्ण ने दृढ स्वर मे कहा।

"वासुदेव, ऐसा तो राजपरिवारो मे होता ही रहता है," कौशिक ने कहा।

"इसका अर्थ इतना ही है कि राजा अपने पूर्वजो के गौरवपथ से भ्रष्ट हुए है। मै उन्हे उबारने के लिए आया हूँ," कृष्ण ने कहा।

कौशिक मुग्धभाव से कृष्ण की ज्योतिपूर्ण आँखो के सामने देखते रहे।

"यदि आपने स्वयंवर मे भाग न लेने का ही निश्चय कर लिया हो तो मैं वाध्य नही करूंगा, वासुदेव ! परन्तु मैं आपका स्वागत विधिपूर्वक अभिषेक से करूंगा, । आप शौर्य और बुद्धिमानी मे राजाओ मे भी महान है ।

"आपके उदार आतिथ्य को मैं अस्वीकार नही करूंगा । मात्र भय यही है कि जरासंध आप पर कुपित हो उठेगा," कृष्ण ने कहा ।

"मैं उसकी परवाह नही करता !" कौशिक ने कहा, 'राजकाज अब मैंने अपने पुत्र को सौंप दिया है । मुझे तो आतिथ्य की आर्य-परम्परा निभानी है और जो पूजा का पात्र है, उसकी पूजा करनी है ।"

दूसरे दिन जब राजा भीष्मक अपने शयनकक्ष मे रुग्ण और सत्रस्त पडे थे, तब कृष्ण उनसे मिलने आए । राजा के मुख्य सचिव तथा अन्य भोज-नायक भी इस प्रसंग पर उपस्थित थे । मात्र रुक्मी नही दिखाई था । कृष्ण के साथ उद्धव और सात्यकी, राजा शुकदेव और पुनर्दत्त, अग्रवण और ग्रून के राजा तथा गरुड वैनतेय भी आए थे । भीष्मक ने कृष्ण को स्वयवर मे निमन्त्रण न देने के लिए नम्रतापूर्वक क्षमा माँगी ।

"राजन्, आप ऐसा कहते है इसके लिए आभारी हूँ," कृष्ण ने कहा और फिर दृढतापूर्वक बोले, "पर मैं यहाँ आ गया हूँ और मथुरा के यादवो की अवहेलना अब नही की जा सकती । परन्तु अपने पुत्र के कहने मे आकर आप राजा उग्रसेन को भी निमन्त्रण भेजना भूल गए ।"

"मैंने तो रुक्मी पर ही सारा भार डाल दिया था," भीष्मक ने असहाय वाणी मे कहा, "मेरी तो अब अवस्था हो गई है, इसलिए वही सब कुछ सँभालना है ।"

"महाराज, हम लोग दिल खोलकर बात करे," कृष्ण ने कहा । उनकी आवाज में जो सच्चाई थी उससे भीष्मक काँप उठे, "आपने यादवो के शत्रुओ के कहने पर यादवो की अवगणना की । यदि राजा उग्रसेन उपस्थित होते तो यह मिथ्या स्वयवर होता ही नही ।"

"मिथ्या स्वयवर !" भीष्मक गरज उठे । उन्होने आँखे मूँदे ही कहा, "वासुदेव, आपको किसी ने बहकाया है ।"

कृष्ण इस निर्बल राजा को अनुकपा से देखते रहे । भीष्मक ने जब आँखे खोली तब कृष्ण बोले, "भोजश्रेष्ठ, स्वयवर मे मैं जबरदस्ती भाग लेने नही आया । राजपरिवार का जामाता बनने की महत्त्वाकाक्षा भी मै नही रखता ! मेरा पालन गोपाल के रूप मे हुआ है और यह मुझे मालूम

है कि राजस्वयवर मे राजाओ के साथ मै बैठ भी नही सकता।"

भीष्मक ध्यान देकर कृष्ण की बात सुन रहे थे।

'परन्तु मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करना है, आर्यधर्म की रक्षा करनी है। आपके इस स्वयवर मे वर का चुनाव जरासध ने कर लिया है। अन्य अतिथि भी उसमे सहमत हुए है। राजकुमारी को अपना वर पसद करने की अनुमति आपने दी नहीं। इस दुरभिसधि द्वारा आप मथुरा के यादवो को पछाडना चाहते है," कृष्ण क्षण भर रुके, फिर भावविह्वल होकर बोले, "आप राजा है। धर्म के रक्षक है। इसलिए मै आपसे पूछता हूँ। क्या आप भोज-परिवार के उज्ज्वल रत्न, राजकन्या रुक्मिणी का यादवो को कुचलने की जरासध की साजिश का शिकार बना देंगे? सच कहिए हमने आपका क्या बिगाडा है कि आप ऐसे षड्यत्र मे उसका साथ दे रहे है?"

"वासुदेव, आपके साथ शत्रुता मोल लेने का मेरा कोई विचार नहीं। यादवो को कुचलने की चाल मे मै साथ भी नही देना चाहता," भीष्मक ने कृष्ण को उत्तर देने का पूरा प्रयास करते हुए कहा, 'यदि ऐसा कोई षड्-यत्र हो तो क्या आपके फूफा इसमे सयुक्त होगे? मेरी बात मानो, वासुदेव! इस स्वयवर मे कोई अधर्म नही। राजपरिवारो के आपसी सम्बन्ध दृढ करने के लिए ही राजकन्याओ के विवाह होते है।"

"महाराज, आप तो शास्त्रो मे प्रवीण है। आर्य-परपरा को आप मुझसे अधिक जानते है," कृष्ण ने किंचित् मुसकराते हुए कहा, "स्वयवर मे राजकन्या स्वय ही अपने पति को पसद करे, ऐसी परपरा हमारे ऋषियो ने स्थापित की है।"

"मै जानता हूँ," भीष्मक ने उत्तर दिया।

"इसीलिए तो मै यादवश्रेष्ठ राजा उग्रसेन और अपने पिता वासुदेव की ओर से यह कहने आया हूँ कि आप इस अधर्म मे भाग न ले," कृष्ण ने हाथ जोडकर कहा।

भीष्मक कुछ देर चुप रहे, फिर बोले, "इतने सब राजाओ को निमन्त्रित कर स्वयवर को स्थगित करना असभव है। भोजकुल को इसमे कलक लगेगा।"

"तो क्या आप चाहते है कि मथुरा के यादव हमारे प्राचीन ऋत् की सवर्धना करे और अधर्म को रोके?" कृष्ण बोले। उनकी आवाज मे

धमकी का भाव स्पष्ट था।

"तब तो भारी आफत खड़ी होगी। भगवान् हम सबको इससे बचाए?" भीष्मक ने असहाय होकर अपना मस्तक एक ओर निढाल कर दिया।

कृष्ण कौशिक के महल में वापस गए तब त्रिवक्रा उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने कृष्ण का चरणस्पर्श कर कहा, "गोविन्द, राजकुमारी रुक्मिणी का संदेश लेकर आई हूं।"

"मैं जानता ही था कि तुम ऐसा कुछ करोगी," कृष्ण ने हंसकर कहा, "अच्छा कहो, क्या संदेश है?"

त्रिवक्रा ने चारों ओर देखा कि कोई सुन तो नहीं रहा है, फिर आश्वस्त हो धीरे से बोली, "राजकुमारी ने कहलाया है कि गोविन्द, इस भव में और भवोभव आप ही मेरे नाथ हैं, आप ही मेरे स्वामी हैं। मैं और किसी को नहीं वरूंगी।"

कृष्ण हंस पड़े। "त्रिवक्रा, मैं यह जानता हूं। तुम यहां ऐसी ही कोई योजना लेकर आई थीं। राजमहल में रहकर तुम राजनीति में भी प्रवीण हो गई लगती हो।"

"गोविन्द, मेरी हंसी न उड़ाएं। मैं आपके लिए ही जीती हूं, जो कुछ करती हूं आपके लिए ही करती हूं," त्रिवक्रा ने कहा, "और यह कोई खेल नहीं राजकुमारी के जीवन-मरण का प्रश्न है। उन्होंने कहा है कि अन्य किसी से विवाह करने के बदले वे मृत्यु का वरण करना अधिक पसंद करेंगी।"

"सभी लड़कियां ऐसा कहती हैं, फिर दूसरे से विवाह कर सुखी भी हो जाती हैं," कृष्ण ने हंसकर कहा।

"पर, वह ऐसी नहीं। वह कितनी कठोरता से भाई और पिता की ओर देखती है, वह आप नहीं जानते। वह चाहती है कि आप उनका हरण कर लें।"

कृष्ण गंभीर हो गए। "त्रिवक्रा, यह असंभव है।"

"क्यों? राजा कन्याओं का अपहरण कर उनके साथ गांधर्व विवाह करते आए हैं। यह तो परम्परा है। माता-पिता भी बाद में ऐसे युगलों को आशीर्वाद देते हैं," त्रिवक्रा ने कहा।

"त्रिवक्रा, राजकुमारी मे जाकर कहना कि उनका मुझ पर राग है, यह मै जानना हूँ। यदि मै उनसे विवाह करूँ तो माँ देवकी भी प्रसन्न होगी," कृष्ण ने कहा।

"फिर आपत्ति क्या है ?" त्रिवक्रा ने पूछा।

"फिर भी राजकुमारी से कहना कि मै यहाँ धर्म की रक्षा करने और आवश्यकता हुई तो उसके लिए सघर्ष करने आया हूँ। अपने लिए पत्नी की शोध करने मै यहाँ तक नही आया !"

"गोविन्द, मै कभी भी तुम्हे नही समझ सकूँगी!" त्रिवक्रा ने नि श्वास लेकर कहा।

"मेरा दुर्भाग्य है कि तुम भी मुझे नही समझती। मेरा जीवन अपने लिए नही, मात्र धर्म के लिए है।"

"तो वे स्वयवर रचाएँगे ही।"

"मै देखता हूँ कि स्वयवर कैसे रचाते है।"

"तब तो फिर आप राजकुमारी से विवाह कर सकेंगे। जब दो व्यक्तियो मे परस्पर आकर्षण हो तो उन्हे कौन रोक सकता है भला विवाह करने से ?"

"आज तो धर्म ही मुझे रोक रहा है," कृष्ण ने दृढता से कहा, "मै विदर्भ की राजकन्या या और किसी से विवाह नही कर सकता। जरासध हर सभव प्रकार से मेरा नाश करना चाहता है। मै तभी विवाह करूँगा जब अपनी पत्नी को शाति मे रख सकूँ। उसे अनुकूल घर दे सकूँ। परन्तु राजकुमारी से कहना कि तब तक मै अन्य किसी कन्या से विवाह नहीं करूँगा। इस बीच अन्य किसी से विवाह करने के लिए वह स्वय स्वतन्त्र है। यदि ग्रह अनुकूल हुए तो मै रुक्मिणी को अपनी सहधर्मिणी बनाऊँगा," कृष्ण ने कहा।

जरासध और उसके साथियो ने स्वयवर स्थगित करने का निर्णय किया। इस अवसर पर युद्ध मोल लेना उन्हे उचित नहीं जान पडा। कुडिनपुर मे जब सहस्रो यादव-योद्धा उपस्थित हो तब मिथ्या स्वयवर रचना सभव ही नही था। उन्होने तो अपने गौरव पर आँच न आए तो कृष्ण के अभिषेक के समय उपस्थित रहने की भी तत्परता प्रकट की।

जरासध ने बडी चतुराई से सारी बाजी बदलकर परिस्थिति को सँभाल लिया। भीष्मक निर्बल था देह मे और मन से भी। दमघोष

जरासध का प्रीतिपात्र बनना चाहता था, परन्तु यादवों के, विशेषकर कृष्ण के सहार की किसी योजना मे साथ देना उसके लिए सभव नही था। अवन्ती के राजकुमार तो कृष्ण के भक्त थे। भोज-नायक और कुडिनपुर के वरिष्ठ व्यक्ति भी कृष्ण-भक्ति की स्पर्धा मे भाग लेते प्रतीत होते थे।

क्षण भर के लिए जरासध की क्रोधाग्नि भडक उठी। इस वाले ने फिर उसकी योजना को विफल कर दिया था। परन्तु यह भी उससे छिपा नही रहा कि कृष्ण ने कुडिनपुर मे सभी पर अपूर्व नैतिक प्रभाव डाला था। वह सशस्त्र सैनिको सहित आए और लडे नही। वे स्वयवर को रोकने आए, पर राजकुमारी के साथ विवाह करने के अपने स्वार्थ को ले नही। राजाओ मे आदरपात्र वयोवृद्ध कौशिक के लिए वे सौगाते लेकर आए और सभी के हृदय जीत लिए। इसका असाधारण प्रभाव पडा था। कुडिनपुर की समस्त प्रजाजन कृष्ण के स्वागत के लिए उमड पडी तो ऐसी परिस्थिति मे उनके साथ युद्ध करना उचित नही जान पडता था। सम्राट् ने सोचा कि इस समय यदि वह अपना धैर्य खो बैठे तो स्थिति हास्यास्पद बन जाएगी।

जरासध अपने अहकार और निराशा को जीतकर स्वस्थ बन गया। अन्य राजाओ से मिलते समय उसने इस प्रकार कहा मानो सारी परिस्थिति को विशाल दृष्टि से देख रहा हो "कृष्ण शाति से आए है और उनके साथ लडना ठीक नही लगेगा।" सभी राजा जरासध के इस व्यवहार से दग रह गए। उनकी समझ मे नही आया कि उसके मन मे क्या है।

सम्राट् ने सभी राजाओ को कृष्ण के स्वागत-समारोह मे उपस्थित रहने की सलाह दी। राजाओ ने भी राहत की साँस ली। परिस्थिति ही ऐसी थी कि इन सजोगो मे यही उत्तम मार्ग था। कई राजाओ को भीष्मक का व्यवहार कायरतापूर्ण भी लगा, परन्तु और कुछ सभव भी नही था। यादव सशस्त्र थे, भारी सख्या मे थे।

रुक्मी और शिशुपाल सम्राट के प्रति रोष से भर गए। सम्राट् के इस आश्वासन के बाद कि विवाह की पूर्वनिश्चित योजना भविष्य मे कार्यान्वित की जाएगी, दोनो कुछ ठडे पडे परन्तु दोनो इसके बाद एकान्त मे ही रहने लगे। रुक्मी राजमहल से बाहर नहीं निकलता, शिशुपाल भी सदा अपने शिविर मे ही रहता। दोनो अपने-अपने पिता की निंदा करते।

जब सभी राजा विदा हो गए तब जरासध ने अपने विश्वासपात्र साथी

शाल्व के साथ मंत्रणा की। मंत्रणा घंटों तक चलती रही। उसके बाद उसके चिंतित चेहरे पर कुछ संतोष की झलक दिखाई पड़ी।

वसंतपंचमी के दिन कुंडिनपुर में बड़ी धूमधाम से वसंतोत्सव मनाया गया। दादा कौशिक के महल के चौक में लोगों की भीड़ लग गई। वृद्ध राजा ने कृष्ण वासुदेव का अभिषेक विधि से संपन्न किया। इस तरुण वीर के वर्द्धमान से सारा कुंडिनपुर हर्षोन्मत्त हो गया। कृष्ण के पराक्रमों की कथा सबने सुन रखी थी। अब उन्हें देखने के लिए सभी उत्कंठित थे।

अभिषेक-विधि संपूर्ण होने के बाद कृष्ण ने उपस्थित नरेशों का सम्मानसहित अभिवादन किया। इस अवसर पर सम्राट् जरासंध, शिशुपाल और रुक्मी की अनुपस्थिति सभी को खल रही थी।

कौशिक, भीष्मक और दामघोष ने अपने-अपने आसन पर से उठकर कृष्ण का आलिंगन किया। जनता के "जय कृष्ण वासुदेव" के हर्षनाद से गगन गूँज उठा। सारा नगर उत्सव में मग्न हो गया था। सर्वत्र नृत्य, गीत और हर्षध्वनि सुनाई पड़ रही थी। वीर योद्धा अपने शस्त्र-कौशल का प्रदर्शन कर रहे थे। गरुड़ स्वच्छन्द हो नृत्य कर रहे थे।

कृष्ण कौशिक, शक्रदेव, उद्धव और सात्यकी के साथ लोगों में मुक्त रूप से घूम रहे थे। स्त्री-पुरुष कृष्ण के चरणस्पर्श कर आशीर्वाद माँगते थे। आज स्वयंवर होनेवाला था, यह बात भी सब भूल गए।

दोपहर में कौशिक ने भोज का आयोजन किया। इसमें जरासंध भी उपस्थित था। राजागण एक अलग पंक्ति में बैठे, उनके बीच में सम्राट् जरासंध को आसन दिया गया। उनके सामने राजपद न धारण करनेवाले मेहमान बैठे थे। इनके बीच में कृष्ण को स्थान दिया गया। इनकी एक ओर यजमान कौशिक थे, तो दूसरी ओर यादव-नायक बैठे थे। एक ओर आचार्यों की पंक्ति थी।

राजकुटुंब की स्त्रियाँ इन सम्मानित अतिथियों को परोसने निकलीं। रानी सुव्रता और राजकुमारी रुक्मिणी भी इनमें थीं। रुक्मिणी ने सर्वप्रथम आचार्यों की पंक्ति में पयासन्न परोसा। फिर वह राजाओं की पंक्ति में परोसने गई। अलंकारों से आभूषित रुक्मिणी का मस्तक आदर से विनत था, पलकें झुकी हुई थीं।

रुक्मिणी सामने की पंक्ति में परोसने लगी। जब वह वहाँ पहुँची जहाँ कृष्ण बैठे थे, तो उसके हाथ काँपने लगे। कृष्ण को पयासन्न परोसते समय

उसके हाथ में से पात्र गिर गया। रुक्मिणी क्षण भर सिहरी, उसके कंठ में से अस्फुट स्वर निकला और वह संज्ञाहीन हो गई। परन्तु धरती पर गिरते समय उसने रोषपूर्ण दृष्टि से कृष्ण के साथ नजरें चार कर ली थीं।

तुरन्त ही राजपरिवार की स्त्रियों ने रुक्मिणी को घेर लिया। सभा इस सुकोमल राजकुमारी के प्रति सहानुभूति अनुभव कर रही थी।

"आपकी पत्तल पयासन्न से भर गई, इसके लिए मुझे खेद है, इसे आपको बदल देना होगा," कौशिक ने कहा।

"दादा, आपके परिवार के आतिथ्य से ही मैं छलक उठा हूँ," कृष्ण बोले।

अंतःपुर में जब रुक्मिणी को होश आया तब सुव्रता ने उसके कान ऐंठ कर कहा, "तुम्हें ठोकर लगी थी न? दुष्ट, मैं जानती ही थी कि तू ऐसा ही कुछ कांड करेगी। गोविन्द का ध्यान आकर्षित करने के लिए ही तूने जान-बूझकर ऐसा किया था न?"

रुक्मिणी की आँखें विजयमद से नाच उठीं। "आज सवेरे ही वे पिताजी से कह रहे थे कि मैं यहाँ अपने लिए पत्नी प्राप्त करने नहीं आया," और रुक्मिणी ने पुरुष स्वर की नकल करते हुए कहा, "मैंने पयासन्न के पात्र को छलकाकर उन्हें बता दिया कि मैं तुम्हें जीतने आई हूँ—देखती हूँ, कौन जीतता है?"

"बेशर्म!" सुव्रता ने रुक्मिणी को हल्की फटकार देते हुए कहा। आज सुव्रता के हर्ष का भी पार नहीं था, क्योंकि घर में सौत लाने का प्रश्न फिल-हाल तो टल गया था।

४८

कृष्ण की नई चिन्ता

यादव योद्धा जब कुंडिनपुर से लौटे तो उनके हृदय विजयोल्लास और हर्ष से छलक रहे थे। "कृष्ण वासुदेव' की जय-जयकार से वे सारे आकाश को

कपायमान कर रहे थे। मथुरा मे सर्वत्र आनद-मगल छा गया। कई प्रकार के उत्सवो की योजना हुई। पुरुष एक-दूसरे से मिलते और एक-दूसरे की पीठ ठोकते। स्त्रियाँ विजय के गीत गाती। बालक भी हर्षोन्मत्त हो गए थे। योद्धागण कुडिनपुर के हालचाल सबको बडे गर्व के साथ सुनाते कि किस प्रकार उन्होने स्वयवर की योजना को निष्फलकर सम्राट् की प्रतिष्ठा को एक और गहरा धक्का लगाया। सभी बडे प्रेम से यह बाते सुनते और कहते।

कृष्ण ने आकर उग्रसेन और अन्य सरदारो को प्रणाम किया। सभी वृद्धो की आँखो मे हर्ष के आँसू उमड आए। वसुदेव ने उन्हे गले लगा लिया और उनका मस्तक सूँघा। माँ देवकी ने उन्हे बाहुओ मे भर लिया और नन्हे बालक की तरह फफक पडी। यादव युवको के हृदय गर्व से फूले नही समा रहे थे। वे तो उस भूमि तक की पूजा करने लगे जिस पर कृष्ण के चरण पडते थे।

इतना अधिक आदर पाकर भी कृष्ण शात और निर्विकार रहते। अपने मित्र उद्धव से भी उन्होने इस मौन का रहस्य नही कहा। उद्धव उनमे आए इस परिवर्तन को सावधानी से लक्ष्य कर रहे थे। दूसरे दिन यादव सरदारो की गुप्त मत्रणा हुई। सारी बात कृष्ण के मुख से सुनकर भावी नीति निर्धारित करने के लिए यह सभा बुलायी गई थी।

कृष्ण ने वह सब बताया जो कुडिनपुर मे घटा। उग्रसेन ने फिर एक बार गद्गद हृदय से कहा, "गोविन्द, वत्स, तू यादवो का मुकुटमणि है। तूने मथुरा के गौरव की रक्षा की है!" यादव सरदारो ने भी 'साधु, साधु' कह-कर कृष्ण की सिद्धियो का बखान किया। उत्तर मे कृष्ण ने हाथ जोडकर उदास स्मित के साथ कहा, "यह सच है कि हमने अपने गौरव की रक्षा की है, परन्तु हमने सर्वनाश को निमत्रण भी दे दिया है।"

वसुदेव, अक्रूर और उद्धव ने तो समझ लिया कि कृष्ण का आशय क्या है, परन्तु अन्य सभी को इसमें आश्चर्य हुआ।

"ऐसे मगल अवसर पर ऐसी वाणी क्यो बोलते हो, वासुदेव!" राजा ने पूछा, "इस समय तो यादवो की कीर्ति-ध्वजा फहरा रही है।"

कृष्ण कुछ क्षण रुके। अपने मन की बात सरदारो के समक्ष प्रकट करे या नही, इसी ऊहापोह मे रहे, फिर गभीर होकर बोले, "हमने जरासध की योजना को मिट्टी मे मिला दिया है। वह इसका बदला जरूर लेगा,

मथुरा को भस्मीभूत करेगा।"

कृष्ण की वाणी सभी के मर्म को बींध गई। सभी चुप हो गए।

"गोविन्द, क्या यह तुम्हारा निश्चित मत है?" रुद्र ने पूछा। रुद्र विजयवेला में भी भय का विचार करनेवाला सावधान सचिव था।

"हाँ, यदि मैं जरासंध को बराबर जान पाया हूँ तो!" कृष्ण ने कहा, "परन्तु आप यह बात अपने तक ही सीमित रखें, गुरुजन! शायद मेरा अनुमान गलत सिद्ध हो। परन्तु मैं यादवों को हतोत्साह नहीं बनने देना चाहता। वे सबल और आत्मश्रद्धावान बनें, यही मेरी कामना है।"

"अर्थात्, कुंडिनपुर जाकर हमने भूल की, यही न?" वृद्ध गड ने पूछा।

"पूज्य काका, जो कुछ हुआ उसका विचार अब हम त्याग दें, इससे कुछ हाथ नहीं आएगा। आप ही हमारे गौरव की रक्षा करने की बातों में सबसे आगे थे!" कृष्ण ने आहिस्ता से कहा, फिर एकाएक आवाज उठाकर वे बोले, "और मैंने वही मार्ग अपनाया जो एकमात्र मेरे लिए प्रशस्त था। यदि हम खामोश बैठे रहते तो हमारी प्रतिष्ठा धूल में मिल जाती। जरासंध एक ऐसी प्रचंड सन्धि करने में सफल हो गया होता जिससे वह हमें समूचा निगल जाता। और हम, अपने ही कुटुम्ब में हो रहे मिथ्या स्वयंवर को रोकने के अपने धर्म से च्युत होते। अनत शिशुपाल भी अर्धयादव है, हमारी बुआ का लडका है।"

"कृष्ण, तुम्हारी बात सच है। जरासंध का भय तो वैसे भी बना रहता। उससे हम सरलता से नहीं बच सकते। उसका सामना करने के लिए तो हमें सदा तत्पर रहना ही होगा," अक्रूर ने कहा, "देवाधिदेव हमारी सहायता करेंगे, और तुम हमारे अग्रणी हो, इसलिए हम सभी बाधाओं को पार कर सकेंगे।"

"हाँ, यदि कृष्ण ने हमें प्रेरणा दी तो हम सभी भयों से मुक्त हो सकेंगे," उग्रसेन ने श्रद्धा और स्नेह के साथ कहा।

"परन्तु, जरासंध यह साहस करेगा? विदर्भ, चेदि और अवन्ती अब उसकी सहायता करेंगे, इसकी संभावना कम है," वसुदेव ने कहा।

"यह सच है कि जरासंध के मित्रों के बीच दृढ सन्धि नहीं हो सकी। जरासंध अब क्या करेगा, यह भी हम नहीं जानते। परन्तु इतना तो निश्चित है कि वह हमारा नाश करने के लिए कोई कसर नहीं रखेगा," कृष्ण ने

कहा, "परन्तु गुरुजनो, यह बात हम अभी अपने तक ही सीमित रखें।"

कृष्ण और अन्य अग्रजो ने यह चिन्ता अपने मन मे ही दबाकर रखी। कृष्ण यादवो की सेना को सबल बनाने मे जुट गए।

कुछ महीनो बाद हस्तिनापुर मे एक राजकुलोत्पन्न प्रवासी कुछ साथिया सहित मथुरा आया। उसने कोई अग्रिम सूचना नही भेजी थी और योग्य सत्कार इत्यादि की परवाह किए बिना ही उसने नगर मे प्रवेश किया। उसका रथ सीधा वसुदेव के महल की ओर बढा। वह प्रवासी सुदृढ स्नायुओवाला, ऊंचे कद और चौडी छाती का था। उसके चेहरे पर मुस्कान थिरक रही थी। वसुदेव के महल के सामने रथ खडा कर वह उसमे से कूद पडा और उल्लासपूर्ण बुलन्द आवाज मे पुकार उठा, "वसुदेव मामा, कहाँ हो ? अरे बलराम, उद्धव, कृष्ण, देखो तो मै आया हूँ! कहाँ चले गए सब! कृष्ण, कृष्ण, कहाँ हो तुम ? कहाँ हो तुम सब ?" इस तेज आवाज की गूंज सारे महल मे छा गई। इतनी जोरदार आवाज मे पहले कभी कोई वसुदेव के महल मे नही चिल्लाया था।

सबसे पहले कृष्ण बाहर आए। हाथी के शिशु के समान नवागन्तुक को देखते ही वे उसे पहचान गए। कृष्ण को देखकर वह भी आगे बढा। कृष्ण उसके चरण-स्पर्श करने जा ही रहे थे कि आगतुक ने उन्हे बाहुओ मे भरकर उठा लिया।

'कृष्ण, तुम जैसे थे वैसे ही हो। देखो, मैं कितना बढ गया हूँ! हाँ, मात्र कीर्ति मे तुम बढे हो। अपने मन की बात कहूँ ? हस्तिनापुर मे तुम्हारी कीर्ति ठौर-ठौर चर्चा का विषय बनी हुई है। मैं तो तुम्हारी प्रशसा सुनते-सुनते थक गया हूँ। इस कीर्ति मे थोडा भाग हमे भी तो दो!"

"भीमसेन, तुम कितने बढ गए हो! देखकर अच्छा लगता है। कुती बुआ और अन्य सभी भाई आनन्द मे है न ?" कृष्ण ने पूछा।

"मैं जब वहाँ होता हूँ तब सब-कुछ ठीकठाक ही रहता है। पर, इस समय यहाँ हूँ इसलिए हस्तिनापुर मे अँधेर-ही-अँधेर होगा, भीम ने अट्टहास करते हुए कहा। कृष्ण के साथ वह महल मे गया।

हस्तिनापुर के राजा धृतराष्ट्र के भाई पाडु और वसुदेव की बडी बहन कुती का द्वितीय पुत्र भीम इस प्रकार मथुरा मे आया। वह बलराम के पास गदायुद्ध मे प्रवीणता प्राप्त करने आया था।

भीम मदा उत्साह और उल्लास के साथ जीता। उसके होठों से बहता हास्यका झरना कभी सूखता नही था। हिमालय जैसा विशाल उसका हृदय था। वह जिस किसी से मिलता उससे ही दोस्ती कर लेता। उसकी बाते भी बडी-बडी होती। उसकी उपस्थिति मे वसुदेव का महल भर उठा।

भीम ने अपनी और अपने चारो भाइयो की बाते की। पाँचो पाडवोने गुरु द्रोणाचार्य के पास रहकर शस्त्रविद्या की शिक्षा पूर्ण की थी। शिक्षा पूरी होने पर जो परीक्षा हुई उसमे अर्जुन और भीम ही सबमे आगे रहे। इसके बाद गुरु द्रोणाचार्य के नेतृत्व मे उन्होने पाचाल के राजा द्रुपद का दर्प चूर किया था। हस्तिनापुर के लोग इन पाँचो भाइयो को चाहते थे, परन्तु उनके चचेरे भाई, धृतराष्ट्र के पुत्र उनसे सदा द्वेष रखते थे

भीम ने कहा, "युधिष्ठिर का हस्तिनापुर के युवराज के रूप मे अभि-षेक हुआ है। परन्तु यह मामला इतना आसान नही है। धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन ने अपने मामा शकुनि की सहायता से षड्यत्र रचा है। जब मैं मथुरा के लिए रवाना हुआ तब उसका जाल फैल चुका था। दादा भीष्म और काका विदुर भी दुर्योधन की नीचता के आगे असहाय है। अब क्या होगा, यह कोई नही कह सकता।"

एकान्त पाते ही भीम ने कृष्ण को गभीर स्वर मे कहा, "गोविन्द, मै काका विदुर का सदेश लाया हूँ। मात्र तुमसे ही कहना है," और फिर कृष्ण के कान मे बोला, "वास्तव मे मै यहाँ इसीलिए आया हूँ, पर तुम यह बात गुप्त रखना।"

विदुर हस्तिनापुर के सचिव थे। वे महर्षि वेदव्यास के एक दासी से हुए पुत्र थे। इस प्रकार वे धृतराष्ट्र और पाडु के भाई थे। वे चतुर और दूरदेशी थे। माँ की-सी ममता से वे हस्तिनापुर की नियति का निरीक्षण कर रहे थे।

"क्या सदेश लाए हो?" कृष्ण ने पूछा। उन्हे भीम के इस अचानक आगमन से कुछ सदेह तो पहले ही हो गया था।

"काका विदुर ने कहा है कि मुझे यह बात केवल तुमसे ही कहनी है। वे जानते है कि मुझ पर किसी बात को गुप्त रखने का भरोसा नही किया जा सकता। परन्तु यह बात तो मैने गुप्त रखी है," भीम ने हँसकर कहा।

कृष्ण हँस पडे. "हाँ भाई, तुमने उसे गुप्त रखा तो वह अवश्य बहुत महत्त्व की होनी चाहिए। पर, अब मुझे तो बताओ।"

भीम ने आवाज को धीमी कर कहा, "काका विदुर को खबर मिली है कि शाल्व राजा के गुप्तचर सिंधु नदी के उस पार शासन करनेवाले दुष्ट कालयवन से मिले थे। यह दैत्य आर्यावर्त के किसी राजा पर आक्रमण करने के लिए भारी सेना एकत्र कर रहा है। काका को लगता है कि शायद वह मथुरा पर आक्रमण करेगा। तुम्हें सचेत करने के लिए ही उन्होंने मुझे भेजा है।"

कृष्ण ने शांति से इस खबर को सुना। कुछ देर वे कुछ नहीं बोले, फिर उन्होंने कहा, "भाई मुझे, एक वचन दो। किसी पर भी यह रहस्य प्रकट मत करना। यह बात बिलकुल भूल ही जाओ, स्वप्न में भी इसका विचार मत करना।"

"मेरी मुश्किल तो यह है कि मैं सपने में भी बकता रहता हूँ। मुझसे बोले बिना रहा ही नहीं जाता। परन्तु यह बात गुप्त रखने की है, यह मैं पल-पल अपने मन को समझाता रहता हूँ। इसलिए सपने में भी इसकी बात नहीं करूँगा।"

"हो सके तो यह बात अपने से भी गुप्त रखना," कृष्ण ने कहा।

"भाई, तुमसे जब यह बात कह दी तो मेरा मन हल्का हो गया," भीम ने हँसकर कहा, "हम सभी तुम्हारे पराक्रमों की चर्चा सुनकर खुशी से झूम उठते हैं। मेरा तो विचार है कि तुम्हारे शत्रुओं का मस्तक विदीर्ण करने के लिए मैं यहाँ होता तो कितना अच्छा होता।" और फिर कृष्ण को आश्वासन दे रहा हो इस प्रकार स्नेह से एक धौल जमाते हुए वह बोला, "चिंता मत करना, कृष्ण, मैं यह रहस्य रख सकूँगा।"

एक पखवाड़े के बाद चेदि की रानी श्रुतश्रवा अपने भाई वसुदेव से मिलने आई। कृष्ण ने कुंडिनपुर में जो पराक्रम दिखाया था उस पर वे गर्व अनुभव कर रही थीं। उन्होंने कहा, "मेरे पति दामघोष ने कृष्ण के पहुँचने पर जरासंध से स्पष्ट कह दिया कि मैं कृष्ण के साथ लड़ूँगा नहीं, शिशुपाल तो इतना क्रोधित हुआ कि किसी से कुछ बोले बिना अपने शिविर में बंद हो गया। इसके बाद ही जरासंध ने स्वयंवर को स्थगित किया और कृष्ण के सम्मान में आयोजित भोज में भी भाग लिया।"

फिर रानी ने कृष्ण को एकांत में बुलाकर कहा, "कृष्ण, आर्यपुत्र को जरासंध में विश्वास नहीं। राजा भीष्मक को भी उनमें श्रद्धा नहीं। सम्राट्

की हम पर अब कृपा है। शिशुपाल अपने पिता मे बोलता भी नही। तुम तो जानते ही हो कि जरासंध कितना चतुर है। अब वह सौभ के शाल्व के सिवाय और किसी का विश्वास नहीं करता। जाते समय उसने शिशुपाल को एक ओर ले जाकर कहा पुत्र, चिंता न करो! आगामी वर्ष माघ मास मे रुक्मिणी के साथ तुम्हारा विवाह होगा। कृष्ण चाहे जिए या मरे!"

"आपको यह कैसे मालूम हुआ, बुआ?" कृष्ण ने पूछा।

"शिशुपाल ने स्वयं मुझसे कहा। मैंने तो उससे रुक्मिणी का विचार ही त्याग देने को कहा। तब उसने बताया कि सम्राट इस अपमान का बदला लिए बिना नहीं छोड़ेंगे। जरासंध के इन शब्दों मे कि कृष्ण चाहे जिए या मरे, मुझे तो भारी अपशकुन लगता है, बेटा!" रानी ने कहा।

"हाँ, इसमे शकुन तो खराब ही लगते है, बुआ! परन्तु जरासंध का व्यूह अब स्पष्ट होता जा रहा है," कृष्ण ने शांति से कहा।

इस समाचार पर विचार करते समय कृष्ण भय मे काँप उठे। जरासंध ने राज्यसंघ स्थापित करने की अपनी योजना स्थगित कर दी थी। यह मानकर कि विदर्भ, चेदि और अवन्ती की सहायता उसे नहीं मिलेगी, वह अपना भावी कार्यक्रम बना रहा था। अब उसकी योजना मे मात्र शाल्व ही था। भीम द्वारा दी गई विदुर की सूचना भी यही थी। शाल्व के साथ सम्राट् की गुप्त मंत्रणा, कालयवन के साथ शाल्व की भेंट और सैन्य एकत्र करने की कालयवन की चेष्टा मे यही स्पष्ट होता था कि राक्षसी बल का आश्रय लेकर जरासंध यादवों को निर्मूल करना चाहता था। वह पूर्व से मथुरा पर आक्रमण करेगा। कालयवन और शाल्व नैऋत्य से आएँगे। इससे यादवो के लिए पीछे हटने का स्थान नही रहेगा।

इस प्रकार यवन की सहायता लेकर यादवो को निर्मूल करने की यह राक्षसी योजना जरासंध की थी। परन्तु जरासंध आर्यपरम्परा का कभी प्रेमी रहा ही नहीं। सभी नीति-नियमो को ताक मे रखकर वह कालयवन की सहायता को निकल पड़ेगा, यह सभी प्रकार मे संभव था। कालयवन तो दैत्य ही था। यदि वह आर्यावर्त पर चढाई कर दे तो सारी मथुरा भस्मीभूत हुए बिना नही रहेगी।

कृष्ण इस विचार मे चिंतातुर हो उठे। वे मथुरा को हृदय मे प्यार करते थे। यादवो के प्रति उन्हें अपार स्नेह था

उत्पन्न हुई थी जिससे मथुरा और यादव दोनों का ही अस्तित्व इस धरती पर से उठ जाता। वे स्वयं, यादवों के तारनहार, इस विनाश को बुला लाए थे।

कुछ प्रयास के बाद कृष्ण स्वयं को स्वस्थमन बना सके। ये समाचार वे किसी को दे भी नहीं सकते थे; न इस भय का निवारण ही कर सकते थे। इस भावी विपत्ति को टालने का कोई उपाय सूझ नहीं रहा था। अब, तो सर्वनाश की ही प्रतीक्षा करनी थी।

हस्तिनापुर से सहायता प्राप्त करने की सभी आशाएँ बेकार थीं। आन्तरिक ईर्ष्या से वह छिन्न-भिन्न हो रहा था। पांडव कुछ सहायता कर सकते थे, परन्तु स्वयं उनकी परिस्थिति बड़ी विकट थी।

पांचाल का राजा द्रुपद हस्तिनापुर के साथ हुए संघर्ष में इतना निर्बल हो गया था कि जरासंध की सेनाओं को मार्ग देने की माँग का प्रतिकार करने की स्थिति में वह नहीं था।

अन्य छोटे राजा भी यादवों की मदद को आने में समर्थ नहीं थे। यदि जरासंध और कालयवन मथुरा पर आक्रमण करें तो यादवों को बचाने का कोई उपाय नहीं था। परन्तु इस समय इस भावना को हृदय में ही दबाकर रखना उचित न था। यदि यादवों को इसकी खबर लग जाय तो वे भय से त्रस्त हो उठें। मथुरा में हलचल मच जाए और सुरक्षा के लिए कोई दृढ़ कदम उठाना भी असंभव बन जाए।

कृष्ण ने सोचा कि यह भार असह्य है। उन्होंने अपने जीवन का सिंहावलोकन किया। वे धर्म के मार्ग पर ही चलते आए थे, धर्म की रक्षा के लिए उन्होंने चमत्कारिक कहे जानेवाले पराक्रम भी कर दिखाए थे। पर, अब क्या होगा?

४६

श्रद्धा का लोप

कृष्ण धर्म की हो रही ग्लानि पर विचार कर रहे थे। हस्तिनापुर में भीष्म जैसे धर्मावतार विराजमान थे, फिर भी अधर्म का अभ्युत्थान हो रहा था,

मुनियो मे श्रेष्ठ वेदव्यास अपने महान् नैतिक और आध्यात्मिक प्रभाव के बावजूद राजाओं की अनैतिकता को नियन्त्रित नही कर सकते थे।

अब जरासध कालयवन की सहायता लेकर अपने सैनिको को मथुरा की ओर भेजेगा। ये सैनिक गाँवो को जलाएँगे, लूटपाट करेंगे, निर्दय हत्याकाड मचाएँगे, स्त्रियो की मर्यादा का भग करेंगे। कालयवन के आदमी तो सस्कार या नीति से रहित राक्षस ही है। गुरु गर्गाचार्य अपनी युवावस्था मे कालयवन के पिता के दरबार मे रहे थे और उनसे कृष्ण ने कालयवन के बारे मे काफी कुछ सुन रखा था।

कृष्ण कई दिनो मे क्षुब्ध रहते थे। उनका हृदय व्यथा से विदीर्ण हो रहा था। परन्तु प्रिय से प्रिय मित्र पर भी वे यह रहस्य प्रकट नही कर सकते थे। गोवर्धन और गोमातक की घटनाओ के समय उनके हृदय मे जो श्रद्धा प्रकट हुई थी वह क्षण भर के लिए तो मानो क्षीण हो गई। परन्तु इस बेचैनी के बाद फिर यह श्रद्धा प्रदीप्त हुई। धर्म की स्थापना करनी ही होगी। अधर्म का नाश होना चाहिए। इसके लिए कार्य करने की आवश्यकता है—तत्काल, निर्णयात्मक और प्रभावशाली कार्य करने की। 'यदि मै ऐसे जीवन का सामना न कर सकूँ तो दूसरे किस प्रकार करेंगे ? जरासध का प्रतिकार ऐसे शस्त्रो से करना चाहिए कि उसकी हिंसा बध्य हो जाए' परन्तु ऐसे अस्त्र कहाँ है ?

चतुर्मास के बाद मथुरा मे ऐसी अफवाहे फैलने लगी कि जरासध विशाल सेना लेकर मथुरा की ओर बढ रहा है। इस बार उसने आर्यावर्त के किसी नरेश की सहायता नही माँगी, न किसी पर भरोसा रखा। केवल कृष्ण ही यह जानते थे कि कालयवन भी अपने राक्षसी दलो को एकत्र कर रहा है और शाल्व के राज्य की ओर कूच करने को तैयार है—जरासध से मिलकर वह मथुरा के सर्वनाश को सपूर्ण करेगा।

कृष्ण को जब प्रतीत हुआ कि अब कुछ कदम उठाने की आवश्यकता आ गई है तब उन्होने यादव सरदारो की सभा बुलाने के लिए राजा उग्रसेन से विनती की। कृष्ण ने इस सभा मे बताया कि आक्रामक सेनाएँ यादवो का नाश करने के लिए मथुरा पर चढाई करनेवाली है। यह सुनकर सभी इतने त्रस्त और हताश हो गए मानो महल पर बिजली गिर पडी हो।

"हे भगवान! हम लोग तो बुरे फँसे!" कद्रु ने कहा।

"हमे भीष्म और द्रुपद को सहायता भेजने के लिए तत्काल संदेश भेजना चाहिए," अक्रूर ने कहा। इस बार तो अक्रूर की कृष्ण मे श्रद्धा भी डगमगा गई थी।

"द्रोणाचार्य से युद्ध करने के बाद द्रुपद अब निर्बल हो गया है," कृष्ण ने कहा, "और भीष्म स्वयं कठिनाई मे है। युधिष्ठिर के युवराज बनने के बाद कौरवो और पाडवो मे आतरिक सघर्ष बढ गया है। मुझे लगता है कि उन की सहायता पर भी भरोसा नही किया जा सकता।"

"हे भगवान !" उग्रसेन ने कहा।

"राजा दामघोष ऐसे षड्यत्र मे कैसे फॅस गए, यही मुझे विचित्र लगता है," वसुदेव ने कहा।"

"पिताजी, चेदिराज को तो इसकी कुछ भी खबर नही। इस बार जरासध ने आर्यावर्त के किसी राजा पर भरोसा नही रखा। मात्र काल-यवन और शाल्व से उसने साठगॉठ की है और वे हमारे पीछे हटने के नैऋत्य मार्ग को रोकेंगे।"

"इसमे बचने का अब कोई उपाय ही नही है," शकु ने कहा। कृष्ण ने कुछ उत्तर नही दिया।

"क्षत्रियो के समक्ष एक ही मार्ग हो सकता है—लडना अथवा मरना!," वसुदेव ने खिन्न स्वर मे कहा।

"और अपने स्त्री-बालको को विजेताओ के हाथो मे सौप दे ?" सत्रा-जित ने रोषपूर्ण स्वर मे पूछा। कस की मृत्यु के बाद मथुरा मे वापस आए यादवो का वह सरदार था। "जब से हमने अपना भाग्य इस नादान छोकरे के हाथ मे सौपा तब से ही हमे अदेशा था कि यह दुर्गति होनेवाली है।"

"कायरो !" बलराम ने सत्राजित को डॉटा। सभा मे हलचल मच गई। एक-दूसरे पर ही आक्षेप लगाए जाने लगे। राजा उग्रसेन ने बडी मुश्किल से सभा मे शाति स्थापित की। फिर उन्होने पूछा, "कृष्ण, इससे बचने का कोई मार्ग है ?"

"हमारी श्रद्धा ही हमे मार्ग दिखाएगी," कृष्ण ने शात स्वर मे कहा। सभी ने कृष्ण की बात ध्यान से सुनने का यत्न किया। सभी के मन मे एक-मात्र कृष्ण पर ही श्रद्धा थी। कृष्ण ने कहा, "और मै देखता हूँ कि हम अपनी श्रद्धा खो बैठे है।"

"जब सर्वनाश मुँह बाये सामने खडा हो तब श्रद्धा रह भी कैसे सकती

है ?" एक कंपित-स्वर ने पूछा।

"कृष्ण ही हमारे सर्वनाश के लिए उत्तरदायी है," सत्राजित ने कहा और वह जाने के लिए खड़ा हो गया।

"सत्राजित, ऐसी बातें मत करो! अभी कुछ दिन पहले तो हम उसे अपना तारनहार मानते थे," अक्रूर ने कहा।

"तुम मानते होगे! मैं नही मानता!" सत्राजित ने कहा और सभा मे से उठकर चला गया। उसके साथ उसके दो-चार साथी भी सभा मे से उठकर चले गए। किसी ने कहा, "वृहद्वाल हमे बचा सकता है। वह जरासध के पास जाकर शांति के लिए याचना कर सकता है, आगे भी एक बार उसने हमे विपत्ति मे से बचाया था।" कई तरुण सरदारो ने इसका समर्थन किया, पर बड़े-बूढ़ो को इसमें हैरानी ही हुई। वे चुप रहे।

उग्रसेन ने कृष्ण की ओर अपेक्षाभरी दृष्टि डाली। परन्तु वे तो एक शब्द भी नही बोले। वसुदेव के कहने पर सभा स्थगित कर दी गई।

उस रात मथुरा के प्रत्येक परिवार मे भय की भावना फैल गई। दूर से सिंह की गर्जना सुनकर जिस प्रकार मेमनो की दशा होती है, वैसा ही कुछ हाल यादवो का था।

कृष्ण यादवो की इस बौखलाहट को देखकर व्यथित हुए। उनका हृदय अनुकपा से भर गया। परिस्थिति विषम थी। जरासध बदला लेने की भावना से भभक रहा था। यादव भय और आशका से काँप रहे थे। किसी को धर्म का भान नही था, किसी को यह श्रद्धा नही थी कि धर्म ही उनकी रक्षा करेगा। 'यतो धर्मस्ततो जय' का उनके लिए कोई अर्थ नही था।

घर के लोगो मे भी श्रद्धा का लोप उनके व्यवहार मे देखा जा सकता था। सभी एक सरक्षणात्मक छत्र कृष्ण के आसपास इसलिए रच रहे थे कि कृष्ण कही अकेले न पड जाएँ। पिता जब-तब उनकी ओर देखकर मुस्कराते, परन्तु इस मुस्कान मे चिंता का भार छुपा नही रह सकता था। माँ देवकी भी उनके साथ अधिक ममता दिखाती थी। बलराम तो उनकी रक्षा के लिए हरदम तैयार थे। अक्रूर चाचा की विरक्ति अदृश्य हो गई थी। वे कृष्ण का उत्साह बढाने का प्रयत्न करते थे। "जो कुछ भी हो, मैं तो तुम्हारे साथ ही हूँ," ऐसे आश्वासन द्वारा उद्धव भी उन्हे प्रसन्न रखने की चेष्टा करता था। सभी का व्यवहार ऐसा था मानो कृष्ण को इस समय आतरिक शक्ति और बाह्य रक्षण की नितान्त आवश्यकता है।

कृष्ण का हृदय इन सब स्वजनो के लिए अनुकपा से भर गया। स्नेह के आनरेक मे इन सब को लग रहा था कि उनकी कृष्ण को आवश्यकता है। परन्तु स्वय उन्हे न शक्ति की आवश्यकता थी, न रक्षण की। वे कृष्ण को धर्म के स्वरूप मे नही वल्कि सयोगो मे जकडे एक निर्बल मानवी के रूप मे देखते थे। इनमे ऐसी श्रद्धा का होना आवश्यक था कि धर्म अविजेय है, तभी अधर्म को टाला जा सकता था।

कृष्ण को लगा कि जिस श्रद्धा का अनुभव वे करते है उसका एक अश भी यादवो को तो क्या अपने निकट सम्बन्धियो को भी वे नही दे सकते। यह श्रद्धा शैशव मे ही उनमे प्रकट हुई थी। यादव ऐसी श्रद्धा के बिना कठिनाइयो के सामने निर्णयात्मक रूप मे कार्य नही कर सकते थे।

प्रात स्नान के लिए जब वे यमुना के घाट पर जाने को उद्यत हुए तो माँ ने उन्हे रोकने का प्रयत्न किया। माँ को डर था कि रोष मे भरे हुए और निराश यादव कही उन्हे चोट पहुँचाने का प्रयास न करें। परन्तु कृष्ण ने अपनी मधुर मुस्कराहट से माँ को मना लिया। भीम आज चले जानेवाले थे और उनके साथ यमुना-स्नान का आनन्द उठाना वे छोडना नही चाहते थे।

उद्धव और भीम के साथ कृष्ण नदी के तीर पर गए। रास्ते मे उन्होने यादवो को छोटे-छोटे यूथो मे भावी विपत्ति की चर्चा करते पाया। कृष्ण को देखते ही वे चुप हो जाते। उनकी दृष्टि मे रोष और अश्रद्धा स्पष्ट झलकती थी। सात्यकी सदा प्रात स्नान के लिए नदी तट पर आता था, पर आज वह भी दिखाई नही दे रहा था। शायद कृष्ण जैसे अप्रिय व्यक्ति के साथ उसे दिखाई पडने मे सकोच अनुभव हो रहा था।

जब वे स्नान कर बाहर आए तो आस-पास के लोगो ने उन्हे घेर लिया। कई स्त्रियाँ भी वहाँ जमा हो गई।

"कृष्ण, तुम्ही ने हमारी यह दशा की," एक वृद्ध ने कहा, "तुम्हारे कारण यादवो का अब विनाश होगा।"

"अरे मेरे बच्चे! इनका क्या होगा रे!" एक वृद्धा रो पडी।

"कस के राज मे जी तो लेते थे, अब तो मरना होगा" दूसरी ने कहा।

"हाँ, जरासध किसी को नही छोडेगा," एक और आदमी बोला।

"इसने कस को मारा तभी से ऐसा लगता था कि यह दशा होगी।"

"यदि मेरे बालकों को कुछ हुआ तो माँ दुर्गा का कोपभाजन बनेगा तू !"
हम सब किसी हत्यारे के ग्रास बनेंगे ।"
"एक ग्वाले के हाथ में राज्य का भविष्य सौंपने में और क्या होगा ?"
कृष्ण होंठों पर मन्द मुस्कान और अंतर में तथा आँखों में असीम अनुकंपा भरकर ये बातें सुन रहे थे। परन्तु अब उनकी मुस्कान का जादू लोगों पर असर नहीं करता था। स्त्रियों के क्रंदन और पुरुषों के आक्रोश के सिवा और कुछ सुनाई नहीं पड़ता था।
वे खड़े ही रहे। सभी को उन्होंने अपने मन का भार हल्का करने दिया। भीम और उद्धव उन्हें साथ ले जाने, और यदि कोई हाथ उठाए तो उनकी रक्षा करने के लिए तत्पर हुए, पर कृष्ण के संकेत से वे दूर ही खड़े रहे। उन्होंने शांत और उदास स्वर में कहा, "तुम्हारी भावनाओं को मैं समझ सकता हूं और यह भी जानता हूँ कि इस विपत्ति को मैंने ही बुलाया है।"
"पिछली बार की भाँति इस बार भी तू तो भाग जाएगा न ?" एक वृद्ध यादव ने पूछा।
कृष्ण ने यमुना के जल में अंजलि भर कर कहा, "अपने हाथ में यमुना का जल लेकर मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुममें से किसी को मृत्यु का मुँह नहीं देखना पड़ेगा।"
"तू जाकर जरासंध की शरण ले ले ! वह शायद हमें बचा लेगा।" एक स्थूलकाय स्त्री ने लाल-लाल आँखें निकालते हुए कहा।
"यदि तुम लोग इसी से बच सको, तो मैं यह भी करूंगा," कृष्ण ने दृढता से कहा। उनके स्वर में विषाद झलक रहा था। वे बोले, "माताओ, गुरुजनो, बंधुओ ! आप लोग धर्म से अपनी श्रद्धा क्यों खो बैठे है ? जहाँ धर्म है, वहीं जय है !!"
"नहीं भई, आजकल तो अधर्म का ही बोलबाला है," एक यादव ने कहा।
"कभी नहीं !" कृष्ण ने कहा। उनकी आँखें चमक उठीं। भावकंपित स्वर में वे बोले, "धर्म का नाश कभी नहीं होता और जो धर्म में जीते है उनका भी नाश कभी नहीं होता।" फिर सत्तावाहक वाणी में उन्होंने कहा, "घर जाओ, परमात्मा में श्रद्धा रखो, धर्म में श्रद्धा रखो। वही तुम्हारी रक्षा करेगा। मैंने यमुना के जल में प्रतिज्ञा ली है कि जब तक मैं जीवित

हूँ, तब तक तुम में से एक भी आक्रान्ता के हाथ से मरेगा नहीं ।'

कृष्ण ने एक कदम ज्यों ही आगे बढ़ाया कि सभी ने उनके लिए मार्ग छोड़ दिया । कृष्ण घर की ओर चल पड़े ।

पीछे भीड़ में से एक आवाज सुनाई पड़ी "इस ग्वाले को बोलना अच्छा आता है, पर मेरी बात याद रखना जरासंध के आते ही यह फिर भाग खड़ा होगा ।

और, फिर एक बार भीड़ में से क्रोधपूर्ण बड़बड़ाहट सुनाई पड़ने लगी । कृष्ण ने भी इन शब्दों को सुना, और वे विचार में पड़ गए । थोड़ी देर बाद उन्होंने उद्धव की ओर मुड़कर कहा, "मनुष्य स्वयं ही मनुष्य का शत्रु है—अपने ही दोष से वह मारा जाता है ।"

सारे दिन वसुदेव के महल में भाँति-भाँति के लोग आकर धमकियाँ देते रहे, अपशब्द बोलते रहे । वसुदेव ने उन्हें आश्वासन दिया कि कोई-न-कोई रास्ता निकल ही आएगा, पर कोई यह बात मानने को तैयार नहीं था । देवकी ने सभी को प्रभु में श्रद्धा रखने के लिए कहा, पर इसके लिए भी कोई तैयार नहीं था ।

भीम ने विदा लेते समय कहा, "भाई कृष्ण, मेरा तो ख़याल था कि तुम यहाँ पर अधिक सुखी होगे; पर यह मेरी भूल थी ।"

"भाई, जब हम सुख या दुख की बात करते हैं तो इनका सच्चा अर्थ क्या है, यह नहीं जानते । सुख या दुख जिसका स्पर्श न कर सकें, ऐसी कोई वस्तु क्या कहीं नहीं है ? शायद ऐसी ही सारवस्तु इस परीक्षा-काल में हमारे हाथ लग जाय !" कृष्ण ने कहा ।

भीम हँस पड़ा । "ऐसी बातें कर मुझे परेशान मत करो । ऐसी बातें युधिष्ठिर अधिक समझते हैं—मैं तो सुखी होता हूँ या दुखी । अच्छा तो कृष्ण, सुखी रहना ।'

कृष्ण और उद्धव ने भीम का चरणस्पर्श किया । भीम का रथ हस्तिना-पुर की दिशा में रवाना हो गया ।

कृष्ण ने उद्धव से कहा, "उद्धव, ये पाँचों भाई बड़े अच्छे हैं । वे सत्ता-रूढ़ होंगे तो धर्म की स्थापना करेंगे । पर वह समय कब आएगा !"

जब वे लौटे तो मथुरा नगरी सो रही थी । कृष्ण ने उद्धव की ओर मुड़कर कहा, "उद्धव, ये सब धर्म में अपनी श्रद्धा खो बैठे हैं । क्या तुमने

भी इस श्रद्धा को त्याग दिया है ?"

"नही, गोविन्द! धर्म मे अपनी श्रद्धा मैं कभी नही गँवाऊँगा। मुझे तुममे भी श्रद्धा है।"

तुम मेरी चिन्ता मत करो। परन्तु इन लोगो की श्रद्धा को मुझे जगाना होगा। यदि इनमे फिर से श्रद्धा प्रेरित नही कर सका तो मेरा जीना ही व्यर्थ है। मेरा जीवन ही तब असफल सिद्ध होगा।"

"मै जानता हूँ, कृष्ण!"

"इस समय मै कहाँ जा रहा हूँ, यह मत पूछना। पिताजी और माँ को सँभाल लेते रहना—मेरी ओर से उनका चरणस्पर्श करना। बड़े भैया और अन्य सभी को कहना कि वे सदा मेरे साथ ही रहेगे। जिन्हे मेरी बात सुनने मे रुचि हो उनसे कहना कि कृष्ण नही, पर धर्म मे उनकी श्रद्धा ही यादवो की रक्षा करेगी। इस श्रद्धा को जीवित रखने के लिए मै कुछ भी बलिदान करने को तैयार हूँ।"

कृष्ण ने उद्धव का आलिगन किया, अपने अलकार और शस्त्र सौप दिए और हाथ मे दड लेकर अधकार मे अदृश्य हो गए।

५०

नये जीवन की ओर

दूसरे दिन मथुरा मे यह समाचार बिजली की तरह चारो ओर फैल गया कि कृष्ण रातोरात अदृश्य हो गए है। सभी को इससे आघात लगा और आश्चर्य भी हुआ।

बाघ की गर्जना सुनकर ग्वाले के बिना गाये जिस प्रकार वन मे इधर-उधर दौडती है, उसी प्रकार यादव अन्यमनस्क हो घूमने लगे। सभी के हृदय मे कालयवन या जरासध से भी अधिक बडा भय घर कर गया था। उनकी वाचा लुप्त हो गई थी। कृष्ण चले गए, अब सब का क्या होगा, यही विचार सब को खाए जा रहा था। सभी किंकर्तव्यविमूढ और स्तब्ध थे।

सत्राजित और उसके साथियों की जबान पर अब लगाम नहीं रही। "गोविन्द भय का सामना कर ही नहीं सकता! पहले भी वह भाग गया था। इस बार भी भागा।" उनके विचार से वृहद्‌वाल ही अब मथुरा को बचा सकता था। जरासंध के साथ मैत्री स्थापित कर वह सम्राट् के रोष को शान्त कर सकता था। परन्तु वृहद्‌वाल टूट चुका था। उसे अपनी कायरता का भान था। उसने तो मात्र क्रोधित होकर कहा, "गोविन्द के पास जाओ। वही तुम्हारा तारनहार है न? वही तुम्हें बचाएगा।" जो लोग उसके पास कुछ आशा लेकर गए थे वे गालियाँ देते हुए लौटे।

सात्यकी, विराट और उनके साथी विमूढ बन गए। कृष्ण चले गए; अब सब का क्या होगा, यही चिंता उन्हें सता रही थी। मथुरा पर छाए भय की गंभीरता से सभी परिचित थे, परन्तु जब तक कृष्ण थे तब तक अंतिम घड़ी तक लड़ने की आशा तो थी। अब कृष्ण चले गए। यादव नेता भयत्रस्त थे। इसलिए कत्लेआम को कोई बचा नहीं सकेगा। उन्हें लगा कि उन्हें मझधार में छोड़कर खवैया चला गया। असहाय होकर वे बलराम के पास गए।

बलराम सभी पर इसलिए बिगड़ पड़े कि किसी ने कृष्ण में श्रद्धा नहीं रखी। सात्यकी और उसके मित्र जब उनके पास पहुँचे तो उनका ज्वालामुखी फट पड़ा. "तुम सब कायर हो। कल तो तुमने उसे तज दिया था, आज उसे खोजने आए हो! अब ढूंढ निकालो उसे! तुम सब कालयवन के रक्तपिपासु राक्षसों के ग्रास बनने लायक ही हो।"

"परन्तु बड़े भैया, अब आप ही कोई मार्ग सुझाइए।" सात्यकी ने कहा।

"नहीं बाबा, मैं तो वहीं जाकर रहूँगा जहाँ कृष्ण होगा। तुम्हारे साथ मथुरा में रहने से तो कृष्ण के साथ वन में रहना अधिक अच्छा है," बलराम ने तिरस्कार से कहा।

लोगों की भावना भी अब दूसरे अंतिम छोर पर जा पहुँची। कृष्ण भगवान् थे। उन्होंने कंस के अत्याचारों से सभी को मुक्त किया, जरासंध को हराया, कुंडिनपुर में यादवों की प्रतिष्ठा को गौरवशाली बनाया। वही एकमात्र उन्हें बचा सकते थे। वे चले गए, अब भविष्य अंधकारमय था। इसमें बड़े-बूढ़ों का ही दोष था। उन्होंने इस विपत्ति के लिए कृष्ण को ही

उत्तरदाई बनाया, और कृष्ण को गवाँ बैठे। सभी यह भूल गए कि केवल एक दिन पहले उन्होंने कृष्ण को कितनी खरी-खोटी सुनाई थी।

दिन भर बीत गया, पर कृष्ण की कोई खबर नहीं मिली। स्त्रियों ने अचानक यह शोध कर ली कि कृष्ण आए तब से ही यादवों के भाग्य जागे थे। वे थे तब तक यादवों का सितारा बुलन्दी पर था। यादव यशस्वी बन रहे थे—परन्तु अब कृष्ण चले गए तो दुर्भाग्य आएगा ही। कई स्त्रियों ने मनौतियाँ मानी, व्रत रखे और कृष्ण सही-सलामत वापस आ जाएँ, इसके लिए प्रार्थनाएँ की।

एक दिन पहले कृष्ण को भाँति-भाँति के अपशब्द कहनेवाली स्त्रियाँ आज उन्हें न देखकर हताश हो गई। वह मोहक मुस्कान, वे भुवनमोहिनी आँखें, और उस मधुर वाणी का प्रवाह आज कहीं नहीं दिखाई दे रहा था। सत्राजित की पन्द्रह वर्ष की पुत्री सत्या लाल-लाल आँखें किए पिता के पास पहुँची और कृष्ण के अदृश्य होने का सारा दोष उन्हीं को देती हुई बोली, "आप उन्हें धिक्कारते थे, आपने ही उन्हें दूर भगा दिया। अब देवताओं का शाप हम पर बरसेगा, क्योंकि कृष्ण स्वयं देवता थे।"

सत्राजित कृष्ण को धिक्कारता अवश्य था, पर अब यह भय इस धिक्कार में भी प्रबल निकला कि कृष्ण नहीं लौटे तो क्या होगा। उन्होंने अपनी लाडली बेटी को पुचकारने का प्रयत्न किया। वह अत्यंत कुपित हो उठी थी और सिसकारियाँ भर रही थी।

पिछले दिन नदी-तट पर कृष्ण ने जो वचन कहे थे वे अब सब को याद आए। "जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुममें से एक भी किसी आक्रा-मक के हाथों नहीं मारा जाएगा।" अब शायद अपना वचन-पालन करने के लिए कृष्ण जरासंध की शरण लेने गए होंगे। जरासंध इस बार मथुरा को छोड़ेगा नहीं, यह भय तो सभी के मन में घर कर ही गया था, फिर भी कृष्ण के प्रति एक अनोखे आदर का अनुभव सभी कर रहे थे।

गर्गाचार्य और अन्य ब्राह्मण तो बहुत घबरा गए थे। उन्होंने कृष्ण पर कोई अनिष्ट प्रभाव न पड़े इसके लिए रुद्रयाग आरंभ किया।

इस प्रकार मात्र अड़तालीस घंटों में जरासंध के भय का स्थान कृष्ण के लिए चिंता ने ले लिया, और उनके सुरक्षित लौटने के लिए स्थान-स्थान पर प्रार्थनाएँ होने लगीं।

गड और शंकु जैसे वृद्ध निराश हो गए। उन्हें विश्वास था कि चाहे

जिस विपत्ति में से भी कृष्ण कोई-न-कोई उपाय ढूँढ निकालते। यह आशा अब रही नहीं। वे कृतवर्मा, सॉव और कक्ष से मिले और राजा उग्रसेन से सरदारों की सभा बुलाने के लिए विनती की।

दूसरे दिन सवेरे सभी सरदार राजा उग्रसेन और वसुदेव से मिले। सभा में इतनी अधिक उपस्थिति पहले कभी नहीं देखी गई थी। यादवों की विराट भेदिनी राजमहल के बाहर एकत्र हुई थी और यह जानने के लिए आतुर थी कि सरदार इस विहाम परिस्थिति का क्या समाधान ढूँढते हैं।

"यादवो, वासुदेव हमें छोड़कर चले गए," उग्रसेन ने व्यथापूर्ण स्वर में सभा को सबोधित करते हुए कहा, "मथुरा को आलोकित करनेवाला प्रकाश अदृश्य हो गया है। हम नहीं जानते कि वे कहाँ गए हैं। पर इतना जरूर जानते हैं कि वे क्यों चले गए हैं। वे हमें बचाने के लिए गए हैं।" राजा ने गद्‌गद हो आगे कहा, "हम लोग उनके योग्य नहीं सिद्ध हुए। उन्होंने हमें उबारा, एक किया, बल प्रदान किया और गौरवान्वित किया। हमें उनमें श्रद्धा नहीं थी, और अपनी अश्रद्धा के कारण ही हमने उन्हें मथुरा से चले जाने को बाध्य किया। अब हमारा आधार नहीं रहा। हमें यह नहीं सूझ रहा है कि अब हम क्या करें।"

कुछ समय तक स्तब्धता फैली रही। कोई कुछ नहीं बोला। अत में कद्रु ने कहा, "कृष्ण अन्तिम रूप में किससे मिले थे ?"

"उद्धव से!" वसुदेव ने बताया, "क्या हुआ यह उद्धव ही बताएगा!"

"कृष्ण ने जाते समय क्या कहा था, उद्धव ?" राजा ने पूछा।

"भगवन्, हम दोनों साथ-साथ ही भीमसेन को विदा करने गए थे। उस दिन देर रात हुए हम लौटे। कृष्ण ने मुझसे कहा, उद्धव, यह मत पूछना कि मैं कहाँ जा रहा हूँ और क्यों जा रहा हूँ।"

उद्धव की वाणी अश्रुओं से रुद्ध हो गई। "उन्होंने फिर कहा पिताजी और माँ को सँभालना। मेरी ओर से प्रतिदिन उनके चरणस्पर्श करना। बड़े भैया से बोलना कि उनका स्थान मेरे हृदय में रहेगा!" यह शब्द कहकर उद्धव सिसकियाँ भरने लगा। आगे बोलने की शक्ति उसमें रही नहीं। सभी की आँखें गीली हो गईं।

कुछ देर बाद जब उद्धव कुछ स्वस्थ हुआ तो फिर बोला, "उन्होंने यह भी कहा कि जिस किसी को मेरी बात सुनने में रुचि हो उससे कहना

कि कृष्ण नहीं, पर धर्म के प्रति श्रद्धा ही यादवों को बचाएगी। यादवों में यह श्रद्धा प्रेरित करने के लिए मैं कोई भी बलिदान देने को तैयार हूँ क्योंकि यही श्रद्धा तमाम चमत्कारों के मूल में है।"

"फिर उन्होंने क्या किया?" कद्रु ने पूछा।

"उन्होंने अपने सभी वस्त्रालंकार मुझे सौंप दिए और चले गए," उद्धव ने कहा। अब वह बराबर सिसकियाँ भर रहा था।

वसुदेव की आँखों में से भी बराबर अश्रुधारा बह रही थी। उन्होंने अपने हाथों से अपना मुँह ढँक लिया। अन्य अग्रज भी अपनी आँखों से आँसू पोंछ रहे थे।

"बलिदान से उनका क्या अर्थ था?" कद्रु ने पूछा।

"अभी कुछ दिन पहले उन्होंने नदी-तट पर लोगों से कहा था कि जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुममें से किसी एक पर भी कोई आँच नहीं आ सकती। एक भी यादव किसी आक्रामक के हाथों मारा नहीं जाएगा। मेरा पुत्र वहाँ था। उसी ने मुझे यह बात बताई।" कृतवर्मा ने कहा।

सात्यकी स्वस्थ न रह सका। उसने कहा, "हम लोग कह सकते थे कि आक्रमणकारियों का सामना करने के लिए हम उनके साथ-साथ मरने को तैयार हैं, परन्तु हम कायर थे।"

"नहीं हम कायर नहीं थे!" सत्राजित ने कहा।

"तुम नहीं होगे, पर मैं तो था!" सात्यकी ने कहा, "उस दिन नदी-किनारे उनके साथ जाने की हिम्मत भी मुझ में नहीं थी। हाँ, मैं कायर था—और इसके लिए मैं आज भी लज्जित हूँ। इससे तो अच्छा था कि यदि धरती ही फट जाती तो "

"पिछली बार वे गोमान्तक गए थे और चले जाकर उन्होंने मथुरा को बचाया। इस बार भी शायद यही किया हो उन्होंने!" कद्रु ने कहा।

वसुदेव ने मस्तक हिलाया। "पिछली बार उसने इसीलिए ऐसा किया कि मथुरा को बचाने का वही एकमात्र उपाय था। परन्तु इस बार परिस्थिति भिन्न है। जरासंध और कालयवन ने संधि की है और वे दोनों मिलकर मथुरा का नाश करना चाहते हैं। कृष्ण के कहीं चले जाने पर भी उनके इस निश्चय में कोई अन्तर नहीं आएगा।"

"फिर वह कहाँ गया होगा, वसुदेव? तुम्हें लगता है कि वह जरा-

सध के पास जाएगा ?" उग्रसेन ने पूछा।

"हम तो केवल कल्पना ही कर सकते है। इस बार जरासंध का रुख इतना कठोर जान पडता है कि मथुरा के विषय ने वह किसी प्रकार के समझौते की बात करना ही स्वीकार नही करेगा। कदाचित् यादवो पर उसका क्रोध कम हो जाए, इसलिए कृष्ण स्वय शरण मे गया हो, यह भी सभव है।"

"शायद कालयवन से मिलने शाम्ब के पास गए हो!" गर्गाचार्य ने कहा।

"हे भगवान्!" उग्रसेन बोल पड़े। कालयवन का नाम सुनकर ही सभी लोग काँप गए।

"आचार्यदेव, आपको यह प्रतीति क्योकर हुई ?" गड ने पूछा।

"कृष्ण जब अन्तिम बार मुझसे मिले थे तब कालयवन के विषय मे वे बहुत पूछताछ कर रहे थे" गर्गाचार्य ने कहा, "आप तो जानते ही है राजन् कि जब मैं युवा ब्रह्मचारी था तब कालयवन के पिता के आदमी मुझे पकडकर ले गए थे। कालयवन का पिता कुछ-कुछ सम्स्कारी व्यक्ति था। उसने मुझे कालयवन का गुरु नियुक्त किया। कालक्रम मे यवन राजा मृत्यु को प्राप्त हुआ और कालयवन के मामा के हाथ मे सत्ता आयी। मुझे उन लोगो के आचार-विचार मे घृणा हो गई। जब मैंने यह बात बताई तब कृष्ण ने हँसकर कहा कि फिर तो मैं कालयवन का गुरुभाई हुआ, हुआ न ? परन्तु यह तो मैंने सोचा भी नही था कि कृष्ण अकेले ही कालयवन का सामना करने चल देगे।"

"वह राक्षस तो उनके टुकडे-टुकडे कर देगा!" अनाधृष्ट ने कहा। वह एक बार कालयवन के दरबार मे रह चुका था। "वे लोग तो बिलकुल पशु-जैसे है!" वह बोला।

अचानक बलराम उत्तेजित हो उठे। "आपने अब तक बताया क्यो नही कि कृष्ण कालयवन के पास गया है। हम भी वही जाएँगे जहाँ वह गया है। उद्धव, चलो, इस प्रकार बातो मे समय गँवाने का कोई अर्थ नही!" बलराम ने अपने कधे पर गदा रखी और उद्धव का हाथ पकड-कर बोले, "चलो उद्धव, जहाँ कृष्ण, वही हम!" सारी सभा बलराम के इन शब्दो से चकित हो गई।

"मैं भी आपके साथ चलूंगा, बडे भया!" सात्यकी ने खडे होकर

कहा।

"बलराम, ठहरो!" उग्रसेन ने कहा, "कृष्ण का बलिदान किसी तरह नही दिया जा सकता—यदि मृत्यु हमारे भाग्य मे बदी है तो हम सब एक साथ ही मरेंगे।"

"साधु-साधु!" कई वरिष्ठ व्यक्ति एक साथ बोल उठे।

"वीर प्रजा स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए मृत्यु का भी हँसते-हँसते सामना करती है," वसुदेव ने कहा, "परन्तु हममे से कई के विचार इससे भिन्न है।"

"नही, हम सब मरने के लिए तैयार है। परन्तु सबसे पहले कृष्ण को वापस लाओ!" गड ने कहा।

"हाँ, हाँ, कृष्ण को वापस लाओ!" लगभग सभी लोग एक साथ बोल उठे।

"बलराम, उद्धव और सात्यकी को हम कृष्ण की शोध मे भेजेंगे।" वसुदेव ने कहा।

"बलराम, जाओ और गोविन्द से कहो कि यादवो को तुम्हारी आवश्यकता है, अन्य किसी की नही। कृपा कर वापस आओ!" उग्रसेन ने कहा।

मथुरा के लिए यह असह्य स्थिति थी। सारा नगर आशा और निराशा के बीच झूलता हुआ कृष्ण के पुनरागमन की प्रतीक्षा कर रहा था। सभी को यह आशका भी त्रस्त कर रही थी कि यदि कृष्ण नही लौटे, तो? यदि फिर से वे दिखाई नही पडे, तो? उन्होने लौटने से इनकार ही कर दिया, तो? वरिष्ठो के लिए चिता का यह बोझ असह्य था। तरुण अधीर हो गए थे। और स्त्रियाँ आँखो से आँसू बहा रही थी।

कई दिन और रात इस प्रकार इस प्रतीक्षा मे अधीरता मे बीते। चौथे दिन पाँचजन्य के स्वर हवा मे गूँज उठे। मथुरा का हृदय प्रसन्नता से छलक उठा। स्त्री-पुरुष-बालक, सरदार, बडे-छोटे—सभी नगर के द्वार पर जा पहुँचे। कृष्ण लौट आए थे!

"कृष्ण की जय! कृष्ण की जय! जय श्रीकृष्ण!" हाथ मे दड लेकर परिव्राजक की पोशाक मे कृष्ण जैसे ही लौटे कि लोगो ने जय-जयकार से उनका स्वागत किया। परन्तु यह कृष्ण कुछ भिन्न थे। यह धीमी गति से चलते थे। उनके वदन पर गभीरता अकित थी।

कृष्ण के चेहरे पर अंकित दृढ़ता को देखकर सभी आश्चर्य में पड़ गए। कृष्ण ने उग्रसेन और वसुदेव को प्रणाम किया। उन दोनों ने कृष्ण का आलिंगन किया। स्त्रियों की भीड़ के आगे माँ देवकी खड़ी थीं। उनकी आँखों में अविराम अश्रुधारा बह रही थी। सभी कृष्ण को प्रणाम करने दौड़े।

कृष्ण की आँखों में विषाद झलक रहा था। "हे राजन्! हे पिताजी उन्होंने कहा, "मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध आपके प्रति अपनी श्रद्धा से आकर्षित हो आया हूँ।"

"कृष्ण, जो भी हो, हम तुम्हारे बिना नहीं रह सकते!" उग्रसेन ने कहा।

"हे यादव श्रेष्ठ!" कृष्ण बोले, "किसी भी समय धर्म की रक्षा करने के लिए हमें प्राण भी न्योछावर करने को तैयार रहना चाहिए। इस श्रद्धा के बिना हम जीवित नहीं रह सकते।"

हँसते और सिसकियाँ भरते हुए सभी लोग कृष्ण को मथुरा में ले आए। परन्तु कृष्ण स्वयं अत्यन्त गम्भीर थे।

राजा ने सरदारों को तत्काल मिलने के लिए आमन्त्रित किया। राजमहल के आँगन में लोग कृष्ण से मिलने के लिए उत्सुक खड़े थे। वे कृष्ण को परिव्राजक के रूप में नहीं परन्तु अपने उसी मोहन वेश में देखना चाहते थे। पीताम्बर, मोरपंख से सुशोभित मुकुट गले में वैजयन्ति

और कृष्ण ने उन्हें निराश नहीं किया। बलराम, उद्धव और सात्यकी के साथ वे अपने उसी मोहन वेश में आ गए। वे दुर्जेय शक्ति के प्रतीक दिखाई पड़ते थे।

लोग कालयवन के भय को भूल गए। 'कृष्ण-वासुदेव की जय' के नारों से आकाश गूँज रहा था। कृष्ण ने हाथ जोड़कर सभी के अभिनन्दन स्वीकार किए। दृढ़ और स्पष्ट स्वर में वे बोले, "कृष्ण की जय नहीं, धर्म की जय कहो!"

वे भीतर सरदारों की सभा में उपस्थित होने गए। सारी सभा को अब कृष्ण का एक भिन्न स्वरूप दिखायी पड़ा। चक्रधारी और धर्मरक्षक वासुदेव का प्रभाव अब उनकी समझ में आया।

राजा उग्रसेन ने कृष्ण से कहा, "हमारी श्रद्धा कम हो गई थी, कृष्ण! हमें क्षमा करना।"

गड ने कहा," वासुदेव, जीवन और मृत्यु दोनो मे हम तुम्हारे साथ है। हमे छोडकर कही न जाना।"

कृष्ण ने पिता और राजा के चरणस्पर्श किए और फिर हाथ जोड-कर कहा, "हे राजन्! हे पिताजी! आपकी जैसी प्रबल इच्छा थी, उसी से आकर्षित हो मैं लौट आया हूँ। मै कभी आपको छोड़ूँगा नही, आप मुझे छोड देंगे, तब भी नही!"

"कृपा कर ऐसी बाते न कहे। आप चमत्कारी पुरुष है। आप ही हमारी रक्षा कर सकते है।" कद्रु ने कहा।

"मैने एक बार आगे भी कहा था, और आज फिर कह रहा हूँ कि चमत्कार श्रद्धा से ही होते है। श्रद्धा के बिना देवता भी चमत्कार नही दिखा सकते।"

"हमे आपमे श्रद्धा है। आप ही बताइए, हम क्या करे?" शकु ने कहा।

"हॉ, हमे आपमे श्रद्धा है, वासुदेव!" गड ने कहा।

"हॉ, हॉ, हॉ!" कई अग्रज बोल उठे।

"वासुदेव, कृपा कर भूतकाल की घटनाओ को भूल जाओ। हम अतिम समय तक आपके साथ है, सगठित है।" सात्यकी ने कहा।

"कृष्ण, मेरे बेटे!" वसुदेव ने भावना भरे स्वर मे कहा, "तुमने हमारी शक्ति की पूरी परीक्षा ले ली है। हम जानते है कि लडते-लडते मर जाने के सिवाय और कोई चारा नही—और तुम्हारे नेतृत्व मे हम जरासध और कालयवन के आक्रमणो का भी मुकाबिला कर लेगे!"

"पूज्य पिताजी, महाराज, यदि हममे श्रद्धा हो तो हम अब भी जीवित रह सकते है और अपनी स्वतत्रता की भी रक्षा कर सकते है," कृष्ण ने धीमे, पर दृढ स्वर मे कहा।

"वह किस प्रकार?" कई आवाजे आतुर हो पूछ बैठी।

"जरासध अथवा कालयवन की शरण मे जाने के बदले क्या हम मरना अधिक पसद करेगे?" कृष्ण ने सात्यकी और सत्राजित तथा उनके अनुयायियो की ओर देखकर पूछा।

"और कोई मार्ग भी नही!" सत्राजित ने कहा।

"हमे जीने और स्वतत्र रहने का कोई मार्ग हो तो दिखाओ सात्यकी ने कहा।

"यदि आप स्वतन्त्रता के लिए प्राणार्पण करने को प्रस्तुत हों तो मैं आपको जीवित रहने का मार्ग भी दिखाऊंगा।" कृष्ण ने कहा। उनकी आवाज मे दृढता और प्रतीति थी।

"कृष्ण, कृपा कर कहो कि हमे क्या करना है ! हम वही करेंगे और अपने सम्मान की रक्षा करेंगे," राजा बोले, "मैने सभी वरिष्ठ व्यक्तियों से पूछ लिया है। हम कसाई के बकरे की तरह हलाल नही होंगे। लडते लडते मरना हमे मजूर है।"

सारी सभा मे नीरवता छा गई। सभी कृष्ण के वचन सुनने को तैयार थे।

"कालयवन जरासंध से पहले मथुरा पहुँचेगा। फिर भी उसे आते-आते अभी एक महीना तो लगेगा ही। हम सब स्त्री, बालक, पुरुष अपने-अपने अश्व, पशुओ और हाथियो सहित मथुरा छोडकर चल दे।"

"परन्तु जाएँगे कहाँ ? पडोस का कोई राजा हमे आश्रय नही देगा। और यदि दे भी, तो कालयवन और जरासध मिलकर उसका नाश कर देंगे।" कद्रु ने कहा।

"एक प्रदेश ऐसा है जहाँ हम जा सकते है। वहाँ के राजा और प्रजा मुक्त-हृदय से हमारा स्वागत करेंगे," कृष्ण ने कहा, "बडे भैय्या बलराम ने राजा कुकुद्मीन के लिए कुशस्थली पर अधिकार किया था। वह सुन्दर स्थान है—उसके किनारो पर सौराष्ट्र का समुद्र लहराता है। राजा कुकुद्मीन बलराम को अपनी पुत्री और राज्य दोनो दे देने को आतुर है। वहाँ जरासध या कालयवन कोई भी नही आ सकेगा। वहाँ रहकर हम अपना भाग्य भी आजमा सकेंगे।"

"परन्तु कुशस्थली तो बहुत दूर है", सत्राजित ने कहा।

"वह यमभूमि से तो बहुत नजदीक है !" कृष्ण ने कहा।

कुछ देर तक कोई कुछ नही बोला। फिर गभीर स्वर मे कृष्ण बोले, "यदि आप लोग मथुरा नही छोडने का निश्चय कर बैठे है तो वैसा कहिए। मै आपकी इच्छा का पालन करूँगा। परन्तु तब मृत्यु का सामना करने को हमें तैयार होना होगा। अपने स्त्री-बालकों को केसरिया वस्त्र पहना दो। फिर भी आशा की एक झलक मै आपको देता हूँ। आप रथ और गाडियाँ तैयार रखे, अश्वो, पशुओ और हाथियो को साथ ले ले और मथुरा को उसके भाग्य पर छोड दे। हम नये शक्तिशाली

जीवन की ओर, वीरों की भाँति जाएँगे, भयभीत निर्वासितों की तरह नहीं !" कृष्ण ने कहा। उनके शब्द सभी के हृदयंगम हो गए।

फिर वे मुस्कराते रहे, 'यह तो जीवन के लिए प्रयास है। हमें कालयवन के आक्रमणों को विफल करना है। श्रद्धा और शक्ति होगी तो शायद हम इस प्रयास में सफल होंगे।"

'मानो कि हम सफल नहीं हुए तो ?" कद्रु ने पूछा।

"एक बार मरना तो है ही !' कृष्ण ने अपूर्व आत्म-श्रद्धा के साथ कहा, 'हमारे पास और कोई विकल्प नहीं। नये जीवन की ओर बढ़ते समय मृत्यु भी आए तो हम उसे स्वीकार करेंगे।"

उनकी चमकती हुई आँखें सारी सभा पर घूमीं। सभी के चेहरों पर आशा की नयी झलक दिखाई पड़ी। "बड़े भैया और उद्धव कुशस्थली का मार्ग जानते हैं। यह सच है कि यह रास्ता जंगलों, रेगिस्तानों और दलदलों से भरा पड़ा है, परन्तु बलराम और उद्धव जैसे मार्गदर्शकों के होते हुए हमें कोई विपत्ति नहीं आएगी। अब समय गँवाने का कोई अर्थ नहीं !"

"और तुम्हारा क्या होगा ?" उग्रसेन ने पूछा।

"मैं अपने वचन का पालन करूँगा। आप सब के चले जाने के बाद ही मैं मथुरा छोड़ूँगा। मैं यहीं रहूँगा और सबकी सुरक्षा का भार लूँगा। कालयवन यदि आया और आप तक पहुँचने का उसने प्रयत्न किया तो मैं अकेला उसे रोकूँगा। यदि यादवों को मरना होगा तो फिर मुझे भी जीना नहीं है। महाराज, आप आज्ञा दें और मुझे आशीर्वाद दें। आज से चार दिन बाद सोमवार को यादव नये जीवन की ओर प्रस्थान करेंगे।"

५१

प्रस्थान

यादवों का कूच आरंभ हुआ, वे सुरक्षा और स्वतन्त्रता की दिशा में आगे बढ़ रहे थे। जंगलों, रेगिस्तानों और दलदलों को पार करते हुए वे

सौराष्ट्र के अपरिचित सागरतट की दिशा मे चले।

इन सब के आगे बलराम और उद्धव थे। राजा उग्रसेन, वसुदेव, अक्रूर और अन्य वयोवृद्ध सरदार अपने-अपने परिवार-सहित रथो मे बैठे थे। तरुण अश्वारूढ थे। अन्य यादव सपरिवार बैलगाडियो मे चल रहे थे। प्रत्येक परिवार के वाहन के साथ-साथ उसका पशुधन, ऊँट, हाथी इत्यादि भी थे।

आश्रितजन, निषाद, नाग और अन्य लोग अपने कुटुबो-सहित पैदल चल रहे थे। इस सारे सघ के पीछे सात्यकी के नेतृत्व मे युवा अश्वारूढ यादव आ रहे थे। सारे समुदाय की यात्रा निर्विघ्न हो, इसका भार इन्ही को सौपा गया था। इन लोगो के साथ मथुरा के पडोस मे आए छोटे से राज्य, अग्रवन के राजा चारुदत्त भी हो लिए थे। यवनो के हाथो मारे जाने से अधिक श्रेयस्कर उन्हे यादवो के साथ नवजीवन की शोध मे निकलना लगा। इन सबके पीछे कृष्ण भी घोडे पर सवार होकर चले आ रहे थे। उन्होने इस बात की प्रतिज्ञा ली थी कि यह सारा समुदाय अपने गतव्य स्थान तक सही-सलामत पहुँच जाय।

यह प्रयास अत्यत कठिन था। कई लोग तो मार्ग मे ही मरणासन्न हो गए। प्रवास का श्रम और रेगिस्तान की गरमी असह्य थी। पशुओ, अश्वो,हाथियो इत्यादि मे से भी कुछ मृत्यु के मुख मे चले गए। परन्तु ऐसी कुछ नगण्य घटनाओ को छोडकर यादव किसी गभीर विपत्ति मे फँसे बिना रेगिस्तान और जगलो मे से सकुशल पार हो गए। फिर वे लवणिका नदी के तट पर पहुँचे। नदी वैसे तो छिछली थी, परन्तु बरसात हो जाने के कारण उसका वेग तुमुल हो गया था।

अधिकाश लोग नदी को पार करने मे सफल हो गए। परन्तु समस्त सघ का नदी पार करने मे अब भी चार दिन लग जाने की सभावना थी। रात पडने पर कृष्ण ने सात्यकी को बुलाकर कहा, "सात्यकी, अब मुझे तुमसे अलग होना पडेगा।"

"क्यो ?" सात्यकी ने साश्चर्य पूछा, "तीन-चार दिनो मे तो हम सही-सलामत नदी पार कर जाएँगे, भगवन्!" सात्यकी और उसकी वय के तरुण अब कृष्ण को 'भगवन्' कहकर सबोधित करने लगे थे।

"देखो सात्यकी, हम लोग भारी खतरे मे है। कल रात्रि मे पश्चिम के आकाश मे मैने प्रकाश की क्षीण रेखाएँ उभरती देखी थी; आज भी

वह प्रकाश दिखाई पडता है। यह कालयवन की सेनाओं द्वारा जलाई गई अग्नि की लपटों का प्रकाश है। वह लवणिका की घाटी में से गुजरता मालूम देता है। यदि ऐसा हुआ तो वह कल या परसों तक हमें पकड लेगा। और, तब तक हम नदी को पार नही कर सकेंगे" कृष्ण ने कहा।

इस प्रदेश में परिचित लोगों ने भी बताया कि यह उजाला अनेक तप्तकुडों की शिखाओं का प्रकाश ही है। सात्यकी ने पश्चिम के आकाश की ओर देखा और कहा, "हमें शीघ्रता करनी चाहिए!"

"हम चाहे जितनी शीघ्रता करे तो भी सब लोगों को नदी पार करने में चार दिन तो लग ही जाएँगे। और फिर, शेष बचे लोग प्रशिक्षित योद्धा भी नहीं है, एक सीमा से आगे वे शीघ्रता कर भी नही सकते।" कृष्ण ने कहा।

"अधिकांश यादव तो सही-सलामत उस पार पहुँच ही गए है। अब तो सेवक, अनुचर, निषाद इत्यादि लोग ही बचे है—उन्हे यदि हम उनके भाग्य पर ही छोड दे तो?" सात्यकी ने पूछा।

"ये हमारे ही लोग है—हम में से ही एक अश! इन्हे उस दैत्य की दया पर छोडा नही जा सकता। और यह भी कौन जानता है कि इससे पहले कि हम सब पार हो जाएँ, कालयवन यहाँ नही आ पहुँचेगा और मथुरा जाने के बजाय यही हम लोगों का पीछा करेगा। वह तो जगली है!"

"तो हमे क्या करना चाहिए, भगवन्?" सात्यकी ने नम्रता से पूछा।

"मैं अब चलता हू, सात्यकी!" कृष्ण ने कहा, "मैं जाकर कालयवन से मिलूँगा और उसे दो-तीन-दिन रोके रखूँगा। इतने मे तुम सब सही-सलामत नदी पार कर आगे बढ सकोगे। आशा है कि हमारे प्रस्थान की खबर उसे नही लगी है।"

"परन्तु आप जाकर उससे मिले, यह तो बडे सकट की बात हो सकती है।" सात्यकी ने कहा।

"यदि वह लवणिका की घाटी मे से होकर आ रहा है तब तो वह निश्चय ही कल या परसों तक हमें पकड लेगा। इसलिए वहाँ जाने का खतरा उठाने के सिवा और कोई चारा नही है!" कृष्ण ने दृढता से

कहा।

"परन्तु भगवन्, वह कदाचित् आपकी " कुछ हिचकिचाते हुए सात्यकी ने कहा, "हत्या कर बैठे !"

"हाँ, इससे अधिक तो वह कर ही क्या सकता है ?" कृष्ण ने कहा, "पर उसकी क्या चिंता है ? मृत्यु आखिर है भी क्या ? पुराने वस्त्र छोड़कर नये वस्त्र धारण करना ही तो !"

"परन्तु आपके बिना हम सबका क्या होगा ?" सात्यकी ने भयभीत होकर पूछा।

"ऐसा मत कहो ! मैने तुम सबको मार्ग तो दिखा ही दिया है। धर्म का अनुसरण करो—तुम्हें कोई आँच नहीं आएगी। इसी श्रद्धा को लेकर मै जिया हूँ, और चाहता हूँ कि इसी श्रद्धा को लेकर तुम सब भी जियो !" कृष्ण ने सात्यकी के कधे पर हाथ रखते हुए कहा।

सात्यकी की आँखें अश्रुओं से छलक उठी "परन्तु भगवन् "

"सात्यकी, बातों में समय गँवाने का अवसर नहीं। मै मार्गदर्शक को अपने साथ ले जाता हूँ—वह मुझे रास्ता बता देगा।" कृष्ण ने कहा।

सात्यकी कृष्ण के चरणों में गिर पड़ा। कृष्ण ने उसे उठाकर उसका आलिंगन किया और कहा, "सात्यकी, मेरे प्रिय मित्र, मेरे आशिष स्वीकार करो। मेरा सदेश सुनो। महाराज उग्रसेन से कहना कि यादव अब स्वतत्र हो गए हैं—उन्हें अब सबल होना चाहिए और जरासध का नाश करना चाहिए। जब तक वह जीवित है तब तक आर्यावर्त मे धर्म की स्थापना नही हो सकती।"

"हाँ, भगवन् !" सात्यकी ने आँसू पोछते हुए कहा।

कृष्ण ने भावनाप्रधान स्वर मे आगे कहा, "मेरे माता-पिता से कहना कि मै सदा उनके पास ही होऊँगा। बड़े भैया से कहना कि वह रेवती से शीघ्र ही विवाह कर ले। रेवती से कहना कि पुत्रवधू के रूप में माता-पिता की सेवा करना उसका धर्म । वह वीरागना है—मुझे विश्वास है कि वह अपने कर्तव्यों का पालन करेगी।"

सात्यकी ने किसी कद्र रो पड़ने से स्वय को बचाया।

"बलराम यादवों का खयाल रखेंगे," कृष्ण ने कहा, "उनसे मेरा प्रणाम कहना—और सात्यकी. "

"मेरे लिए क्या आज्ञा है, प्रभु ?" सात्यकी ने अवरुद्ध कठ से कहा

तुम्हे अधिक कुछ नही कहना। तुम वीर हो, वफादार हो, उदार हो—ऐसे ही रहना। उद्धव वीर है, पर हृदय मे वैराग्यवान है। जैसा वह मेरा मित्र था वैसा ही मित्र तुम उसके बन जाना।" कृष्ण ने कहा।

"हाँ, प्रभु।" सात्यकी ने कहा। अब वह स्वय को रोक नही सका, और फफक पडा।

"आओ, मुझे आलिगन दो, सात्यकी! मृत्यु की चिता मत करो। भय मे जीना ही मरण है।" कृष्ण ने कहा।

कृष्ण ने सात्यकी का मस्तक सूँघा और आशिष दिया। मृदु स्वर मे वे बोले, "अब एक और बात—फिर मैं जाऊँगा।"

"कहिए, प्रभु।"

"तुम राजकुमारी रुक्मिणी को जानते हो? राजा भीष्मक की पुत्री।" कृष्ण ने कहा, "जब मैं बिल्कुल छोटा था तब से उसने मुझे अपने नाथ के रूप मे स्वीकार किया है। तब से वह रात-दिन मेरे नाम की ही रट लगाए है।"

कृष्ण क्षण भर के लिए रुके, फिर बोले, "शत्रुओं से घिरी रहने पर भी मेरे धर्मयुद्ध मे वह सदा साथ रहती है। चंपक पुष्प जैसी कोमल और प्रभावशाली राजकुमारी हमारी ओर होकर अकेली जरासध से लडी है। उसने यदि साथ नही दिया होता तो हम कभी के खत्म हो गए होते।"

सात्यकी ने मस्तक झुकाया—कृष्ण की बात सुनकर वह गद्‌गद हो गया था।

"एक बार जरासध ने मथुरा का विनाश कर लिया कि वह शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह रचाने के लिए जोर देगा। रुक्मिणी की मुझ पर श्रद्धा समस्त मानवीय बधनो से परे है। यदि उसे मालूम हो गया कि मैंने धर्म के लिए जीवन का त्याग कर दिया है तो वह अवश्य मेरा अनुकरण करेगी।" कृष्ण ने कहा।

कृष्ण ने अपनी भावनाओं को नियत्रित किया और समभाव मे आगे बोले, "बडे भैया, उद्धव और अन्य सभी यादवों को मेरा यह सदेश देना कि चाहे जिस परिस्थिति मे भी उसे जरासंध के शिकजे से बचाएँ। यदि इससे पहले उसने प्राण त्याग दिए तो उसकी भस्म द्वारका मे लाकर उस

पर विराट मदिर बनाना। वह धर्म के प्रतीक के समान है। उसका आशीर्वाद यादवो की कीर्ति बढाएगा।"

कृष्ण ने सात्यकी के मस्तक पर हाथ रखा और अपने रथ पर बैठकर चले गए। उनके पीछे मार्गदर्शक भी अश्वारूढ हो चल पडा। सात्यकी अवाक् हो दोनो को देर तक देखता रहा।

अधकारपूर्ण रात्रि मे घोडो को तेज दौडाकर उषाकाल होते ही कृष्ण वहाँ जा पहुँचे जहाँ कालयवन की सेना ने पडाव डाल रखा था। वे काल-यवन के तबू के पास पहुँचे और यह सदेश भिजवाया कि गर्गाचार्य के शिष्य, कृष्ण वासुदेव मथुरा का कब्जा देने के लिए आए है।

यह सदेश सुनकर कालयवन को आश्चर्य हुआ। उसने आज्ञा दी "आगन्तुक को प्रस्तुत करो!"

कृष्ण कालयवन के समक्ष जा खडे हुए। उसका भयकर मुख, कठोर आकृति, लबी दाढी और आँखो मे खेल रहा क्रूर हास्य किसी को भी भय-भीत करने को पर्याप्त थे। उसके आसपास उसके समान ही कठोर, क्रूर और अर्धनग्न अगरक्षक खडे थे। अधिकाश के पास ताँबे की तलवारे और चमडे की ढाले थी। कइयो के पास पत्थर की गदाएँ भी थी। उनके लबे, बिखरे बाल उनकी भयकरता मे वृद्धि कर रहे थे।

कृष्ण स्वस्थ होकर आगे बढे और सविनय बोले, "मै कृष्ण हूँ—शूरो के नायक वसुदेव का पुत्र और आपकेएक समय गुरु, गर्गाचार्य का शिष्य!"

"जरासध के जामाता कस को मारनेवाला ग्वाला तू ही है न ?" कालयवन ने पूछा।

"हाँ" कृष्ण ने शाति से कहा, "यादवो की ओर से मथुरा का अधि-कार आपको सौपने के लिए मै आया हूँ।"

यवन की आँखे विजय के उन्माद से चमक उठी, "यदि तू वसुदेव का पुत्र कृष्ण ही है तो मैने अपने मित्र जरासध को वचन दे रखा है कि तुझे तो मै अपनी मुट्ठी मे पीस डालूँगा। परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि तू मुझे मथुरा का कब्जा देने किस प्रकार आया!"

"मै यह कहने आया हूँ कि आपको मथुरा जीतने का कष्ट करने की आवश्यकता नही। इससे पहले कि जरासंध आकर मथुरा पर अधिकार करे, आप उसे अपने कब्जे मे ले ले। यही हम सबकी इच्छा है और इसीलिए मै मथुरा का मार्ग आपको बताने आया हूँ।"

"तू मेरे साथ खिलवाड़ करना चाहता है, छोकरे ?" कालयवन ने तलवार की मूठ पर हाथ रखकर पूछा।

"मैं आपके साथ खिलवाड़ कैसे कर सकता हूँ ?" कृष्ण ने हँसकर कहा, "मैं अकेला हूँ और निशस्त्र हूँ। आपके पास आकाश के तारों के समान अनगिनत सैनिक हैं।"

"तेरे साथ क्या व्यवहार करना चाहिए, यह मैं देखूँगा।" कालयवन बोला।

कालयवन ने अपने सैनिकों को किसी अज्ञात भाषा में आज्ञा दी। सैनिक कृष्ण को पकड़कर ले गए। कालयवन ने अपने मुख्य सेनापतियों के साथ मंत्रणा करना आरम्भ किया। उस दिन उसकी सेनाओं ने वहीं अपना पड़ाव डाले रखा।

दूसरे दिन कालयवन ने कृष्ण को बुला भेजा। उसने पूछा, "जरासंध के मथुरा पहुँचने से पहले हम वहाँ अपना अधिकार किस प्रकार कर सकते हैं ?" आज उसकी आवाज में शंका का भार कम था।

"मैं आपको मथुरा जाने का दूसरा मार्ग बताऊँगा। यदि आप लवणिका के उत्तर किनारे से आगे बढ़ेंगे तो मथुरा पहुँचने में आपको अधिक समय लगेगा। मैं आपको अयवन में से होकर ले जाऊँगा, जिससे आप जरासंध से भी एक महीने पहले मथुरा पहुँच जाएँगे।" कृष्ण ने कहा।

"मैं यह कैसे मान लूँ कि तुम सच ही कह रहे हो ?" कालयवन ने पूछा।

"आप अपने मार्गदर्शकों को लेकर मेरे साथ आएँ। आपको विश्वास हो जाएगा। मैं और मेरा मार्गदर्शक आपको रास्ता बताएँगे।" कृष्ण ने कहा।

"यदि तूने हमें गलत रास्ता दिखाया तो मैं तेरा खून पी जाऊँगा, तुझे जीवित जला दूँगा," कालयवन ने दाँत भींचकर कहा।

"मैं जानता हूँ," कृष्ण ने स्वस्थता से कहा। उनके चेहरे पर की मुस्कान में जरा भी फर्क नहीं आया। "चाहे जैसे हो, आपने मुझे मार डालने की प्रतिज्ञा तो कर ही रखी है। इसलिए किस प्रकार मारेंगे, इसकी चिंता मुझे नहीं।"

कालयवन इस साहसपूर्ण उत्तर को सुनकर हँस पड़ा। उसके समक्ष

भय न खानेवाला यह पहला ही व्यक्ति आज उसने देखा था।

"मै स्वय तेरे साथ आऊँगा। यदि तूने भागने की जरा भी चेष्टा की तो तेरे टुकडे-टुकडे कर दूंगा!" कालयवन ने कहा।

दो दिन तक कृष्ण और उनका मार्गदर्शक कालयवन को उत्तरी रेगिस्तान की ओर ले गए। वहाँ से वे मथुरा के राजमार्ग से मिलानेवाले ईशान मार्ग की ओर मुडे।

तीसरे दिन सुबह कृष्ण की प्रसन्नता का पार नही था। अब तक तो सात्यकी लवणिका पार कर चुका होगा! पाँचवे दिन कालयवन और कृष्ण जब छावनी मे लौटे तो कालयवन ने कूच का हुक्म दिया।

कालयवन ढाल, तलवार और गदा लेकर सेना के पीछे रहता था। कृष्ण पर पहरा देने के लिए उसने चार रक्षक रखे थे। इस बात का वह विशेप ध्यान रखता था कि कृष्ण कही भाग न जाए।

परन्तु कृष्ण ने भाग जाने की कोई इच्छा ही नही प्रकट की। इसके विपरीत, अपनी भावी से भेट करने की तैयारी उन्होने प्रसन्नमुख ही दिखाई। वे अपने अश्व का खूब जतन रखते और उसे अच्छी खुराक देते।

थोडे दिन बाद सेना मथुरा के मुख्य मार्ग पर पहुँची। कालयवन ने देखा कि किसी बडी सेना या सघ के उस पर से गुजरने के चिह्न स्पष्ट दिखाई पड रहे है। जलाए हुए अग्नि-कुड, पशुओ और अश्वो की देहो पर उडते गिद्ध, कही-कही देहो के अग्निसस्कार होने के चिह्न, भोजन की पत्तले इत्यादि देखकर उसे भारी आश्चर्य हुआ।

कालयवन ने अपने आदमियोको आसपास रहनेवाले किसी व्यक्ति को ढूँढ लाने की आज्ञा की। बडी मुश्किल से वे दो ऐसे आदमियो को पकड लाए जो वहाँ झोपडी बाँधकर रह रहे थे। वे तो दोनो भय से थर-थर काँपने लगे। उन्होने डरते-डरते कहा, "बहुत से लोग रथो, अश्वो, बैल-गाडियो पर और पैदल भी, यहाँ से होकर गुजरे थे—उनकी सख्या कितनी थी यह हम नही जानते, पर उनके साथ पालतू पशु भी थे।"

'वे कौन थे, यह जानते हो?" कालयवन ने पूछा।

"नही, महाराज!"

"सच-सच बोलना! नही तो तुम्हारी जीभ खीच लूंगा!" काल-यवन ने क्रोधित होकर कहा।

भयभीत आदमी उसके चरणो मे गिर पडे। वे बोले, "वे कौन थे

यह हम नही जानते। वे बहुत प्रतापी पुरुष लगते थे। वे बारम्बार एक नाम उच्चारते थे, वह हमे याद है।"

"कौन-सा नाम ?"

"वे लोग कृष्ण-वासुदेव की जय बोल रहे थे।"

कालयवन ने देखा, कृष्ण कुछ दूरी पर घोड़े पर सवार खड़े थे। उसने आज्ञा दी, "बंदी को यहाँ लाओ !"

कृष्ण अपना अश्व कालयवन से बात की जा सके, इतना नजदीक ले आए।

"तुम जिस कृष्ण वासुदेव की बात करते हो, वह यही आदमी है न ?" कालयवन ने उन ग्रामीणो से पूछा।

वे लोग कृष्ण को देखते ही पहचान गए। उनका घनश्याम वर्ण और मधुर वदन उनके हृदय मे बस गया था। इन्होने ही तो उनके परिवार को भोजन की सामग्री दी थी। उनकी समझ मे नही आया कि कालयवन को क्या उत्तर दे। उनका मन भय और कृतज्ञता के बीच झूल रहा था। कृष्ण इसे भाँप गए। उन्होने अपना अश्व कालयवन के और भी निकट ले लिया।

"इन्हे क्या पूछ रहे हो ?" कृष्ण ने कहा, "मै ही इस मार्ग से महीनो पहले गुजरा था।"

"तेरे साथ कौन था ?" कालयवन का हाथ उसकी तलवार की मूठ पर गया।

"मथुरा के यादव !" कृष्ण ने बिना किसी हिचकिचाहट के कहा।

"तो तू मुझसे झूठ बोला ?" कालयवन की भृकुटि तन गई।

"नही। मथुरा खाली है, और आप उस पर अधिकार कर ले, यही विनती करने आया था।"

"और यादव भाग गए है, यही न ? मेरे और उनके बीच तूने महीनो का अन्तर डाल दिया, दगाबाज !" कालयवन ने तलवार खीच ली और अपने अश्व को कृष्ण की ओर बढाया।

कृष्ण मानो इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होने घोड़े के हल्की-सी एड लगाई और घोडा आगे उछला। कृष्ण ने इस अश्व का लालन-पालन इतने जतन से यो ही नही किया था। वह अगरक्षको की पूरी पंक्ति को लाँघ गया और दक्षिण दिशा मे दौडा।

५२

मुचकन्द की गुफाएँ

क्षण भर तो कालयवन और उसके सैनिक आश्चर्य मे स्तब्ध रह गए। फिर यवन ने क्रोध मे आकर दाँत पीसे और अपने घोड़े के एड लगाकर कृष्ण का पीछा करना शुरू किया। उसके कई अनुचर भी उसके पीछे-पीछे दौडे।

कृष्ण का शरीर वैसे भी हल्का था, फिर उस पर शस्त्रो का भार भी नही था। उनका पीछा करनेवाले सभी कद्दावर और भारी डीलडौल के थे भाले, तलवार, ढाल, बख्तर, शिरस्त्राण इत्यादि के बोझ से भी वे दबे हुए थे।

कृष्ण का अश्व तीर की तरह छूटा और घडी-दो घडी मे तो वह पीछा करनेवालो मे बहुत आगे निकल गया। सूर्यास्त होने पर एक झरने के पास कृष्ण रुके और घोडे को रास्ते पर सुस्ताने और चरने के लिए छोड दिया। मैदान मे वे स्वय शरीर को फैलाकर लेट गए और आँखे मूँद ली।

कुछ देर के बाद वे खड़े हुए और लगाम पकडकर घोडे को एक ओर ले जाने लगे। इतने मे किसी घोडे की टाप दूर से सुनाई पडी। ऐसा लगा कि पीछा करनेवालो मे से कोई अब भी पीछे-पीछे आ रहा था।

कृष्ण घोडे पर सवार हो गए और सावधानीपूर्वक उसे आगे दौडाया। एक के बाद एक कई घडियाँ बीत गई, फिर भी पीछा करनेवाले घोडे की टाप बराबर सुनाई पड रही थी।

सवेरा होने लगा। कृष्ण पीछा करनेवाले से आगे निकल गए थे। परन्तु इतने मे उनके घोडे के ठोकर लगी और वह गिर पडा। उन्हे लगा कि पीछा करनेवाला अब कुछ ही क्षणो मे आ पहुँचेगा। भोर के धुधलके मे उन्होने देखा कि एक ऐसी पगडडी जगल की ओर जा रही थी जिस पर मुश्किल से एक आदमी या बकरी चल सकती थी।

उन्होने अश्व की ओर अनुकपा से देखा और उसे वही पडा रहने देकर पगडडी पर प्रयाण किया। रास्ते पर के गड्ढे और काँटो से बच-बचकर उन्हे चलना पड रहा था। थोडी देर बाद ऐसी आवाज सुनाई पडी मानो पीछा करनेवाले का घोडा आकर रुका है। फिर एक क्रोधित स्वर मे गाली देने की आवाज सुनाई पडी। यह स्वर कालयवन का था। कालयवन भी

उमी पगडडी पर कृष्ण का पीछा करने लगा ।

कृष्ण यथामभव शीघ्रता मे दौड रहे थे । सूर्योदय हुआ और धरती पर सुनहरी किरणें फैल गईं । क्षण भर कृष्ण माँस लेने को रुके और उन्होंने पीछे देखा । ऐमा लगता था मानो कालयवन ने का दूरी तय कर ली है । अब उम दानव का मुख स्पष्ट दिखाई दे रहा था। उमने अपना कवच, शिरस्त्राण और तलवार फेंक दी थी । अब तो दोनों मे जो बलवान हो, जो अधिक देर टिक मके, उमी की जीत थी ।

इमसे बचने का कोई मार्ग है या नहीं, यह देखने के लिए कृष्ण ने इधर-उधर नजर दौडाई । कुछ दूरी पर उन्हे एक टेकरी दिखाई पडी। वहाँ कितनी ही गुफाएँ भी दृष्टिगोचर हो रही थी । उनमें से धुआँ निकल रहा था, इममे यह भी अनुमान लगाया जा मकता था कि वहाँ बस्ती होनी चाहिए । कृष्ण ने मोचा कि शायद उधर ही कोई बचने का रास्ता निकल आए ।

कृष्ण ने प्राणपण मे अपना मारा जोर लगाकर टेकरी की ओर दौडना प्रारभ किया । टेकरी पर जाने के लिए एक छोटी-मी पगडडी थी । थोडा आगे बढने पर कृष्ण ने देखा कि कालयवन टेकरी के नीचे खडा है और अपने शेष शस्त्र भी उतारकर फेंक रहा है जिममें जल्दी से ऊपर चढा जा सके । इतना तो स्पष्ट था कि वह थक चुका था ।

कृष्ण को इस विषम परिस्थिति में भी हँसी आ गई । अब दोनों ममान रूप मे निशस्त्र थे । अब लडाई होगी तो शरीर-बल मे ही । परन्तु यह भी वे जानते थे कि यवन बगल मे छुरी रखता था । इमलिए उन्होंने सोचा कि कुछ आराम कर ही उमसे भिडा जाए तो अच्छा होगा ।

कृष्ण विश्राम के लिए रुके । अब वे टेकरी की चोटी तक पहुंच गए थे । वहाँ उन्होने छ गुफाएँ देखी । कई गुफाओ के मामने अग्निकुड तप रहे थे । गति धीमी कर उन्होंने पीछे देखा । यवन अभी आधी टेकरी ही चढ पाया था ।

आहिस्ता-आहिस्ता कृष्ण बीच की एक गुफा की ओर बढे । वही मबमें बडी थी । उन्होंने अदर झाँका । एक वृद्ध महात्मा अर्धनग्न अवस्था मे सो रहे थे । उनके शरीर पर भस्म रमी थी । गुफा के एक कोने मे बुझी हुई आग थी ।

कृष्ण ने अपनी कमर पर मे पीत वस्त्र उतारकर वृद्ध को ओढा दिया

और स्वय गुफा के एक अँधेरे कोने मे जाकर बैठ गए। उनकी नजर बराबर गुफा के द्वार पर टिकी थी। कुछ समय बाद कृष्ण की थकावट कुछ कम हुई। यदि यवन से लडना पडा तो वे तैयार थे। इतने मे उन्हे यवन का थका हुआ श्वास सुनाई पडा। कृष्ण अब लडने के लिए प्रस्तुत थे।

कालयवन गुफा मे घुसा। पीताबर ओढे सोये हुए पुरुष को उसने कृष्ण ही समझा। कालयवन ने कमर से कटार निकाली और सोये हुए व्यक्ति को लात मारकर कटार उसकी बगल मे घुसेड दी।

वृद्ध खडे हुए। उनके एक हाथ मे खून बह रहा था। नीली, घनी भवो से ढकी हुई उनकी वृद्ध आँखे क्रोध से आग उगल रही थी। इतने वृद्ध होते हुए भी वे बाघ की तरह कालयवन पर टूट पडे। उसके कटारवाले हाथ को उन्होने मरोड दिया और यवन को बुझी हुई अगार पर पछाड दिया। यवन चीखने-चिल्लाने लगा।

अन्य चार वृद्ध भी गुफा मे दौडकर आ गए। उनके हाथो मे ताँबे की त्रिशूले थी। उन्होने ये त्रिशूले यवन की देह मे घुसा दी। यवन अपने ही रक्त मे सना मूच्छित हो गया।

वृद्धो ने उसे उठाकर टेकरी पर से नीचे फेक दिया।

कृष्ण बाहर आए और वृद्ध के पैरो पडे। अपने पीताबर मे से एक पट्टी फाडकर उन्होने वृद्ध के घाव पर बाँधी।

"कौन हो तुम ?" उन महात्मा ने पूछा। 'हर हर महादेव!" वे फिर स्वगत ही बोल पडे।

"महात्मा, मै कृष्ण वासुदेव हूँ," कृष्ण ने वृद्ध की पट्टी को सँभालते हुए कहा।

"कृष्ण वासुदेव!" स्मृति को टटोलते हुए वृद्ध बोले और फिर 'भद्र, भद्र' कहकर अपने एक शिष्य को बुलाया। शिष्य से उन्होने पूछा, "वासु-देव, कृष्ण वासुदेव—क्या यह नाम तुमने कही सुना था, भद्र ?"

'गुरुदेव, दो वर्ष पहले जब हम प्रभास को गए थे तब सुना था कि ये महान् वीर है," भद्र ने उत्तर दिया, "लोग ऐसा कह रहे थे कि इन्होने मृत्यु के देव यम पर विजय प्राप्त की है और उस मगध के दुष्ट राजा को भी पराजित किया है।"

"तुम वही कृष्ण वासुदेव स्वय को बताते हो ?" वृद्ध ने पूछा।

"हाँ महात्मन्, क्योकि मै वही हूँ," कृष्ण ने उत्तर दिया, "मै कोई

महान् वीर नहीं। मैं मथुरा का यादव हूँ—शूरों के नायक वसुदेव का छोटा पुत्र। हाँ, यह सच है कि मैंने नागलोक के राजा यम को हराया और मगध के जरासंध को भी पीछे भगा दिया।"

'यहाँ क्या कर रहे थे तुम ?" वृद्ध ने पूछा।

कृष्ण ने संक्षिप्त में अपनी कथा कही। उनकी कथा सुनने के बाद वृद्ध ने सभी शिष्यों को बुलाकर कृष्ण का उचित सत्कार करने को कहा।

दूसरे दिन उन्होंने कालयवन की मृत देह को ढूँढ निकाला और योग्य विधि से उसका दाह संस्कार किया।

कृष्ण को इस तपस्वी की विचित्र रीति-भाँति देखकर कुछ कौतूहल हुआ। वे घंटों तक चिलचिलाती धूप में भी जलती हुई अग्नि के पास बैठे रहते और 'हर हर महादेव" का जप करते। एक दिन कृष्ण से पूछे बिना नहीं रहा गया, "गुरुदेव, आप यहाँ किस लिए रह रहे हैं, यह जिज्ञासा मुझे है।"

'वत्स, हम यहाँ कई वर्षों से रह रहे हैं," वृद्ध महात्मा ने कहा, "जब हम पहले-पहल इन गुफाओं में रहने आए तब शायद तुम्हारे पिता ने भी जन्म नहीं लिया होगा। ये मुचकंद की गुफाओं के नाम से प्रख्यात हैं। सत्य-युग में देवाधिदेव इन्द्र के साथ युद्ध कर महान् राजा मुचकन्द यहाँ विश्रान्ति के लिए आया था। अब लोग मुझे भी मुचकंद कहते हैं।"

"परन्तु आपने ऐसा एकान्त स्थान क्यों पसंद किया ?" कृष्ण ने पूछा।

"लोगों के जीवन की असारता, दुष्टता और विकृति को मैंने देखा है। किसी समय मैं एक शक्तिशाली सरदार था; मेरे पत्नियाँ, पुत्र और मित्र थे। परन्तु शांति की खोज में मैंने उनका परित्याग किया और अन्ततः यहीं आकर मुझे शांति मिली।"

"गुरुदेव, जीवन असार नहीं," कृष्ण ने आदर-भाव से कहा, "जीवन को यदि धर्म से जिया जाये तो उसका स्वरूप खिल उठता है। तब जीवन जीने योग्य हो जाता है।"

महात्मा ने अपना सिर अस्वीकृति में हिलाते हुए कहा "जब तुम बड़े होगे तब तुम्हें जीवन की असारता समझ में आएगी। तब यदि मैं जीवित रहा तो तुम्हारा यहाँ स्वागत करूँगा। इस कंगाल जीवन को छोड़ देना ही सच्चा धर्म है।"

"गुरुदेव, क्षमा कर !
रहना ही यदि वास्तविक धर्म है तो फिर ब्रह्मा ने यह जगत् रचा ही क्यो ?"

"तुम किस प्रकार का जीवन जीओगे, वत्स ?" वृद्ध ने पूछा।

"मै धर्ममय जीवन जीने मे विश्वास करता हूँ। इसी मे जीवन जीने योग्य बनता है," कृष्ण ने कहा।

महात्मा के मुख पर एक म्लान हँसी छा गई। "तुम्हे ससार का अनुभव नही, वत्स ! तुमने उसकी दुष्टता को नही देखा।" उन्होने कहा, "यदि तुम शाति चाहते हो तो इस ससार का त्याग कर दो।"

"गुरुदेव, मैने ससार का त्याग किए बिना ही शाति प्राप्त की है," कृष्ण ने कहा।

"यह कैसे सभव है ?"

'परिणाम की चिंता किए बिना केवल सत्य के मार्ग पर ही चले तो यह शाति प्राप्त होकर ही रहेगी," कृष्ण बोले।

"अद्भुत, वत्स, अद्भुत ! जीवन जीकर तुमने जीवन प्राप्त किया है। यह विचित्र है।"

"हाँ, और इसी को सिद्ध करने के लिए मै चेष्टा कर रहा हूँ, गुरुदेव !"

कृष्ण अब कुशस्थली जाने के लिए आतुर हो रहे थे। परन्तु महात्मा के शिष्य उन्हे जाने नही दे रहे थे। इन शिष्यो ने मैदानो मे कालयवन की तलाश मे भटकते हुए यवनो के दलो को देखा था। इसलिए कृष्ण का इस समय सौराष्ट्र जाना खतरे से खाली नही था।

इन दिनो कृष्ण इन महात्माओ के आचारो का पालन करते थे। उनके जीवन-दर्शन से असहमत होते हुए भी वे वहाँ शिष्यवत् ही रहे। वे अग पर भभूत लगाते और प्रतिदिन महादेव का ध्यान धरने बैठते।

कुछ सप्ताह बाद महात्मा और उनके शिष्य प्रभास की यात्रा पर निकले। तब कृष्ण भी उनके साथ थे। प्रभास पहुँचकर हिरण्य नदी जहाँ सागर मे मिलती है वहाँ पर कृष्ण नहाये और भगवान् सोमनाथ की उन्होने पूजा की। इस बीच उन्होने सुना कि कुछ दिन पूर्व यादव सेना जहाजो मे बैठकर किसी दूर देश मे युद्ध के निमित्त गई है। कुशस्थली पहुँचने के बाद इतने कम अवकाश मे यादव कहाँ गए होगे, इसका अनुमान कृष्ण नही लगा सके। इसलिए उन्होने मुचकन्द ऋषि की भस्म ली और द्वारका के

नाम से परिचित कुशस्थली की ओर चल पड़े ।

इस सुदूर भूमि में यादव बस गए, यह देखकर कृष्ण की आँखें शीतल हुईं । द्वारका के किनारे पर उन्होंने सैकड़ों नयी झोपड़ियाँ बँधी देखीं । उन्होंने कई गायों को भी पहचान लिया । पशु मैदानों में मुक्त रूप से चर रहे थे । बहुत से खेतों में खेती भी होने लगी थी ।

कृष्ण जब शहर के भीतर पहुँचे तो वहाँ पर व्याप्त शून्य ने उन्हें आश्चर्य में डाल दिया । उनमें जो भी मिले वे अधिकांशत. मध्य वय पार कर चुके थे या अति वृद्ध थे । स्त्रियों की आँखों में आँसू और चेहरे चिंता-युक्त थे । सभी ने काले वस्त्र पहन रखे थे और अलंकार उतार दिए थे । ऐसा तो तभी होता जबकि यादव शोक मना रहे हों ।

कृष्ण की समझ में नहीं आया कि इस शोक का पालन किसलिए किया जा रहा है । उन्होंने नगर में प्रवेश किया और वहाँ जा पहुँचे जहाँ प्राचीन महल खड़े थे । एक मकान के आगे वे खड़े रहे । कुछ देर बाद उसमें रहनेवाले दिखाई पड़े । वे किसी मंदिर से आते जान पड रहे थे । उन्होंने भी शोक की ही पोशाक पहन रखी थी ।

उनमें एक वृद्धा थी, उसकी पुत्री और पुत्रवधू थी । कृष्ण उन्हें देखते ही पहचान गए । वह मथुरा के दुर्गपाल शकु की पत्नी थी । कई बार जब उन्होंने दुर्गपाल के यहाँ भोजन किया था तो इसी वृद्धा ने उन्हें परोसा था ।

"माँ, शूरों के नायक वसुदेव का घर कहाँ है ?"

वृद्धा की आँखों की रोशनी मद्धिम हो गई थी । उसने कुछ देर तक कृष्ण के मुख की ओर गौर से देखा, फिर बोली, "तपस्वी, इस रास्ते से सीधे जाकर दाहिनी ओर मुड़ जाना । वहाँ एक बड़ा घर है । उसी में शूरों के श्रेष्ठ वसुदेव रहते हैं । परन्तु उनके यहाँ भिक्षा मत माँगना । वे शोक में हैं । भिक्षा चाहिए तो मेरे यहाँ से ले जाओ !" यह कहकर वृद्धा ने अपनी पुत्री को भिक्षा के लिए कुछ लाने को कहा ।

"क्यों, क्या हुआ ? उनके कुटुंब में क्या किसी की मृत्यु हो गई ?'

वृद्धा स्त्री सीढ़ियों पर ही बैठ गई और फिर सिर थामे बहुत देर तक बैठी रही । फिर बोली, "प्रत्येक घर में शोक है, वत्स !" उसकी आवाज रुँध गई थी ।

"क्यों ?" कृष्ण ने पूछा, "सभी युवक कहाँ चले गए ? क्या सभी

युद्ध मे " इस मार्मान्तिक शोक का अर्थ कृष्ण नहीं समझ सके।

"नहीं, युवक तो सब विदर्भ गए हैं—राजकुमारी रुक्मिणी को बचाने। हमारे प्रिय गोविन्द की वह मनवाछित वधू थी। गोविन्द हमे छोडकर चले गए और हमारे हृदय फटे जा रहे है," वृद्धा ने सिसकियाँ भरते हुए कहा, "पिछले दो मास से हम रो रहे हैं—अब तो आँख के कुएं भी रीते हो रहे हैं।"

कृष्ण अपनी मृत्यु के लिए रोनेवाली इस बुढिया के रुदन से द्रवित हो गए।

"उन्हे क्या हुआ ?" कृष्ण ने पूछा।

"वे अद्भुत थे—हमारे गोविद, हमारे तारनहार, हमारे भगवान्!" वह वृद्धा बोली, "मथुरा से वे हमे इस अद्भुत भूमि मे ले आए और हमे बचाने के लिए स्वय दुष्ट दैत्य के भोग बन गए।"

वृद्धा रो पडी। एक स्त्री भीतर से भिक्षा लेकर आई। कृष्ण ने अपने भिक्षापात्र मे उसे स्वीकार किया।

"माँ, आप लोग किसी मदिर मे लौटी है ?"

"हाँ, हमने गोविंद की पूजा के लिए मदिर बनाया है।"

यह सुनकर कृष्ण गद्गद हो उठे। उन्होने वृद्धा से विदा ली। अब उनकी समझ मे यादवो की उदासी का रहस्य आया। इन सभी लोगो का अपने प्रति इतना प्यार देखकर उनके नयन सजल हो उठे। युवा यादव बलराम और उद्धव को भेजे गए कृष्ण के सदेश का पालन करने गए थे।

स्वय उन्हे भी जाना चाहिए। रुक्मिणी को बचाना ही होगा। कृष्ण तेजी के साथ वसुदेव के महल की ओर बढे। कई वृद्ध अनुचरो का आना-जाना देखकर ऐसा लगता था कि पिता वसुदेव किसी महत्त्व के काम मे व्यस्त थे।

परन्तु माँ क्या कर रही होगी ? कृष्ण सोच रहे थे। घर के एक भाग मे मदिर था लोगों के छोटे-मोटे टोले दर्शन के लिए वहाँ जा रहे थे और दर्शन कर लौट रहे थे। एक स्त्री बाहर निकली। उसके साथ दो-तीन दासियाँ थीं। कृष्ण उसे पहचान गए। वह कसा मामी थी। किसी समय वह कृष्ण की मृत्यु की कामना करती थी। अपने पुत्र बृहदबाल के प्यार मे ही उसकी सारी दुनिया सिमट आई थी।

बृहद् कहाँ होगा, यह प्रश्न भी कृष्ण के दिमाग मे कौंध गया। वह

बलराम के साथ क्या होगा, या पीछे रह गया ?

कृष्ण ने आगे बढकर उनमे से एक स्त्री से पूछा, "क्या मै मदिर मे जाकर दर्शन कर सकता हूँ ?"

स्त्री ने उनके मुख की ओर देखा, फिर कहा, "जा, दर्शन हो जाएगा। पूजा तो समाप्त हो गई है।"

कृष्ण ने हाथ ऊँचा कर आशिष दिया और अदर गए। इस स्त्री ने अपने साथ की स्त्री से पूछा, "इस तपस्वी का चेहरा तो कुछ परिचित-सा लगता है—है न ?"

ऐसे तो कई साधु आते है और चले जाते है," दूसरी ने तिरस्कार से कहा।

कृष्ण भीतर गए और दूसरे लोगो के वहाँ से हटने की प्रतीक्षा करने लगे। वे माँ देवकी से मिलने को अधीर थे। उन्होने देखा कि खड मे एक छोटे से पट्ट पर एक आसन था। उसमे मोरपख के साथ उनका मुकुट और उनके अलकार थे। सामने सुदर्शन चक्र और पाँचजन्य शख रखे थे। उनका धनुष शारग और गदा कामोदकी भी वही थे। यह गोविन्द का ही मदिर था।

अधिकाश लोग चले गए थे। मात्र माँ, अक्रूर काका और त्रिवक्रा अभी आँखे मूँदे कुछ बोल रहे थे। नजदीक जाने पर उन्हे सुनाई पडा

हे कृष्ण गोविन्द हरे मुरारी !
हे नाथ नारायण वासुदेवा !

ये लोग तब तक इस मत्र का उच्चार करते रहे जब तक कि माँ बेहोश होकर गिर न पडी। कृष्ण अब स्वय को नियन्त्रित न रख सके। उन्होने पुकारकर कहा, "माँ, मै आया हूँ !"

तीनो ने आँखे खोलकर विस्मय के साथ कृष्ण की ओर देखा। त्रिवक्रा के हाथ मे से पूजा का थाल गिर गया। त्रिवक्रा दौडी—भस्म के लगे रहने पर भी कृष्ण को उसने पहचान लिया। वह उनके चरणो मे गिर पडी और पुकार उठी "कृष्ण ! कृष्ण !"

कृष्ण उसे उठाएँ इससे पहले तो देवकी और अक्रूर भी उनकी ओर दौडे। देवकी वृद्ध और दुर्बल हो गई थी। उसकी आँखे रो-रोकर फूल उठी थी। आश्चर्यचकित हो वह कृष्ण का मुँह निहारती रही।

'माँ !" कहकर कृष्ण आगे बढे।

"गोविन्द !" माँ ने कहा, और कृष्ण के पैरों के पास निढाल होकर वह गिर पड़ी ।

कृष्ण ने हाथ में से भिक्षापात्र दूर फेंक दिया और माँ को उठाकर भीतर के कक्ष में ले गए ।

५३

अविभक्त आत्मा

हृदय विदीर्ण करनेवाले समाचार थे । सम्राट् जरासंध मथुरा पर शीघ्र ही आक्रमण करनेवाले थे । उन्होंने मथुरा को भस्मीभूत करने की प्रतिज्ञा ली थी । यह समाचार सुनते ही राजकुमारी रुक्मिणी मूर्च्छित हो गई । जरासंध ने अपने साथियों से स्पष्ट कह दिया था कि इस अभियान में उसे किसी की सहायता नहीं चाहिए । रुक्मी ने उससे साथ देने की तत्परता दिखाई, परन्तु जरासंध ने उसे भी साफ ना कहला दिया ।

अब बाजी पलट गई थी । जरासंध ने अकेले ही जाने का निर्णय किया था । वह अपने शत्रु को क्रूर से क्रूर सजा देना चाहता था । इसके बाद जब यह खबर चारों ओर फैली कि दुष्ट कालयवन भी, जिसकी क्रूरता की कथाएँ जगविख्यात थीं, जरासंध का इस अभियान में साथी है, तो यादवों के बचने की किसी को कोई उम्मीद नहीं रही ।

रुक्मिणी ने दादा के आगे अपना हृदय खोला । वृद्ध कौशिक को आशा की कोई किरन दिखाई नहीं पड़ती थी । रुक्मिणी दिन-रात घायल हरिणी की तरह तड़पने लगी । उसे सदा गोविन्द की याद आती और गोविन्द पर छा रहे विपत्ति के बादल उसे भयभीत कर रहे थे ।

कार्तिक मास में आचार्य श्वेतकेतु के शिष्य अप्नव और जह्नु कुंडिनपुर वापस आए । अवंती में गुरु सांदीपनि के आश्रम में रह रहे आचार्य ने रुक्मिणी और उसके दादा को संदेश भेजा था । कृष्ण यादवों को सुदूर सौराष्ट्र की भूमि की ओर ले जा रहे थे । महीनों के बाद प्रथम बार ही

रुक्मिणी के होठों पर स्मित की रेखा दिखाई पड़ी। उसके हृदय में आशा का सचार हुआ।

परन्तु साथ ही उसकी चिंता में भी वृद्धि हुई। रणिस्थान में यादवों की क्या गति हुई होगी? गोविन्द का क्या होगा? मार्ग में कुछ हो गया तो!

कार्तिक बीता, मार्गशीर्ष आया। पर न तो जरासंध की ही कोई खबर आयी, न यादवों की। रुक्मिणी को अनुभव हुआ कि वह स्वयं जीवन और मृत्यु के बीच झूल रही है। आशा और निराशा के दौर आते रहे। अब सुव्रता का साथ भी नहीं रहा था। सुव्रता तब तक तो रुक्मिणी का साथ देती रही जब तक कि उसे सौत आने का डर था, परन्तु अब रुक्मी के जरासंध की पौत्री के साथ विवाह करने की सभावना बहुत कम रह गयी थी, इसलिए उसने पति को रिझाने के लिए रुक्मिणी के साथ सम्बन्ध तोड़ लिया।

रुक्मिणी को अपने दादा से भी कोई आश्वासन नहीं मिला। वे इन घटनाओं से अत्यंत व्यथित हुए थे। कृष्ण में उनकी श्रद्धा भी भग्न हो गई थी। कृष्ण रुक्मिणी को बचा सकेंगे, इसकी आशा भी अब उन्हें नहीं रही थी।

बीस वर्ष की यह राजकन्या अजीब उलझन में पड़ गयी थी। वह अकेली पड़ गई। राजमहल के सारे शोरगुल के बीच उसकी एकान्तिकता उसके अन्तर को कचोट रही थी। उस पर तब तो दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ा जब सम्राट् जरासंध ने उसके पिता भीष्मक पर कठोर आज्ञा-पत्र के समान एक सदेश भेजा। वैशाख सुद ३—अक्षय तृतीया—को रुक्मिणी का स्वयंवर होगा। निमन्त्रण उन्हीं को भेजना होगा जिनकी स्वीकृति जरासंध दें। जरासंध स्वयं कुंडिनपुर होकर मगध लौटने वाला था और रुक्मिणी-शिशुपाल के विवाह में उपस्थित रहना चाहता था।

ऐसा ही एक सदेश चेदिराज दामघोष को भेजा गया है, यह समाचार दूत ने राजा भीष्मक को दिया। यह तो आज्ञा ही थी। राजा भीष्मक अथवा राजा दामघोष को स्वयं निर्णय करने का कोई अधिकार नहीं दिया गया था।

रुक्मिणी ने इतने जोर से होठ काटे कि उनमें रक्त बहने लगा। फिर उसने स्वस्थ होने का प्रयत्न किया। उसका भावी अधकारमय था।

यादवो की कोई खबर नही थी । कृष्ण के आकर उसे बचा लेने की भी कोई सम्भावना नही थी । मृत्यु ही एक मात्र मार्ग शेष रह गया था । फिर भी हृदय के किसी कोने मे आशा का अखड दीप जल रहा था । कृष्ण चमत्कार कर सकते है लोग कहते है कि वे भगवान् है और रुक्मिणी को इसमे श्रद्धा थी । अभिम समय तक भी आकर कृष्ण उसे उबारेंगे । परन्तु बुद्धि उससे कह रही थी 'मूर्ख, यह मात्र कपोल-कल्पना है । यादवो का क्या हुआ, यह कोई जानता नही और सौराष्ट्र तो यहाँ से बहुत-बहुत दूर है ।'

उसने रही-सही हिम्मत एकत्र कर कृष्ण पर एक सन्देश जल्द द्वारा आचार्य श्वेतकेतु को भिजवाया

वासुदेव, यदुश्रेष्ठ,
चरणो मे प्रणाम स्वीकारो
भीष्मक-पुत्री रुक्मिणी का !
सात-मात बीते बसन
उस शुभ दिन, शुभ घडी को,
जब प्रथम दर्शन कर, मै हुई थी निहाल,
तब से ही बेहाल,
जनम-जनम की दासी यह तेरी,
दिन-रात, सोते-बैठते, जागते-उठते,
बस एक ही रट लगी है मन मे मेरे
तुम्हारे मिलन की ।
दैत्य का फरमान मिला,
अक्षय तिथि को रचो स्वयवर,
पर मेरे तो तुम ही हो नाथ
और कोई नही वर !
आओ, हे चक्रधारी, हे गरुडध्वज !
आओ, हे गिरधर गोपाल,
शरणागत की लाज राखो, मुरारी !
प्राण-प्रण से, मन-वचन-धर्म से
मै मात्र हूँ तिहारी !
जीवित यदि बच सकूँ, तो ले जाओ हाथ थाम कर

और यदि मर जाऊँ
तो ले जाओ भस्म को ही कृतार्थ कर
जहाँ-जहाँ चरण पड़े तुम्हारे
वहीं उसे बिखेर देना !
तुम्हारे बिना तो अब नहीं हो सकता जीना ।

प्रीत का यह पैगाम लेकर जह्नु का रथ अवनी की ओर बढ़ा। इस पर भी, रुक्मिणी का हृदय भयविह्वल था। उसे क्या करना चाहिए, यह भी उसकी समझ में नहीं आ रहा था। सत्रस्त हो वह सहायता के लिए शैव्या की ओर अभिमुख हुई। अर्णव को करवीरपुर भेजकर उसने शैव्या को यह सन्देश भेजा

शैव्या, प्यारी बहन ?
भीष्मक पुत्री रुक्मिणी के
इन शब्दों पर करना मनन ?
चारों ओर अंधकार ही अंधकार व्याप्त मेरे
ज्योति की क्षीण किरन का भी कहीं तो नहीं होता आभास!
अकेली हूँ, असहाय हूँ,
सहारा देने को कोई नहीं बढ़ता है हाथ आज,
अपनी इस अनाश्रित भगिनी की तू ही रख लाज!
आ, शीघ्रातिशीघ्र आ !
शपथ है तुझे उस मोर मुकुट बंसीवाले की,
जिसकी मोहिनी में हम दोनों ही हैं आत्मविस्मृत
जिसकी मधुर स्मृति में दोनों के हृदय झंकृत !

अर्णव वन और पर्वतों के दुर्गम पथ लांघता हुआ करवीरपुर की ओर इस संदेश को लिए धीरे-धीरे बढ़ रहा था।

किन्तु जो आघात अब हुआ वह अत्यन्त क्रूर और भयानक था। श्वेतकेतु ने संदेश भेजा

भोजकुलोत्पन्न भीष्मकसुता रुक्मिणी !
सांदीपनि के शिष्य श्वेतकेतु के आशिष स्वीकार करो !
त्रिभुवन आज कंपायमान, धर्म की ग्लानि हुई,
सूर्य और चंद्र अब वृथा ही उगते हैं आकाश में;
वासुदेव पुरुषोत्तम काम आये धर्मयुद्ध में,

राहु बन कालयवन सूर्य को ही ग्रस गया !
कृष्ण-कृष्ण कह वृथा किया आक्रंदन,
व्यर्थ ही प्रतीक्षा है अब उनके आगमन की,
पितृ-लोक गये कृष्ण, बुझ गया दिव्य दीप
ज्योति ही रही नही अब इस जीवन की ।
फिर भी धैर्य धरो देवी,
अक्षय तिथि आयेगी,
हम मिलेंगे,
और जो भी आज्ञा होगी तुम्हारी
शिरोधार्य करूंगा
वासुदेव का जीवत अर्द्धांश ही
समझकर तुम्हे !

रुक्मिणी के तो मानो प्राण ही निकल गए । अब जीने का कोई अर्थ ही नही रहा । किसके पास सलाह लेने जाए, क्या करे, कुछ समझ मे नही आता था । निराशा की प्रतिमूर्ति बनी जडित अश्रुविन्दु के समान वह स्तब्ध हो गई । यहाँ-वहाँ कही भी कोई आशा या आश्वासन नही !

क्षण-क्षण, दिन-दिन माघ महीना बीता जा रहा था ।

फाल्गुन के प्रारभ मे उसे दो सदेश मिले । एक शैव्या का था । वह करवीरपुर के राजगुरु रुद्राचार्य के साथ आ रही थी । दूसरा सदेश जह्नु आचार्य श्वेतकेतु के पास से लाया । यह सदेश कृष्ण के बडे भैया बलराम ने भेजा था

विदर्भ सुदरीश्रेष्ठ, भीष्मक-पुत्री रुक्मिणी,
वसुदेव आत्मज बलराम तुम्हे आशिप देता है ।
सदेश मिला तुम्हारा, पर अब गोविन्द कहाँ !
प्राणो का सबल, जीवन की ज्योति, प्यार का आधार कहाँ ?
कृष्ण के अंतिम शब्द तुम्हारे ही विषय मे थे,
तुम्हारी रक्षा का उनमे आदेश था,
तुम यदु-कुल की लक्ष्मी हो,
तुम्हारा स्थान हमारे ही बीच है, देवि !
तुम्हे सादर ले जाने को,
यादव प्लवन सहित आयेंगे !

यह सदेश सुनकर रुक्मिणी की आँखें आँसुओ से छलक उठी। उसके गोविन्द अंतिम क्षण तक उसका ही विचार करते रहे! यादवों के शक्तिशाली रथो मे यह धरती गूजेगी। बलराम आएँगे। उद्धव और श्वेतकेतु आएँगे। वह यादवों की कुल-अधिष्ठात्री बनकर सौराष्ट्र जाएगी।

परन्तु यह उत्तेजना मात्र क्षण भर की थी। कठोर वास्तविकता फिर सामने खड़ी हुई और उसे वेदना के सहस्रो शूल फिर छेदने लगे। गोविन्द अब इस दुनिया मे न रहे। बलराम के साथ जाने से कदाचित् इस स्वयवर से बचा जा सकेगा, परन्तु वह अपने स्वामी की अर्द्धांगिनी होकर नही बल्कि उनकी आज्ञा की अनुगामिनी होकर ही सौराष्ट्र मे रह सकेगी।

यादव शक्तिशाली लोग है। कुछ समय बाद वे गोविन्द की स्मृति को भूल जाएँगे और वह पति के साथ एक रात भी न बिता सकनेवाली शूर-कुटुब की असहाय विधवा बन जाएगी। रुक्मिणी की अशात आत्मा पुकार उठी 'नही, ऐसा नही हो सकता। बलराम और यादव उदार है, परन्तु गोविन्द के बिना उनके बीच तेरा कोई स्थान नही।'

साथ ही भोज-परिवार मे भी उसका कोई स्थान नही था। देर-सवेर उसका भाई रुक्मी कुडिनपुर का राजा बनेगा। वह कभी भी उसकी आश्रित बनकर जीना पसद नही करेगी। उसके गोविन्द को दिया हुआ उसका दाहिना हाथ कभी किसी दूसरे पुरुष को नही दिया जा सकेगा।

वह कृष्ण की वधू थी। उसका स्थान जीवन मे अथवा मृत्यु के बाद भी कृष्ण के ही साथ था। कृष्ण न हो तो इस ससार मे जीने का कोई अर्थ नही! उसने निर्णय कर लिया। गोविन्द परलोक मे उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। मात्र उसी की!

कृष्ण के चरणो मे कितनी ही कन्याओं ने जीवन अर्पण किया था। राधा, विशाखा, आशिका, शैव्या—इन सब मे से मात्र उसे ही कृष्ण ने पसद किया।

वह पार्थिव थी, पर कृष्णस्पर्श ने उसे मानवी से देवी बना दिया कृष्ण की और उसकी आत्मा अविभक्त थी—उसे अविभक्त ही रहनी चाहिए, जीवन मे और मृत्यु मे भी!

नाथ का आगमन और रुक्मिणी का उद्धार

कुछ ही दिनो मे शैव्या कुडिनपुर आ पहुँची। उसके साथ रुद्राचार्य भी आए। शक्रदेव को भी स्वयवर का निमत्रण मिला था। परन्तु वह कुछ दिन बाद आनेवाला था। शैव्या और रुद्राचार्य दादा कौशिक के अतिथि बने।

रुक्मिणी शैव्या से गले मिली। शैव्या को सारा हाल कहा। जब शैव्या ने कृष्ण की मृत्यु का समाचार सुना तो उससे भी नही रहा गया। उसका कलेजा भी फट पडा। दोनो युवतियो की अश्रुधारा मे जीवन से भी अधिक मूल्यवान एक महामानव की स्मृति ज्योतिमान थी।

शैव्या के आने से रुक्मिणी को कुछ सहारा मिला। अपनी असहाय अवस्था की बात कर उसका कलेजा कुछ हल्का हुआ। बलराम ने रुक्मिणी को छुडाने के लिए जो निश्चय किया था, उसकी जानकारी भी शैव्या को पहले से हो गई थी।

उद्धव ने करवीरपुर आकर सारी योजना पर प्रकाश डाला था। इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए पुनर्दत्त करवीरपुर की सेना लेकर बलराम के पास पहुँच गए थे।

यादवो और करवीरपुर की सेनाओ ने तापी नदी की घाटी मे कुडिन-पुर और सूर्यतीर्थ के राजमार्ग पर कई व्यूहात्मक स्थानो पर अधिकार कर लिया था। शैव्य ने रुक्मिणी को बताया कि तुम्हे द्वारका ले जाने के लिए वहाँ जहाज तैयार खडे होगे।

रुक्मिणी ने अपने निराधार होने की बात शैव्या से कही और कहा कि शूर-कुटुब की असहाय विधवा होने मे तो मै मृत्यु को अधिक पसद करूँगी। कृष्ण आकर उसे अपहरण कर ले जाएँ यह बात अलग थी। क्षत्रियो मे ऐसे विवाह हुए थे और उन्हे स्वीकारा भी गया था। परन्तु वर की मृत्यु के बाद उसके सम्बन्धी वधू को ले जाएँ, यह तो राजकुमारी के लिए अक्षम्य दोष ही गिना जाएगा।

शैव्या भी इस बात से सहमत थी। उसे यह भी सच लगा कि कृष्ण के बलिदान के लिए बलराम और यादवो के हृदय मे चाहे जितना आदर-भाव

हो, पर मृत वीर की अविवाहित पत्नी के रूप में उसका स्थान यादवों में कठिन हो जाएगा।

अंत में रुक्मिणी और शैव्या एक ही निश्चय पर पहुँची। अंतिम क्षण आए तब अपने इच्छित वर को यमभूमि में वरण करने के लिए रुक्मिणी को तैयार रहना चाहिए। शैव्या का समर्थन पाकर रुक्मिणी अपने जीवन के इस अंतिम कार्य की धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करने लगी।

चैत्र आया। चैत्र के दिन एक के बाद एक बीतने लगे। रुक्मी का प्रभाव अब चारों तरफ बढ़ने लगा था। उसने उत्साहपूर्वक स्वयंवर की तैयारियाँ शुरू कीं। उसका जीवन-शत्रु कृष्ण अब मृत्यु को प्राप्त हो चुका था, मथुरा भस्मीभूत हो गया था। यादव सुदूर सौराष्ट्र में जा बसे थे और उनका चमत्कारी नायक अब उनके बीच में नहीं था। यह जानकर कि रुक्मिणी ने अंतत: अपनी भावी को स्वीकार कर लिया है, उसका मन हल्का हुआ। रुक्मिणी ने अब प्रतिकार करना छोड़ दिया था। उल्टे वह तो अब स्वयंवर के दिन के लिए अधीर बन गई थी।

कुंडिनपुर तापी और पूर्णा नदी की सकरी त्रिकोणाकार मुखभूमि में बसा था। संगम नगर से डेढ़ मील दूर था। तापी और पूर्णा दोनों नदियों के घाटों को राज-अतिथियों के स्वागत के लिए सज्जित किया गया था।

अक्षय तृतीया को अभी तीन दिन बाकी थे कि चेदिराज दामघोष और उनका पुत्र शिशुपाल आ पहुँचे। चेदिराज की श्रद्धा अब डगमगा गई थी। मथुरा भस्मीभूत हुआ और कृष्ण मृत्यु को प्राप्त हुए, इसलिए सत्ता का संतुलन बनाए रखने का प्रयत्न करने की कोई संभावना अब नहीं रह गई थी।

पिता हताश थे, इसका लाभ उठाकर शिशुपाल ने चेदि में अपनी सत्ता बढ़ा ली थी। धीरे-धीरे उसने राज्य की सर्वोच्च सत्ता पिता के पास से अपने हाथ में ले ली। अब उसका रास्ता सरल था। उसका विवाह रुक्मिणी के साथ होगा, रुक्मी सम्राट् की पौत्री से परिणय करेगा और दोनों मगध के मुख्य सामन्त बनेंगे। इन दोनों में से भी शिशुपाल अपना ही वर्चस्व बढ़ा सकेगा, इसका उसे विश्वास था।

अवन्ती के दो राजकुमारों में से मात्र विंद एक छोटे दल के साथ आया। उसके पिता के अस्वस्थ होने के कारण अनुविंद नहीं आ सका, यही उसने सबको बताया। वास्तव में अनुविंद अवन्ती की छोटी-सी सेना लेकर बलराम

मे जा मिला था।

आचार्य श्वेतकेतु भी विद के साथ ही आए और शैव्या द्वारा रुक्मिणी मे मिले। बलराम भी श्वेतकेतु के सम्पर्क में थे और इस प्रकार समस्त परिस्थिति की बागडोर श्वेतकेतु ने अपने हाथ में ले ली।

शैव्या और रुक्मिणी ने श्वेतकेतु को अपने विश्वास मे लिया। श्वेतकेतु ने उनके निश्चय का समर्थन किया, परन्तु बलराम की प्रार्थना को स्वीकार करने की सभावना पर भी विचार किया।

विवाहोत्सव की तैयारियाँ अब आरभ हो गई। वैशाख की प्रथमा से ही भोजसमारभ जुलूस, गीत, सगीत, नृत्य इत्यादि के कार्यक्रमो मे यजमान और अतिथि व्यस्त रहने लगे। जरासध इस सारे राजवृद का केन्द्र था। अधिकाश राजा उसके आसपास ही चक्कर काटते रहते। इस समय तो जरासध ही इस भुवन का स्वामी लगता था।

द्वितीया को ब्राह्मणो ने स्वयवर मडप की धार्मिक विधि से रचना की; ज्योतिषियो ने स्वयवर का समय मध्याह्न का तय किया था। उस समय उपस्थित राजकुमारो के बीच शिशुपाल पूर्वनिश्चित लक्ष्य को तीर से भेदने वाला था और रुक्मिणी को वरमाला उसे पहनानी थी।

विवाह से सम्बन्धित प्रथम विधि अक्षय तृतीया की सुबह होनेवाली थी। नगर से डेढ योजन दूर पूर्णा और तापी के सगम पर अन्नपूर्णा देवी का मदिर था। वह भोजकुल की कुलदेवी मानी जाती थी।

स्वयवर के मडप मे जाने से पहले योग्य मुहूर्त मे कुलदेवी के दर्शन करने जाने का प्रचलन दीर्घ काल से चला आ रहा था। माता के दर्शन करने के बाद ही यदि वह विवाह करे तो उसे दीर्घ और सुखी दाम्पत्य जीवन प्राप्त हो।

स्वयवर के दिन तडके ही उद्धव और सात्यकी एक छोटी-सी नौका लेकर पूर्णा और तापी के सगम पर आए। नौका को पेड से बाँधकर वे अन्नपूर्णा के मदिर के पीछे आम्रकुज मे छिप गए।

उसी समय आनव और जह्नु मदिर से थोडी दूर तापी के मुख के नजदीक स्थित श्मशान मे चदनकाष्ठ की चिता तैयार कर रहे थे। वे अपने साथ घृत का पात्र भी लाए थे।

उसी समय जिस खड मे कन्या सो रही थी, उसके नीचे शहनाई बजने लगी। परन्तु कन्या सो नही रही थी। वह जागती ही पडी थी।

रानी सुव्रता और अन्य स्त्रियों ने कन्या को विधिपूर्वक स्नान कराया। उसके अंगों पर सुगन्धित द्रव्यों का लेप किया। ब्राह्मण मन्त्रोच्चार कर रहे थे।

कन्या ने बहुमूल्य वस्त्र धारण किए। विवाह के गीत गाती हुई स्त्रियों ने उसे आभूषण पहनाए। उसके वस्त्रों पर पुष्पों की पटल ओढायी गई। अन्नपूर्णा के दर्शन के बाद जब तक कन्या पति का वरण करे तब तक उसे यह फूलों की झूल ओढे ही रहना था।

रुक्मिणी के उत्साह का पार नहीं था। अपने इच्छित वर का वरण करने की घडी नजदीक आ रही थी। अब तक शिशुपाल के साथ विवाह का विरोध करनेवाली रुक्मिणी में यह उत्साह कहाँ से आया, यह सुव्रता और अन्य स्त्रियों की समझ में नहीं आ रहा था।

मंगल-वेला आ पहुँची। ब्राह्मणों ने मन्त्रोच्चार किया। कन्या रथ में बैठी। सुव्रता और अन्य दो राजकुमारियाँ भी उसके साथ रथ में बैठी। पीछे अन्य आठ रथों में दूसरे राज्यों की रानियाँ और राजकुमारियाँ आ रही थी। उनके पीछे घुडसवार और पैदल अंगरक्षक थे।

रुक्मिणी हर्ष से पागल हो रही थी। मन-ही-मन सुव्रता रुक्मिणी के इस उत्साह को शाप दे रही थी। यदि रुक्मिणी हँसते-हँसते शिशुपाल का वरण करती है तो उसका अपना भविष्य बिगडता है—रुक्मी तुरत ही उस पर मौत लाने का प्रयत्न करेगा।

अन्नपूर्णा देवी के मंदिर के सामने यह जुलूस रुका। कन्या के लिए फूलों की बिछावन की गई थी। उस पर पैर रखकर रुक्मिणी नीचे उतरी। राज-गुरु, रुद्राचार्य और श्वेतकेतु उसके स्वागत के लिए खडे थे।

अन्नपूर्णा के गर्भ मंदिर में लगभग अँधेरा था। मात्र दो घी के दीये देवी की मूर्ति पर प्रकाश डाल रहे थे। कन्या ने देवी को प्रणाम किया। आचार्यों ने मन्त्रोच्चार किया।

इस प्राथमिक विधि के बाद वे रुक्मिणी को परिक्रमा-मार्ग में ले गए राजगुरु आगे थे रुद्राचार्य और श्वेतकेतु पीछे थे।

परिक्रमा-मार्ग संकरा और अंधकारमय था। आम्रवन की ओर खुलते संकरे दरवाजों में से मामूली-सा उजाला भीतर आ रहा था। एक दरवाजे में से रुक्मिणी बाहर निकल गई। उसी के समान वस्त्र पहने और उसी की तरह फूलों की झालर ओढे शैब्या परिक्रमा-मार्ग में प्रवेश कर गई। रुक्मिणी

ने फूलो की झालर हटा दी और श्वेतकेतु के पीछे-पीछे चली।

परिक्रमा पूरी हुई—अन्य विधियाँ प्रारम्भ हुई और फूलो की झालर ओढे कन्या मूक भक्ति-भाव से देवी को प्रणाम कर रही थी।

श्वेतकेतु और रुक्मिणी आम्रवन से बाहर आए। उद्धव और सात्यकी वृक्षो के पीछे से निकल आए और नौका की दिशा मे चलने को रुक्मिणी से इशारा किया।

"उद्धव, खडे रहो!" रुक्मिणी ने कहा। उसकी आवाज म आज्ञा की झकार थी, "मै तुम्हारे साथ नही चलूँगी। वासुदेव की पत्नी केवल अपने नाथ की ही है। आचार्य, चिता की ओर ले चलो मुझे!" रुक्मिणी ने श्वेतकेतु से कहा।

"देवी !" उद्धव ने विरोध किया।

मेरे लिए एक ही मार्ग है," रुक्मिणी ने कहा। उसकी आँखे किसी अनोखे तेज से चमक रही थी, "अपने नाथ से मुझे मिलना है, अपने इच्छित वर का वरण करना है। तुम उनके छोटे भाई हो। देवर के रूप मे अग्निदाह देने का अधिकार तुम्हारा है। अपने हाथ मे मुझे अग्निदाह दो और मेरा मार्ग प्रशस्त करो।"

रुक्मिणी ने गौरव के साथ श्वेतकेतु का अनुसरण किया। उसके तेज के कारण उद्धव का विरोध निष्प्रभ हो गया। उसने मार्ग दे दिया और पीछे-पीछे चलने लगा। कोई कुछ बोल नही रहा था। शैब्या को कोई पहचान ले और उसका पीछा करे, इससे पहले ही उसका अग्निप्रवेश करना आवश्यक था।

इन लोगो को आते देखकर अप्नव और जह्नु ने चिता प्रदीप्त की। उसमे घी भी डाला। ज्वालाएँ प्रज्ज्वलित हो उठी। रुक्मिणी चिता के आगे हाथ जोडकर खडी हो गई और श्रीकृष्ण की परलोक मे स्वागत करने के लिए प्रार्थना करने लगी।

इतने मे पीछे से घोडे की टाप सुनाई पड़ी। कोई रोके, इससे पहले ही अग्निप्रवेश करने के लिए रुक्मिणी ने पैर आगे बढाए।

उद्धव और श्वेतकेतु को लगा कि शायद अन्तिम घडी योजना उल्टी न हो जाए। किसका रथ आ रहा है, यह देखने के लिए वे पीछे मुडे।

उनके हृदय आनन्द से उछल उठे। रथ पर कृष्ण थे और उनके हाथ मे अश्वो की लगाम थी। अश्व अति वेग से दौड रहे थे।

श्वेतकेतु ने रुक्मिणी को पीछे खींचा। रुक्मिणी ने पीछे देखा। पथरीले मार्ग पर जो रथ बड़ी तेजी के साथ आगे बढ़ रहा था उस पर उसके अपने गोविन्द खड़े थे।

रुक्मिणी का मस्तिष्क चक्र की तरह घूमने लगा। वह सब-कुछ भूल भाल कर रथ की ओर दौड़ी। अश्वों को अचानक रोककर कृष्ण रथ में से कूदे, रुक्मिणी को बाहुओं में थाम लिया और उठाकर रथ में बैठा दिया।

उद्धव, श्वेतकेतु और सात्यकी हर्ष से पागल बन गए। आम्रवन के पीछे छिपाई गई नौका में बैठकर शीघ्रता से नदी पार कर वह यह समाचार सभी को सुनाने दौड़े।

कृष्ण ने रथ की लगाम अपने हाथ में ली और रथ को पीछे मोड़ा। रथ जब नदी का मुख पार कर गया तो कृष्ण ने अश्वों को रोका। उन्होंने कमर में से पाञ्चजन्य निकाला और उसका विजयनाद सारे आकाश में गूँज उठा।

कुंडिनपुर के राजमार्ग और समस्त वातावरण में पाञ्चजन्य के स्वर फैल गए। मित्रों और शत्रुओं को खबर लग गई कि पाञ्चजन्य का स्वामी अभी जीवित है और अंतिम विजय उसी की हुई है।

५५

उपसंहार

रुक्मिणी सागरतट पर खड़ी लहराती हुई मत्त तरंगों को एकटक निहार रही थी। उसके मानस-पटल पर पिछले दो मास की घटनाएँ चलचित्र की भाँति एक के बाद एक गुजर गईं। उसे लगा, मानो गत दो मास में वह सौ जन्मों जितना अनुभव प्राप्त कर चुकी है।

कृष्ण ने उसे अपने हाथों में उठाकर रथ में बिठाया और अश्वों को दौड़ा दिया। पूर्णा के पथरीले तटप्रदेश पर रथ के पहिए गड़गड़ाहट करते दौड़

रहे थे। गतिमान रथ और पथरीले रास्ते के कारण रुक्मिणी की कोमल देह रथ के बाजुओं से बार-बार टकरा रही थी और रुक्मिणी बड़ी मुश्किल से अपना सन्तुलन रख पा रही थी। परन्तु कृष्ण की मुस्कान उसे सहारा दे रही थी, श्रद्धा से ओत-प्रोत कर रही थी। अब वह स्वयं कृष्ण के साथ थी! अब उसे स्वयंवर के भय से जीने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

बलराम और अन्य यादवों से भेंट हुई। रुक्मिणी ने पहली बार बलराम को देखा। इस उदार और स्नेहसिक्त वीर ने उसे बड़े उत्साह से आशिष दी। उनकी बड़ी-बड़ी आँखों से करुणा की धारा छलक रही थी।

यादव अभी तापी नदी के उत्तर की ओर बढ़ ही रहे थे कि रुक्मी भोजसेना के साथ पीछा करता आया और यादवों पर टूट पड़ा। भयंकर युद्ध हुआ। रुक्मिणी भयत्रस्त आँखों से योद्धाओं को लड़ते और मरते देखती रही। रथ को भयंकर तेजी के साथ चलाकर रुक्मी कृष्ण पर झपटा। वह काँप उठी। उसने अपनी आँखें मूँद लीं।

फिर यह देखने के लिए कि कृष्ण को कोई चोट तो नहीं पहुँची, उसने अपनी आँखें खोलीं। कृष्ण का यह रूप उसने आगे कभी नहीं देखा था। वे रथी के आसन पर खड़े थे। उनके बाएँ हाथ में अश्व की लगाम थी। उनके चेहरे पर स्मित नहीं था, उनकी आँख एक अनोखी शक्ति से चमक रही थी।

उसने रुक्मी का तीर कृष्ण पर सधा देखा। फिर एक बार भय से उसकी आँखें मुँद गईं। दूसरे क्षण आँखें खुलीं तो देखा कि कृष्ण ने एक ओर झुककर रुक्मी का निशाना चुका दिया है।

फिर उसने जो देखा वह कुछ अनोखा ही दृश्य था। कृष्ण ने सुदर्शन-चक्र हाथ में ले लिया। रुक्मिणी ने इस चक्र के बारे में काफी कुछ सुन रखा था। ऐसा कहा जाता था कि यह चक्र अपना निशाना कभी चूकता नहीं। "हे भगवान्! क्या मैं ही अपने भाई की हत्यारिणी सिद्ध होऊँगी?" यह विचार उसे कचोट रहा था। उसी क्षण वह स्वयं को समेटते हुए किसी प्रकार कृष्ण के पास पहुँची और उनके चरणों का स्पर्श किया। कृष्ण ने नीचे देखा। "नाथ, नाथ, मेरे भाई का वध न करना!" उसने दयार्द्र स्वर में कहा। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह रही थी।

कृष्ण के चेहरे पर श्रद्धापूर्ण मुस्कान थिरक उठी। उन्होंने चक्र वापस रख दिया। अपने हाथ की लगाम सारथी बाहुक को दी और अपना धनुष

सारंग उठाकर तीर का निशाना साधा ।

रुक्मिणी ने आँखें मूँद ली। दूसरे क्षण आँखें खोली तो देखा कि तीर रुक्मी की ओर बढ रहा था। "रुक्मी की मृत्यु तो नहीं हो गई कहीं ? हे भगवान्, रुक्मी को जीवित रखना !" वह आक्रन्द कर उठी ।

विजय का उन्मत्त घोष सर्वत्र फैल गया। घोडे हिनहिना उठे, यादवों ने वासुदेव की जय पुकारी । यादव विजयी हुए थे ।

रथ रुक गए। अश्वों की गति शान्त हुई। रुक्मी धरा पर निढाल हो रहा था। उसकी मृत्यु नहीं हुई थी, मात्र घायल हुआ था। उद्धव ने नीचे झुककर उसके घाव में से बहते हुए रक्त को दबा दिया। रुक्मिणी ने भगवान् का आभार माना और महारुद्र का व्रत लिया। उसके भाई ने उसकी आँखें खोल दी थीं।

कृष्ण रथ पर से नीचे उतरे. रुक्मी घायल हो गया था, फिर भी वह उठ बैठा और कृष्ण की ओर घृणा से घूरता हुआ अपशब्द कहने लगा। बलराम को हँसी आ गई ।

उसके गोविन्द नीचे झुके। उद्धव और सात्यकी की मदद से उन्होंने रुक्मी को उठाया और रथ में रुक्मिणी की बगल में उसे लिटा दिया। पट्टी बँधी रहने पर भी रुक्मी के घाव से रक्त का स्राव हो रहा था। रुक्मी ने रुक्मिणी के सामने क्रोध से पूर्ण दृष्टि डाली और उस पर थूकने का प्रयत्न किया।

"रुक्मी !" कृष्ण ने कहा, "अब सब-कुछ भूल जाओ और अपनी बहन को क्षमा कर दो। इसी ने तुम्हारे प्राण बचाए हैं। यह नहीं होती तो तुम कभी के मृत्युमुख में चले जाते।"

रुक्मी बडबडाया, "दुष्ट ! ग्वाला !" रुक्मिणी को अपने भाई की इस निर्लज्जता पर शर्म आयी। गोविन्द ने उसे जीवनदान दिया, फिर भी वह उनके लिए ऐसी भाषा का उपयोग कर रहा था।

"रुक्मी, अपने क्रोध को काबू में रख ! मैं अभी तुम्हें राजा भीष्मक के पास भेजने की व्यवस्था करता हूँ !" कृष्ण ने हँसकर कहा।

रुक्मी एकाएक बैठा हो गया और चिल्ला पडा, "नहीं, नहीं ! मैंने सौगंध खायी है कि जब तक कृष्ण का सिर मेरी हथेली में न हो तब तक मैं कुंडिनपुर नहीं लौटूंगा। वहाँ मैं नहीं जा सकता।"

"अच्छा, यह बात है ! परन्तु अपनी बहन को विधवा बनाने की

मागध लेना तो कोई अच्छी बात नही।" कृष्ण ने मजाक करते हुए कहा, "इससे बहुत अधिक पराक्रमी कार्य करने के अवसर तुम्हें मिले थे। खैर, कुडिनपुर नही जाना हो तो मेरे साथ द्वारका चलो। वहाँ तुम यादवो के बीच मेरी पत्नी के सम्माननीय भाई की भाँति रह सकोगे।"

अब बलराम आगे आए और रुक्मी से स्नेहपूर्ण स्वर मे बोले, "रुक्मी के स्थान पर कोई भी हो, कृष्ण, तो वह अपने कुल के गौरव की रक्षा करने आएगा ही। इसमे इसने कुछ अनुचित नही किया। हाँ, तुम्हारे जैसे युवक को इसने वर के रूप मे पसद नही किया, यह इसकी मूर्खता अवश्य है। परन्तु इसे कुडिनपुर ही वापस जाना चाहिए। मै इसे वहाँ ले जाता हूँ।"

रुक्मी ने आँखे खोली और कुछ रोष भरकर कहा, "मै कुडिनपुर नही जाऊँगा। मैने प्रतिज्ञा ली है कि जब तक कृष्ण का मस्तक उतारकर नही ले जाऊँ तब तक नगर मे प्रवेश नही करूँगा।"

"तो फिर तुम्हारे लिए एक ही सम्मानपूर्ण रास्ता है!" बलराम ने कहा, "द्वारका मे तो कृष्ण के साले के रूप मे तुम्हारा जीवन मानहीन बन जाएगा। इससे तो अच्छा है कि तुम यही टिक जाओ। हम लोग यहाँ से कुछ देर बाद रवाना होगे। तुम अपने आदमियो सहित यही बस जाओ—यही उत्तम रहेगा।"

(७)

सूर्यतीर्थ से ये लोग जहाज मे बैठकर प्रभास पहुँचे। वहाँ सब ने भगवान् सोमनाथ की पूजा की। यादवो ने वहाँ भव्य सत्कार का प्रबन्ध कर रखा था। पुष्प, ध्वजपताकाएँ, शखनाद और शहनाई के स्वर वातावरण मे गूँजने लगे।

आँखो मे हर्ष के आँसू छलकाते हुए माँ देवकी ने रुक्मिणी को कलेजे से लगाया। विशालकाय, पर स्नेहपूर्ण जिठानी रेवती ने उसे बडे प्रेम से आलिगनबद्ध किया। त्रिवक्रा तो हर्ष से नाच उठी और बधाई के गीत गाने लगी।

रुक्मिणी वसुदेवजी, राजा उग्रसेन, अक्रूर, देवभाग और अन्य बुजुर्गो के पैरो पडी। कितनी ही स्त्रियो ने उसे आशीर्वाद दिए। किसी ने उसे कलेजे से लगाया, किसी ने उसके रूप की प्रशसा की, तो कोई उसकी विनम्रता के गुण गाने लगी। उसे सागर-स्नान के लिए ले जाया गया और

फिर भाँति-भाँति के बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सज्जित किया गया।

कृष्ण की वाग्दत्ता के रूप में वह माँ देवकी के पास रहने लगी। अब तो कृष्ण से लुक-छिपकर नजरों-नजरों में ही बातचीत की जा सकती थी। कृष्ण के साथ बोलना बुज़ुर्गों की मर्यादा भंग करने के समान था। त्रिवक्रा अथवा देवर उद्धव के जरिए उसे कृष्ण के संदेश और उपहार मिलते रहते थे।

कुछ समय बाद लग्नोत्सव हुआ। समस्त द्वारका नगरी में उत्साह की लहरें फैल गईं। यादवगण सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण कर नगर में घूमने लगे। सभी घर-द्वार सजाए गए। बालक आनन्द से नाच-गाने लगे। नास्तिकगण भी 'भगवान्' की एक झलक पाने के लिए आतुर थे।

धीरे-धीरे अतिथि आने लगे। करवीरपुर के शक्रदेव, अवन्ती के विंद और अनुविंद, और आसपास के कई राजा आए। शक्रदेव के साथ रुक्मिणी को नया जीवन देने वाली शैव्या भी आयी।

पवित्र वेदी के पास श्वेत दाढ़ी से शोभायमान गर्गाचार्य जोर-जोर से वेदमंत्रों का उच्चार कर रहे थे। हस्तमिलाप हुआ। गोविन्द का कर-स्पर्श कर रुक्मिणी धन्य हो गई। गोविन्द के साथ वह सात कदम चली। इस सप्तपदी ने उसे गोविन्द के साथ एक कर दिया। देवों और मनुष्यों की साक्षी में वह अपने 'नाथ' की अर्द्धांगिना बनी।

फिर गीत और नृत्य के कार्यक्रम हुए। स्त्रियों ने मंगल-गीत गाए। यादव उत्साह में आकर एक-दूसरे का आलिंगन कर रहे थे। रुक्मिणी के नाथ रेशमी पीताम्बर और रेशमी उपवस्त्र धारण कर मस्तक पर मोर-पंख जड़ित मुकुट पहने घूम रहे थे। उनकी भुवनमोहिनी मुस्कान सबके हृदय जीत रही थी। अपने प्रिय की प्रियतमा बनने का अनिर्वचनीय आनंद रुक्मिणी अनुभव कर रही थी।

रात पड़ी—जीवन में एक ही बार आनेवाली वह रात सुहाग की रात थी। समान वय की स्त्रियाँ हँसी ठिठोली कर रही थीं। रेवती रसी बातें कर रही थी कि रुक्मिणी के गाल लज्जा से रक्तवर्ण हो उठे। त्रिवक्रा उसे नववधू के फूलों से सज्जित कक्ष में ले गई।

अब वह अकेली थी। उसका सारा शरीर कंपमान था। स्वस्थ होने का प्रयास कर वह उन चरणों की ध्वनि सुनने को कान लगाए बैठी रही जिनकी प्रतीक्षा वह जन्म-भर से कर रही थी।

गोविन्द आए, विहँसे और उसकी श्रद्धा फिर से लहरा उठी। वह खडी हुई, प्रणाम किया और उनकी बगल मे जाकर खडी हो गई। कृष्ण ने मुकुट उतारा वैजयती भी उतार दी और रुक्मिणी को बाहुओ मे भर लिया। उन अतीव प्रिय, सरक्षक बाहुओं मे वह अपने-आपको कितनी सुखी और सुरक्षित अनुभव कर रही थी।

सारी रात आनन्द का एक क्षण बनकर रह गई।

दूसरे दिन गोविन्द भोर होते ही बाहर निकल गए। रुक्मिणी देर तक अर्द्ध जागृति मे इस आनन्द रात्रि के सपने देखती सोयी रही। वसुदेव के महल मे सागर की टकराती रुद्र लहरे उसके सपनो को ताल दे रही थी। माता देवकी ने सदा की भाँति बडी समझदारी दिखाकर रुक्मिणी को भोजन तैयार होने पर ही बाहर आने का आदेश दिया था।

जब देवर उद्धव आए तब रुक्मिणी अत्यत प्रसन्न मुद्रा मे बैठी थी। रुक्मिणी को उद्धव अच्छे लगते थे। परन्तु उनका प्रभाव कुछ और ही प्रकार का था। वे किसी दूसरी दुनिया मे आए देवदूत की भाँति आते, लोगो की मदद कर पीछे खिसक जाते।

उद्धव ने आकर प्रणाम किया। वे रुक्मिणी से वय मे बडे थे। परन्तु बडे भाई की पत्नी को योग्य आदर देना भी वे कभी नही भूलते थे।

"आज कृष्ण आप से नही मिल सकेंगे। सुबह ही तीन जहाजो के तूफान मे पड जाने की खबर मिली है और कृष्ण, सात्यकी तथा विराट उन जहाजो को बचाने गए है। उन्होंने आपका खयाल रखने के लिए मुझे कहा है।" उद्धव ने बताया।

रुक्मिणी की आँखो मे भय छा गया। "वे किस प्रकार उन जहाजो को बचाएँगे?" उसने पूछा।

"नौकादल के नायक कुक्कुर उनके साथ गए है। वे छोटी-छोटी नौकाओं मे जाएँगे, और यदि जहाज डूब गए तो उनके यात्रियो को नौकाओ मे बैठाकर बचा लेगे।"

"परन्तु कल रात्रि मे तो समुद्र मे भयकर तूफान था। उन्हे तो कुछ नही होगा न?' रुक्मिणी के मन मे अमगल की शका-कुशका उठने लगी।

"भृगुतीर्थ जाने इन जहाजो मे यादवो के तीस कुटुम्ब जा रहे थे। कृष्ण उन्हे डूबने के लिए यो ही नही छोड सकते थे।" उद्धव ने कहा।

"परन्तु ऐसे तूफानी समुद्र मे जाने से पहले उन्होने अपने प्राणो की

परवाह नही की ? यदि उन्हे कुछ हो गया तो हमारा क्या होगा ?" रुक्मिणी ने आँखो मे आँसू भरकर पूछा।

उद्धव ने स्नेहपूर्ण स्वर मे कहा, "आप चिन्ता न करे। कृष्ण को कुछ नही हो सकता। और कृष्ण कुछ भी करने का निश्चय कर ले उसमे उन्हे रोक भी कौन सकता है ? यादव उन्हे नही रोक सके, जरासध नही रोक सका, कालयवन भी रोकने मे असमर्थ रहा। हम उन्हे रोकने वाले कौन है ?"

"आप क्रूर है, देवरजी !" रुक्मिणी बोल उठी, "गोविन्द का जीवन खतरे मे है, यह आप देख नही सकते।"

"आप उत्तेजित न हो, भाभी !" उद्धव बोले, "मै भी कृष्ण से प्रेम करता हूँ—सभी कृष्ण को प्यार करते है। कृष्ण कुछ मेरे या आपके लिए ही नही जीते है, वे उन सभी के लिए जीते है जो उन्हे चाहते है। और उनमे से किसी को कोई भी आँच आनी है तो वे अपना जीवन जोखिम मे डालने को तुरन्त तैयार हो जाते है।" उद्धव ने हँसकर कहा, 'गोविन्द का स्वभाव ही ऐसा है—हमे उसे स्वीकार कर ही लेना चाहिए। हम तो बस सर्वभाव मे उनके प्रति स्वय को समर्पित ही कर सकते है।"

रुक्मिणी ने अधीरता मे होठ काटे। "हाँ, सभी उनको चाहते है और वे भी सभी को चाहते है—इसमे मेरा स्थान कहाँ ?"

"भीष्मक सुता, आपका स्थान सबसे पहले है। कालयवन का भय जब सिर पर मँडरा रहा था तब उन्होने आपको ही याद किया था, याद है न ?"

उद्धव की नम्र वाणी मे जो हल्का उपालभ था उसे रुक्मिणी समझ गई।

"आप उनकी सहधर्मिणी है। उन्ही की तरह होना सीखिए।" उद्धव ने कहा।

रुक्मिणी रो पडी। उसे अपनी निर्बलता का खयाल आया। "मै जानती हूँ, देवरजी, उनकी सहधर्मिणी होने की योग्यता मुझ मे नही। हे भगवान्, आपने इतनी सामर्थ्य मुझ मे क्यो नही दी ?" और पलग पर गिरकर तकिए मे मुँह छिपाकर वह रोने लगी।

कुछ देर कोई कुछ नही बोला। कुछ स्वस्थ होने के बाद वह बोली, "मेरे लिए कुछ सदेश भेजा है उन्होने ?"

"हाँ", उद्धव ने कहा, "उन्होंने मुझसे कहा उद्धव, रुक्मिणी से कहना कि वह यादवो की भाग्यलक्ष्मी बनकर रहे। यादव मेरे ही अस्तित्व का एक अग हैं। और उद्धव, तुम रुक्मिणी का खयाल रखना। भाभी, उन्हें भी लगा कि वे जिस मार्ग पर जा रहे है वह खतरो से पूर्ण है, इसीलिए तो उन्होंने यह सदेश भेजा है।"

उसे एकाएक शैव्या का खयाल आया। एक बार जब सभी को यह विश्वास हो गया था कि कृष्ण मृत्यु को प्राप्त हो गए है, तो शैव्या और वह एक-दूसरे से लिपटकर रो पडी थी।

"शैव्या कहाँ है ? मै उससे मिलना चाहती हूँ।" उसने कहा और फिर तुरन्त ही पूछा, "क्या उन्होने शैव्या के लिए भी कोई सदेश भेजा है ?'

"हाँ," उद्धव ने कहा, "उन्होंने कहा है कि जब तक मै लौटूँ नही तब तक मेरा चक्र शैव्या को दे देना। वह उसकी पूजा मे सारा जीवन बिता देगी।"

रुक्मिणी फफक-फफककर रोने लगी। उसे याद आया कि पिछले दिन उत्सव के उल्लास मे वह शैव्या से मिलकर उसे आलिंगन देना भूल गई थी। उसने कहा, "मै शैव्या से मिलना चाहती हूँ। उससे कहो कि..."

उद्धव रुक्मिणी की इस अधीरता को देखकर हँस पडे। उन्होने कहा, "भाभी, जैसे ही उसे खबर मिली कि कृष्ण डूबते हुए जहाजो को बचाने गए है, कि वह तत्काल प्रभास पहुँच गई। उसने शक्रदेव से कहा है कि जब तक कृष्ण नही लौटेंगे तब तक वह प्रभास के समुद्रतट पर ही उनकी प्रतीक्षा करेगी।"

(३)

उद्धव चले गए। रुक्मिणी के पैरो नीचे से ही धरती खिसक गई। उसके हृदय मे ईर्ष्या का शूल गड रहा था। शैव्या कृष्ण से विवाह करना चाहती थी। कृष्ण ने उसका अनादर किया तो सम्पूर्ण शरणागति से उसने उनको जीत लिया। उसने रुक्मिणी को भी कृष्ण को प्राप्त करने मे सहायता दी थी। इस समय जब कृष्ण का जीवन खतरे मे है तब वह सागर-तट पर खडी उनके सही-सलामत लौटने की प्रतीक्षा कर रही है।

"मै ही निरी निकम्मी हूँ," रुक्मिणी ने स्वय मे कहा, "कल मैंने उत्सव मे शैव्या के सामने भी नही देखा और आलिंगन भी नही दिया। आज भी मै स्वार्थी बनकर, कृष्ण वापस नही आए तो मेरा क्या होगा, यह रोना रो रही हूँ—और वह सागर किनारे खडी है।"

बडी देर तक वह बिछौने मे पडी आँसू बहाती रही। क्षण-क्षण वह शैव्या के सान्निध्य की कामना करने लगी—उसके लिए बेचैन थी परन्तु साथ ही यह विचार भी उसके हृदय को कचोट रहा था कि इस विनम्र श्यामा का स्थान उसके पति के हृदय मे है। परन्तु क्या वह गोविन्द के हृदय पर अपना एकचक्र शासन स्थापित कर सकती है? गोविन्द से वह कैसे कहे कि वसुदेव, माँ देवकी, बलराम, अक्रूर, उद्धव और त्रिवक्रा से वे स्नेह न करे? वे सभी को चाहते थे। यादव वृद्धाओं के वे लाडले थे। छोटे-छोटे बालकों के साथ वे खेलने लग जाते। वे जहाँ भी जाते वही यह वानर-सेना उनके नाम का जयघोष करती हुई चलती। कृष्ण सभी को चाहते थे। इन सबके जीवन-सूर्य के बीच क्या वह ग्रहण बन सकती है?

फिर वह आत्मनिंदा करने लगी। कृष्णवधू बनने की योग्यता उसमे कहाँ? वे देवता है—उन्ही के स्पर्श से वह देवी बनी, परन्तु आन्तरिक रूप मे उसमे देवी का कोई अंश नही। वह तो सकुचित स्वार्थ वृत्ति मे कृष्ण को चाहती थी। शैव्या के प्रति कृष्ण का कैसा भाव है, इसका उसने कभी ख्याल नही किया। शैव्या के इस महान् आत्मबलिदान के लिए उसने कभी विचार तक नही किया। वह स्वार्थी पत्नी बनकर अपने नाथ को जिस उच्च भूमिका पर वे खडे थे, उससे नीचे सकुचित प्रेम के स्तर पर ले आना चाहती थी।

वह बडी देर तक विचार करती रही। वह स्त्री थी—स्त्री-सुलभ ईर्ष्या का होना उसमे स्वाभाविक था। परन्तु नाथ के स्पर्श ने उसे देवी बना दिया था। उसे अपने नाथ के प्रति सपूर्ण समर्पण करना होगा। इस पूर्ण शरणागति मे उसे शैव्या को भी पीछे रख देना होगा।

शैव्या का श्रीकृष्ण के प्रति अत्यत भक्ति-भाव था। यदि शैव्या के साथ विवाह करने का उन्होंने निश्चय किया होता तो क्या वे उसे करवीर-पुर मे अकेली रहने देते? नही, उसका विश्वास फिर से लौटा। वह स्वय रुक्मिणी यादवो की भाग्यलक्ष्मी है। शैव्या उस चक्र की पूजा करेगी जिस चक्र की वे स्वय पूजा करते थे।

फिर वह आन्तरिक वेदना से कराह उठी 'गोविन्द, आप जिसे चाहेंगे मैं भी उसे चाहूँगी। शैव्या अब करवीरपुर जाकर अकेली नहीं रहेगी। गोविन्द, लौट आओ! अपनी इस ईर्ष्यालु और स्वार्थी पत्नी को क्षमा कर दो!'

रुक्मिणी पलग पर से उठ बैठी। मुँह धोकर उसने नव वस्त्र धारण किए और माँ देवकी के पास गई। भोजन समाप्त होने तक वह सास के कामो मे हाथ बँटाती रही। फिर माँ से प्रभास जाकर शैव्या के साथ रहने की अनुमति उसने माँगी।

रथ प्रभास की दिशा मे आगे बढ रहा था। उसने देखा कि शैव्या अकेली समुद्र-तट पर खडी थी। उसकी आँखे तूफानी सागर पर टिकी थी। दूर-दूर क्षितिज पर उसकी नजरे गडी थी। समुद्र की प्रचड लहरो मे वह भीग रही थी, परन्तु इसका उसे भान ही न था।

और उसके होठो पर एक अद्भुत अविचल मुस्कान स्थिर थी—ऐसी मुस्कान रुक्मिणी ने पहले कभी देखी नही थी। अपने इस स्मित के चुबक से वह मानो क्रोधित समुद्र मे से कृष्ण को तटप्रदेश पर वापस बुला रही थी।

परिशिष्ट

१ पाँचजन और पुन्यजन राक्षस

कस का हनन करने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने जो प्रथम महत्त्वपूर्ण कार्य किया वह अपने गुरु सादीपनि के पुत्र को वैवस्वतपुरी से वापस लाना था। इसकी कथा का आधार प्रामाणिक प्रतीत होता है। सादीपनि के पुत्र को प्रभास के आसपास किसी स्थान से पकडकर सागरपार वैवस्वतपुरी ले जाया गया था। उसकी खोज मे निकल पडने पर श्रीकृष्ण ने पाँचजन नामक समुद्री राक्षस (राक्षस शब्द दुष्ट और घिनौने विदेशियो के लिए प्रयोग किया जाता था) का नाश किया। यह भी कहा जाता है कि सौराष्ट्र के समुद्री तट पर

कुशस्थली में इन लोगों ने अपनी बस्ती कायम की थी।

ऋग्वेद में पाणि उन लोगों को कहा गया है जो आर्य देवताओं को बलि नहीं देते थे। उन्हें 'भेडिए', 'राक्षस' इत्यादि घृणावाचक शब्दों से पुकारा जाता था। उन्हें दस्यु और परमाणी भी कहा जाता था। कुछ विद्वानों का है कि ये काफिलों में (अश्व तक) जानेवाले आदिवासी व्यापारी थे, जो आवश्यकता पडने पर, अपने माल की रक्षा करने के लिए लडने को तैयार रहते थे। (मैक्डोनेल एण्ड कीथ, 'वैदिक इंडेक्स', भाग १, पृ० ४७१-७२)।

इसी से मेरा अनुमान है कि पुन्यजन, पाँचजन और पाणि एक ही विदेशी जाति के भिन्न-भिन्न नाम हैं। ये शायद वही फिनिशियन लोग थे जिन्हें प्राचीन यूरोप के लोग समुद्री मार्गों पर साहसपूर्ण यात्रा करनेवाले और गैर-ईमानदार जाति समझते थे। १६०० से १३५० ईस्वी पूर्व (रावलिन्सन्स 'हिस्ट्री ऑफ फोनेशिया,' पृ० ८०६) फोनेशिया में बसने से पहले फोनेशिया के दक्षिण में युरीथ्रियन सागर के किनारे पर कई स्थानों में इनकी बस्तियाँ थीं। इससे यही जान पडता है कि अरब सागर में ही इनका दौरदौरा था।

२ यम, वैवस्वतपुरी के सम्राट्

सागरपार स्थित यमपुरी, वैवस्वतपुरी, से सांदीपनि के पुत्र को श्रीकृष्ण तभी वापस लाने में सफल हुए जब उन्होंने मृत्यु के देवता और सूर्यदेव विवस्वान के पुत्र यम को परास्त कर दिया। इस नाम का अर्थ सूर्य अथवा प्रकाश का नगर भी हो सकता है। अरब सागर पर एक पुरातन स्थल का नाम 'प्रकाश का नगर' बताया जाता है। बैबिलोन के पास भी लारसा नामक एक नगर था, जिसका अर्थ 'सूर्य की नगरी' होता है।

हरिवंश में आयी कथा को बारीकी से देखा जाए तो वैवस्वतपुरी का सम्राट् यम, मृत्यु का देवता यम नहीं बल्कि एक जीवित व्यक्ति जान पडता है। हरिवंश के अनुसार इसी यम ने सर्वप्रथम श्रीकृष्ण को विष्णु का अवतार माना और फिर सांदीपनि के पुत्र को लौटाने के बजाय श्रीकृष्ण से युद्ध किया। यह तो कभी सोचा नहीं जा सकता कि यम, जो एक अधीन देवता है, स्वयं विष्णु से लडने का साहस करेगा। इससे यही जान पडता है कि

कृष्ण ने एक ऐसे राजा को पराम्त किया जिसे बाद में मृत्युदेव यम कहा जाने लगा। और यदि वह राजा ही था तो उस लडके को न लौटाने का उसके लिए पर्याप्त कारण रहा होगा। किसी-न-किसी रूप मे वह राजा के लिए अनिवार्य रहा होगा।

यदि मेरा अनुमान सही है तो वैवस्वतपुरी सौराष्ट्र तट के उस पार अरब सागर पर स्थित रही होगी। इस सदर्भ में यह भी ध्यान देने योग्य है कि सिकदर के आगमन तक सिंध में हैदराबाद के क्षेत्र को पाताल कहा जाता था। अरब सागर में कोई द्वीप अथवा तट पर कोई बदर भी नागराज धुम्रवर्मा द्वारा शासित था। इन्होंने अपनी कन्याओं का विवाह श्रीकृष्ण के एक पूर्वज मे किया था, क्योकि इन्ही में से एक कन्या के पुत्र को धुम्र वर्मा का द्वीप विरासत मे मिला था। इस द्वीप के लोग समुद्र के गर्भ में से मोती निकाल लाने में दक्ष थे (हरिवश, विष्णुपर्व, ३८,२९-३८)। इससे यह जाहिर होता है कि अरब सागर में नाग बस्तियाँ थी। सभी अधिकारियों का मत है कि श्रीकृष्ण और पाडवों की एक पूर्वज नाग राजकन्या थी। यादव सरदार शूर, जिन्होंने शूर वश की स्थापना की, नागराज आर्यक की, जिन्हे भोज, भावि अथवा मरीख भी कहा जाता था, एक पुत्री से व्याहे थे। उनमें शूर को दस पुत्र हुए जिनमे से श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव सबसे बडे थे और उनके बाद उद्धव के पिता देवभाग दूसरे बडे पुत्र थे। इसी नागसुदरी मे शूर की पाँच कन्याओ ने जन्म लिया, जिनमें पाडवो की माता पृथा अथवा कुती सबमें बडी और चेदि की महारानी तथा शिशुपाल की माता श्रुतश्रवा चौथी थी। (महाभारत आदिपर्व, अध्याय १२८, श्लोक ६४, भागवत १९,२४, हरिवश १,१३८)।

आर्यों के भारत आने से पूर्व, समाज की प्रारभिक अवस्था मे ४००० ईस्वी पूर्व से एशिया माइनर से जापान तक चालकोलिथिक सस्कृति के लोग फैले थे, जो माँ देवी की उपासना करते थे। हडप्पा सस्कृति के लोगों में भी माँ की पूजा प्रचलित थी, और कुछ विद्वानों का मत है कि देवी का आदि नाम मा है, जिससे उमा और अबा शब्द शायद उद्भूत हुए हैं।

३ गोमान्तक कांड

कृष्ण और बलराम के गोमान्तक मे शरण लेने की कथा हरिवश मे तो

है, पर वह विष्णुपुराण अथवा भागवत में नही पायी जाती। यदि हरिवंश की कथा सही है तो गोमान्तक शायद आधुनिक गोवा अथवा सह्याद्रि पर्वत की चोटी महेन्द्र पर्वत के आसपास पश्चिमी तट पर कोई अन्य स्थान होना चाहिए।

यह घटना कई कारणो से महत्त्वपूर्ण बन गई है। अपने गोमान्तक प्रवास में ही कृष्ण गरुड के सम्पर्क में आए। पुराणों में कही तो गरुड को दिव्य पक्षी कहा गया है और कही उन्हे गरुड की भाँति मानव बताया गया है। (हरिवंश, द्वितीय भाग, अध्याय ८०, ८१)। गोमान्तक में ही कृष्ण और बलराम को वे शस्त्र प्राप्त होते है जिनका संबंध उनसे जोडा गया है, और जिनमे से प्रत्येक का एक विशेष नाम है (हरिवंश २, अध्याय ८३-९ और १०)।

गोमान्तक कांड में ही बलराम सर्वप्रथम उन आदतों को अपनाते है जिनकी पुराणों ने चर्चा की है। प्रत्येक पुराण में मद्यपान के प्रति उनका प्रेम बताया गया है, परन्तु हरिवंश में यह वर्णन मिलता है कि किस प्रकार वे सर्वप्रथम सुगंध देनेवाले कदम्ब वृक्ष की ओर आकृष्ट होते है और उसका रसपान करते है। इसी से मद्य का 'कादम्बरी' नाम पडा। (हरिवंश २, अध्याय ८१-८३)। फिर भी, मैं यह दावे के साथ नही कह सकता हूँ कि श्रीकृष्ण और बलराम के समय में पश्चिमी समुद्रतट पर कदम्ब वृक्ष उगते थे।

अपने गोमान्तवास में ही बलराम ने उन तीन दिव्य अप्सराओं का सहवास प्राप्त किया जिनके नाम मैंने इस कथा में तीन गरुड बालाओं को दिए है (हरिवंश २, अध्याय ४१-३५)।

गोमान्तक कांड का अपना महत्त्व है, क्योकि इसी में कृष्ण बलराम द्वारा जरासंध को हराये जाने का वर्णन मिलता है, और जरासंध तथा उसके साथियो की इस पराजय ने ही श्रीकृष्ण तथा बलराम को अजेय होने की उस ख्याति से विभूषित कर दिया था जिसकी चर्चा हम बाद की घटनाओं के वर्णन में पाते है।